# विद्यापति की पदावली

लेखक

श्री वसंत कुमार माथुर

एम० ए०, एम० एस-सी०, बी० टी०,

विशारद

मिलने का पता-

भारती ( भाषा ) भवन, दिल्ली

प्रथम संस्करण १९५२ मूल्य १०)

प्रकाशिका
श्रीमती सावित्री दुलारेलाल एम० ए०,
संचालिका—भारती (भाषा)भवन,
दिल्ली।

अन्य प्राप्ति स्थान

१. गंगा पुस्तक माला कार्यालय ३६ गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ

२. राष्ट्रीय प्रकान मंडल, मछुवा टोली, पटना

३. साहित्य रत्न भंडार, महात्मा गाँधी रोड, आगरा

मुद्रक :
एलबियन प्रेस
दिल्ली

# भूमिका

एक प्रकार से मैथिल कोकिल विद्यापति को हिंदी का आदि कवि होने का गौरव प्राप्त है। रासोकार चंद और आल्हा के अमर गायक जल्हण विद्यापति से पूर्व के अवश्य हैं परंतु दोनों के काव्यों में इतना मिश्रण हो गया है कि मूल पाठ का मिलना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। विद्यापति लोक कवि हैं, साधु विरक्त, जरा-ग्रस्त वृद्ध, प्रेमी युवक, लजीली वधुऐं सभी को विद्यापति से समान रूप से प्रेरणा मिलती है, सभी के जीवन में वह रम गये हैं, सभी उनका अभिनंदन करते हैं। परंतु हमारे दुर्भाग्य से पदावली का कोई सुंदर संस्करण उपलब्ध नहीं था। इस संग्रह द्वारा मैंने इस अभाव को भरने का भरसक प्रयत्न किया है। इस संग्रह में तुलनात्मक अध्ययन के साथ रस रीति का निरूपण भी किया गया है। विद्यापति का स्थान हिंदी के नव रत्नों में कौन सा है, या नहीं है, उनमें कौन से गुण परवर्ती कवियों से अधिक हैं, किन गुणों का उनमें अभाव है, इत्यादि विवादों में न पड़ कर मैंने केवल श्रद्धांजलि मात्र ही अर्पित की है। जिस प्रकार भक्त अपने आराध्य देव के गुण दोषों की विवेचना नहीं करता है उसी प्रकार मैंने भी विवेचना करने की अनधिकार चेष्टा नहीं की है।

इस संग्रह के प्रकाशन के लिए मैं भारती (भाषा) भवन का आभारी हूँ। इसको मैंने सन् १९४६ में लिख कर पूर्ण कर लिया था। परंतु कानपुर, आगरा, सागर, प्रयाग इत्यादि के प्रमुख प्रकाशकों के पास पांडुलिपि पूरे ६ वर्ष तक घूमती रही, पर छपा एक पृष्ठ भी नहीं। आज के समय में जब कि हमारी मातृभाषा को राज्य-भाषा घोषित करके इसकी जो छीछालेदर की जा रही है, भारती भाषा भवन की संचालिका सुश्री सावित्री दुलारेलाल ने इस संग्रह को प्रकाशित करके मातृ भाषा की जो सेवा की है उसके लिए उनका जितना भी आभार माना जाय कम है।

यह पुस्तक पत्र-पुष्प की भाँति काव्य पारखियों को तथा उनको जिन्हें इससे कुछ भी लाभ पहुँचेगा, समर्पित है

वसंत पंचमी
विक्रम० सं० २००८

वसंतकुमार माथुर

# वक्तव्य

मैथिल कोकिल महाकवि विद्यापति उस कवि परंपरा के आदि कवि हैं जिसने बाद को पल्लवित तथा पुष्पित होकर श्री सूर, तुलसी, केशव रसखान जैसे महाकवियों को जन्म दिया। विद्यापति की पदावली का कोई सुंदर तुलनात्मक संस्करण न होना हिंदी भाषा प्रेमियों को खटकता था। जो भी पुस्तकें अभी तक विद्यापति पर प्रकाशित हुई हैं उनमें ऐतिहासिक तथा भाषा सम्बंधी विषयों पर अधिक प्रकाश डाला गया है। रस-निरूपण, भाव-व्यंजना तथा तुलनात्मक अध्ययन का उनमें प्रायः अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक इस अभाव की पूर्ति करती है। इतनी सुंदर पुस्तक लिखने के लिए इसके लेखक श्री वसंतकुमार माथुर धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक अब रस पारखियों के पास जा रही है। वही इसका वास्तविक मूल्यांकन करेंगे, जैसाकि भव-वियोगिनी मीरा ने कहा है।

जौहर की गति जौहरि जाने के जिन जौहरि होय।

आशा है कि इस संग्रह का समुचित आदर किया जायेगा।

दिल्ली
ता०-३१-१-५२

सावित्री दुलारेलाल
संचालिका
भारती (भाषा) भवन
दिल्ली।

# विषय-सूची

१

नन्द क नन्दन कदम्ब क तरु तर
धिरे धिरे मुरलि बजाव ।
समय सँकेत—निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव ॥ २ ॥
सामरि, तोरा लागि
अनुखन विकल मुरारि ॥ ३ ॥
जमुना क तिर उपवन उदवेगल
फिरि फिरि ततहि निहारि ।
गोरस बेचए अवइत जाइत
जनि जनि पुछ बनमारि ॥ ५ ॥
तोंहे मतिमान, सुमति, मधुसूदन
बचन सुनहि किछु मोरा ।
भनई विद्यापति सुन बरजौवति
बन्दह नन्द किसोरा ॥ ७ ॥

(१) क=के । तर = तले, नीचे । संकेत = प्रेमी प्रेमिका के मिलन का पूर्व निश्चित स्थान । निकेतन = स्थान । संकेत निकेतन = अभिसार के लिये पूर्व निश्चित स्थान । बेरि बेरि = बार बार उ० जो कोई जाया इक बेरि माँगा— जनम न हो फिर भूखा नाँगा । (जायसी) पठाव = सँकेत अथवा संदेश देना ।

(३) सामरि = श्यामा, राधा । तोरा लागि– तेरे कारण, तेरे लिये । उ० तुम्हीं लागि धरिहों नर देहा । (तुलसी) अनुखन = अनुक्षण, प्रति क्षण, निरंतर ।

(५) तिर = तीर, किनारे । उदवेगल = उद्विग्न हुआ, व्याकुल । ततहि = उसी ओर । बेचय = बेच कर । अबइत = अभी इधर से । उ० चित इत उत, अवसर पाई—भाजि चले किलकात मुख, दधि ओदन लपटाई । ( तुलसी ) जाइत = जाती हैं । जनि जनि = एक एक से । बनमारि = बनमाली—कृष्ण— बनमाली वृज पर बरसत बनमाली बनमाली दुर दुखः केशव कैसे सहौं । (केशव)

(७) तोहें = तुम्हारी ओर। मतिमान = बुद्धिमान, अनुरक्त। सुमति = बुद्धिमान। किछु = कुछ। भनई = कहते हैं। बरजौवति = उत्तम श्रेष्ठ युवती। वंदह = वंदना करो।

(२) हे, राधे, नंद नंदन श्री कृष्ण कदम्ब के वृक्ष के नीचे बैठे धीरे-धीरे मुरली बजा रहे हैं। हे राधे, संकेत स्थान में बैठे मिलन का समय हुआ जान कर कृष्ण मुरली के स्वरों में तुम्हें पुकार रहे हैं।

गीत गोविन्द कार ने भी इसी भाव को इस प्रकार कहा है--"नाम समेतम् कृत संकेतम् वादयते मृदुवेणुम्।"

(४) हे राधे, हे श्यामा, तेरे कारण मुरारी अति क्षण विकल हो रहे हैं। यमुना किनारे वाले उपवन में अतीव व्याकुलता से बार बार उसी ओर निहार रहे हैं जिधर से तुम्हारे आने की आशा है। हे राधे, गोरस को बेच कर लौटने वाली तथा गोरस बेचने जाने वाली प्रत्येक गोपी से बनमाली कृष्ण तेरे सँबंध में पूछ रहे हैं।

(७) हे सुचतुरे, हे सुमति, मेरी कुछ बातें सुनो। मधुसूदन तुझ पर अनुरक्त है। इस कारण विद्यापति कहते हैं कि हे युवतियों में सर्व श्रेष्ठ राधे तुम नन्द किशोर की वंदना करो।

(२)

## राधा की वंदना

देख देख राधा रूप अपार।
अपुरुब के बिहि आनि मिलामोल
खिति तल लावनि—सार ॥ २ ॥
अंगहि अंग अनँग मुरछायत
हेरए पड़ए अथीर।
मनमथ कोटि—मथन करु जे जन
से हेरि महि—मधि गीर ॥ ४ ॥
कत कत लखिमी चरन-तल नेओछए
रंगिनि हेरि विभोरि ।

करु अभिलाख मनहि पद पंकज
अहोनिसि कोर अगोरि ॥ ६ ॥

(२) अपुरुब = अपूर्व । बिहि = विधाता, ब्रह्मा । आनि मिलाओल = ला-मिलाया । खिति = क्षिति, पृथ्वी । लावनि = लावण्य । सार = तत्व भाग ।

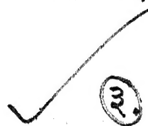
(४) अंग = तन, गात्र । हेरए = देख कर । अथीर = अस्थिर, चंचल । जे जन = जो व्यक्ति । से = वह भी । महि मधि = पृथ्वी के मध्य अथवा पृथ्वी पर । गीर = गिर पड़ते हैं ।

(६) लखिमी=लक्ष्मी । नेओछए = न्यौछावर करती हैं । रंगिनि = सुंदरी । मनहि = मन ही मन में । अहोनिसि = (सं० अहर्निश) रात दिन, नित्य । कोर = गोद । अगोर = यत्न पूर्वक रखना ।

(२) तनिक राधा के अपूर्व रूप की ओर देखिये । ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने पृथ्वी पर पाये जाने वाले समस्त लवण्य के सार से श्री राधा की रचना है ।

(४) श्री राधा के अंग प्रत्यँग की शोभा को देख कर स्वयं कामदेव भी अस्थिर होकर मूर्छित हो जाते हैं । करोड़ों कामदेव के सम्मलित सौन्दर्य को अपने अनुपम सौन्दर्य से लज्जित करने वाले कृष्ण भी श्री राधा के अंग प्रत्यँग की शोभा को निरख कर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ।

( ६ ) जिन श्रीकृष्ण के चरण कमलों की अपूर्व सुन्दरता पर लक्ष्मी स्वयं को न्यौछावर करती हैं वह भी राधा को देख कर बेसुध हो जाते है । श्री राधा के अपूर्व सौन्दर्य को देख कर उनके मन में अभिलाषा होती है कि वह इन चरण कमलों को अपनी गोदी में रख कर दिन-रात अगोरा करें ।



(३)

## देवी-वंदना

जय जय भैरवि असुर भयाउनि
पशुपति भामिनि माया ।
सहज सुमति वर दिअओ गोसाउनि
अनुगति गति तुअ पाया ॥ २ ॥

बासरि रैनि सवासन सोभित
चरन, चन्द्र मणि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल
कतओ उगलि कैल कूड़ा ॥ ४ ॥
सामर बरन, नयन अनुरंजित
जलद-जोग फुल कोका।
कट कट विकट, ओठ-पुट पाँडरि
लिधुर-फेन उठ फोका ॥ ६ ॥
घन घन घनए घुघुर कत बाजए
हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक,
पुत्र बिसरु जनि माता ॥ ८ ॥

(२) भयाउनि = भयावनी । पसुपति = महादेव, शिव । दिअओ = दो, प्रदान करो। गोसाउनि = गोस्वामिनी, भगवती। अनुगति = अनुसरन, अनुगमन गति = सहारा, अवलम्ब । उ० तुम्हहिं छांडि दूसर गति नाहीं; बसहु राम तिनके उर माहीं। (तुलसी) तुअ = तुम्हारे। पाया = पाँव, चरण।

(४) सवासन = शव+आसन, मुर्दे पर आसन। चन्द्र मनि = चन्द्र मणि; चन्द्र काँत मणि। चूड़ा = मस्तक, शिखा। कतओक = कितने ही। मेलल = मेला है, रखा है। कैल = कर दिया है! कूड़ा = क्षति विक्षित।

(६) बरन = वर्ण। अनुरंजित = रक्त वर्ण। जलद-जोग = मेघ। फुल = फूले हैं। कोका = कुमुदिनी। ओठ-पुट = ओष्ट-पट, होंठ। पाँडरि = एक रक्त वर्ण पुष्प, अर्थात् रक्त वर्ण। फोका = बुलबुले।

(८) घन = मेघ। घुघुर = घुँघुरु। काता = कटारी।

( २ ) असुरों को भयभीत करने वाली देवाधिदेव महादेव की अर्द्धांगिनी हे माता भैरवी आप की जय हो। हे भगवती प्रसन्न होकर मुझे केवल यही वरदान दो कि तुम्हारे चरण कमलों का आश्रय ही मेरा एक मात्र अवलंब हो।

( ४ ) हे मातेश्वरी, आप दिन रात शवों पर आसन जमा कर शोभित होती हैं और आप के शुभ मस्तक पर चंद्रक्रांति मणि शोभा देती है।

कितने ही दैत्यों को आपने मार कर मुँह में रख छोड़ा है और और अनेकों को क्षति विक्षित कर डाला है।

( ६ ) आप का श्याम शरीर तथा लाल-लाल नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं मानो नील मेघ में रक्त कमल खिल रहे हों। आप के मुख से विकट शब्द हो रहा है और आप के ओठ पाँडुर पुष्प की तरह लाल हो रहे हैं। क्रोध के कारण मुख से निकलने वाले फेन के बुलबुले उठ रहे हैं।

( ८ ) जिस प्रकार मेघ के गरजने का शब्द होता है वैसे ही ध्वनि आप के घुंघुरुओं से निकल रही है। आप की रक्त भरी तलवार चारों ओर संहार मचाये हुए है। कवि विद्यापति आप के चरणों का दासानुदास है अतः हे मातेश्वरी आप मुझे अपने पुत्र को भूल न जाइयेगा।

## ४.

### वयः सन्धि

सैसव जौवन दुहु मिलि गेल।
स्रवन क पथ दुहु लोचन लोल ॥ २ ॥
बचन क चातुरि लहु लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास ॥ ४ ॥
मुकुर लई अब करई सिंगार।
सखि पूछइ कइ से सुरत-विहार ॥ ६ ॥
निरजन उरज हेरए कत बेरि।
हसइ से अपन पयोधर हेरि ॥ ८ ॥
पहिल बदरि-सम पुन नवरंग।
दिन-दिन अनंग अगोरल अंग ॥ १० ॥
माधव पेखल अपुरुब बाला।
सैसव जौवन दुहु एक भेला ॥ १२ ॥
विद्यापति कह तुहु अगेआनि।
दुहु एक जोग हइ के कह सयानि ॥ १४॥

(२) गेल = गये। (४) लहु = लघु, मन्द। धरनिये = पृथ्वी पर। कएल = कर रहा है। परगास = प्रकाश। (६) मुकुर = दर्पण। सुरत-विहार = काम क्रीड़ा। (८) निरजन = निर्जन, ऐकांत। सहस = हंसती है, प्रसन्न होती है। (१०) बदरि = बेर का फल। उ० जिनहि विश्व कर बदरि समाना। (तुलसी) नवरंग = नारंगी। अगोरल = अगोरता है, पहरा देता है। कुंवर लाख दुई वार अगोरे; दुहुँ दिसि पंवर ठाड़ कर जोरे। (जायसी) (१२) पेखल = देखी। भेला = भेंट, मुलाकात। (१४) अगेआनि = आगे होकर, प्रमुख रूप से। जोग = योग्य। के कह = कौन कहता है।

( ३ ) वयः सन्धि की यह अवस्था ऐसी है जिस में शैशव अर्थात् बचपन और यौवन दोनों मिल कर एक रंग हो जाते हैं। दोनों नेत्र कानों की राह पकड़ लेते हैं अर्थात् कटाक्ष करना प्रारम्भ कर देते हैं।

(४) इस अवस्था में नायिका की बात-चीत में चतुराई आ जाती है और वह मंद-मंद मुस्किराने लगती है। अर्थात् शैशव की उच्छृंखलता गंभीरता में परणित हो जाती है। इस समय इस अपूर्व सुन्दरी की मंद मुसकान से ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा आकाश से पृथ्वी पर उतर कर अपना स्निग्ध प्रकाश फैला रहा हो।

(६) इस अवस्था में शृंगार प्रियता की भावना जाग उठती है अतः सुन्दरी दर्पण के सन्मुख अपना शृंगार करती है। इस अवस्था में कामदेव भी अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ करता है अतः सुन्दरी काम-क्रीड़ा तथा रति विलास के सुख के संबंध में अपनी सखियों से प्रश्न पूँछती है।

(८) निर्जन स्थान अथवा एकांत में बार बार अपने नवप्रस्फुटित उरोजों को देखती है और उनको देख देख कर प्रसन्न होती है।

(१०) अज्ञात यौवना के उरोज प्रारम्भ में तो छोटे छोटे बेर फल के समान थे और फिर बढ़ कर नारंगी के आकार के हो गये। यौवन के आगमन के कारण शरीर के पुष्ट होने से ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वयं कामदेव ने अपनी इस अपूर्व निधि पर पहरा देना आरम्भ कर दिया है।

(१२) माधव ने ऐसी अज्ञात यौवना मुग्धा नायिका को देखा जिसमें शैशव और यौवन परस्पर मिल कर एकाकार हो गया है।

(१४) कवि विद्यापति राधा माधव की जोड़ी को देख कर उनको एक दूसरे के योग्य बताते हुये निर्द्वन्द रूप से घोषित करते हैं कि इस संबंध में समस्त चतुर समाज का वही मत होगा जो उनका स्वयं का है।

५.

सैसव जौवन दरसन भेल।
दुहु दल-बले दन्द परि गेल॥ २॥
कबहु बांधय कच कबहु बिथारि।
कबहु झाँपय अँग कबहु उघारि॥ ४॥

अति थिर नयन अथिर किछु भेल।
उरज उदय थल लालिमा देल ॥ ६ ॥
चंचल चरन, चित चंचल भान।
जागल मनसिज मुदित नयान ॥ ८ ॥
विद्यापति कह. सुनु बर कान।
धैरज धरह मिलायब आन ॥ १० ॥

(२) दल—बले = सैन्य बल। दन्द = द्वन्द, युद्ध। परि गेल = पड़ गया, ठन गया, छिड़ गया।

(४) विथारि = छितरा कर। उ० (१) बीरी पड़ी विथारि कपोल पर पीरी पीरी; धीरी परी धाय गिरी सीरी परी सेज पर। (पद्माकर) (२) अबहु जियावहु के मया बिथुरें छार समेटि। (जायसी) अंग = वक्ष स्थल। (६) थिर = स्थिर। अथिर = अस्थिर। उदय थल = उदय स्थल; उगने का स्थान। लालिम = लालिमा। देल = छा गई है।

(८) भान = मालूम होता है। जागल = जाग उठा है, जाग्रित हो गया है। मुदित = मुंदी हुई, बन्द।

(१०) कान = कान्ह, कृष्ण। धैरज = धीरज। धरह = धरो, धारण करो। आन = शपथ।

(२) इस अज्ञात यौवना सुन्दरी के शरीर में शैशव और यौवन दोनों अवस्थाओं का एक साथ ही दर्शन होता है। दोनों अपना आधिपत्य रखना चाहते हैं। शैशव अपना आधिपत्य छोड़ना नहीं चाहता और यौवन बल पूर्वक प्रवेश करना चाहता है। अतः दोनों में युद्ध होना अवश्यंभावी हो गया है। इसी कारण दोनों ने अपने-अपने सैन्य बल को सजा लिया है और दोनों की सेनाओं में द्वन्द युद्ध छिड़ गया है। जिस समय जिस पक्ष का पल्ला प्रबल होता है सुन्दरी उसी के अनुकूल आचरण करती है।

(४) कभी तो वह अपने केशों को यत्न पूर्वक संवार कर बांधती है तो कभी अपनी बेणी को खोल डालती है। इसी प्रकार कभी तो बाला सहज स्वभाव से अपने वक्ष स्थल को खोल देती है परन्तु फिर लज्जावश उसे ढक लेती है।

(७) बाला के नेत्र जो पहिले स्थिर थे अब चंचल हो उठे हैं और जिस प्रकार बाल सूर्य के उदय होते समय चारों ओर लालिमा छा जाती है उसी प्रकार उरोजों के निकलने के स्थान भी अरुण हो गये हैं।

(८) शैशव काल में शरीर की समस्त चंचलता चरणों में होती है। अतः पैर तो पहिले से चंचल थे ही अब चित्त भी चंचल हो उठा है। इस वयः सन्धि की अवस्था का उदाहरण ऐसे व्यक्ति से दिया जा सकता है जो निद्रा से जाग तो उठा हो परन्तु जिसने आँखें न खोली हों। अत. ऐसा प्रतीत होता है मानो इस मुग्धा के शरीर में निद्रित कामदेव जाग्रत तो हो उठा है परन्तु उसने अभी अपनी आंखें खोल कर चारों ओर प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न नहीं किया है।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि पुरुषों में श्रेष्ठ कृष्ण आप धीरज धरिये, मैं शपथ खाता हूँ कि आपसे उस बाला का मिलन अवश्य कराऊँगा।

वयः सन्धि पर बिहारी की उक्ति को देखिये :—

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोवन अंग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपत ताफता रंग॥

## ६

सैसव जौवन दरसन भेल।
दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल॥ २॥
मदन क भाव पहिल परचार।
भिन जन देल भिन्न अधिकार॥ ४॥
कटि क गौरव पाओल नितम्ब।
एक क खीन अओक अवलम्ब॥ ६॥
प्रगट हास अब गोपत भेल।
उरज प्रगट अब तन्हिक लेल॥ ८॥
चरन चपल गति लोचन पाव।
लोचन क धैरज पद तल जाव॥ ६॥
नव कविसेखर की कहइत पार।
भिन-भिन राज भिन्न बेबहार॥ १०॥

(२) मनसिज = कामदेव । गेल = गमन किया । (४) भाव = सत्ता, प्रभुत्व । परचार = प्रचार । भिन = भिन्न-भिन्न, अन्य । जन = व्यक्ति । देल = दे दिया । (६) गौरव = गुरुता, भारीपन । पाओल = पाया, प्राप्त किया । क = को । खीन = क्षीण करके । अओक = अन्य का, दूसरे का । (८) गोपत = गुप्त । भेल = हो गया । तन्हिक = उसको । लेल = ले लिया । (६) पाव = पाया है, प्राप्त किया है । धैरज = धीरज । (१२) पार = वारापार ।

(२) जब दो व्यक्तियों में लड़ाई होती है तो तीसरे का काम बन जाता है । शैशव और यौवन को एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध में प्रवृत्त देख कर कामदेव ने उस अज्ञात यौवना सुंदरी के शरीर में प्रवेश करके अपना आधिपत्य जमा लिया ।

(४) बाला के शरीर रूपी राज्य पर कामदेव का अधिकार हो जाने से उसी की सत्ता का प्रचार होने लगा । नये राजा के सिंहासन पर बैठते ही जिस प्रकार राज्य कर्मचारियों में परिवर्तन हो जाते हैं उसी प्रकार कामदेव ने अपना अधिकार जमाते ही राज्य व्यवस्था में परिवर्तन कर डाला है और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों (अंगों) को भिन्न-भिन्न अधिकार दे दिये हैं ।

(६) इस नवीन राजा का अधिकार होते ही कटि की गुरुता अर्थात भारीपन नितम्बों को दे दिया गया । और यह इस प्रकार किया गया कि कटि को क्षीण करके उसके सार से दूसरे (नितम्बों) की रचना की गई । इसी भाव को लेकर कविवर बिहारी लाल ने कितनी सुन्दर उक्ति कही है :—

ज्यौं-ज्यौं जोवन जेठ दिन, कुच मित अति अधिकात ।
त्यौं-त्यौं छिन-छिन कटि छया, छवि परति सी जाति ।।

(८) कामदेव के राज्यारोहण से पहिले शैशवावस्था में बाला के शरीर में हास्य प्रकट था और कुच अप्रकट परन्तु कामदेव ने राज्यभार संभालते ही हास्य को गुप्त रहने का आदेश दिया और कुचों को प्रकट होने की आज्ञा प्रदान की अर्थात प्रकट हंसी अब गुप्त हो गई और उसकी प्रकटता कुचों के बाँट में आई ।

(१०) इसी प्रकार पहिले चरण चंचल थे और नेत्र स्थिर परन्तु नवीन राजाज्ञा से चरणों की चंचलता नेत्रों को मिली और नेत्रों की स्थिरता चरणों के पल्ले पड़ी ।

(१२) नव कवि शेखर विद्यापति कहते हैं कि ऐसा होना तो स्वभाविक ही है क्योंकि भिन्न-भिन्न राजाओं के व्यवहार में अन्तर होता है और इसी कारण बाला के शरीर में भी परिवर्तन होते हैं।

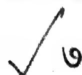
कविवर बिहारी लाल ने भी प्रकृति के इस विचित्र व्यवहार के संबंध में अनूठी उक्तियां कही हैं :—

अपने तन के जानि के, जोवन नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितम्ब को, बड़ो इजाफो कीन॥
नव नागरि तनु मुलक लहि, जोवन आमिल जोर।
घटि बढ़ि ते बढ़ि घटि रकम, करी और की और॥

सूर श्याम से साक्षातकार करने वाले बृज भाषा के अन्यतम कवि श्री सूरदास ने भी अपनी अंधी आंखों से प्रकृति के विचित्र परिवर्तन को देखा था। उन्होंने इस क्षेत्र में कैसा सुन्दर चित्रण किया है। ज़रा उनकी उक्ति भी देखिये

अब राधे नाहि न ब्रजनीति।
नृप भयो कान्ह, काम अधिकारी, उपजी है ज्यों कठिन कुरीति॥
कुटिल अलक भ्रुव चारु नैन मिलि सँचरे स्रवन समीप सुमीति।
वक्र बिलोकनि भेद भेदिआ, जोइ कहत सोई करत प्रतीति॥
पोच पिसुन लस दसन सभासद, प्रभु अनँग मंत्री बिनु भीति।
सखि बनु मिलैं तो न्याव नियैहैं कठिन कुराज राज की ईति॥
मंद हास मुख मंद वचन रुचि मंद चाल चरनन भई प्रीति।
नख सिख ते, चितचोर सकल अंग जस राजा तस प्रजा बसीति॥
तेरो तनु धन रूप महागुन सुंदर श्याम सुनी यह कीति।
सो कर सूर भांति जेहि रह पांति जानि बल बांधि बढ़ावहु छीति॥(१)

राधे, यह छवि उलटि भई।
सारंग ऊपर सुन्दर कदली, तापर सिह ठई॥
ता ऊपर है हाटक बरनौं मोहन कुंभ मई।
तापर कमल, कमल विच विद्रुम, तापर कीर लई॥
तापर द्वै द्वै मीन चपल हैं सउती साध रही।
सूरदास प्रभु देखि अचंभो कहत न परत कही॥



७

किछु-किछु उतपति अंकुर भेल।
चरन-चपल-गति लोचन लेल ॥ २ ॥
अब सब खन रह आँचर-हात।
लाजे सखिगन न पुछए बात ॥ ४ ॥
कि कहब माधब, वयस क संधि।
हेरइत मनसिज मन रहु बंधि ॥ ६ ॥
तइओ काम हृदय अनुपाम।
रोपल घट ऊचल कए ठाम ॥ ८ ॥
सुनइत रस-कथा थापए चीत।
जइसे कुरंगिनी सुनए सँगीत ॥ १० ॥
सैसव जौवन उपजल बाद।
केओ न मानए जय अवसाद ॥ १२ ॥
विद्यापति कौतुक बलिहारि।
सैसव से तनु छोड़नहि पारि ॥ १४ ॥

(२) किछु=कुछ। उतपति=उत्पन्न होते हैं। अंकुर=चिन्ह, कुचों के चिन्ह। (४) खन=क्षण। हात=हाथ। (६) की कहब=क्या कहूँ। बंध=बंध गया, मोहित हो गया। (८) तइओ=तौ भी। अनुपाम=अनुपम। रोपल=रोप दिया है, स्थापित कर दिया है। उ० बीच सभा अँगद पद रोप्यो, टरयो न निश्चर हारे। (सूर ऊचल=उंचा कर दिया है। (१०) थापय=थापती है, लगाती है, स्थापित करती है। चीत=चित्त। (१२) उपजल=उत्पन्न हो गई है। बाद=झगड़ा। उ० गौतम की धरनी ज्यों तरनी तैरेगी मेरी; प्रभु सौ विवाद कै के बाद न बढ़ाय हौं। (तुलसी)। उपजल बाद=होड़ मची है, झगड़ा हो गया है। केओ=कोई भी। अवसाद=क्षय,पराजय। (१४) पारि=पड़ेगा।

(२) वयः सन्धि में यौवन के आधिपत्य होते जाने से बाला के शरीर में धीरे धीरे यौवन के लक्षण प्रकट होते जाते हैं। बाला के वक्षस्थान पर उरोजों के

छोटे-छोटे अंकुर से दिखाई देने लगे हैं और कदाचित इंहीं को निहारने के लिये चरणों की चंचलता नयनों के हिस्से में आ गई है।

(४) यौवन का प्रवेश हो जाने से बाला की गति विधि में भी अन्तर आ गया है। नवीन उत्पन्न उरोजों को ढकने तथा छुपाने के लिये अब उसके हाथ में प्रति क्षण अंचल रहता है। लज्जा का पूर्वाभास मिल जाने से अब बाला को सखियों से वार्तालाप करने में भी लज्जा प्रतीत होती है।

(६) हे माधव, वयः सन्धि की अपूर्वता किस प्रकार तुमसे कहूँ। हे माधव, यह अवस्था ही ऐसी अनूठी है कि स्वयं कामदेव का मन भी उस पर मोहित हो गया है।

(८) परन्तु, हे माधव, बाला के रूप जाल में बंदी होने पर भी कामदेव ने उसके अनुपम हृदय (वक्षस्थल) पर मंगल घट स्थापित करके (उरोजों को उत्पन्न करके) उस स्थान को उच्च (सेव्य योग्य) कर दिया है।

(१०) शरीर पर कामदेव का आधिपत्य हो जाने से बाला के व्यवहार में एक परिवर्तन यह भी हो गया है कि अब वह रस कथा अर्थात रति क्रीड़ा की बातों को इस प्रकार स्थिर चित्त और उत्सुकता से सुनने लगी है। जिस प्रकार हरिणी संगीत को सुन कर आत्म-विभोर हो जाती है।

(१२) हे माधव, अभी उस बाला की वयः सन्धि की अवस्था है, यौवन उसके शरीर में बलात प्रवेश करना चाहता है और शैशव अपने आधिपत्य को त्याग करने को तत्पर नहीं है अतः ऐसा प्रतीत होता है मानो शैशव यौवन में झगड़ा हो रहा है तथा आधिपत्य के लिये होड़ मची हुई है। परन्तु हे माधव दोनों ही प्रतिद्वन्दी प्रबल हैं, कोई भी दूसरे की जय और अपनी पराजय स्वीकार करने को तत्पर नहीं है।

(१४) कवि विद्यापति इस आश्चर्य जनक कौतुक पर बलिहार होता है परंतु उसे विश्वास है कि शैशव को अन्त में पराजय मान कर बाला के शरीर को छोड़ना ही पड़ेगा।

## ८.

पहिल बदरि कुच पुन नवरंग।
दिन दिन बाढ़ए पिड़ए अनंग॥ २॥
से पुन भए गेल बीज कपोर।
अब कुच बाढ़ल सिरिफल जोर॥ ४॥
माधव पेखल रमनि संधान।
घाटहि भेटल करत सिनान॥ ६॥
तनसुख सुबसन हिरदय लागि।
जे पुरुख देखब तेकर भागि॥ ८॥
उर हिल्लोलित चांचर केस।
चांपर झाँपल कनक महेस॥ १०॥
भनइ विद्यापति सुनहु मुरारि।
सुपुरुख बिलसए से बरनारि॥ १२॥

(२) पिड़ए = पीड़ा देता है। (४) से = समान। बीज कपोर = बीज पूर, चकोतरा। बाढ़ल = बढ़ कर। श्री फल = बेल। जोर = समान। (६) संधान = वयः सन्धि। भेंटल = भेंट हुई। सिनान = स्नान। (८) तनसुख = बढ़िया फूलदार कपड़ा। उ० तनसुख सारी लही अंगिया अतलस अतरौटा छवि चारि चारि चूरी पहुँचीनि पहुँची छमकी बनी नकफूल जेब सुख बीरा चौका कौंधे संभुम भूली। (हरिदास) कोमलता पर रसाल तनसुख की सेज लाल मनहुँ सोम सूरज पर सुधा विन्दु वरषै। (केशव)। तेकर = जिनका भागि = भाग्य। (१०) चांचर = चंचल। चामर = चँवर। उ० बाँसुरी समान बोल सप्त ग्वाल गाय कै, कृष्ण ही रिझावहीं सु चामरै डुलाय कै। झाँपल = झाँप दिया है, ढक दिया है। कनक = सुवर्ण। (१२) बिलसए = विलास कर सकते हैं। वर = श्रेष्ठ, उत्तम।

इस पद में कवि ने बाला के कुचों के क्रमिक विकास का चित्र खींचा है। जैसे जैसे शैशव का अंत होता जाता है और यौवन अपना आधिपत्य जमाता जाता है वैसे ही कुचों को प्रधानता मिलती जाती है और वह अंकुरित होकर क्रमशः बढ़ने लगते हैं।

(२) यौवन के प्रथम स्पर्श से पूर्व बाला के कुच छोटे बैर फल के समान थे और फिर बढ़कर नारंगी के समान हो गये ; परंतु कुचों के बढ़ने से एक परिवर्तन और भी हुआ और वह यह कि जैसे जैसे कुच बढ़ने लगे वैसे ही वैसे कामदेव ने बाला के शरीर को मथ कर उसे पीड़ा देना आरम्भ करदिया।

(४) जिस प्रकार बीज अंकुरित होने के पश्चात् क्रमश बढ़ते बढ़ते पोर (वृक्ष की गांठ) बनता है उसी प्रकार कुच भी उसी के समान मोटे और दृढ़ हो चले। थोड़े ही दिनों के पश्चात् कुच बढ़ कर श्री फल के समान हो गये।

(६) माधव ने वयः सन्धि वाली बाला को देखा। यह परस्पर देखा-देखी और भेंट घाट पर स्नान करते समय हुई।

(८) उस समय बाला की तनसुख की साड़ी भीग कर उसके अंगों से चुपकी हुई थी। ऐसे दृश्य का दर्शन केवल वही व्यक्ति कर सकते हैं जिनके भाग्य में विधाता ने विशेष रूप से इसका लेखा कर दिया है।

(१०) उस समय बाला के चंचल केश बिखरकर उसके वक्ष स्थल पर फैले हुए थे और इन केशों से उसके कुच ढक गये थे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी ने महादेव की सुवर्ण प्रतिमा को चँवर से ढक दिया हो।

(१२) कवि विद्यापति माधव को संबोधित करके कहते हैं कि, हे मुरारी, सुनो, सुन्दरियों में सर्व श्रेष्ठ ऐसी बाला से केवल वही व्यक्ति विलास कर सकता है जो स्वयं पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हो।''

इस पद के प्रथम चार चरणों का भाव संस्कृत के इस श्लोक से कैसा मिल गया है —

उद्भेदं प्रतिपद्य पक्व बदरी भावं समेता क्रमात् ।
पुन्नागा कृति माप्य पूग पद वीमा रुह्य बिल्व श्रियम् ॥
लब्ध्वा ताल फलोपमां च ललितामासाद्य भूयोधुना ।
चंचत् कांचन कुम्भजम्भन मिमावस्याः स्तनौ विभ्रतः ॥

## ६.

खने खन नयन कोन अनुसरई।
खने खन बसन धूलि तनु भरई॥ २॥
खने खन दसन-छटा छुट हास।
खने खन अधर आगे गहु वास॥ ४॥

चँउकि चलए खने खन चलु मन्द ।
मनमथ-पाठ पहिल अनुबन्ध ॥ ६ ॥
हिरदय-मुकुल हेरि हेरि थोर ।
खने आँचर दए खने होए भोर ॥ ८ ॥
बाला सैसव तारुन भेंट ।
लखए न पारिअ जेठ कनेठ ॥ १० ॥
विद्यापति कह सुन वर कान ।
तरुनिम सैसव चिन्हइ न जान ॥ १२ ॥

(२) खने खन = क्षण प्रति क्षण। कोन = कोण। अनुसरई = अनुसरण करती हैं। कोन अनुसरई = कोण का अनुसरण करती हैं अथवा कटाक्ष करती हैं। तनु = शरीर। (४) हास = हास्य। गहु = रख लेती है। बास = वस्त्र। (६) चँउकि = चौंक कर। अनुबन्ध = आरंभ, भूमिका। (८) हिरदयमुकुल = हृदय की कली अर्थात कुच। भोर = विभोर, भूल जाना। (१०) तारुन = तारुण्य, यौवन। भेंट = मुक़ाबिला। कनेठ = कनिष्ठ, छोटा, निर्बल। (१२) तरुनिम = यौवन, जवानी। चिन्हइ = पहिचानना।

यौवन के आगमन से बाला के स्वभाविक व्यवहार में जो परिवर्तन हो जाते हैं उसका चित्र कवि ने इस पद में खींचा है। बाला की गति विधि में शैशव कालीन तथा यौवन कालीन चेष्टाओं का सामंजस्य हो जाता है। शैशव कालीन व्यवहार पर उसे लज्जा प्रतीत होती है और वयस्यका तथा स्त्रियोचित व्यवहार करते समय उसकी गति विधि स्वतः ही शैशव कालीन स्वच्छंद गति। विधि की ओर मुड़ पड़ती है। इसी विचित्र व्यापार का वर्णन इस पद में है।

(२) क्षण-क्षण में नेत्र कोण का अनुसरण करते हैं अथवा कटाक्ष करते हैं और क्षण-क्षण में विचित्र अल्हड़ता के कारण अस्त व्यस्त वस्त्र धूल में गिर कर शरीर को धूल से भर देते हैं।

(४) क्षण-क्षण पीछे हंसने से दांतों की आभा दिखाई पड़ती है परन्तु तुरन्त ही यौवन जन्य लज्जा का अनुभव होने से मुख के आगे आँचल रख कर हास्य को छुपाने की चेष्टा करती है।

(६) कभी तो बाला चौंक कर तेज़ी से चलने लगती है और कभी-कभी यौवन के आधिपत्य को भूल जाने से उसकी गति मन्द हो जाती है। बालन के

ऐसे व्यवहारों से ऐसा अनुमान होता है मानो उसने कामदेव की पाठशाला में पढ़ाई जाने वाली पठ्य पुस्तक को अभी प्रारम्भ ही किया है।

(८) अपने वक्ष स्थल पर उभरते हुए कुचों को बाला कभी-कभी देखने लगती है और कभी लज्जा का अनुभव करके उन्हें ढाँप लेती है। कभी-कभी बाला नव विकसित कुचों की सुन्दरता तथा विचित्रता को देख कर आत्म विभोर हो जाती है।

(१०) बाला का शरीर इस समय युद्ध क्षेत्र बना हुआ है, जहाँ शैशव और यौवन का परस्पर मुक़ाबिला हो रहा है। दोनों प्रतिद्वन्दी इतने प्रबल हैं कि इन दोनों में से कौन बड़ा और कौन छोटा है अथवा कौन निर्बल और कौन सबल है यह जान ही नहीं पड़ता है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे पुरुषों में श्रेष्ठ कृष्ण सुनो, बाला का व्यवहार इतना विचित्र है कि उसकी चेष्टाओं से यह पता लगाना कि उस पर किसका प्रभुत्व है, शैशव अथवा यौवन का, बहुत कठिन है।

१०

## नख-शिख

पीन पयोधर दूबरि गता।
मेरु उपजल कनक-लता॥ २॥
ऐ कान्हु ए कान्हु तोरि दोहाई।
अति अपूरब देखलि साई॥ ४॥
मुख मनोहर अधर रंगे।
फूललि मधुरी कमल संगे॥ ६॥
लोचन जुगल भृंग अकारे।
मधु क मातल उड़ए न पारे॥ ८॥
भउंह क कथा पूछह जनू।
मदन जोड़ल काजर-धनू॥ १०॥
भन विद्यापति दूति वचने।
एत सुनि कान्हु कएल गमने॥ १२॥

(२) पीन = पुष्ट। दूबरि = क्षीण, कृश। गता = गात, शरीर। मेरु = सुमेरु पर्वत, कुच। कनक-लता = सुवर्ण की लता, सुवर्ण के समान कांति वाली देह। ४) साई = उसे। (६) फूललि = फूली हुई है। मधुरी = एक लाल रंग का फूल, जो मिथिला में विशेष रूप से होता है। (८) भृंग = भौंरा। आकारे = आकार के, समान। मातल = मस्त। (१०) मउँह = कहूँ। जनू = जनि, नहीं। जोड़ल = जोड़ा है। धनू = धनु, धनुष। (१२) कएल = करो।

(२) बाला का शरीर तो दुबला है परंतु कुच पुष्ट तथा कठोर हैं। सुवर्ण के रंग वाली देह में कुच ऐसे प्रतीत होते हैं मानो सुवर्ण लता में उत्तुंग मेरु (कुच) उत्पन्न हुआ हो।

(४) हे कान्ह, तेरी दुहाई है, तनिक उस अपूर्व बाला को देखो तो।

(६) उस बाला के गौर वर्ण सुंदर मुख पर लाल अधर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कमल (मुख) के साथ-साथ मधुरी पुष्प (लाल अधर) एक ही स्थान पर फूली हुई हो।

(८) दोनों लोचन भृंग के समान कृष्ण वर्ण हैं, परंतु साथ ही मादक भी हैं। बाला के मस्त नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं मानो भौंरों के समान दोनों लोचन मुख कमल का मधु पान करके ऐसे मस्त हो गये हैं कि प्रयत्न करने पर भी उड़ नहीं पाते।

(१०) हे माधव, यह एक ऐसी कथा है जिसका मैं वर्णन ही नहीं कर सकता अतः न पूछना ही ठीक है। गिरा अनयन, नयन बिनु बाणी। बाला के नेत्रों की काजल की रेखा ऐसी प्रतीत होती है मानो कामदेव ने संसार को विजय करने के लिये अपने धनुष को वहाँ रख दिया हो।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि दूती के मुख से बाला के अपूर्व रूप यौवन का वर्णन सुन कर कान्ह ने उस ओर गमन किया।

इस पद में कवि ने नेत्रों की उपमा मधु पीकर मस्त बने भ्रमरों से दी है जो मधुपान कर लेने के कारण चेष्टा करने पर भी उड़ नहीं पाते हैं। श्री सूरदास ने भी इस उपमा को अनेकों स्थान पर बाँधा है। उनके दो तीन पद देखिये।

भोर भए मुख देखि लजाने।
रति की केलि-बेलि सुख सींचति, सोभित अरुन नैन अलसाने ॥
काजर रेख बनी अधरन पर, नैन कपोल पीक लपटाने।
मनहुँ कंज ऊपर बैठे अलि, उड़ि न सकत मकरंद लोभाने ॥
है हिय हार अलँकृत बिनु गुन, आप सुरति इन जीति सयाने।
सूरदास-प्रभु पाय धरिए जानति हौं पर हाथ बिकाने ॥ १ ॥

अतिहि अरुन हरि नैन तिहारे।
मानहुँ रति रस भये रँगमगे करत केलि पिय पलक न पारे ॥
मंद मंद डोलत संकति से सोभित मध्य मनोहर तारे ।
मनहुँ कमल संपुट नहँ बीधे उड़ि न सकत चंचल अलिबारे ॥
बार बार अवलोकि कुरुखियन कपट-नेह मन हरत हमारे।
सूर स्याम सुख दायक लोचन दुख मोचन लोचन रतनारे ॥ २ ॥

रति संग्राम वीर-रस माते।
हैं हरि सूर-सिरोमन अजहूँ नहिन सँभारत ताते ॥
आनहि बरन भये दोउ लोचन अपने सहज बिनाते।
मानहुँ भीर पड़ी जोधन की भए क्रोध अति राते ॥
परिमल लुब्ध मधुप जहँ बैठत उड़ि न सकत तेहि ठांते।
मानहुँ मदन के हैं सर पाये फोंक बाहिरी घाते ॥
डगमगात घूमत जनु घायल सोभा सुभट कला ते।
सूरदास प्रभु रति रन जीते अब सकात धौं का ते ॥४॥

११

कि आरे! नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा ॥ २ ॥
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम।
पिक बूझल अनुमानी
नयन बदन परिमल गति तन रुचि
अओ अति सुललित बानी ॥ ४ ॥

कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल ।
ता अरुझायल हारा ।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल
चाँद बिहिनु सब तारा ॥ ६ ॥
लोल कपोल ललित मनि-कुंडल
अधर बिम्ब अध जाई ।
भौंह भ्रमर नासापुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई ॥ ८ ॥
भनई विद्यापति से बर नागरि
आन न पावए कोई ।
कंस दलन नारायन सुन्दर
तसु रंगिनी पए होई ॥ १० ॥

(२) आरे = अहा । कि = कैसा । अभिरामा = मनोहर, सुंदर । जत = जैसा । देखल = देखा । तत = तैसा । पारिअ = सकता हूँ । छओ अनुपम = छः अनुपम पदार्थ, हरिण, चंद्र, कमल हस्तिनी, सुवर्ण और कोकिला—इस पद में यह छः पदार्थ क्रमशः नेत्र, मुख, शरीर की सुगन्धि, मस्तानी चाल, शरीर की कांति और मीठी बोली के उपमान हैं। (४) इंदु = चंद्रमा । अरविंद = कमल । करिनि = हथिनी । अनुमानी = विचार, भावना । परिमल = सुवास, उत्तम गंध । रुचि = छबि, शोभा, सुंदरता । उ० त्यौं पद्माकर आनन में रुचि कानन भौंहें कमान लगी हैं। (पद्माकर) अओ = और (६) परसि = स्पर्श करके । चिकुर = केश। फुजि = खुल कर । पसरल = फैल गये हैं। हारा = मुक्ताहार । जनि = मानो । ऊगल = उगे हैं । बिहनु = विहीन, अतिरिक्त । (८) विम्ब = बिम्बाफल । अधः = अधः, नीचे, हीन । जाई = जाता है । अधजाई = हीन ज्ञात होता है । से = उसे । (१०) आन = और, अन्य । कंस दलन = मिथला के राजा अथवा श्री कृष्ण । तसु = उसकी । रंगिनि स्त्री ।

(२) आ हा ! कैसा सुंदर नव यौवन है, कैसी सुंदर नई जवानी है, जैसा देखा है उसे वर्णन नहीं कर सकता क्यों, गिरा अनयन नयन बिनु वाणी । और यदि वर्णन किया भी जावे तो संभव किस प्रकार है क्योंकि संसार की छओं अनुपम वस्तुएं एक ही स्थान पर आकर एकत्रित हो गई हैं ।

(५) अनुमान से आप स्वयं उन वस्तुओं को बूझ सकते हैं। वह छः अनुपम वस्तुएँ हैं : हरिण, चंद्र, कमल, हस्तिनी, सुवर्ण और कोयल। यह छओं वस्तु क्रमशः नेत्र, मुख, शरीर की सुगन्धि, मस्तानी चाल, शरीर की कांति और मीठी बोली के प्रतीक हैं।

(६) बाला के तन की दशा का दृश्य इस पद में अंकित किया गया है। दोनों कुचों को स्पर्श करते हुए केश खुल कर छिटक गये हैं और उनमें बाला की मुक्ता माल उलझ कर रह गई है। काले बालों में उलझी श्वेत मुक्ता माल ऐसी प्रतीत होती है मानो सुमेरु पर्वत पर चन्द्रमा के अतिरिक्त और सब तारा-गण मिल कर एक साथ उदय हुए हों।

(८) बाला के चंचल कपोल तथा उन से स्पर्श करते हुए मणि जटित कुण्डल कितने शोभायमान हैं। अधरों की लालिमा के सम्मुख बिम्बाफल भी हीन ज्ञात होता है, ऐसे रंजित उस बाला के अधर हैं। बाला की भौंहें भ्रमर के समान काली हैं और नासिका तो ऐसी सुंदर है कि सुग्गे को भी लज्जित करती है।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि "उक्त बाला ऐसी अनुपम है कि कोई अन्य स्त्री उसकी समानता कर ही नहीं सकती है। इस बाला की सुंदरता की समता करने वाली यदि कोई स्त्री हो सकती है तो वह केवल कंस दलन नरायण ( विद्यापति के आश्रयदाता का उपनाम ) की स्त्री हो तो हो, अन्यथा कोई अन्य स्त्री उसकी समता नहीं कर सकती है।

१२

माधव, की कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आनि समारल
देखल नयन सरूपे ॥२॥
पल्लव - राज चरन-जुग सोभित
गति गजराज क भाने।
कनक कदलि पर सिंह समारल
ता पर मेरु समाने ॥४॥
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल
नाल बिना रुचि पाई।

मनि-मय हार धार बहु सुरसरि
तओ नहिं कमल सुखाई ॥६॥
अधर बिम्ब सन, दसन दाड़िम-बिजु
रवि ससि उगथिक पासे।
राहु दूर बस नियरो न आबथि
तैं नहिं करथि गरासे ॥८॥
सारँग नयन, बयन पुनि सारँग
सारँग तसु समधाने।
सारँग ऊपर उगल दस सारँग
केलि करिथ मधुपाने ॥१०॥
भनई विद्यापति सुन वर जौबति
एहन जगत नहि आने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिया देई पति भाने ॥१२॥

(२) की = क्या। विहि = विधाता। समारल = संवारा है। देखल = देख लो। सरूपे = प्रत्यक्ष। (४) पल्लवराज = कमल। भाने = शोभा देता है। कदलि = केले का थम्भ। कनक-कदलि = सुवर्ण केले का थम्भ, जंघा का प्रतीक। मेरु = सुमेरु पर्वत, कुचों का प्रतीक। (६) कमल = कमल के समान कुच सम्पुट। फुलायल = फूले हैं, विकसित हुए हैं। रुचि = शोभा। बहु = बह रही है। सुरसरि = श्री गंगा। तओ = इसी कारण। (८) सम = समान। बिजु = बीज। उगथिक = उदय हुए हैं। पासे = पास पास। राहु = एक नक्षत्र जिसका वर्ण काला माना गया है, यहां केशों से तात्पर्य है। आबथि = आता है। करथि = करता है। गरासे = ग्रास। (१०) सारँग = हरिण। सारँग = कोकिला। सारँग = कामदेव। तसु = उसके। समधाने = संधान, कटाक्ष। सारँग = कमल के समान शुभ्र ललाट। सारँग = भ्रमर—केशों का प्रतीक। मधुपान = मधुपान करके। जौबति = युवती। एहन = ऐसा। आने = अन्य, दूसरा।

**इस पद में कवि शिरोमणि विद्यापति ने नायिका के सर्वांग का वर्णन साँग रूपक की भाँति किया है।**

Ram Babu Misra
Ram Babu



(२) हे माधव, उस बाला के रूप का वर्णन किस प्रकार करूँ क्योंकि स्वयं विधाता ने अपने हाथों से अनेकों बार प्रयत्न करने के पश्चात उसकी रचना की है। यदि विश्वास न हो तो स्वयं अपने नेत्रों से उसका स्वरूप निरख लो।

(४) सुकोमल कमल के समान उसके दोनों चरण शोभायमान हैं और उस बाला की चाल मस्त गजराज के समान है। सुवर्ण कदली थम्भ के समान जंघा पर सिंह की सी कटि शोभायमान है और उस पर उभरा हुआ वक्षस्थल सुमेरु के समान ज्ञात होता है।

(६) सुमेरु रूपी उभरे वृक्ष स्थल पर दो कमल पुष्प (कुच) फूले हुए हैं। यह दोनों कमल पुष्प भी बहुत विचित्र हैं क्योंकि यह बिना नाल (डंडल) के ही विकसित हो रहे हैं। कुचों पर पड़ी हुई मुक्तामाल सुमेरु पर्वत के चारों ओर लिपटी हुई गंगा की पूत धारा के समान ज्ञात होती है। कदाचित इसी संजीवनी धारा के स्रोत में विकसित होने के कारण ही बिना नाल के दोनों कमल पुष्प मुरझाते नहीं हैं।

(८) लाल अधर बिम्बाफल के समान हैं और दाँत अनार के दानों जैसे हैं। बाला ने अपने मुख चन्द्र पर बाल सूर्य जैसा लाल सिन्दूर का टीका लगा रखा है। इससे ऐसा भान होता है मानो सूर्य और चन्द्र दोनों एक साथ उदय हुए हों। सूर्य हैं चन्द्र हैं तो राहु का होना भी आवश्यक है अतः राहु रूपी केश भी हैं परन्तु वह दूर ही हैं। सूर्य और चन्द्र के एक साथ होने के कारण वह पास आने का भी साहस नहीं करता है। शास्त्रों में राहु का वर्ण श्याम माना गया है और केश भी श्याम होते हैं।

(१०) बाला के नेत्र चकित हरिणी के समान हैं और वाणी कोयल के समान है। नेत्रों के सन्मुख देखते ही उसके नयनों से कामदेव के बाण छूटते मालूम होते हैं अर्थात बाला के संधान कटाक्ष में कामदेव का वास है, अर्थात् उन में कामोत्तेजन की शक्ति है। बाला के कमल समान ललाट पर अनेकों सारँग अर्थात् भ्रमरों के समान काले केश विकसित हो रहे हैं। मुख पर लटके हुये केशों के गुच्छे ऐसे ज्ञात होते हैं मानो कमल पर बैठने वाले भौंरे मधुपान करने के पश्चात् मस्ती में केलि कर रहे हों।

(१२) कवि विद्यापति उक्त बाला को संबोधित करके कहते हैं कि हे बाले, हे सर्व श्रेष्ठ युवती इस समस्त संसार में महारानी लखिमा देवी के

पति राजा शिवसिंह रूपनारायन ( कवि के आश्रय दाता ) के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति तेरे योग्य नहीं है।

कवि श्रेष्ठ श्री सूरदास ने भी रूपक का आश्रय लेकर सर्वांग का वर्णन किया है। विद्यापति के सर्वांग वर्णन और सूरदास के रूपक में कितनी समानता है वह निम्नलिखित पदों से स्पष्ट हो जायेगी। श्री सूरदास का यह पद संसार प्रसिद्धि पा चुका है परन्तु इस यश का कितना भाग विद्यापति को मिलना चाहिये इसका निर्णय स्वयं पाठक ही कर सकते हैं। विद्यापति हिन्दी के आदि कवि हैं और उनका समय श्री सूरदास से १५० वर्ष पूर्व का है। श्री सूरदास का पद इस प्रकार है।

अद्‌भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त हैं, ता पर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सर वर सर पर गिरवर, गिरि पर फूले कँज पराग।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप,पुहुप पर पल्लव,ता पर सुक पिक मृग मद काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर. ता ऊपर इक मनिधर नाग॥
अंग-अंग प्रति और और छवि, उपमा ता को करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियहु सुधारस,मानहुँ अधरनि के बड़ भाग॥१॥

एक पद और देखिए:—

बिराजत अंग अंग इति बात।
अपने कर करि धरे विधाता, षट खग नव जलजात॥
द्वै पतंग, शशि बीस, एक फनि, चारि विविध रँग धात।
द्वै पिक बिंब, बतीस वज्र कण, एक जलज पर थात॥
एक सायक, इक चाप चपल अति, चिबुक में चित्त बिकात।
दुइ मृनाल मालूर उभय, द्वै कदली खंभ बिनु पात॥
इक केहरि इस हंस गुप्त रहे तिनहि लग्यो यह गात।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को, अति आतुर अकुलात॥२॥

तनिक राधा का भी स्वरूप देखिये:—

राधे यह छबि उलटि भई।
सारँग ऊपर सुन्दर कदली, ता पर सिंह ठई॥
ता ऊपर ह्वै हाटक बरनौं, मोहन कुंभ सई।
ता पर कमल,कमल बिच विद्रुम ता पर कीर लई॥
ता ऊपर द्वै मीन चपल हैं स3ती साध रही।
सूरदास प्रभु देखि अचंभो कहत न परत कही॥ इत्यादि

यमकालंकार कवियों का सदैव ही प्रिय रहा है। कदाचित "सारँग" शब्द कवियों को बहुत प्रिय रहा है। इस पद में विद्यापति ने भी सारँग शब्द को लेकर शब्दाजाल पसारा है। प्रातः स्मरणीय श्री सूरदास जी ने भी इसी शब्द का प्रयोग करके राधा-कृष्ण के सौंदर्य की रहस्यात्मक व्यंजना की है। दो तीन उदाहरण देखिये:—

सारँग सारँग-धरहि मिलावहु।
सारँग विनय करत सारँग सों, सारँग दुख बिसरावहु॥
सारँग समय दहत अति सारँग, सारँग तिनहिं दिखावहु।
सारँग पति सारँग धर जैहै, सारँग जाइ मनावहु॥
सारँग चरन सुभग कर सारँग, सारँग नाम बुलावहु।
सूरदास सारँग उपकारिनि, सारँग मरत जिवावहु॥

अथवा हरि सम आनन हरि सम लोचन हरि तह हरि वर आगी।
हरिहि चाहि हरि न सोहावए हरि हरि कए उठि जागी॥

अथवा सारँग सम कर नीक नीक सम सारँग सरस बखाने।
सारँग बस भय भय, बस सारँग, सारँग बिसमै माने॥
सारँग हेरत उर सारँग ते सारँग सुत ढिग आवे। इत्यादि

१३

जुगल सैल–सिम हिमकर देखल
एक कमल दुइ जोति रे॥ १॥
फुललि मधुरि फुल सिंदुर लोटाएल
पाँति बइसलि गज-मोति रे॥ २॥

आज देखल जत के पतिआएत
अपुरुब बिहि निरमान रे ॥ ३ ॥
विपरित कनक-कदलि-तर सोभित
थल पंकज के रूप रे ।
तथहु मनोहर बाजन बाजए
जनि जागे मनसिज भूप रे ॥ ४ ॥ ✓
भनइ विद्यापति पूरब पुन तह
ऐसनि भजए रसमन्त रे ।
बुझल सकल रस नृप सिवसिंघ
लखिमा देइ कर कन्त रे ॥ ७ ॥

(१) जुगल सैल = दो पहाड़, दो कुच । सिम = सीमा में, निकट । हिमकर = चन्द्रमा, मुख चन्द्र से आशय है । कमल = मुख कमल । जोति = ज्योति, नेत्र । (२) फुलल‍ि = फूली हुई है। बइसलि = बैठी है । गज-मोति = गज मुक्ता, दाँतों की उपमा । (३) जत = उसको । के = कौन । पतिआएत = बिश्वास करता है ।(५) विपरित = उल्टा । कनक-कदलि = स्वर्ण कदली खम्भ, जांघ की उपमा । थल पंकज = स्थल कमल, चरणों की उपमा । तथहु = वहाँ भी । जनि = मानो । मनसिज भूप = देवाधिदेव कामदेव । (७) पुन = पुण्य । तह = से । ऐसिन = ऐसी । रसमंत = रसवती, सुरसिका ।

इस पद में भी विद्यापति ने नायिका बाला की सुंदरता का रूपक बांधा है ।

(१) दो पर्वतों अर्थात् दो उत्तुंग कुचों के समीप ही चन्द्र रूपी मुख का दर्शन होता है और इस कमल रूपी मुख में दो ज्योतियाँ ( दो नेत्र ) भी दृष्टिगोचर होती हैं ।

(२) बाला का मुख ऐसा सुंदर और अरुण वर्ण है मानो मधुरी के रक्त वर्ण पुष्प पर सिन्दूर लपेट दिया गया हो । बाला के दाँत इतने सुंदर और श्वेत हैं मानो गज मोतियों की एक पांत (पंक्ति) बैठी हो । अनुपम सुंदरी बाला का जो स्वरूप आज देखा है उसके वर्णन पर कौन विश्वास करेगा, क्योंकि विधाता की सृष्टि की हुई यह बाला अपूर्व तथा अनुपम है ।

(५) उल्टे सुवर्ण कदली खम्भ के नीचे की ओर चरण कमल शोभायमान हैं और पैरों में पैंजनियाँ होने के कारण जिस समय वह बाला चलती है तो पैंजनियों की किंकिन ध्वनि बड़ी मनोहर लगती है। पैंजनियों की मनोहर ध्वनि से ऐसा मालूम होता है मानो महाराजाधिराज कामदेव के निद्रा से जाग्रत हो जाने के उपलक्ष में मधुर स्वर से बाजे बज रहे हों।

(७) कविवर विद्यापति कहते हैं कि ऐसी सुरसिका बाला का दर्शन केवल वही व्यक्ति कर सकता है जिसने अपने पूर्व जन्म में पुण्य किये हों। इस सरस व्यवहार को बूझने वाले एक मात्र व्यक्ति लखिमा देवी के प्राणपति राजा शिवसिंह हैं।

इस पद के पाँचवें चरण में दो विशेषतायें हैं। पहला चमत्कारिक शब्द हैं "विपरित"। कदली खम्भ नीचे से मोटा और ऊपर से पतला होता है परन्तु सुन्दरी की जंघायें नीचे से पतली और ऊपर से पुष्ट होती हैं। प्रायः सभी कवियों ने जंघा की उपमा कदली खम्भ से दी है परन्तु दोनों के इस परस्पर अन्तर का किसी ने वर्णन नहीं किया है। यह विद्यापति के ही सूक्ष्म निरीक्षण का फल है। कविवर बिहारी लाल उन्हें केवल "केलि तरुन दुख दैन" कह कर ही रह गये हैं उनकी दृष्टि भी इस सूक्ष्म अन्तर की ओर नहीं गई है।

जंघ जुगल, लोचन निरे, करे मनो विधि मैन।
केलि तरुन दुख दैन ए, केलि तरुन सुख दैन॥

बिहारी केवल यमक के चमत्कार बल पर प्रसंग निबाह ले गये हैं परन्तु उनमें विद्यापति जैसी सूक्ष्म दृष्टि का सर्वथा अभाव है।

दूसरी विशेषता विद्यापति के लोक व्यवहारिक ज्ञान का आभास देती है। रजवाड़ों में आज भी नृपतों के जागने, उठने, भोजन करने, शयन करने इत्यादि दैनिक कर्मों के समय मधुर स्वरों में बाजे बजाये जाते हैं। इस पद में कवि ने कामदेव को भूप की पदवी दी है। अतः महाराजाधिराज कामदेव के जाग्रित हो जाने पर मधुर स्वरों में बजने वाले बाजों की व्यवस्था न करने से राजस्व का लौकिक पक्ष नष्ट हो जाता। विद्यापति ने इस लौकिक पक्ष को नहीं भुलाया है।

## १४

चाँद-सार लए मुख घटना करु
लोचन चकित चकोरे ।
अमिय धोय आँचर धनि पोछलि
दह दिसि भेल उँजोरे ॥ २॥
कामिनि कोने गढ़ली ।
रूप सरूप मोयँ कहइत असँभव
लोचन लागि रहली ॥ ४ ॥
गुरू नितम्ब भरे चलए न पारए
माझ खानि खीन निमाई ।
भागि जाइत मनसिज धरि राखलि
त्रिबली-लता अरुझाई ॥ ६ ॥
भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक
ई सब वचन सरूपे ।
रूपनरायन ई रस जानथि
सिवसिंघ मिथिला भूपे ॥ ८ ॥

(२) सार = सार भाग, तत्व । लए = लेकर । घटना = रचना, सं० घट-नीय । करु = की । अमिय = अमृत । धनि = बाला । पोछलि = पोंछ कर । भेल = हो गया । उंजोरे = चाँदनी, प्रकाश, सं०अंजोर ।

(४) कोने = किस ने । गढ़ली = गढ़ी, रचना की । (६) भरे = भार से । माझ = मध्य भाग, कटि । निमाई = निर्माण की । त्रिबलि—लता = बाला के पेट पर पड़ने वाली तीन रेखायें—इनकी गणना स्त्री के सौन्दर्य में होती है ।

(२) चन्द्रमा का सार भाग लेकर विधाता ने बाला ( राधा ) के मुख की रचना की है । इस अनुपम रूप को देखते ही आंखें चकोर की भाँति उसी ओर देखती रह जाती हैं । चकोर सदैव चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाये देखता रहता है । बाला ने अपने मुख चन्द्र को आंचल से पोंछ कर जो अमृत धो बहाया वही चांदनी के रूप में दसों दिशाओं में प्रकाशित हुआ ।

(५) ऐसी सुन्दर बाला की रचना किसने की। उसका स्वरूप तथा सौन्दर्य इतना अनुपम है कि उसका वर्णन करना असम्भव है। यदि वर्णन करने के लिये उसकी ओर देखा जाता है तो फिर नेत्र उस ओर से पलटते ही नहीं हैं वरन उसी की ओर लगे रह जाते हैं।

(६) भारी नितम्बों के भार से बाला चल नहीं पाती है और कटि प्रदेश के अति क्षीण होने के कारण ऐसी चेष्टा करना भी कठिन है। बाला के पेट पर पड़ने वाली त्रिबली की तीन रेखायें ऐसी प्रतीत होती हैं मानो उनकी सृष्टि ही इस कारण की गई है कि यदि कामदेव बाला के शरीर को त्याग करके भागना भी चाहे तो त्रिबली की इस लताओं में उसे उलझा लिया जाये।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं "कि शब्दों द्वारा जिस उपरोक्त स्वरूप का वर्णन किया है वह अत्यंत दुरूह और अद्भुत है। इस रहस्य तथा इस रीति को केवल राजा शिवसिंह रूपनरायन मिथिलाधिपति ही समझते हैं।

चौथे चरण में कवि ने जो भाव व्यक्त किया है उसी भाव को लेकर कवि-वर बिहारी लाल ने दो सुन्दर मोती अपनी सतसई में पिरोये हैं :—

लिखन बैठि जाकी सबिहिं, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥

अथवा सूर उदित हू, मुदित मन, मुख सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुं ओर तें, निश्चल चखनि चकोर॥

१५

सुधामुखि के विहि निरमिल बाला।
अपरुब रुप मनोभव मंगल॥
त्रिभुवन विजयी माला॥ २॥
सुन्दर बदन चारु अरु लोचन
काजर रंजित भेला।
कनक-कमल माझ काल-भुजंगिनि
श्रीयुत खंजन खेला॥ ४॥
नाभि-बिवर सयँ लोम-लतावलि
भुजंग निसास-पियासा।

नासा खगपति-चंचु भरम-भय
कुच-गिरि संधि निवासा ॥ ६ ॥
तिन बान मदन तेजल तिन भुवने
अबधि रहल दओ बाने ।
विधि बड़ दारुन बधए रसिक जन
सोंपल तोहर नयाने ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जोवति
इह रस केओ पए जाने ।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने ॥ १० ॥

(२) सुधा मुखि = सुधांशु मुखी, चन्द्र मुखी । मनोभव—मँगल = कामदेव का शुभ स्वरूप । (४) चारु = सुन्दर, मनोहर । भेला = हुई । कनक-कमल = सुवर्ण कमल, सुन्दर मुख । मांझ = मध्य काल । भुजंगिनि = काली सर्पिणी, काजल, अंजन । खीयुत = श्रीयुक्त, सुन्दर । खेला = क्रीड़ा कर रहा है । (६) विवर = छिद्र । सयं = से । लोम लतावलि = पंक्तिबद्ध बाल, रोम । भुजग = भुजंग, सर्पिणी । निसास = निश्वास । खगपति = पक्षिराज गरुड़ । भरम = भ्रम । संधि = मिलन-स्थान । ८) तिन = तीन । तेजल = छोड़े, तजे । अबधि = अवशिष्ट, शेष । रहल = रहे । दओ = दो । दारुन = निष्ठुर । बधए = बध करने को, हत्या करने को । सोंपल = सौंप दिये । (१०) पए = ही ।

(२) किस विधाता ने ऐसी चंद्रमुखी बाला को निर्माण किया है जिसका स्वरूप अद्भुत है तथा कामदेव के शुभ स्वरूप की भाँति ही अनुपम है। बाला का स्वरूप तीनों भुवनों को पराजित करने वाली माला के समान है ।

(४) बाला का मुख अतीव सुन्दर तथा लावण्यमय है और उसके नेत्र अंजन से रंगे हुए हैं । सुंदर कमल के समान शोभायमान मुख में सुंदर काजल युक्त नेत्र हैं मानो सुवर्ण कमल (मुख) में काल सर्पिणी (अंजन) क्रीड़ा कर रही हो अथवा मानो काल भुजंगिनी रूपी नेत्र सुवर्ण कमल रूपी सुंदर मुख के बीच श्रीयुक्त खंजन की भाँति क्रीड़ा कर रहे हों ।

(६) नाभि रूपी विवर से निकलने वाले पंक्तिबद्ध बाल अथवा रोम ऐसे प्रतीत होते हैं मानो रोम रूपी सर्पिणी बाला के सुवासित श्वासों की

व्यास में आगे बढ़ी हो परंतु नुकीली नासिका को पक्षिराज गरुड़ की चोंच समझ कर डर से व्याकुल होकर कुच रूपी दो पर्वतों के बीच के संकीर्ण-स्थान में आ छुपी हो।

(८) कामदेव को पंच बाण कहा जाता है क्योंकि वह अपने पाँच बाणों, प्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन से समस्त संसार को अपने वशीभूत किये रहता है। कामदेव ने अपने तीन बाणों को तीनों भुवनों की ओर छोड़ कर उनको अपने वशीभूत कर रहा है, इस प्रकार दो बाण उसके पास शेष रहे। परन्तु विधाता बड़ा निष्ठुर है। कदाचित उसने उन दोनों बाणों को समस्त रसिक जनों का वध करने के लिये तुम्हारे नयनों को सौंप दिये हैं। अर्थात बाला के नेत्र भी वैसे ही उन्मादक तथा सम्मोहक है जैसे कि कामदेव के पुष्प बाण।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे त्रिभुवन मोहिनी सुन्दरी इस रस रीति को केवल कोई कोई ही जानते हैं। लखिमादेवी के पति राजा शिवसिंह रूप नारायण इस रस रीति से भली भांति परिचित हैं।

आठवें चरण में वर्णित भावों के आधार पर कविवर बिहारी लाल ने भी अनूठी उक्तियां लिखी हैं :—

खौरि पनच, भृकुटी धनुष, बधिक समर तजि कान।
हनत तरुन मृग तिलक सर, सुरकि भाल भरि तान॥

अथवा

तिय कित कमनैती पढ़ी, बिनु जिह भौंह कमान।
चल चित बेझो चुकति नहिं, बंक बिलोकनि बान॥

छठे चरण में व्यक्त भाव से स्वधकार लेने वाला एक पद श्री सूरदास का भी है।

डोलत बाँकी कुंज-गली।
व्रज बनिता मृग सावक-नयनी बीनति कुसुम कली॥
कमल-वदन पर बिथुरि रहीं लट कुंचित मनहुँ अली।
अधर बिंब, नासिका मनोहर, दामिनि दसन छली॥
नाभि परस लौं रस रोमावलि कुच जुग बीच चली।
मनहुँ बिवर तें उरग रिंग्यो तकि गिरि की संधिथली॥

पृथु नितंब, कटि छीन हंस गति, जघन सघन कदली।
चरन महावर, नूपुर मनिमय बाजत भांति भली॥
ओट भये अवलोकि परसपर बोलत आली आली।
सूर-सुमोहन-लाल रसिक सँग बन घन माँझ रली॥

(१६)

जाइत देखलि पथ नागरि सजनि गे।
आगरि सुबुधि सेयानि।
कनक-लता सनि सुंदरि सजनि गे
विहि निरमाओल आनि॥ २॥
हस्ति-गमन जकाँ चलइत सजनि गे
देखइत राज-कुमारि।
जिनकर एहिन सोहागिनि सजनि गे
पाओल पदारथ चारि॥ ४॥
नील बसन तन घेरल सजनिगे
सिर लेल चिकुर सँभारि।
तापर भमरा पिबए रस सजनिगे
बइसल पाँखि पसारि॥ ६॥
केहरि-सम कटि-गुन अछि सजनि गे
लोचन अम्बुज धारि।
विद्यापति कवि गाओल सजनि गे
गुन पाओल अवधारि॥ ८॥

(२) नागरि = नगर निवासिनी, सुचतुरा। आगरि = अग्रगण्या। सनि = समान। निरमाओल = निर्माण किया। ४, जकाँ = ऐसा। जिनकर = जिसकी ऐहिन = ऐसी। (६) लेल = लिये हैं। भमरा = भंवरा, भ्रमर। पिबए = पीता है। बइसल = बैठ कर। पांखि = पँख। (८) गुन = गुण,विशेषता। अछि = है। धारि = धारण करो, समझो। अवधारि = अवधारणीय, निश्चय पूर्वक।

(२) बुद्धिमती और चतुरों में अग्रगण्या उस नागरि को आज पथ में जाते देखा। विधाता ने मानो उस बाला को सुवर्ण वल्लरी के समान सुंदर बनाया है।

(४) उसकी चाल मस्त गजराज के समान है और वेषभूषा से वह बाला साक्षात राज कुमारी प्रतीत होती है। जिनकी स्त्री ऐसी सुन्दर तथा अनुपम है उन्होंने तो मानो चारों पदार्थ, धर्म अर्थ काम मोक्ष सभी, इस संसार में प्राप्त कर लिये हैं।

(६) उस समय बाला नीले वस्त्र पहिने थी और सिर के केश भली भांति संभाले हुए थी। केशों के ऊपर भ्रमर रस पीने के लोभ में पंख फैला कर बैठे हुए थे।

शास्त्रों में पद्मिनी स्त्रियों के शरीर से कमल जैसी गंध निकलती बताई गई है। भंवरा कमल पर आसक्त रहता है इस कारण कवि ने भ्रमरों के रस पी कर मद मस्त होने का वर्णन किया है।

(८) उस बाला की कटि में केहरि की कटि सी विशेषता है अर्थात बाला की कटि केहरि की कटि के समान क्षीण है और नेत्रों को तो साक्षात कमल ही समझा जा सकता है। कवि विद्यापति कहते हैं कि ऐसी बाला में अनेकों विशेषताओं तथा गुणों का पाया जाना निश्चित है।

"सुहागिन" शब्द को लेकर किसी कवि ने कैसी सुन्दर उक्ति कही है :—

तनिक सुहागो डारि कै, गड़ कंचन पिघलाय।
सदा सुहागिनि राधिके, सो क्यों न कृष्ण ललचाय॥

## १७

चिकुर-निकर तम—सम
पुनु आनन पुनिम ससी।
नयन-पंकज के पतिआओत
एक ठाम रहु बसी॥२॥
आज मोयँ देखलि बारा
लुबुध मानस, चालक मयन
कर की परकारा॥४॥
सहज सुन्दर गोर कलेवर
पीन, पयोधर सिरी।

कनक-लता अति विपरित
फरल जुगल गिरी ॥६॥
भन विद्यापति विहि क घटन
के न अदभुत् जान ।
राय सिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देइ रमान ॥८॥

(२) निकर = समूह । तम = अंधकार । पुनु = पुनः, फिर । पुनिम ससी = पूर्णिमा का चंद्रमा । पतिआओत = विश्वास करेगा । (४) मोयँ = मैं ने । भारा = बाला । लुबुब्ध = लुब्ध करने वाला । चालक = सञ्चालन करने वाला । मयन = कामदेव । कर = करूँ । (६) गोर = गौर । सिरी = श्री, शोभायुक्त । फरल = फली है । (८) घटन = सृष्टि, रचना । गिरि = पर्वत, कुच ।

२) बाला के केश समूह अंधकार के समान हैं, मुख पूर्णिमा के चंद्र के समान हैं और नेत्र कमल के समान हैं। कौन विश्वास करेगा कि यह सब परस्पर विरोधी पदार्थ एक ही समय में एक ही स्थान पर बस सकते हैं। क्योंकि जहाँ पूर्ण चंद्र विराजमान हो वहां अंधकार होना असम्भव है और साथ ही कमल चंद्रमा की उपस्थिति में विकसित नहीं हो सकता, क्योंकि कमल को सूर्य प्रिय है और चन्द्रमा से विरोध। इसी लिये रात्रि होने पर कमल सम्पुट बंद हो जाते हैं।

(४) आज मैं ने उस अपूर्व बाला को देखा, उसे देखते ही मेरा मन उसकी ओर अनुरक्त हो गया क्योंकि बाला का अनुपम यौवन काम का संचालन करने वाला है। अब मैं क्या करूँ।

(६) बाला की देह सहज सुन्दर तथा गौर वर्ण है और शोभावान पुष्ट स्तन हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो उलटी सुवर्ण वल्लरी में पहाड़ के समान दो उत्तुंग कुच फले हों। क्योंकि केशों की तुलना जड़ों से की जाती है इस कारण मानव को विपरीत वल्लरी कहा जाता है।

(८) कविवर विद्यापति कहते हैं कि विधाता की यह अनुपम सृष्टि किसे अद्भुत न जान पड़ेगी।

१८

सजनी, अपरुप पेखल रामा।
कनक-लता अवलम्बन ऊअल
हरिन-हीन हिमधामा ॥२॥
नयन-नलिनि दुओ अंजन रंजइ
भौंह विभंग-विलासा।
चकित चकोर-जोर बिधि बांधल
केवल काजर पासा ॥४॥
गिरिवर-गरुअ पयोधर-परसित
गिम गज-मोति क हारा।
काम कम्बु भरि कनक-सम्भु परि
ढारति सुरसरि धारा ॥६॥
पएसि पयाग जाग सत जागइ
सोइ पावए बहुभागी।
विद्यापति कह गोकुल-नायक
गोपी जन अनुरागी ॥८॥

(२) रामा = सुन्दरी स्त्री, राधा। ऊअल = उदित हुई। हरिन-हीन = निष्कलंक। हिमधामा = चन्द्रमा, मुख का प्रतीक। (४) नलिनि = कमल। रंजइ = रंजित। विभंग = भ्रू भंग, कुटिल। विलासा = भाव युक्त। उ० भृकुटि विलास जासु जग होई, राम बाम दिस सीता सोई। (तुलसी) जोर = जोड़ा। पासा = पाश, बंधन। (६) गिरिवर-गरुअ = पर्वत के समान भारी। परसित = स्पर्श करके। गिम = कंठ, ग्रीवा। कम्बु = शंख, कंठ की उपमा। कनक-संभु = सुवर्ण महादेव अर्थात् कुच। (८) पएसि = पैठकर, जाकर। पया = प्रयाग राज। जाग = यश। सत = शत, सौ।

(२) हे सजनी आज मैं ने अपूर्व सुन्दरी देखी। उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो देह रूपी कनक-लता के सहारे निष्कलंक चन्द्रमा (मुख चन्द्र) उदय हुआ हो।

(४) उसके कमल के समान दोनों नेत्र अँजन रँजित थे और भौंहें बड़ी ही कुटिल तथा भावयुक्त थीं। उनकी चंचलता को देख कर ऐसा प्रतीत होता

था मानो ब्रह्मा ने चकोरों के एक जोड़े को केवल अँजन गुन अर्थात अंजन के पाश में बांध कर रखा हो।

(६) बाला के पहाड़ जैसे उतुंग कुचों को स्पर्श करती हुई गज मुक्ताओं की माला गले में पड़ी थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो कामदेव कंठ रूपी शंख में भरकर गंगा की निर्मल धारा (मौक्तिक माला) सुवर्ण महादेवों (कुचों) पर ढार रहा हो।

(८) विद्यापति कहते हैं कि हे गोपी मन रंजन, गोकुल के नायक कृष्ण, इस बाला को तो वही भाग्यशाली व्यक्ति पा सकता है जिसने तीर्थराज प्रयाग में जाकर सैंकड़ों यज्ञ किये हों।

चौथे चरण में व्यक्त भाव को श्री सूरदास ने भी एक पद में बांधा है अन्तर केवल इतना ही है कि विद्यापति ने नेत्रों की उपमा चकोर से दी है और सूरदास जी ने खंजन से।

खंजन नैन रूप रस माते।

अतिशय चारू चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते॥
चल चल जात निकट श्रवनन के उलट पलट तोटक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके नातरु अब ही उड़ जाते॥

## १६

कनक-लता अरबिन्दा।
दमना मांझि उगल जनि चन्दा॥ २॥
केहु कहै सैबल छपला।
केहु बोले नहि नहि मेघे झपला॥ ४॥
केहु कहै भमए भमरा।
केहु बोलए नहि नहि चरए चकोरा॥ ६॥
संसय परल सब देखी।
केहु बोलए ताहि जुगुति विसेखी॥ ८॥
भनइ विद्यापति गावे।
बड़ पुन गुनमति पुनमत पावे॥ १०॥

(२) अरविन्दा = कमल। दमना = द्रोण लता। (४) केहु = कोई। सैबल = शैवल, सिवार। झपला = ढंक लिया है। (६) भमय = भ्रमण करता है। चरए = दाना चुग रहा है। (८) परल = पड़ गया। (१०) पुनमत = पुण्यवंत।

(२) देह रूपी लता में कमल रूपी पुष्प (मुख) उदय हुआ है। काले केशों के मध्य सुवर्ण कांति मय मुख ऐसा प्रतीत होता है मानो द्रोण लता में होकर चन्द्रमा उदय हुआ हो।

(४) केशों से घिरे मुख की उपमा भिन्न भिन्न व्यक्ति अपनी रुचिनुकूल भिन्न भिन्न देते हैं। कोई कहता है बाला का मुख ऐसा है मानो निर्मल जल में पड़ने वाला चन्द्रमा का प्रतिबिंब सिवार घास से आच्छादित हो गया हो। परन्तु कोई कहता है कि यह उपमा ठीक नहीं है। बाला का मुख काले केशों में इस प्रकार प्रकाशमान है जैसे निर्मल चन्द्रमा को बदली ने ढक लिया हो।

(६) नेत्रों के संबंध में भी इसी प्रकार के विभिन्न मत हैं। किसी का विचार है कि बाला के नेत्र ऐसे चंचल हैं मानो भ्रमर मकरंद पान करके भ्रमण कर रहा हो। दूसरे दर्शकों का मत है कि भ्रमर नहीं वरन् ऐसा प्रतीत होता है मानो चकोर दाना चुग रहा हो।

(८) मुख की अनुपम सुन्दरता तथा नेत्रों की चंचलता से प्रत्येक देखने वाले को संशय हो गया है। अतः इनका वर्णन केवल वही कर सकते हैं जो विशेष रूप से चतुर और बुद्धिमान हों।

(१०) कविवर विद्यापति कहते हैं कि बड़े पुण्यों से ही कोई व्यक्ति ऐसी गुणमति, तथा पुण्यवती बाला का साहचार्य प्राप्त कर सकता है।

निर्मल जल में सेंवार से आच्छादित प्रतिबिम्ब से बाला के केशों से ढके मुख की कल्पना बड़ी अनूठी है। परवर्ती कवियों में बिहारी लाल जी भी इसी भाव रत्न को अपनी सतसई में पिरो गये हैं।

झीने पट में झिलमिली, झलकति ओप अपार।
सुर तरु की, मनु सिन्ध में, लसत सपल्लव डार॥

इसी प्रकार नेत्रों के संबंध में भी प्रायः इसी भाव को लेकर उन्होंने एक उक्ति रची है :—

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट भीन।
मानहु सुर सरिता विमल, उछरत जुग मीन॥

२०

कबरी-भय चामरि गिरि- कन्दर।
मुख भय चाँद अकासे॥
हरिन नयन-भय, सर भय कोकिल।
गति-भय गज बनवासे ॥२॥
सुंदरि, किए मोहि सँभासि न जासि।
तुम डर इह सब दूरहि पलायल॥
तुहुँ पुन काहि डरसि ॥४॥
कुच-भय कमल-कोरक जल मुदि रहु।
घट परवेस हुतासे
दाड़िम सिरिफल गगन बास करु।
सम्भु गरल कर ग्रासे ॥६॥
भुजभय पंक मृनाल नुकाएल।
कर-भय किसलय काँपे॥
कबि सेखर भन कत कत ऐसन।
कहब मदन परतोप ॥८॥

(२) कबरी = वेणी, केश = अति सुदेस मृदु चिकुर हरत, गूँथे सुमन रसालहिं।
कबरी अति कमनीय सुभग सिर राजत गौरी बालहिं॥ ( सूर )
चामरि = चामरी, सुरा गाय, चँवर वाली गौ। सर = स्वर। (४) किए = क्यों।
भासि = संभाषण करके, वार्तालाप करके। जासि = जाती है। (६) कोरक = कली, मुकुल। मुदि = बन्द। हुतासे = हुताशन, अग्नि। गगन = आकाश। पंक = कीचड़। मृनाल = कमल-नाल। नुकाएल = छुप गया। कत = क्यों, किस प्रकार।

(२) हे बाला, तेरे केशों की सुन्दरता से भयभीत हो कर चँवरी गौ तो गिरि कन्दराओं में जा छुपी है और मुख की सुन्दरता से लज्जित हो कर चन्द्र आकाश की ओर भाग गया है। तेरे नेत्रों की विशालता से भयभीत हो कर

हरिण, मधुर स्वर से लज्जित हो कर कोकिला और मतवाली गति से पराजित हो कर गजराज बनों में जा छुपे हैं।

(५) हे सुन्दरी, तू मुझ से संभाषण करके क्यों नहीं जाती है। तेरे ही भय से यह सब दूर भाग गये हैं अब स्वयं तुझे किसका भय है।

(६) तेरे कुचों की अनुपम शोभा को देख कर कमल के संपुट लज्जा से जल के भीतर ही मुंद गये हैं। मानव शरीर को घट संज्ञा दी जाती है और घट का अर्थ घड़ा भी है। अत: हे बाला, तेरे शरीर की अनुपम छवि को देख कर तेरे शरीर से समानता रखने वाला घट मारे लज्जा के अग्नि में प्रवेश कर गया है। दाँतों की सुन्दरता से लज्जित हो कर दाड़िम और कुचों की निकाई से भयभीत होकर श्रीफल दोनों पृथ्वी को छोड़ कर आकाश में ऊंचे वृक्षों पर फलने लगे हैं। तेरे गौर कलेवर को देख कर कपूर गौर देवाधिदेव महादेव ने लज्जा वश विषपान कर लिया है।

(८) हे बाले, तेरी भुजाओं की चारुता को देख कर कमल नाल भयभीत हो कर कीचड़ में जा छुपा है और हाथों की कोमलता से लज्जित होकर वृक्षों के नव पल्लव काँपने लगे हैं। कवि विद्यापति स्वयं से प्रश्न करते हैं कि ऐसा क्यों हो रहा है। इसका एक मात्र उत्तर यही है कि यह सब महाराजधिराज कामदेव के प्रताप से हो रहा है, क्योंकि बाला के शरीर पर कामदेव का आधिपत्य हो गया है इस कारण यह सब हो रहा है।

उपरोक्त पद प्रतीप अलंकार का सुन्दर उदाहरण है। प्रतीप अलंकार में उपमेय और उपमान का संबंध स्थापित किया जाता है परन्तु उसमें सादृश्य को छिपाने की चेष्टा की जाती है जिसके कारण एक अंग दूसरे अंग के अयोग्य समझाया जाता है। श्री सूरदास ने भी इस अलंकार के कई सुन्दर उदाहरण दिये हैं।

उपमा हरि तन देख लजाने।
कोऊ जल कोऊ बन में रहे दुरि कोऊ गगन समाने॥
मुख निरखत ससि गयो अम्बर को तड़ित दसन छवि हेरो।
मीन कमल कर चरन नयन उर जल में कियो बसेरो॥
भुजा देखि अहिराज लजाने बिवरन पैठे धाय।
कटि निरखत केहरि डर मान्यो बन बन रहे दुराय॥

गारी देहिं कबिन को बरनत श्री अंग पटतर देत।
सूरदास हम को बिरमावत नाँऊ हमारो लेत॥

२१

राधा, अधिक, चंगिम भेल।
कतने जतन कत अदबुद, बिहि बिह तोहिं देल॥२॥
सुन्दर बदन सिंदुर-बिन्दु सामर चिकुर भार।
जनि रवि-ससि संगहि ऊगल पाछु कय अंधकार॥४॥
चंचल लोचन बाँक निहारए, अंजन शोभा पाय।
जनि इन्दीबर पवन-पेलल अलि भरे उलटाय॥६॥
उनत उरोज चिर झपावए पुनु पुनु दरसाए।
जइयो जतने गोअए चाहए हिमगिर न नुकाय॥८॥
एहिन सुन्दरी गुनक आगरि पुनें पुनमत पाव।
ई रस बिन्दक रूपनरायन कवि विद्यापति गाव॥१०॥

(२) चंगिम = शोभामयी। कतने = कितने। कत = कितना। अदबुद = अद्भुत्। बिहि = चुन कर। (४) सामर = श्याम। पाछु कय = पीछे करके, हटा कर। (६) बंक = तिरछा। इन्दीबर = नील कमल। पेलल = आन्दोलित होकर। (८) उनत = उन्नत, उत्तुंग। चिर = चीर, वस्त्र। जइयो = यद्यपि। जतने = यत्न से। गोअए = छुपाना। हिम = बर्फ़, साड़ी का प्रतीक। (१०) एहनि = ऐसी। गुनकि = गुणागार। पुनें = पुण्य ही से। पुनमत = पुण्यवन्त। बिन्दक = ज्ञाता।

(२) हे सुन्दरी, यौवन के आगमन से तेरी सुंदरता और भी अधिक शोभामयी हो गई है। पूर्ण रूप से प्रयास करने पर जितनी भी अद्भुत् वस्तुएं मिल सकती हैं, बिधाता ने उन सब को चुन चुन कर तुम्हें दे दिया है।

(४) पूर्ण चंद्र के समान सुंदर मुख, उस पर लगा हुआ लाल सिंदूर का टीका और काले श्यामल बालों की बेणी इन तीनों को एक ही स्थान पर देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो अधंकार को पीछे हटा कर सूर्य और चंद्र दोनों एक साथ उदय हो रहे हों।

उक्त पंक्तियाँ असंगत का उत्तम उदाहरण हैं। क्योंकि पूर्ण चंद्र के रहते अंधकार नहीं रह सकता है और न सूर्य, चंद्र एक साथ उदय ही हो सकते हैं। परंतु कवि की कल्पना ने असंगत को भी संगत बना दिया है।

(६) अंजन युक्त चंचल नेत्रों से जब वह बाला निहारती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो भंवरों के भार से झुका कमल पुष्प पवन द्वारा आन्दोलित होने पर उलटा हो गया हो।

(८) बाला अपने पीन उत्तुंग स्तनों को जितना ही अपने वस्त्रों से छुपाने की चेष्टा करती है वैसे ही वह फिर दृष्टि गोचर हो जाते हैं। इसका एक मात्र कारण यही है कि चाहे कितना ही छुपाने का प्रयत्न क्यों न किया जाय परंतु हिम क्या पर्वतों की रूप रेखा को छुपा सकता है। अर्थात गिरि के समान उत्तुंग कुच क्या कभी हिम धवल झीने वस्त्र में छुपाये जा सकते हैं।

(१०) ऐसी गुणागार तथा अनुपम रूपवती सुंदरी किसी बिरले ही पुण्य-वंत को अपने पूर्व संचित पुण्य से ही प्राप्त हो सकती है। इस रस रीति को केवल राजा रूपनारायण (कवि के आश्रय दाता) ही जानते हैं और इसी कारण कवि विद्यापति उसका गायन करता है।

इस पद के छटे चरण में एक विशेषता है। यह चरण बिल्कुल ज्यों का त्यौं श्री सूरदास ने भी लिखा है केवल थोड़े शब्दों का परिवर्तन अवश्य है। सूरदास का पद इस प्रकार है :—

चंचल लोचन, बंक निहारनि, खंजन शोभा ताय।
जनु इन्द्रीवर, पवनें ठेलल, अली भरे उलटाय॥

भाव बिल्कुल वही है अंतर केवल शब्दों का है।

## २२.

सहज प्रसन्न मुख दरस हृदय सुख
लोचन तरल तरङ्ग।
आकास पताल बस सेओ कइसे भेल अस
चाँद सरोरुह सँग ॥१॥
विहि निरमिल रामा दोसर लछि समा
भल तुलाएल निरमान ॥२॥

कुच-मंडल सिरि हेरि कनक-गिरि
लाजे दिगन्तर गेल ॥
केओ अइसन कह सेओ न जुगुति सह
अचल सचल कइसे भेल ॥४॥
माझ-खीनि तनु भरे भाँगि जाय जनु
बिधि अनुसए भल साजि ।
नील पटोर आनि अति से सुदृढ़ जानि
जतन सिरिजु रोमराजि ॥७॥
भन कवि विद्यापति काम-रमनि रति
कौतुक बुझ रसमन्त
सिर सिवसिंघ राउ पुरुख सुकृत पाउ
लखिमा देइ रानि कन्त ॥६॥

(२) प्रसन = प्रसन्न । सेओ = सेवन करो । सरोरुह = कमल । (३) निरमलि = निर्माण की । दोसर = दूसरी । लछि = लक्ष्मी । समा = समान । भल = निरूपण । तुलाएल = तुल्य, समान । (५) सिरि = श्री, शोभा । केओ = कौन । अइसन = ऐसा । (७) माझ = मध्य, कटि । भरे = भार से । भाँग = भग्न हो जाये, टूट जाये । अनुसए = आशंका । पटोर = रेशमी वस्त्र । सिरिजु = बनाया, सृष्टि की । रोमराजि = रोम राशि, केश समूह ।

(२) बाला के सहज प्रसन्न मुख तथा लोल चंचल नेत्रों का दर्शन हृदय को सुख देने वाला है । परंतु उससे मिलन इतना ही असंभव है जैसे चंद्र और कमल का मिलन, क्योंकि एक पृथ्वी पर होता है और दूसरा आकाश में बसता है ।

(३) विधाता ने इस बाला की लक्ष्मी के अनुरूप ही निर्माण किया है और उसकी यह रचना रूप तथा गुण में साक्षात लक्ष्मी के तुल्य ही है ।

(४) बाला के उत्तुंग कुचों की अनुपम शोभा को देख कर सुवर्ण गिरि पर्वत मारे लज्जा के दूर भाग गये हैं । अचल न होने पर भी सुवर्ण गिरि चलायमान होकर अन्यत्र चले गये हैं इसका रहस्य कौन बता सकता है और कौन युक्ति पूर्वक इसे समझा सकता है ।

(७) विधाता ने इस आशंका से कि कहीं शरीर के भार से क्षीण कटि प्रदेश टूट न जाय इसलिये उसने नीले सचिक्कन रेशमी केशों को अत्यंत सुदृढ़ समझ कर बड़े यत्न से बाला के केश समूह की रचना की है।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि कामदेव की स्त्री रति के समान सुन्दर बाला का रहस्य रसिक जन ही जान सकते हैं। लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह जिन को उनके पूर्वजों द्वारा संचित पुण्य प्राप्त है वही इस रस रीति के ज्ञाता हैं।

बिहारी लाल ने भी कटि की क्षीणता पर एक अनुपम उक्ति कही है :—

लगी अनलगी सीं जु बिधि, करी खरी कटि छीन।
कियो मनो वाही कसरि, कुच नितम्ब अति पीन ॥

— — —

## २३.

### "सद्य : स्नाता"

कामिनि करए सनाने ।
हेरितहि हृदय हनए पँचवाने ॥२॥
चिकुर गरए जलधार ।
जनि मुख-ससि डर रोअए अँधारा ॥४॥
कुच जुग चारु चकेवा ।
निअ कुल मिलिअ आनि कोन देवा ॥६॥
ते संका भुज पासे—।
बांधि धएल उड़ि जाएत आकासे ॥८॥
तितल बसन तनु लागू ।
मुनिहु क मानस मनमथ जागू ॥१०॥
भनइ विद्यापति गावे ।
गुनमति धनि पुनमत जन पावे ॥१२॥

(२) हनए = हनन करती है, मारती है । पंचवाने = पँचवाण, कामदेव के पांच वाण—उनके नाम हैं प्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्माद (४) गरए = गिरती है । अंधारा = अंधकार, अंधेरा, यहाँ तात्पर्य है केश राशि से । (६) निअ = निज, अपने । मिलए = मिलने को । आनि कोन देवा = किसने ला दिया है । (८) धएल = रखा है । तितल = भीगा । मानस = मन ।

(२) वह अनुपम बाला स्नान करती है । स्नान के उपरांत नयन भर देख लेने मात्र से ही बाला मानों कामदेव के पंचशरों का संधान करती है ।

(४) केशों से गिरने वाली जल की धारा ऐसी प्रतीत होती है मानो मुख रूपी चंद्रमा के भय से केश रूपी अंधकार रो रहा हो ।

(६) दोनों कुच इतने सुंदर हैं और बाला के सुंदर शरीर से इस प्रकार मिल गये हैं मानो किसी ने उनको अपने ही कुल में ला मिलाया हो ।

(८) कहीं यह कुच रूपी चकवा आकाश में निज कुल वालों से मिलने उड़ न जायें इसी शंका से मानो बाला ने उनको अपनी भुजाओं में बांध रखा है।

(१०) बाला का भीगा वस्त्र उसके तन से चिपक गया है। इस दृश्य से तो मुनीश्वरों के मन में भी कामदेव जाग्रत हो जाता है।

(१२) कविवर विद्यापति कहते हैं कि ऐसी गुणशीला रमणी को केवल पुण्यवंत पुरुष ही पा सकते हैं।

## २४.

आजु मझु सुभ दिन भेला।
कामिनि पेखल सनान क बेला ॥२॥
चिकुर गरए जलधारा।
मेह बरिस जनु मोतिम हारा ॥४॥
बदन पोंछल परचूरे।
माजि धएल जनि कनक-मुकूरे ॥६॥
तेंइ उदसल कुच-जोरा।
पलटि बैसाओल कनक-कटोरा ॥८॥
निबि बँध करल उदेस।
विद्यापति कह मनोरथ सेस ॥१०॥

(२) मझु = मेरा। (४) मोतिम = मौक्तिक, मोतियों का। (६) बदन = मुख। परचूरे = प्रचुर रूप से, भली भांति। मुकूरे = मुकुर, दर्पण। (८) तेंइ = उससे। उदसल = उदय हुए, प्रकट हुए। बैसाओल = बिठा दिया, रख दिया। (१०) निबि-बंध = नारे या कमर बन्द का बंधन। उदेस = शिथिल, ढ़ीला।

(२) आज मेरे जीवन का शुभ दिन है। आज मैंने उस बाला का स्नान करते समय दर्शन किया है।

(४) काले केशों से उज्जवल जल धारा गिर रही थी मानो काले मेघ (केश) मोतियों की मालाओं (जल-धारा) की वर्षा कर रहे हैं।

(८) मुख धोने में बाला के दोनों कुच वस्त्र हट जाने से प्रकट हो गये थे। कुच इतने सुंदर थे मानो किसी ने सुवर्ण कटोरों को उलट कर वहाँ रख दिया हो।

(१०) इसी समय बाला ने वस्त्र परिवर्तन के लिये निबि-बंध को शिथिल किया। कवि विद्यापति कहते हैं कि बाला के यह करते ही मेरा अभिप्राय पूरा हो गया अर्थात अब कौन सी इच्छा शेष रही है।

## २५.

जाइत पेखल नहाएलि गोरी।
कति सयँ रूप धनि आनलि चोरी ॥ २ ॥
केस निंगारइत बह जल-धारा।
चमर गरए जनि मोतिम-हारा ॥ ४ ॥
अलकहि तीतल तैं अति सोभा।
अलिकुल कमल बेढ़ल मधुलोभा ॥ ६ ॥
नीर निरंजन लोचन राता।
सिंदुर मँडित जनि पंकज-पाता ॥ ८ ॥
सजल चीर रह पयोधर-सीमा।
कनक-बेल जनि पड़ि गेल हीमा ॥ १० ॥
ओ नुकि करतहि चाहि किए देहा।
अबहि छोड़ब मोहि तेजब नेहा ॥ १२ ॥
ऐसन रस नहिं पाओब आरा।
इथे लागि रोइ गरए जलधारा ॥ १४ ॥
बिद्यापति कह सुनह मुरारि।
बसन लागल भाव रूप निहारि ॥ १६ ॥

(२) नहाएलि = नहाई हुई, स्नान किये हुई। कति = कहाँ। सयं = से। आनलि = ले आई। (४) निंगारइत = गारते समय, निचोड़ते समय। चमर = केश। (६) बेढ़ल = बेढ़ लिया, घेर लिया। (८) निरंजन = निर + अंजन, अंजनहीन। राता = लाल सुर्ख-भृकुटि कुटिल नैन रिस राते (तुलसी) (१०) पड़ गेल = पड़ गई हो। हीमा = हिम। (१२) ओ = वह, वह वस्त्र। नुकि = छुपाना। चाहि = चाहता है। (१४) आरा = अन्यत्र। इथे = इस कारण।

(२) आज मैं ने स्नान करके जाती हुई बाला का दर्शन किया। बाला न जाने इतना रूप यौवन कहाँ से चुरा लाई है।

(४) केश निचोड़ते समय उनसे जो पानी की बूँदें गिर रही थीं वह ऐसे प्रतीत होती थीं मानो चंवर पुच्छ से मोतियों की शुभ्र माला गिर रही हो।

(६) जल से भीगी पलकें अनुपम शोभा दे रही थीं ऐसा प्रतीत होता था मानो मधु के लोभ से भ्रमरों ने कमल को घेर रखा हो।

(८) पानी में देर तक स्नान करने से बाला की आँखें अंजन हीन और लाल हो गई थीं। उसके लाल नेत्र ऐसे दीखते थे मानो सिंदूर से रँजित कमल पत्र हों।

(१०) उस समय भीगा चीर बाला के कुचों पर पड़ा हुआ था। उनकी शोभा उस समय ऐसी मालूम होती थी मानो सुवर्ण बिल्व फलों पर हिम पड़ गया हो।

(१२) उस भीगे वस्त्र से बाला अपने शरीर को छुपाना चाहती थी और वस्त्र भी उसके शरीर से ऐसा चिपक गया था मानो उस वस्त्र को ज्ञात था कि बाला शीघ्र ही उसका मोह त्याग कर उसे अपने पास से पृथक करने का निश्चय कर चुकी थी और इसी कारण वह प्राण पण से बाला के शरीर से सट गया था।

(१४) ऐसी रस रीति अन्य स्थानों पर अप्राप्य है कदाचित इसी शोक में शरीर के समस्त अंग जलधारा को बहा कर रोदन कर रहे थे।

(१६) विद्यापति कहते हैं कि हे मुरारी यदि अवसर मिले तो बाला के इस स्वरूप को, जब स्नान के उपरान्त भीगे वस्त्र उसके अंगों से चिपक गये हों, अवश्य निहारना।

इस पद के आठवें चरण में विचित्रता है। यह चरण ज्यों का त्यों बिना एक भी शब्द के परिवर्तन के सूरदास जी ने भी लिखा है। सूरदास का पद इस प्रकार है:—

नीरे निरंजन लोचन राता, सिन्दुर मण्डित जनु पंकज पाता।

(२६)

नहाइ उठल तीर राइ कमलमुखि
समुख हेरल बर कान।
गुरुजन संग लाज धनि नत-मुखि
कइसन हेरब बयान॥ २॥

सखि हे, अपरुब चातुरि गोरि।
सब जन तेजि कए अगुसरि संचरि
आड़ बदन तँहि फेरि॥ ४॥
तँहि पुन मोति-हार तोरि फेंकल
कहइत हार टुटि गेल।
सब जन एक एक चुनि संचरु
स्याम-दरस धनि लेल॥ ६॥
नयन चकोर कान्ह-मुख ससि-वर
कएल अमिय-रस-पान।
दुहु दुहु दरसन रसहु पसारब
कवि विद्यापति भान॥ ८॥

(२) उठल = उठते ही। राह = राधा। (४) बयान = बदन, मुख। (६) अगुसरि = अग्रसर, आगे जाकर। आड़ = ओट। तोरि = तोड़ कर। संचरु = इकठा किया। लेल = ले लिया, कर लिया। (८) कएल = किया। अमिय = अमृत।

(२) यमुना तीर नहा कर उठते ही कमल मुखी राधा ने अपने सम्मुख नर श्रेष्ठ कान्ह को देखा। गुरुजनों का साथ होने के कारण राधा ने लज्जा वश अपना मुख नीचा कर लिया परन्तु उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि किस प्रकार कान्ह के सुन्दर मुख का पुनः दर्शन करूं।

(४) हे सखी, गौर बदनी राधा बड़ी ही चतुर है। उसने एक युक्ति सोच ही निकाली। वह सब सहेलियों और गुरुजनों को छोड़ कर शीघ्रता से आगे बढ़ गई और इस प्रकार उसका मुख ओट में हो गया।

(६) मुख के ओट में हो जाने पर उसने अपना मोतियों का हार तोड़ कर पृथ्वी पर फेंक दिया और सबसे कहने लगी कि मेरा मोतियों का हार टूट गया है। सब सखियों और गुरुजनों ने पृथ्वी पर से एक-एक मोती चुन-चुन कर इकट्ठा किया और इतने अनन्तर में बाला ने कान्ह का भली भांति दर्शन कर लिया।

(८) बाला के नयन चकोरों ने कान्ह के मुख चंद का दर्शन पाकर मानो दर्शनामृत का पान किया। कवि विद्यापति कहते हैं कि इस परस्पर दर्शन तथा अवलोकन से अपूर्व रस का संचार हुआ।

प्रेम प्रसंग

## श्री कृष्ण का प्रेम

(२७)

पथ-गति नयन मिलल राधा कान।
दुहु मनसिज पूरल संधान ॥ २ ॥
दुहु मुख हेरइत दुहु भेल भोर।
समय न बूझए अचतुर चोर ॥ ४ ॥
बिदगधि संगिनी सब रस जान।
कुटिल नयन कएलह्रि समधान ॥ ६ ॥
चलल राज-पथ दुहु उरझाई।
कह कवि-सेखर दुहु चतुराई ॥ ८ ॥

(२) गति = जाते हुए। पूरल = पूरा किया, पूर्ण किया। संधान = बाण मारने का कार्य। (४) भोर = विभोर, बेसुध। समय = उपयुक्त अवसर। बूझए = समझता है। (६) बिगदधि = विदग्ध। नागर, रसिक। कुटिल-नयन = तिरछी चितवन, इशारे से। समधान = समाधान, सावधान।

(२) राह में जाते हुये अकस्मात ही राधा और कान्हा का मिलन हुआ, दोनों के नेत्र परस्पर मिले और दोनों के हृदयों में सुवर्ण अवसर देख कर कामदेव ने अपने बाणों का संचालन किया अर्थात दोनों के हृदय में काम का संचार हुआ।

(४) एक दूसरे के मुख की सुन्दरता को देख कर दोनों ऐसे विभोर हो गये जैसे अनाड़ी और कच्चा चोर उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा न करके बेमौके ही अपने कार्य में लग जाता है।

(६) परंतु साथ की रसिक सखी ने इस रस रीति को तुरंत ही ताड़ लिया और इसलिये उसने तिरछी चितवन से उनको सावधान रहने का इशारा किया।

(८) राज पथ में जाते हुए दोनों के नेत्र परस्पर उलझ कर रह गये। कवि विद्यापति कहते हैं कि इस प्रेम व्यवहार से उन दोनों की- रसिकता का अनुमान हो सकता है।

श्री सूरदास ने भी राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन का दृश्य इससे भी अधिक सुन्दरता से अंकित किया है। विद्यापति ने जनाकीर्ण राज पथ को चुना है परन्तु सूरदास ने प्रकृति की रम्य गोद और यमुना की निर्मल पुलिन को संकेत-स्थल बनाया है। इस प्रकार प्रकृति का सुवर्ण संयोग होने से वातावरण और भी अधिक मादक तथा उद्दीप्त हो गया है और इस कारण सूरदास द्वारा अंकित किया हुआ प्रथम मिलन का चित्र विद्यापति के चित्रण की अपेक्षा अधिक सुन्दर तथा सरस है।

खेलन हरि निकसे ब्रज होरी।

कटि कछनी पीताम्बर काछे हाथ लिये भंवरा चक डोरी ॥
मोर मुकुट कुण्डल श्रवनन पर, दसन दमक दामिनि छवि थोरी।
गये स्याम रवि तनया के तट, अंग लसति चंदन की खोरी ॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुचिर झकझोरी।
संग लरिकिनी चलीं इत आवति, दिन थोरी अति छवि तन गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी ॥

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी पुष्प वाटिका के प्रसंग में प्रथम दर्शन और उसके अद्भुत प्रभाव का वर्णन किया है। प्रातःकाल का समय तथा वाटिका सी रम्य स्थली होने के कारण चित्रांकन बड़ा सुन्दर हुआ है। परंतु इस चित्रण में करुणा का समावेश है और विवशता की एक झलक पाई जाती है। विवशता महाराज जनक की प्रतिज्ञा के कारण है। ज़रा इस चित्र का भी दर्शन कीजिये।

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा, सिय मुख ससि भये नयन चकोरा।
भये विलोचन चारु अचंचल, मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।
थके नयन रघुपति छवि देखें, पलकन्हि हूँ परिहरीं निमेषें।
अधिक सनेह देह में भोरी, सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।
लोचन मग रामहि उर आनी, दीन्हे पलक कपाट सयानी।

जब सिय सखिन्ह प्रेम बस जानी, कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी।
धरि धीरजु एक आलि सयानी, सीता सन बोली गहि पानी।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू, भूप किसोर देखि किन लेहू।
सकुच सीय तब नयन उघारे, सन्मुख दोऊ रघु सिंघ निहारे।
नख सिख देखि राम कै सोभा, सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा।

## २८

सजनी, भल कए पेखल न भेल।
मेघ-माल सयँ तड़ित-लता जनि,
हिरदय सेल दई गेल ॥ २ ॥
आध आँचरि खसि, आध बदन हसि,
आधहि नयन तरङ्ग।
आध उरज हेरि आध आँचर भरि,
तबधरि दगधे अनङ्ग ॥ ४ ॥
ऐके तनु गोरा कनक कटोरा,
अतनु काँचला उपाम।
हार हारल मन जनि बूझि ऐसन
फाँस पसारल काम ॥ ६ ॥
दसन मुकुता पाँति अधर मिलायल
मृदु मृदु कह तहि भासा।
विद्यापति कह अतए से दुख रह
हेरि हेरि न पुरल आसा ॥ ८ ॥

(२) भल कए = भली भांति। पेखल न भेल = देख न सका। सयं = संग, साथ। तड़ित लता = विज्जुलता। सेल = शूल। (४) तरङ्ग = कटाक्ष। तबधरि = तब से। (६) अतनू = अ + तन, अनंग, कामदेव। कांचला = कांचना, बल पूर्वक भरना। उपाम = ठूंसना। फाँस = पाश, जाल। (८) अतए = इतना ही तो। पुरल = पूर्ण होना।

(२) हे सजनी, इतना होने पर भी मैं राधा के मुख कमल का मन भर कर दर्शन न कर सका। जिस प्रकार मेघों में विद्युत अपनी छटा दिखा कर छुप

जाती है और अपने क्षण मात्र दर्शन से ही दर्शकों को स्तब्ध कर देती है उसी प्रकार राधा के मुख कमल की एक ही झलक मेरे हृदय में शूल की भांति प्रवेश कर गई है।

(४) जिस समय से मैंने राधा का वह रूप देखा है, कि उसका आधा आंचल खिसका हुआ था, गुरु जनों के भय से उसका मुख अर्ध हास्य से आलोकित था, घबराहट तथा लज्जा से एक पयोधर निर वस्त्र हो गया था तथा दूसरा ढका हुआ था, उसी समय से कामदेव मेरे समस्त शरीर को अपने पूर्ण तेज से दग्ध कर रहा है।

(६) एक तो राधा के सुन्दर गौर वर्ण शरीर ने और दूसरे उसके कुचों ने, जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो सुवर्ण कटोरों में विधाता ने कामदेव मदन को ठूँस ठूँस कर बल पूर्वक भर दिया हो, मेरे मन को मोह लिया है। राधा के हृदय पर पड़ा हुआ हार तो ऐसा प्रतीत होता था मानो मन पंछी को फंसाने के लिए चतुर शिकारी कामदेव ने जाल फैला रखा हो।

(८) राधा के मुख पर सहज स्थित हास विराजमान था और सखियों से मंदमंद स्वरों में वार्तालाप करने के कारण उसके मोती के समान सुन्दर तथा शुभ्र दांत अधरों के बीच चमक रहे थे कवि विद्यापति कहते हैं कि दुख तो केवल इतना ही है अर्थात केवल इसी बात का है कि मैं केवल उसका दर्शन मात्र ही कर सका और इस कारण मेरे मन की अभिलाषायें पूर्ण न हो सकीं।

## २६

ससन-परस खसु अम्बर रे
देखल धनि देह।
नव जलधर-तर संचर रे
जनि बिजुरी—रेह ॥ २ ॥
आज देखल धनि जाइत रे
मोहि उपजल रङ्ग।
कनक—लता जनि संचर रे
महि निर अवलम्ब ॥ ४ ॥

ता पुन अपरुब देखल रे
कुच—जुग अरविन्द।
बिगसित नहि किछु कारन रे
सोभा मुख–चन्द ॥ ६ ॥
विद्यापति कवि गाओल रे
रस बूझ रसमन्त।
देवसिंह नृप नागर रे
हासिनि देइ कन्त ॥ ८ ॥

(२) ससन = श्वसन, पवन। खसु = खिसक गया। अम्बर = वस्त्र, पट। तर = तल, नीचे। रेह = रेखा। (४) जाइत = जाते हुए। रङ्ग = प्रेम। उ०(१) देखु जरनि जड़ नारि की जरत प्रेत के संग—चिता न चित फीको भयो रची जु पिय के रंग। (सूर) (ii) ऐसे भये तो कहा तुलसी जो पै जानकी नाथ के रंग न राते। (तुलसी) (iii) गोरिन के रंग भींजगो साँवरो, साँवरे के रंग भींजी सु गोरी। (पद्माकर) महि = पृथ्वी। (६) ता = उस पर। पुन = पुनः। बिगसित = विकसित, खिले हुए। सोभा = सन्मुख, सामने।

(२) पवन के स्पर्श से बाला का वस्त्र हट गया था और भीतर वाले झीने वस्त्र में से उसकी कमनीयता इस प्रकार झलक रही थी जैसे नव मेघों में विद्युत में की छटा दिखाई देती है।

(४) आज उस बाला को राजपथ से जाते देख कर मेरे मन में उस के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया। राजपथ पर जाती हुई बाला ऐसी प्रतीत होती थी मानो कोई सुवर्ण वल्लरी बिना किसी अवलम्ब के पृथ्वी पर जा रही हो।

(६) केवल बाला की देह ही नहीं वरन अकस्मात ही उसके दोनों अनुपम कुच कोरक भी मैंने देखे। कुच कोरक झीने वस्त्र से ढके अथवा मुंदे हुये थे। कदाचित मुख चन्द्र के विकसित होने अर्थात खुले होने के कारण कुच कोरक बन्द थे और विकसित नहीं हुए थे।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि इस रस रीति को केवल रसिक जन ही समझ सकते हैं। हासिनी देवी के प्राणपति महाराज देवसिंह इस रस रीति को भली भाँति बूझते हैं।

महाराज देवसिंह कवि विद्यापति के आश्रयदाता महाराजा शिवसिंह के पिता थे। महाराजा कीर्तिसिंह की मृत्यु के पश्चात मिथिला का राज्य कीर्ति-

सिंह के पितामह-भ्रातृ-पुत्र-देवसिंह के अधिकार में आया। इनका उपनाम गरुड़ नारायण था। इन्होंने पुरानी राजधानी ओइनी को छोड़ कर दरभंगा के पास देवकुली नाम की राजधानी बसाई। इन्होंने बड़े बड़े तालाब बनवाये, याचकों को मुँह माँगा दान दिया और सुवर्ण से तुला दान करा कर उसे ब्राह्मणों में बँटवा दिया। विद्यापति ने इनके आश्रय में "भू परिक्रमा" नामक ग्रंथ रचा तथा और भी कितने ग्रंथ इनके आधिपत्य में रचे गये। शाके १३२४ तदनानुसार सन् १४०२ ई० में चैत्र कृष्ण तिथि ६ बृहस्पतिवार ज्येष्ठा नक्षत्र में श्री गंगा जी के तीर इन्होंने शरीर त्याग किया। इन की स्त्री का नाम श्री हासिनी देवी था। विद्यापति ने दोनों के नाम पर कवितायें रची हैं। देव सिंह के जीवन काल में ही उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराज शिवसिंह राज्य कार्य संभालते थे और उनकी मृत्यु के पश्चात शिवसिंह ही गद्दी पर बैठे। (इंडियन ऐंटिक्वेरी जिल्द २८, १८९९ पृष्ठ ५७, तथा श्याम नरायण सिंह कृत "हिस्टरी आफ़ तिरहुत" पृष्ठ ७१-७२)

३०

अलखित हम हेरि विहुसलि थोर।
जनि रमनि भेल चाँद इँजोर॥ २॥
कुटिल कटाख लाट पड़ि गेल।
मधुकर—डम्बर अम्बर लेल॥ ४॥
काहिक सुन्दरि के ताहि जान।
आकुल कए गेल हमर परान॥ ६॥
लीला कमल भमर धरु बारि।
चमकि चललि गोरि चकित निहारि॥८॥
तें भेल बेकत पयोधर सोभ।
कनक-कमल हेरि काहि न लोभ॥१०॥
आध लुकाएल आध उदास।
कुच कुम्भे कहि गेल अप्पय आस॥१२॥
से अब अमिल निधि दए गेल सँदेस।
किछु,नहि रखलन्हि रस परिसेस॥१४॥
भनइ विद्यापति दुहु मन जाशु।
बिसम कुसुम सर काहु जनु लागु॥१६॥

(२) अलखित = अलक्ष्य रूप से चुपचाप । हमें = हमें,हमको । बिहुसलि = विहांसत, मध्यम हास, मुस्कराई । रयनी = रजनी । इँजोर = अँजोर, उजाला । (४) कटाख = कटाक्ष । लाट = लाटी, मुख विवर्ण हो जाना । उ० सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी, जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी । (तुलसी) डम्बर = विलास । अम्बर = बादल, मेघ उ० आसाढ़ में सोवैं परी सब ख्वाब देखें कामिनी, अंबर नवै, बिजली खवै दुख देत दोनों दामिनी । मधुकर = कामीजन । (६) काहिक = किसकी । के = कौन । ताहि = उसे । (८) लीला = कौतुक से । बारिं = निवारण करकेहटाकर । (१०) तें = इससे । बेकत = व्यक्त,प्रकट । (१२) उदासे = उदेस, प्रकट । अप्पन = अपनी (१४) अमिल = अमूल्य । निधि = ख़ज़ाना यहाँ बाला का प्रतीक है । रखलन्हि = रह गया । परिसेस = परिशेष, बाकी, अवशिष्ठ । (१६) विसम = विषम, कठोर । कुसुम-सर = कामदेव का पुष्प बाण ।

(२) अलक्ष्य रूप से मुझे देख कर जब वह बाला मुस्कराई तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो अंधेरी रात्रि में चन्द्रमा के उदय होने से उज्ज्वल प्रकाश फैल गया हो ।

(४) बाला के कुटिल कटाक्ष से मेरा मुख और ओठ उसी प्रकार विवर्ण हो गये मानो कामी जनों के हास विलास पर तुषारपात हो गया हो ।

(६) वह बाला जिसने हमारे प्राणों को व्याकुल कर दिया है कौन सुन्दरी है तथा कोई उसे पहचानता है ।

(८) वह बाला अपने चकित नेत्रों से मुझे निहार कर ऐसी मटक कर चली गई मानो किसी ने कौतुकवश कमल पुष्पों पर से भ्रमरों को उड़ा दिया हो, उनका निवारण कर दिया हो । मधुपान करने से निवारण किये हुए भ्रमर जिस प्रकार चारों ओर अस्त-व्यस्त रूप से उड़ने लगते हैं उसी भाँति वह चंचल बाला मुझे निहार कर इठिलाती हुई चली गई ।

(१०) बाला की इस भाव-भंगी तथा हरकत से उसके पीन उरोजों की शोभा प्रकट हो गई और जिस प्रकार सुवर्ण कमल को देख कर कोई उसे आँख भर निहारने का लोभ नहीं त्याग सकता है उसी भाँति मेरे नेत्र भी उसके उत्तुंग उरोजों में उलझ कर रह गये ।

(१२) वह बाला आधा छिपा और आधा प्रकट कुच कुम्भ दिखा कर मुझ से पुनः मिलने की आशा दे गई ।

(१४) इस प्रकार वह अमूल्य निधि अर्थात् बाला अपना समस्त संदेश

मुझे दे गईं और इस कारण इस रस रीति को भली भांति समझने में अब कुछ भी अवशेष नहीं रहा है।

(१६) कविवर विद्यापति कहते हैं कि दोनों के मनों में काम का उदय हो गया है मानो कामदेव के कठोर पुष्प बाणों के शिकार हो गये हों।

कविवर बिहारीलाल ने भी ऐसी लुकाछिपी और पैंतरे बाज़ी को काव्य का विषय बनाया है। ज़रा उनकी भी उक्तियां देखिये.—

त्रिबली नाभि दिखाय कै, सिर ढँकि सकुच समाहि।
अली अली की ओट ह्वै, चली भली विधि चाहि ॥ १ ॥
हरषि, न बोली, लखि ललन, निरखि अमिल सब साथ।
आँखिन ही में हंसि, धरयो, सीस हिये धरि हाथ ॥ २ ॥

## ३१.

अम्बर बिघटु अकामिक कामिनि
कर कुच झाँपु सुछन्दा।
कनक-सम्भु सम अनुपम सुन्दर
दुइ पंकज दस चन्दा ॥ २ ॥
कत रूप कहब बुझाई।
मन मोर चंचल लोचन बिकल भेल
ओ नहिं अनइत जाई ॥ ४ ॥
आड़ बदन कए मधुर हास दए
सुन्दरि रहु सिर नाई।
अओंधा कमल कान्ति नहिं पूरिए
हेरइत जुग बहि जाई ॥ ६ ॥
भनई विद्यापति सुनु बर जौबति
पुहवी नव पँचबाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने ॥ ८ ॥

(२) विघटु = हट जाने पर। अकामिक = अकस्मात। सुछन्दा = सुन्दर। (४) कत = कितना। अनइत = अन्यत्र। (६) आड़ = ओट। अओंधा = औंधा, उलटा। बहिं = व्यतीत। (८) पुहवी = पुहिमि, पृथ्वी।

(२) अकस्मात ही अंचल के हट जाने पर कामिनी ने अपने दोनों हाथों से अपने कुचों को ढक लिया। उस समय की शोभा ऐसी प्रतीत होती थी मानो सुवर्ण के बने अति सुन्दर शिवलिंगों (कुचों) को दो पुष्पों (हथेलियों) और दस चंद्रमा की कलाओं (उंगुलियों) से ढक दिया गया हो।

(४) उस बाला के रूप का वर्णन मैं किस प्रकार करूँ। मेरा मन चंचल हो उठा है और मेरे नेत्र ऐसे विकल हैं कि वह बाला के मुख को छोड़ कर अन्यत्र जाते ही नहीं हैं।

(६) मुख फेर कर और मंद मंद मुस्करा कर सुन्दरी ने अपने सिर को झुका लिया। उस समय उसके मुख की शोभा ऐसी थी मानो सुंदर कमल पुष्प को औंधा करके रख दिया हो और जिसकी काँति देखते मन नहीं भरता है चाहे देखते देखते युग ही क्यों न बीत जावें।

(८) कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे सुंदरी, हे नव युवती सुन, तेरा स्वरूप तथा लावण्य इस पृथ्वी पर नवीन कामदेव के समान है।

## ३२.

गेलि कामिनि गजहु गामिनि
बिहँसि पलटि निहारि।
इन्द्र जालक कुसुम—सायक
कुहकि भेल बर नारि ॥२॥
जोरि भुज जुग मोरि बेढ़ल
ततहि बदन सुछन्द।
दाम—चम्पक काम पूजल
जइसे सारद चन्द्र ॥४॥
उरहि अंचल झाँपि चंचल
आध पयोधर हेरु।
पौन पराभव सरद-घन जनि
बेकत कएल सुमेरु ॥६॥
पुनहिं दरसन जीब जुड़ाएब
टुटत बिरह क ओर।
चरन जावक हृदय पावक
दहइ सब अँग मोर ॥८॥

भन विद्यापति सुनह जदुपति
चित थिर नहि होय ।
से जे रमनि परम गुनमनि
पुनु कए मिलब तोय ॥१०॥

(२) गेल = गई । विहसि = विहंसी, हंसी । इ द्रजाल = ऐन्द्रजालिक, जादू भरा । कुसुम-सायक = पुष्प बाण । कुहकि = मायाविनी । (४) मोरि = मोड़ कर । बेढ़ल = घेर लिया, छुपा लिया । दाम = माला-उ० कहुँ कीड़त कहुँ दाम बनावत कहुं करत शृंगार (सूर)। पूजल = पूजन किया हो । सारद-चंद—शरद चंद्र, मुख का प्रतीक । (६) पौन = पवन । पराभव = हार कर, पराजित हो कर । (८) पुनहि = पुनः, फिर । जुड़ाएब = शीतल होंगे । टुटत = टूट जायेगी । ओर = सीमा । पावक = अग्नि । दहइ = जलाता है । (१०) से = वह ।

(२) हाथी के समान मस्तानी चाल से चलने वाली बाला जाते जाते पलट कर और मुस्करा कर मुझे देख गई । उसकी चेष्टाओं से ऐसा प्रतीत होता था मानो वह श्रेष्ठ बाला ऐन्द्रजालिक कामदेव की मायाविनी नटी हो। उसकी हंसी ने मुझे अद्‌भुत् चमत्कार का अनुभव कराया ।

(४) बाला ने अपने दोनों हाथों को मोड़ कर उन से अपना सुन्दर मुख छुपा लिया था। सुंदर उंगलियों से छुपा हुआ बाला का अनुपम मुख ऐसा दिखाई देता था मानो कामदेव ने चम्पे की माला (सोने के वर्ण की उंगलियों) से शरद् के चन्द्र (मुख) की पूजा की हो।

(६) अपने वक्षस्थल को चंचल आँचल से ढक कर बाला अपने आधे कुच को देखती है। उसका यह कार्य ऐसा दिखाई देता है मानो पवन के वेग से पराजित होकर शरद के मेघ (आंचल) ने सुमेरु पर्वत (कुच) को प्रकट कर दिया हो। अर्थात जिस प्रकार पवन के झोंके से मेघ हट जाने पर सुमेरु पर्वत दिखाई पड़ने लगता है उसी प्रकार आंचल के हट जाने से बाला का कुच प्रकट हो कर दिखाई देने लगा।

(८) बाला का बार-बार दर्शन करने से मेरे प्राण शीतल होते हैं और विरह व्यथा का अन्त होता है परंतु बाला के पैरों में लगी महावर मेरे हृदय में आग लगा रही है जिस से मेरे समस्त अंग जले जा रहे हैं।

(१०) विद्यापति कहते हैं कि हे यदुपति सुनो कि जिस बाला का दर्शन मात्र करने से तुम्हारा चित्त चंचल हो उठा है और स्थिर नहीं होता वह परम गुणशीला रमणी तुमको केवल पुण्य कार्य करने पर ही प्राप्त हो सकेगी।

३३,

सहजहि आनन सुन्दर रे
भौंह सुरेखल आँखि।
पंकज मधु-पिबि मधुकर रे
उड़ए पसारल पाँखि ॥२॥
ततहि धाओल दुहु लोचन रे
जतहि गेलि वर नारि।
आसालुबुधल न तेजए रे
कृपन क पाछु भिखारि ॥४॥
इंगित नयन तरंगित रे
वाम भँओह भेल भंग।
तखन जानल तेसर रे
गुपुत मनोभव रंग ॥६॥
चन्दन चरचु पयोधर रे
ग्रिम गज मुकुताहार।
भसम भरल जनि संकर रे
सिर सुरसरि जलधार ॥८॥
वाम चरन अगुसारल रे
दाहिन तेजइत लाज।
तखन मदन सर पूरल रे।
गति गंजए गजराज ॥ १० ॥
आज जाइत पथ देखलि रे।
रूप रहल मन लागि।
तेहि खन सँय गुन गौरव रे।
धैरज गेल भागि ॥ १२ ॥

रूप लागि मन धाओल रे ।
　　कुच—कंचन—गिरि साँधि ।
तें अपराधें मनोभव रे ।
　　ततहिं धएल जनि बाँधि ॥ १४ ॥
बिद्यापति कवि गाओल रे ।
　　रस बुझ रसमंत ।
रूपनारायन नागर रे ।
　　लखिम देई कंत ॥ १६ ॥

( २ ) सहजहि = सहज रूप से, स्वाभाविक रूप से । सुरेखलि = भली-भाँति चित्रित की गई, सुन्दर बनाई गई । पिबि = पी कर । उड़ए = उड़ने को । पसारल = पसार दिया है, फैला दिया है । (४) लुबुधल = लुब्ध, चूर । तेजए = तजता है, छोड़ता है । पछु = पीछा । (६) इंगित = इशोर से युक्त । तरंगित = चंचल । भँओह = भवें । भंग = तिरछी, टेढ़ी । तखन = तत्क्षण, उसी समय । तेसर = तीसरा व्यक्ति । मनोभव = कामदेव । (८) चरचु = चर्चित, लिपटे । ग्रिम = कण्ठ । भरल = लपेटे हुए । (१०) अगुसारल = अग्रसर किया, आगे बढ़ाया । गंजए = गंजना करती है, पराजित करती है । (१२) धैरज = धैर्य, धीरज । (१४) लागि = लालच में । धाओल = दौड़ा । साँधि = संधि स्थान । धएल = धरा है, रखा है । जनि = मानो । (१६) रसमंत = रसिक जन ।

(२) बाला का सहज स्वभाविक सुन्दर मुख और भौंहों द्वारा भली भाँति चित्रित करके सुन्दर बनाई गई आँखें ऐसी प्रतीत होती हैं मानो कमल के समान सुन्दर मुख का रस पीकर भ्रमरों ( नेत्रों ) ने उड़ने के लिये अपने पँख पसार दिये हों ।

(४) जिस ओर वह सुन्दरी बाला गई है उसी ओर मेरे दोनों नेत्र बर-बस ही दौड़ पड़ते हैं बिलकुल उसी प्रकार जैसे आशा में चूर भिखारी जान कर भी सूम का पीछा नहीं छोड़ता है ।

(६) जिस समय कटीले, इशारे से युक्त तथा चंचल नेत्रों वाली बाला ने अपनी भवें टेढ़ी कीं उसी समय तीसरे व्यक्ति अर्थात कामदेव को बाला के गुप्त मनोभावों तथा प्रेम का पता लग गया ।

(८) चंदन से चर्चित कुचों पर गज मुक्ताओं की झूलती हुई माला ऐसी प्रतीत होती थी मानो भस्म का लेप किये हुए शिव लिंग पर ऊपर से गंगा की धार बह रही हो ।

(१०) बाला ने चलने के लिए अपना बाम चरण आगे बढ़ाया परंतु दाहिने पैर को आगे रखतेउसे लजा ने घेर लिया। ऐसे सुअवसर को देख कर कामदेव ने अपना पुष्प बाण उस पर छोड़ा जिसके प्रभाव से बाला की चाल मस्त गजराज को पराजित करने वाली हो गई।

(१२) आज उस बाला को राजपथ पर जाते देख उसका सौंदर्य मेरे हृदय में घर कर गया। उसी समय से पुरुषोचित गौरव तथा पुरुषों का सर्वोच्च गुण धीरज ( धैर्य ) मेरे हृदय को त्याग कर चला गया है।

(१४) उस बाला की रूप लालसा में मेरा मन उसके पीछे उठ दौड़ा और स्तन-रूपी दो सुवर्ण पर्वतों के संधि-स्थान तक पहुँच गया। इसी अपराध में कामदेव ने उसे वहीं बाँध रखा, अर्थात मेरा मन बाला के सुवर्ण-पर्वत रूपी कुचों के संधि-स्थान में मानो बंध सा गया है।

(१६) कवि विद्यापति कहते हैं कि इस रस रीति को केवल लखिमा देवी के प्राणपति राजा रूपनरायण जो कि कि स्वयं ही परम रसिक हैं समझ सकते हैं।

## ३४.

पथ-गति पेखल मो राधा।
तखनुक भाव परान पए पीड़लि
रहल कुमुद-निधि साधा ॥ २॥
ननुआ नयन नलिनि जनि अनुपम
बंक निहारइ थोरा ।
जनि सृंखल में खगवर बाँधल
दीठि नुकायल मोरा ॥ ४ ॥
आध बदन ससि बिहसि देखाओल
आध पीहलि निअ बाहू ।
किछु एक भाग बलाहक झाँपल
किछुक गरासल राहू ॥ ६ ॥
कर-जुग पिहित पयोधर-अँचल
चंचल देखि चित भेला ।
हेम कमल जनि अरुनित चंचल
मिहिर—तरे निन्द गेला ॥ ८ ॥

M. Important

भनई विद्यापति सुनह मधुरपति
इह रस केह पए बाधा।
हास दरस रस सबहु बुझाएल
नाल कमल दुइ आधा॥ १०॥

(२) पथगति=राज पथ पर जाती हुई। मो=मैंने। तखनुक=उस समय। भाव=भाव भंगी। पए=भी। पीड़लि=पीड़ित कर दिया है। रहल=रह गई। कुमुद-निधि=कुमुद का सर्वस्व अर्थात् चन्द्र अभिप्राय चन्द्र-मुख। (४) ननुआ=सुन्दर। नलिन=कमलिनी। बंक=तिरछा खगवरं =पक्षी श्रेष्ठ अभिप्राय खंजन पक्षी। (६) विहसि=विहंस, हंस कर। पीहलि=ढाँप लिया। निअ=निज, अपनी। बलाहक=मेघ, बादल। गरासल=ग्रस लिया। (८) पिहित=आवृत, ढका। भेला=हो गया। अरुनित=अरुणित, लालिमा युक्त। मिहिर=सूर्य, यहाँ अभिप्राय बाला की हथेली से है। निन्द=निद्रा, नींद। (१०) मधुरपति=मथुरा पति। केह =कौन। पए=परंतु। नाल=कमल-नाल अभिप्राय हाथ से है। कमल =कुच रूपी कमल। दुइ आधा=एक ही वस्तु के दो भाग।

(२) आज मैंने राजपथ पर जाती हुई राधा को देखा। उसकी उस समय की भाव भंगी ने मेरे प्राणों तक को पीड़ित कर दिया और इस कारण उस चंद्र मुख को फिर देखने की साध बनी ही रह गई।

(४) अनुपम कमलिनी के समान अपने सुंदर नेत्रों को तिरछा करके राधा ने क्षण भर को मुझे देखा। उसके इस प्रकार देखने से ऐसा प्रतीत होता था मानो पक्षि श्रेष्ठ खंजन को ज़ंजीर में बांध रखा हो और वह मेरी दृष्टि पड़ते ही छुप गया हो।

(६) उस समय राधा ने हँस कर अपना आधा मुख चंद्र मुझे दिखाया और मुख चंद्र को अपनी भुजा से ढक लिया। उसकी यह भाव भंगी ऐसी प्रतीत होती थी मानो आकाश में स्थित पूर्णिमा के चंद्रमा के आधे भाग को मेघों ने ढक रखा हो और आधे को राहु ने ग्रस लिया हो।

(८) दोनों हाथों से ढके हुए उत्तुंग उरोजों की कोर को देख कर मेरा मन चंचल हो उठा। हाथों से ढके उरोज ऐसे प्रतीत होते थे मानो लालिमा युक्त चंचल बाल सूर्य ( लाल हथेली ) के नीचे दो सुवर्ण कमल ( कुच ) निश्चित रूप से सो रहे हों।

(१०) कवि श्रेष्ठ विद्यापति कहते हैं कि हे मथुराधिपति तुम्हारी इस रस-रीति में कौन बाधा डाल सकता है। क्योंकि तुम्हारी पारस्परिक हँसी और दर्शन की उत्कंठा से ही सब को ज्ञात हो गया है कि तुम्हारे हाथ रूपी मृणाल और राधा के कुच रूपी कमल दोनों एक ही पदार्थ के दो भाग हैं अर्थात् राधा के उन्नत उरोजों के लिए तुम्हारे हाथ ही उपयुक्त हैं।

## ३५.

जहाँ-जहाँ पग जुग धरइ। तहिं-तहिं सरोरुह झरई ॥ २ ॥
जहाँ-जहाँ झलकत अंग। तहिं-तहिं बिजुरि-तरंग ॥ ४ ॥
कि हेरल अपरुब गोरी। पइठल हिय मधि मोरि ॥ ६ ॥
जहाँ-जहाँ नयन बिकास। तहिं-तहिं कमल प्रकास ॥ ८ ॥
जहाँ लहु हास सँचार। तहिं-तहिं अमिय बिकार ॥ १० ॥
जहाँ जहाँ कुटिल कटाख। ततहिं मदन-सर लाख ॥ १२ ॥
हेरइत से धनि थोर। अब तिन भुवन अगोर ॥ १४ ॥
पुनु किए दरसन पाब। अब मोहे इत दुख जाव ॥ १६ ॥
विद्यापति कह जानि। तुअ गुन देहब आनि ॥ १८ ॥

(२) धरई = धरती है, रखती है। झरई = झड़ते हैं। (४) तरंग = चंचल प्रकाश। (६) कि = क्या। मधि = मध्य। (१०) लहु = लघु, मन्द। (१४) अगोर = प्रतीक्षा करना। (१८) देहब आनि = ला दूँगा।

(२) राधा जिस जिस स्थान पर पद धरती है उन स्थानों पर उसके पगतल की लालिमा से मानो कमल से झड़ पड़ते हैं। कविवर बिहारी ने भी इसी भाव को अपनी मंजूषा में पिरोया है, अंतर केवल इतना ही है कि बिहारीलाल जिस भूभाग में निवास करते थे वहां कमल पुष्प का अभाव है इस कारण रक्तिम आभा के लिए कमल पुष्प के स्थान को दुपहरिया के फूल से पूर्ण किया है। दोहा इस प्रकार है :—

पग पग मग अगमन परति, चरन अरुन दुति झूलि।
ठौर ठौर लखियत उठे, दुपहरिया के से फूलि ॥

(४) राधा के शरीर का जो भी अंग वस्त्रों के पट से दीख जाता है। वहीं से मानो विद्युत सी कौंदती प्रतीत होती है।

(६) मैंने उस अपूर्व सुंदरी को क्या देखा उसकी छवि तो क्षण मात्र में मेरे हृदय में प्रवेश कर गई।

(८) जिस ओर वह बाला (राधा) नयन भर देख लेती है उसी ओर मानो कमल पुष्प खिल उठते हैं।

(१०) जिस ओर वह बाला (राधा) मंद मंद मुस्करा कर देख लेती है उस ओर मानो अमृत की वर्षा हो जाती है।

(१२) जिस ओर वह बाला कटाक्ष कर देती है उस ओर मानो कामदेव के पुष्प बाण पूरे वेग से चले जाते हैं।

(१४) इस सुंदरी बाला के क्षण मात्र दर्शन के लिए ही मानो तीनों भुवन प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(१६) इस बाला का दर्शन केवल पुण्य करने से ही प्राप्त हो सकता है, अतः अब मैं इसी दुख से मरूंगा।

(१८) कविवर विद्यापति निश्चय पूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे गुणों के कारण मैं उस बाला को तुम्हारे पास लाऊंगा।

## राधा का प्रेम

### ३६

ए सखि पेखलि एक अपरूप।
सुनइत मानबि सपन-सरूप॥ २॥
कमल जुगल पर चांद क माला।
तापर उपजत तरुन तमाला॥ ४॥
तापर बेढ़लि बिजुरी-लता।
कालिन्दी तट धीरे चलि जाता॥ ६॥
सखा-सिखर सुधाकर पाँति।
ताहि नब पल्लब अरुनक भाँति॥ ८॥
बिमल बिम्बफल जुगल बिकास।
तापर कीर थीर करु बास॥ १०॥
तापर चंचल खँजन-जोर।
तापर साँपिनि झाँपल मोर॥ १२॥

ए सखि-रंगिनि कहल निसान।
हेरइत पुनि मोर हरत गिआन ॥ १४ ॥
कवि विद्यापति एह रस भान ।
सुपुरुख मरम तुहू भल जान ॥ १६ ॥

(२) अपरूप=अपूर्व+रूप । मानबि=मानो । (४) चाँद के माला= नखों की पंक्ति। तरुन तमाल= नया वृक्ष अभिप्राय यौवन भरी देह से है । (६) बिजुरी-लता= विद्युत लता अर्थात् पीताम्बर। (८) सखा= शाखा, तमाल रूपी शरीर की शाखा रूपी बाँहों से अभिप्राय है। सिखर= शिखर, अग्रभाग । सुधाकर=चन्द्रमा, यहाँ अभिप्राय है चन्द्रमा के समान उज्जवल नखों से । नव पल्लव=किसलय, यहाँ अभिप्राय है हथेली से। (१०) बिम्ब-फल = ओष्ठ। (१२) जोर= जोड़ा। मोर=मोर मुकुट की चन्द्रिका। (१४) रंगिनि=सुरसिका (१६) मरम=मर्म, रहस्य। तुहू=तुम ही। भल= भली भाँति।

(२) हे सखी आज मैंने एक अपूर्व स्वरूपवान् पुरुष को देखा । उसका स्वरूप ऐसा था मानो किसी ने स्वप्न में कोई मूर्ति देखी हो।

(४) कमल रूपी चरणों पर नखों की पंक्ति शोभा दे रही थी और चरण कमलों से नवीन वृक्ष की भाँति यौवन भरी देह जुड़ी हुई थी।

(६) इस यौवन भरी देह पर विद्युत लता की भांति पीताम्बर लिपटा हुआ था ऐसा एक सुन्दर व्यक्ति हे सखी यमुना किनारे धीरे-धीरे जा रहा था।

(८) तमाल रूपी शरीर की शाखा रूपी बाहुओं के अग्रभाग में उज्ज्वल नखों की पक्तियां थीं और नवीन किसलय की भाँति उसकी रक्तिम हथेलियाँ थी

(१०) बिम्ब-फल के समान शोभायमान उसके दोनों ओष्ठ थे और तोते की चंचु के समान नासिका मुख की शोभा बढ़ा रही थी।

(१२) नासिका के पार्श्वों में चंचल खंजन की भांति दो नेत्र विकसित थे और सिर पर नाग के समान केशों ने शीश पर धारण किये हुए मोर मुकुट को ढक रखा था।

(१४) हे सखी, हे सुरसिके, मुझे उस अपूर्व सुंदर पुरुष का परिचय बता। मेरी तो समस्त सुधि उसे देखते ही जाती रही अतः हे सखी, अब तू ही उसका निशान पता बता।

(१६) कवि विद्यापति इस रस रीति से भली प्रकार परिचित हैं, परंतु हे सखी, उस सुपुरुष के मर्म को तो केवल तू ही भली प्रकार जानती है।

## ३७

की लागि कौतुक देखलौं सखि
निमिष लोचन आध ।
मोर मन-मृग मरम बेधल
विषम बान बेआध ॥ २ ॥
गोरस बिरस बासी बिसेखल
छिकहु छाड़ल गेह ।
मुरली धुनि सुनि मो मन मोहल
बिकहु भेल सन्देह ॥ ४ ॥
तीर तरंगिनि कदम्ब-कानन
निकट जमुना घाट ।
उलइटि हेरइत उलटि परलओं
चरन चीरल काँट ॥ ६ ॥
सुकृती सुफल सुनह सुन्दरि
विद्यापति भन सार ।
कंस दलन गुपाल सुन्दर
मिलल नन्द कुमार ॥ ८ ॥

(२) की लागि = किस लिये । देखलौं = देखती हो । निमिष = निमेष, क्षण भर । लोचनं आध = कनखियों से । मरम = मर्म स्थल । (४) बिरस = रस हीन । गोरस = दुग्ध, इन्द्रिय-जनित सुख । बिसेखल = विशेषतः । छिकहु = छींकने पर भी । छाड़ल = छोड़ देता है । (६) चीरल = चीर दिया, लग गया ।

(२) हे सखी क्षण क्षण के पश्चात् कनखियों से कौतुक यथा किसे तथा किस लिये देखती हो । उसने तो अपनी भुवन मोहिनी मुस्कान रूपी कठोर बाण से मेरे मन रूपी मृग के मर्म स्थल को बींध दिया है ।

(४) मुरली की ध्वनि सुन कर गोरस बेचने जाती सुन्दरी विकल हो गयी, उसका मन गोरस बेचने से विरस हो गया, बासी अटपटी हो गयी और वह अपने पथ से भटक कर इधर उधर हो गयी । श्री सूरदास ने भी यही भाव व्यक्त किया है कि मुरली की ध्वनि सुनकर गोपियाँ 'गोरस लो लो' कहने के स्थान पर "लेलो गोपाल मोल" पुकारने लगीं ।*

(६) हे सखी, नदी तीर कदंबस्थली में यमुना के घाट के समीप उसे पलट-पलट कर देखते समय मेरे पाँव काँटा चुभ गया।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी सुनो, सत्य तो यह है कि पुण्य कार्यों के सफल होने के उपरान्त ही तुझे सुंदर नन्दकुमार मिल सकते हैं

## ३८

अवनत आनन कए हम रहलिहुँ
बारल लोचन-चोर ।
पिया मुख-रुचि पिबए धाओल
जनि से चाँद चकोर ॥ २ ॥
ततहु सयँ हठ हटि मो आनल
धएल चरनन राखि ।
मधुप मातल उड़ए न पारए
तइ अओ पसारए पाँखि ॥ ४॥
माधब बोलल मधुर बानी
से सुनि मूँदु मोयँ कान ।
ताहि अवसर ठाम बाम भेल
धरि धनू पँचबान ॥ ६ ॥
तनु पसेब पसाहनि भासलि
पुलक तइसन जागु ।
चूनि चूनि भए काँचुअ फाटलि
बाहु बलआ भाँगु ॥ ८ ॥
भन बिद्यापति कम्पित कर हो
बोलल बोल न जाय ।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
साम सुन्दर काय ॥ १० ॥

(२) अवनत = अवनति, नीचे। बारल = निवारण किया, रोक रक्खा। रुचि = शोभा। (४)सयं = से। हटि = हटाना। मो = मैं। आनल = लाई। हठि आनल = हटालाई। मातल = मत्त, मधु पी कर मस्त। तइअओ = तौ भी। (६) बोलल = बोले। मुँदु = मूँद लिये। ठाम = स्थान। बाम = विरुद्ध, वैरी। धरि = धारण

करके । धनू=धनुष । (८) परेव=प्रस्वेद, पसीना । पसाहनि=प्रसाधनी, ललाट की सजावट, चन्दन । भासलि=बह गया, धुल गया । तइसन=उसी प्रकार । चूनि चूनि=टुकड़े टुकड़े, चिथड़े । काँचुअ=काँचली, चोली, कँचुकी । वलआ=वलय, चूड़ी । भाँगु=भग्न, टूट गई ।

(२) हे सखी, श्यामसुन्दर से साक्षातकार होते ही मैंने अपने मुख को नीचा कर लिया और अपने नयन रूपी चोरों को उनकी ओर जाने से रोक दिया । परन्तु हे सखी, प्रीतम के मुख की शोभा का पान करने के लिए वे पुनः उस ओर दौड़ पड़े जिस प्रकार चकोर अधीर होकर चंद्रमा की ओर टकटकी लगा देता है ।

(४) प्रीतम के मुख की ओर से हे सखी, मैं अपने नेत्रों को हठ पूर्वक बलात रोक कर हटा लाई और अपने चरणों पर धर रखा अर्थात नीचे की ओर देखने लगी । परन्तु हे सखी, जिस प्रकार मधु पी कर मस्त बना भ्रमर उड़ नहीं सकता है तो भी उड़ने की चेष्टा में पंख पसार देता है उसी प्रकार मेरे नेत्र बार बार प्रीतम के मुख की ओर दौड़ने लगे ।

(६) उसी समय हे सखी, माधव मधुर वाणी से मुझसे बोले परंतु उनकी वाणी को सुनते ही लज्जा वश मैंने अपने दोनों कान मूँद लिये । परंतु हे सखी, मेरे इस कार्य से उसी समय तथा उसी स्थान पर कामदेव मेरा वैरी हो गया, मेरे विरुद्ध हो गया और अपने धनुष को धारण कर के मुझ पर अपने पुष्प वाणों की बौछार करने लगा ।

(८) हे सखी, कामदेव के इस आकस्मिक् आक्रमण से मेरे समस्त शरीर से पसीना बह निकला जिससे ललाट पर लगा हुआ अंगराज धुल गया और हे सखी, मेरे शरीर में रोमाँच हुआ तथा प्रेमातिरेक से शरीर फूल उठा जिस के कारण मेरी कंचुकी फट गई और हाथ की चूड़ियाँ फूट गईं ।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिंह रूपनारायण के सुंदर श्याम शरीर को देखकर तथा उनकी चेष्टाओं के परिणाम स्वरूप हे सखी, अभी तक मेरे हाथ काँप रहे हैं और मुझ से भली भांति बात भी नहीं कही जाती है ।

## ३६

सामर सुन्दर ए बाट आएत
तें मोरि लागलि आँखि।
आरति आँचर साजि न भेले
सब सखीजन साखि ॥ २ ॥
कहहि मो सखि कहहि मो
कत तकर अधिवास ।
दूरहु दूगुन एड़ि मैं आब ओं
पुनू दरसन आस ॥ ४ ॥
कि मोरा जीवन कि मोरा जौबन
कि मोरा चतुरपने ।
मदन-बान मुरुछलि अछओं
सहओं जीव अपने ॥ ६ ॥
आध पद धरइत मोए देखल
नागरजन समाज ।
कठिन हिरदय भेदि न भेले
जाओ रसातल लाज ॥ ८ ॥
सुरपति-पाए लोचन मागओं
गरुड़ मागओं पाँखि ।
नन्द क नन्दन हों देखि आबओं
मन मनोरथ राखि ॥ १० ॥

(२) ए=इस। आएत=आते हैं। तें=इसी कारण। आरति=आर्त्तावस्था से, व्याकुलता से। साजि=संभालना। साखि=साक्षी। (४) मो=मुझ से। तकर=उसका। अधिवास=निवास स्थान। दूरहू=दूरी, फ़ासला। दुगून=द्विगुण, दुगनी। एड़ि=अतिक्रम करके, पार करके। पुनू=पुनः, फिर। (६) मुरछल=मूर्छित। अछओं=हूँ। (८) भेदि=भग्न होना, फट जाना। जाओ=चली गई, धंस गई। पाए=चरण।

(२) हे सखी, श्याम सुंदर उस मार्ग से आ रहे थे इस कारण मेरी दृष्टि उस ओर लग गई, मेरे नेत्र उस ओर आकर्षित हो गये। हे सखी, उस समय

प्रेमावेश के कारण मैं अपने आंचल को संभाल भी न सकी और न अपने कुचों को भली भांति ढक ही सकी। मेरी इस विह्वल दशा की सभी सखियाँ साक्षी हैं।

(४) कहो सखी कहो, उसका निवास स्थान कहाँ है। दुगुनी दूरी होने पर भी अतिक्रम करके मैं पुनः दर्शन पाने की आशा से वहाँ जाऊँगी।

(६) हे सखी, मेरा जीवन क्या, मेरा यौवन कैसा और मेरी चतुराई क्या, यह सब मिथ्या है। सार वस्तु केवल यही है कि मैं कामदेव के बाणों से मूर्छित हूँ और उसकी मार्मिक पीड़ा अपने प्राणों में सह रही हूँ।

(८) हे सखी, प्रेमावेश में श्याम सुन्दर की ओर एक पैर बढ़ाते ही समाज के चतुर व्यक्तियों ने मुझे देख लिया परंतु इस लज्जा से भी मेरा कठोर हृदय फट नहीं गया मानो सारी लज्जा पाताल में धंस गई हो।

(१०) हे सखी, मन की अभिलाषा पूर्ण करने तथा नंद-नंदन के दर्शन करने के लिये मैं देवराज इंद्र के चरणों में प्रार्थना करके उनके सहस्र लोचन तथा श्याम सुन्दर तक पहुँचने के लिये गरुड़ से उनके पंख माँगती हूँ।

## ४०

कानु हेरब छल मन बड़ साध।
कानु हेरइत भेल अत परमाद॥ २॥
तबधरि अबुधि मुगुधि हम नारि।
कि कहि कि सुनि किछु बुझिए न पारि॥ ४॥
साओन-घन सम झर दु नयान।
अविरत धस-धस करए परान॥ ६॥
की लागि सजनी दरसन भेल।
रभसे आपन जिउ परहथ देल॥ ८॥
ना जानू किए करु मोहन-चोर।
हेरइत प्रान हरि लेई गेल मोर॥ १०॥
अत सब आदर गेल दरसाइ।
जत बिसरिए तत बिसर न जाइ॥ १२॥
विद्यापति कह सुन बर नारि।
धैरज धरु चित मिलब मुरारि॥ १४॥

(२) कानु = कान्ह । छल = थी । परमाद = प्रमाद, आपत्ति, भ्रान्ति । (४) तबधरि = तब से । अबुधि = अबुद्धि, बुद्धिहीन । मुगुधि = मुग्ध । (६) साओन = सावन, श्रावण । झर = झरते हैं, बरसते हैं । अविरत = निरंतर, लगातार । धस धस = धक धक । (८) रभसें = कौतुक ही में, उत्सुकता वश । पर = पराये, दूसरे । (१०) किए = क्या । लेई गेल = ले गया । (१२) अत = अत: ।

(२) हे सखी, मेरे मन में कृष्ण को देखने और उनके दर्शन करने की बड़ी अभिलाषा थी परंतु नंद-नंदन का दर्शन करके मुझे भ्रांति सी हो गई है ।

(४) हे सखी, जब से मुझ जैसी बुद्धि हीना नारी ने नंद-नंदन के दर्शन किये हैं तब से मैं तो उनके स्वरूप पर मुग्ध हो गई हूँ, मेरी दशा बड़ी विचित्र हो गई है, मैं कुछ का कुछ सुनती हूँ और कुछ का कुछ कहती हूँ, मैं कुछ भी समझ नहीं पा रही हूँ ।

(६) हे सखी, जब से मैंने श्याम सुन्दर के दर्शन किये हैं तब से मेरे दोनों नेत्र श्रावण के मेघ की नाईं बरस रहे हैं और व्याकुलता से मेरे प्राण निरन्तर धक-धक कर रहे हैं ।

(८) हे सखी, दर्शन मात्र से मुझे मिला क्या, मैंने तो केवल कौतुक वश ही अपने प्राणों को दूसरों के हाथों में सौंप दिया है ।

(१०) हे सखी, मुझे तो यह भी पता नहीं कि मेरे चित चोर मोहन ने क्या किया, कौन सा वशीकरण किया जिसने केवल एक दृष्टि देखते ही मेरे मन को हर लिया ।

(१२) हे सखी, नंद-नंदन इस प्रकार दर्शन देकर मुझे सम्मानित तो अवश्य कर गये परंतु उसकी याद मैं जितना भूलने की चेष्टा करती हूँ उतना ही भूल नहीं पाती ।

(१४) कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे नारियों में श्रेष्ठ राधे, धैर्य रखो, मुरारी तुमको अवश्य प्राप्त होंगे ।

छठवें चरण में कवि ने जिस भाव को चित्रित किया है श्री सूरदास ने उसी भाव को लेकर अनेकों अति सुन्दर पदों की रचना की है अन्तर केवल इतना है कि उन्होंने इस व्योपार को वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत स्थान दिया है और विद्यापति ने इसका वर्णन संयोग श्रृंगार में किया है ।

निस दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पर जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भए कारे।
कंचुकी पर सूखन नहिं पावत उर बिच बहत पनारे॥
सूरदास प्रभु अंबु बढ़्यो है गोकुल लेहु उबारे।
कहँ लौं कहौं श्याम घन सुन्दर विकल होत अति भारे॥ १॥

अथवा देखो साई नयनन्ह सों घन हारे।
बिनु ही ऋतु बरसत निसि बासर सदा सजल दोऊ तारे॥
ऊरध स्वास समीर तेज अति अनेक द्रुम डारे।
बदन सदन करि बसे बचन खग ऋतु पावस के मारे॥

कविवर बिहारीलाल भी इस क्षेत्र में किसी के पीछे नहीं हैं। उन्होंने भी इस प्रेम दशा का वर्णन किया है परंतु सूरदास जी की भांति इन्होंने भी वियोग शृंगार के अन्तर्गत इस विचित्र कार्य व्यापार का वर्णन किया है।

आठों जाम अछेह दृग जु बरत बरसत रहत।
स्यौं बिजुरी जनु मेह आनि यहाँ बिरहा धरयो॥
अथवा लाल तिहारे विरह की आगिन अनूप अपार।
सरसै बरसै नीर हू मिटै न झर हू झार॥

४१.

कि कहब हे सखि इह दुख ओर।
बाँसि-निसास-गरल तनु भोर॥ २॥
हठ सयँ पइसए स्रवनक माझ।
ताहि खन बिगलित तन मन लाज॥ ४॥
बिपुल पुलक परिपूरए देह।
नयन न हेरि हेरए जनु केह॥ ६॥
गुरु-जन समुखहि भाव तरंग।
जतनहि बसन झाँपि सब अंग॥ ८॥
लहु लहु चरण चलिए गृह माझ।
आजु दइब बिहि राखल लाज॥ १०॥

तनु मन बिबस खसए निबि-बंध ।
कि कहब विद्यापति रहु धन्द ॥१२॥

(२) ओर = विस्तार । बाँस = बाँस की बनी वंशी । निसास = निश्वास, ध्वनि । गरल = विष, मादकता । (४) पइसए = पैठ जाती है । बिगलित = दूर हो जाती है, छूट जाती है । (६) केह = कोई और । (८) तरंग = लहर । दइब = दैव । बिहि = विधाता, ब्रह्मा । (१२) धन्द = चिन्ता ।

(२) हे सखी मैं अपने असीम दुख का विस्तार क्या बताऊँ । मोहन की वंशी की ध्वनि की मादकता से मेरा सारा शरीर बेसुध हो रहा है ।

(४) हे सखी वंशी की ध्वनि तो बरबस मेरे कानों में पैठ गई और उस ध्वनि को सुनते ही मेरी समस्त लज्जा तथा तन का चेत जाता रहा ।

(६) इतना ही नहीं सखी वरन मेरे समस्त शरीर में रोमांच होने लगा । लज्जा वश मैंने अपने नेत्रों को मोहन की ओर से फेर लिया और उनको इस भय से नहीं देखा कि कहीं और कोई व्यक्ति ऐसा करते मुझे देख न ले ।

(८) हे सखी गुरु जनों के सम्मुख कहीं मेरी भावना की लहर प्रकट न हो पड़े इस कारण मैंने बड़े यत्न पूर्वक अपने समस्त अंगों को वस्त्रों से भली भांति ढ़क लिया ।

(१०) हे सखी धीरे धीरे चल । आज तो दैव विधाता ने ही मेरी लाज रखी है ।

(१२) हे सखी, प्रेमावेश के कारण मेरा तन मन सब विवश हो रहा है, मेरे घंघरे का निबिबन्ध शिथिल हुआ जा रहा है । कवि विद्यापति कहते हैं हे, राधे इसकी चिंता न कर ।

## ४२

कत न बेदन मोहि देसि मदना ।
हर नहि बला मोहि जुबति जना ॥ २ ॥
विभुति-भूषन नहि चाननक रेनू ।
बघछाल नहि मोरा नेतक बसनू ॥ ४ ॥
नहि मोरा जटाभार चिकुर क बेनी ।
सुरसरि नहि मोरा कुसुम क स्रेनी ॥ ६ ॥
चाँद क बिन्दु मोरा नहि इन्दु छोटा ।
ललाट पावक नहि सिन्दुर क फोटा ॥ ८ ॥

नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु ।
फनपति नहि मोरा मुकुता-हारु ॥ १० ॥
भनई विद्यापति सुन देव कामा ।
एक पए दूखन नाम मोरा बामा ॥ १२ ॥

(२) कत = इतनी । बेदन = वेदना । देसि = दे । हर = देवाधिदेव महादेव । बला = बाला । (४) चानन = चन्दन । नेतक बसनू = रंग बिरंगी चुनरी । (६) स नो = श्रेणी, कतार, माला । ८) इन्दु छोटा = दोज का चन्द्रमा । पावक = अग्नि, महादेव के तीसरे नेत्र का प्रतीक । फोटा = टीका, तिलक । (१०) फनपति = सर्प । (१२) दूखन = दोष ।

(२) हे कामदेव, मुझे इतनी वेदना न दे, मैं तेरा शत्रु महादेव नहीं हूँ वरन मैं तो युवती बाला हूँ ।

(४) हे देव, मेरे शरीर पर लगी हुई रज भभूत नहीं है वरन यह तो मेरे शरीर पर लगी चंदन की रेणु है । जो वस्त्र मैं धारण किये हूँ वह महादेव का बाघाम्बर नहीं है वह तो मेरी रंग बिरंगी चुनरी है ।

(६) हे देव, मेरे शिर पर दीखने वाला भार जटा भार नहीं है वरन् यह तो मेरी केशों की गुथी हुई वेणी है । वेणी पर लिपटी हुई श्वेत वस्तु महादेव के शिर पर शोभा देने वाली गंगा की धारा नहीं है वरन् यह तो मेरी वेणी में गुंथी हुई श्वेत उज्ज्वल फूलों की माला है ।

(८) मेरे मस्तक पर बना चिन्ह मेरे कपाल पर लगी चंदन की वेदी है महादेव के मस्तक पर विराजने वाला द्वितीया का चंद्र नहीं है । इस चिह्न में झलकने वाली लालिमा महादेव के तीसरे नेत्र की अग्नि की झाईं नहीं है वरन् वह तो सिंदूर का टीका है ।

(१०) कण्ठ में लगी कालिमा महादेव द्वारा पान किये गये काल कूट विष की नहीं है वरन् यह तो मेरे कण्ठ में लगे सुन्दर मृगमद की कालिमा है । और हे देव, मेरे गले में लिपटी हुई वस्तु सर्प नहीं है वरन् मेरी मुक्ता माल है ।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे देवाधि कामदेव सुनो, यदि मुझमें दोष है तो केवल एक यही है कि मेरा नाम "बामा" (रमणी) है जो महादेव के जगतप्रसिद्ध नाम वामदेव के समान है ।

४३

मनमथ तोहे की कहब अनेक ।
दिठि अपराध परान पए पीड़सि
ते तुअ कौन बिबेक ॥ २ ॥
दाहिनि नयन पिसुन गन बारल
परिजन बामहि आध ।
आध नयन-कोने जब हरि पेखल
तैं भेल अति परमाद ॥ ४ ॥
पुरबाहिर पथ करत गतागत
के नहि हेरत कान।
तोहर कुसुम-सर कतहु न संचर
हमर हृदय पंचबान ॥ ६ ॥

(४) पिसुन-गन = दुष्ट जन । बारल = मना करना । (६) गतागत = आते जाते ।

(२) हे कामदेव, हे मन्मथ, मैं आपसे क्या कहूँ । केवल एक दृष्टि भर देख लेने के अपराध में ही आप मेरे प्राणों को पीड़ा पहुँचा रहे हो। यह आपकी कैसी विवेक बुद्धि है तथा यह आपका कैसा न्याय है ।

(४) मेरा तो हे मन्मथ अपराध भी बहुत कम है क्योंकि दाहिने नेत्र को तो मुझे दुष्ठ जनों के भय स्वरूप श्याम की ओर देखने से मना करना पड़ा है अर्थात् दाहिने नेत्र से तो दुष्ट जनों के भय से नंद नंदन को देखने का साहस कर नहीं पाती और परिवार वालों के भय से मैंने अपने बायें नेत्र को आधा बन्द कर रखा है; सो हे मन्मथ आधे बाँयें नेत्र के कटाक्ष से ही जब से मैंने नंद नंदन को देखा है तभी से इतना पागलपन मुझ में आ गया है ।

(६) हे मन्मथ, नगर के बाहर राज पथ पर आते जाते किसने कान्ह को नहीं देखा है । क्या तुम्हारे पुष्प वाणों ने कहीं किसी और को भी लक्ष्य बनाया है या केवल मेरे ही हृदय को अपने पँचवाणों का निशाना बनाया है ।

## ४४

एक दिन हेरि हेरि हँसि हँसि जाय।
अरु दिन नाम धए मुरलि बजाय॥ २॥
आजु अति नियरे करल परिहास।
न जानिए गोकुल ककर बिलास॥ ४॥
साजनि ओ नागरसामराज।
मूल बिनु परधन माँग बेआज॥ ६॥
परिचय नहि देखि आनक काज।
न करए संभ्रम न करए लाज॥ ८॥
अपन निहारि निहारि तनु मोर।
देइ आलिंगन भए बिभोर॥ १०॥
खन खन बैदगधि कला अनुपाम।
अधिक उदार देखिअ परिनाम॥ १२॥
विद्यापति कह आरति ओर।
बुझिओ न बूझए इए रस भोर॥ १४॥

(२) अरु = अन्य, और। (४) नियरे = पास। करल परिहास = मज़ाक किया। ककर = किस का। (६) सामराज = सम्राट। (८) आनक = दूसरे का। (१२) बैदगधि = विदग्धता पूर्ण, रसिकता पूर्ण। (१४) रस-भोर = रस विभोर।

(२) हे सखी कभी कभी तो मोहन मुझे देख कर और हँस कर चले जाते हैं और कभी कभी, किसी अन्य दिवस, मेरा नाम लेकर वंशी बजाते हैं।

(४) हे सखी, आज उन्होंने मेरे बहुत पास आकर मुझसे परिहास किया, मुझे तो यह भी पता नहीं कि गोकुल में मनोरंजन का क्या ढंग है।

(६) हे सखी, मोहन तो चतुरों के सम्राट हैं। तनिक उनकी चतुराई तो देखो। दूसरे की सम्पत्ति पर बिना मूल धन के ब्याज माँगते हैं। एक तो धन दूसरे का, फिर मूल धन का पता नहीं परंतु ब्याज तो माँगते ही हैं। यही तो उनकी चतुराई है।

(८) हे सखी, मुझे दूसरे की धरोहर जान कर भी समझने की चेष्टा नहीं करते हैं अर्थात् जान बूझ कर अनजान बनते हैं और उनको अपने इस कार्य पर न भय होता है और न लज्जा।

(१०) हे सखी मोहन ने अपने शरीर की ओर और फिर मेरे शरीर की ओर निहारा और मेरा आलिंगन करके विभोर हो गये।

(१२) हे सखी, वह प्रति क्षण रसिकता पूर्ण अनुपम कलायें तथा चेष्टायें मुझे दिखाते हैं। इस सम्बन्ध में वह बहुत उदार हैं, परन्तु अपने प्रयत्नों के परिणाम की ओर देखते तक नहीं हैं।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि कान्ह इस रस रीति में इतने विभोर हो गये हैं कि इस रीति के परिणाम को समझ कर भी समझने की चेष्टा नहीं करते हैं।

---

## कृष्ण की दूती

### ४५

धनि धनि रमनि जनम धनि तोर।
सब जन कान्हु कान्हु करि झूरए
से तुअ भाव विभोर ॥ २ ॥
चातक चाहि तिआसल अम्बुद
चकोर चाहि रहु चन्दा।
तरु लतिका अवलम्बन करिए
मझु मन लागल धन्दा ॥ ४ ॥
केस पसारि जबे तुहुँ राखलि
उर पर आम्बर आधा।
से सब सुमिरि कान्हु भेल आकुल
कह धनि इथे कि समाधा ॥ ६ ॥
हँसइत कब तुहु दसन देखाएलि
करे कर जोरहि मोर।
अलखित दिनि कब हृदय पसारलि
पुनु हेरि सखि कर कोर ॥ ८ ॥
एतहु निदेस कहल तोहे सुन्दरि
जानि तोहे करह विधान।
हृदय पुतलि तुहु से सून कलेवर
कवि विद्यापति भान ॥ १० ॥

(२) झूरए = व्याकुल होते हैं। से = वह। (४) चाहि = प्रेम करना, चाहना। तिआसल = तृषित, प्यासा। अम्बुद = मेघ। लागल = लग रहा है। धन्दा = सन्देह। (६) इथे = इसका। समाधा = समाधान, निवारण। (८) करे कर = हाथ से हाथ को जोड़ कर। मोर = मुड़ना, अंगड़ाई लेना। अलखित = अलक्ष्य। पसारल = प्रसार किया। कर कोर = कोड़ में रखना, आलिंगन करना। (१०)

एतहु = इतना। निदेस = निर्देश, इशारा। कहल = कहा है। जानि = जानकर। विधान = विधान, उपचार। पुतलि = पुत्तलिका, पुतली, प्राण। सून = शून्य।

(२) हे राधे तुझे धन्य है, हे रमणी श्रेष्ठ तेरे जन्म को धन्य है। जिस कृष्ण के नाम को रट-रट कर समस्त संसार व्याकुल हो रहा है वही कृष्ण स्वयं तेरे प्रेम में विभोर हो रहे हैं।

(४) हे राधे यह कैसी विचित्रता है, कैसा अद्भुत व्यापार है कि तृषित मेघ आज उल्टा पपीहे की ओर देख रहा है और चंद्रमा चकोर को देख रहा है, तथा वृक्ष लता का अवलंब (सहारा) ले रहा है। ऐसी प्रकृति-विपरीत तथा विरोधी घटनाओं को देख कर मेरे मन में संशय हो रहा है।

(६) हे राधे, जिस समय से तुमने अपने खुले केशों को पसारा है और वक्षस्थल पर आधा आंचल धारण किया है, उसी समय से तुम्हारी इन भाव भंगियों को स्मरण करके कृष्ण व्याकुल हो गये हैं। हे राधे तू ही बता कि इसका समाधान किस प्रकार हो सकता है।

(८) हे राधे, हाथ से हाथ जोड़ कर अंगड़ाई लेते हुये कब तुमने पीछे की ओर मुड़ कर कृष्ण को देखा था और कब तुमने हँसते हुए अपने दाँतों की छटा कृष्ण को दिखाई थी, एवं अलक्ष्य रूप से कटाक्ष करके कब तुमने उनके मन को प्रसारित करके तथा पुनः उनकी ओर देख कर अपनी सखी का आलिंगन किया था।

(१०) हे सुन्दरी राधे, इतना कह कर के तो मैंने तुझे कान्ह की दशा का निर्देश किया है अब तू स्वयं सब बातों को जान बूझकर कृष्ण का उपचार कर। परन्तु हे राधे, तू उनके हृदय की पुतली अर्थात प्राण है, तेरे बिना उनका जीवन शून्य है। जिस प्रकार प्राण न रहने से शरीर शून्य हो जाता है, कवि विद्यापति कहते हैं कि हे राधे उसी प्रकार तेरे बिना उनका जीवन भी सूना है।

## ४६

सुन सुन ए सखि कहए न होए।
राहि-राहि कए तन मन खोए॥ २॥
कहइत नाम पेम भए भोर।
पुलक कम्प तनु घरमहि नोर॥ ४॥
गदगद भाखि कहए बर कान।
राहि दरस *बिनु निकस परान॥ ६॥

जब नहि हेरब तकर से मुख ।
तब जि उभार धरब कोन सुख ॥ ८ ॥
तुहु बिनु आन इथे नहि कोइ ।
बिसरए चाह बिसरि नहि होइ ॥ १० ॥
भनई विद्यापति नाहि बिबाद ।
पूरब तोहर सब मन साध ॥ १२ ॥

(२) कहए न होए = कहा नहीं जाता । राहि = राधा । (४) पेम = प्रेम । घरमहि = पसीना । नोर = आँसू । (१२) बिबाद = विवाद, कलह । तोहर = तुम्हारी ।

(२) हे सखी सुन, मुझ से तो कान्ह की दशा वर्णन नहीं की जाती । वह तो राधा राधा रट कर अपने तन मन की सुधि खोये देते हैं ।

(४) हे राधे, श्याम तुम्हारा नाम लेते लेते प्रेम विभोर हो जाते हैं, शरीर रोमांचित हो कर काँपने लगता है, पसीना बह निकलता है और आँसू प्रवाहित होने लगते हैं ।

(६) गद्‌गद् वाणी से नर पुंगव कृष्ण बार-बार यही कहते हैं कि राधे के दर्शन बिना मेरे प्राण निकल जावेंगे ।

(८) हे राधे कृष्ण बारबार यही कहते हैं कि जब मैं राधा का मुख भी नहीं देख पाता हूँ तो भार स्वरूप इस जीवन को धारण करने का प्रयोजन ही क्या है ?

(१०) हे राधे, तुम्हारे अतिरिक्त उनका यहाँ कोई दूसरा नहीं है अर्थात तुम्हारे अतिरिक्त कृष्ण अन्य किसी से प्रेम नहीं करते हैं । वह प्राण पण से इसको भूल जाना चाहते हैं परन्तु भूल नहीं पाते हैं ।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे कृष्ण। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि तुम्हारे मन की साध अवश्य पूरी होगी ।

## ४७

कंटक माझ कुसुम परगास ।
भमर बिकल नहि पावए पास ॥ २ ॥
भमरा भेल घुरए सबे ठाम ।
तोहे बिनु मालति नहि बिसराम ॥ ४ ॥

रसमति मालति पुनु पुनु देखि।
पिअए चाह मधु जीव उपेखि ॥ ६ ॥
उ मधुजीवी तोंओ मधुरासि ।
सांचि धरसि मधु मने न लजासि ॥ ८ ॥
अपनेहु मने गुनि बुझ अवगाहि।
तसु दूषन बध लागत काहि ॥ १० ॥
भनहि विद्यापति तौं पय जीब।
अधर सुधारस जौं पय पीब ॥ १२ ॥

(१) परगास=प्रकाश, प्रकाशित होना, खिलना। पावए=पाता है, जा सकता है। (४) घुरए=घुरे, शब्द करना। उ० डंकन के शोर चहुँ ओर महा घोर घुरे, मानो घनघोर घोरि उठे भुव ओर तें। (सूदन)। उपेख=उपेक्षा कर के। (८) तौंअ=तुम भी। सांचि=संचित करके। लजासि=लज्जित होती हो। (१०) गुनि=गुनो, भली भांति सोचो समझो। अवगाहि=लीन हो कर। (१२) पय=जी सकता है।

(२) हे राधे, तुम्हारे वियोग में व्याकुल माधव की दशा उस भ्रमर के समान हो रही है जो कांटों के बीच खिले हुए पुष्प का रस पान करने को तो व्याकुल हो परन्तु कांटों के भय से उस पुष्प के निकट न जा सकता हो।

(४) हे राधे, तेरा प्रेमी भ्रमर (कृष्ण) तेरे वियोग में चारों ओर आर्तनाद करता फिरता है। हे मालती (राधे) तेरे बिना उसे कहीं भी विश्राम नहीं है।

(६) हे राधे, यौवन रस से पूर्ण तेरी मालती लता के अनुरूप देह को बार बार निहार कर कृष्ण इतने विह्वल हो उठे हैं कि जीवन को सकुशलता की उपेक्षा करके भी तेरे यौवन रस का उपभोग करने के इच्छुक हैं।

(८) और हे राधे, इस में आश्चर्य की क्या बात है। माधव रस लोभी हैं और तुम स्वयं रस की खानि हो। तुमने अटूट यौवन रस का संचय कर रखा है। अटूट संपत्ति की स्वामिनी होने पर भी कण मात्र सम्पत्ति को दान न करने में तुमको लज्जा नहीं आती है।

(१०) हे राधे, अपनी समस्त बुद्धि को काम में लाकर तथा लीन करके इस विषय को तनिक सोचो समझो तो। अमृत रूपी मधु का पान न करा कर माधव के इस प्रकार बध करने का दोष किसके सिर पड़ेगा, इस दोष का भागी कौन होगा?

(१२) विद्यापति कहते हैं कि हे राधे मरणासन्न माधव तभी जीवित रह सकते हैं जब वह तुम्हारे अधरों का सुधा रस पान करें।

## ४८.

आजु हम पेखल कालिन्दी कूले।
तुत्र बिनु माधव बिलुठए धूले ॥ २ ॥
  कत सत रमनि मनहि नहि आने।
  किए विष दाह समय जल दाने ॥ ४ ॥
मदन-भुजंगम दंसल कान।
बिनहि अमिय रस कि करब आन ॥ ६ ॥
  कुलवति धरम काँच समतूल।
  मदन दलाल भेल अनुकूल ॥ ८ ॥
आनल बेचि नीलमनि हार।
से तुहु पहिराब कर अभिसार ॥ १० ॥
  नील निचोल झाँपबि निज देह।
  जनि घन भीतर दामिनि-रेह ॥ १२ ॥
चौदिक चतुर सखी चलु संग।
आजु निकुंज करह रस-रंग ॥ १४ ॥

(२) बिलुठए = लोट रहे थे, विलिष्ठ, अस्तव्यस्त। (४) कत = कितनी। सत = सौ। कत सत = कितनी सौ अर्थात् अनेकों। दाह = ज्वाला, जलन। (६) दंसल = डंस लिया है, काटा है। आन = अन्य। (८) समतूल = समतुल्य, समान, बराबर। (१२) निचोल = चोली। रेह = रेखा। (१४) चौदिक = चतुर्दिश, चारों ओर।

(२) हे राधे, आज हमने माधव को तेरे वियोग में यमुना किनारे धूल में अस्त व्यस्त लोटते देखा।

(४) वैसे तो हे राधे, इस संसार में अनेकों स्त्रियाँ हैं परन्तु माधव के मन में कोई भी नहीं समाती है, क्योंकि विष की ज्वाला के समय जल दान करने से क्या बनता है अर्थात् विष की ज्वाला क्या कहीं पानी से शांत होती है।

(६) हे राधे, कान्ह को तो कामदेव रूपी सर्प ने डंस लिया है इस कारण अमृत (अधरामृत) के अभाव में अन्य उपचार क्या लाभ पहुँचावेंगे।

(८) हे राधे, कुलवती रमणी का धर्म काँच के समान भंजन शील होता है और जब स्वयं कामदेव तेरा पथ प्रदर्शक है तब तुझे चिंता करने की क्या आवश्यकता है।

(१०) हे राधे, अन्य आभूषणों को तज कर केवल अपने नीलमणि जटित हार को पहिन कर प्रियतम से मिलने के लिये गमन कर।

(१२) नीलमणि हार के अतिरिक्त हे राधे, नीली चोली से अपने शरीर को ढक ले। नीली चोली में से तेरी गौर वर्ण उज्ज्वल देह ऐसी झलकती है मानो मेघों में विद्युत कौंद रही हो।

(१४) चारों ओर से चतुर सुरसिक सखियों से घिर कर हे राधे, आज निकुंजों में चलो और वहाँ जाकर रास रंग मनाओ।

(४६)

आज पेखल नन्द-किसोर ।
केलि-बिलास सबहु अब तेजल
अह निसि रहल विभोर ॥ २ ॥
जब धरि चकित बिलोकि बिपिन-तट
पलटि आओलि मुख मोरि।
तबधरि मदनमोहन तरु कानन
लुटइ धीरज पुनि छोरि ॥ ४ ॥
पुनु फिरि सोइ नयन जदि हेरबि
पाओव चेतन नाह।
भुजंगिनि दसि पुनहि जदि दंसए
तबहि समय बिष जाह ॥ ६ ॥
अब सुभ खन धनि मनिमय भूषन
भूषित तनु अनुपाम ।
अभिसरु वल्लभ हृदय विराजहु
जनि मनि कांचन दाम ॥ ८ ॥

(२) तेजल = तज कर। (४) जबधरि = जब से। लुटइ = लोटते हैं। (६) पाओव = पावेंगे। नाह = नाथ, कृष्ण। जाह = जाता है। (८) खन = क्षण। अभिसरु = अभिसार करो। दाम = धागा, डोरी, रस्सी।

(२) हे राधे आज मैंने नंद नंदन को देखा। केलि विलास सब को तज कर अब तो वह तेरे प्रेम में रात दिन विभोर रहते हैं।

(४) हे राधे जिस समय से तुम वृंदा विपिन में अपने विस्मृत नेत्रों से मोहन को देख कर और मुख फेर कर,चली आई हो उसी समय से मन मोहन उसी वृक्ष के तले अपने समस्त धैर्य को खो कर धूल में लोट रहे हैं।

(६) हे राधे, यदि तुम फिर उसी दृष्टि से उनको जाकर निहारो तभी कृष्ण को सुध होगी। क्योंकि यह बात सर्व विदित है यदि किसी व्यक्ति को डस कर फिर वही सर्पिणी उसी व्यक्ति को पुनः डसे तो उसके दंश के विष का उसी समय नाश हो जाता है।

(८) अतः हे राधे शुभ घड़ी में अपने रत्न जड़े आभूषणों से अपनी सुन्दर देह को सज्जित करके अभिसार करो अर्थात् मिलन स्थान पर प्रीतम से जाकर मिलो। और हे राधे, अभिसार करने जाकर अपने प्राण वल्लभ के हृदय में उसी प्रकार समा जाओ जैसे सुवर्ण के धागे में मणियों की माला पिरो दो जाती है।

## ५०

प्रथम सिरिफल गरब गमओलह
जौं गुन गाहक आबे।
गेल जौवन पुनु पलटि न आबए
केवल रह पछताबे ॥ २ ॥
सुन्दरि, वचन करह समधाने।
तोहि सनि नारि दिवस दस अछलिहुँ
ऐसन उपजु मोहि भाने ॥ ४ ॥
जौवन रूप ताबेधरि छाजत
जाबे मदन अधिकारी।
दिन दस गेले सखि सेहओ पराएत
सकल जगत परिचारी ॥ ६ ॥
विद्यापति कह जुवति लाख लह
पड़ल पयोधर तूले।
दिन दिन आगे सखि ऐसनि होएबह
घोसिनि घोर क मूले ॥ ८ ॥

(२) सिरिफल = श्री फल, कुच । गमश्रोलह = गंवा दिया । जौं = जब तक। आवे = आता है । गेल = गया हुआ । आबए = आयेगा । (४) समधाने = समाधान कर, सोच विचार कर । सनि = समान । अछलिहूँ = मैंभी थी। भनि = अनुमान। (६) ताबेधरि = तब तक । छाजत = शोभता है । जाबे = जब तक । गेले = व्यतीत होने पर । सेहश्रो = वह भी । पराएत = पलायित होना, भाग जाना । परिचारी = परिचित है, जानता है । (८) लाख लह = लख ले, देख ले । तूले = तराजू पर है । ऐसनि = ऐसी । होएबह = हो जाओगी । घोसिनि = ग्वालिनि । घोर = घोल, मठा । क = का । मूले = मूल्य ।

(२) हे सुन्दरी तेरे कुचों की शोभा ने श्रीफल की सुन्दरता का गर्व खंडित कर दिया है अर्थात वह श्री फल से भी सुन्दर है और इसी कारण इस गुण के ग्राहक इस अनुपम वस्तु के ग्राहक इसे लेने को आतुर हो रहे हैं । हे सुन्दरी यह भी याद रख कि गया यौवन फिर पलट कर नहीं आता है, समय बीत जाने पर केवल हाथ मलने के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता है ।

(४) हे सुन्दरी, समझ बूझ कर बात करो मुझे ऐसा भान होता है कि मैने तुम जैसी सुन्दरी बहुत दिनों से नहीं देखी है ।

(६) हे सुन्दरी जिस समय तेरे शरीर का राजा अर्थात तेरे शरीर पर आधिपत्य जमाने वाला अगर कामदेव तेरे शरीर को छोड़ कर चला जायेगा तो तेरे शरीर का रूप यौवन छीनने लगेगा अर्थात कम होने लगेगा है । और हे सुन्दरी यह भी तुझे पता होगा कि यह भी अर्थात कामदेव भी कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर शरीर को छोड़ कर चला जाता है । इस तथ्य से समस्त संसार परिचित है, अर्थात सभी इस बात को जानते हैं ।

(८) कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दरी तू स्वयं इस बात को देख समझ ले, तेरा निर्णय इस समय पयोधर रूपी संसार में झूल रहा है, अर्थात अनुकूल निर्णय करने से जीवन बनता है और विपरीत से जीवन नाश । हे सुन्दरी जैसे जैसे तेरे यौवन के दिन बीतते जायेंगे तो उसकी कान्ति भी क्षीण होती जायेगी और एक दिन ऐसा आयेगा कि तेरे यौवन का मूल्य घोसित के मट्ठे के बराबर भी नहीं रहेगा, अर्थात तुच्छ वस्तु से भी तुच्छ हो जायेगा ।

## ५१

ए धनि कमलिनि सुन हितवानि ।
प्रेम करबि जब सुपुरुष जानि ॥ २ ॥
सुजन क प्रेम हेम समतूल ।
दहइत कनक दिगुन होय मूल ॥ ४ ॥
टुटइत नहिं टुट प्रेम अद्भूत ।
जइसन बढ़ए मृनाल क सूत ॥ ६ ॥
सबहु मतंगज मोति नहिं मानि ।
सकल कंठ नहिं कोइल—बानि ॥ ८ ॥
सकल समय नहिं रीतु बसन्त ।
सकल पुरुष-नारि नहिं गुनवन्त ॥ १० ॥
भनई विद्यापति सुन बर नारि ।
प्रेम क रीत अब बुझह बिचारि ॥ १२ ॥

(२) कमलनि=कमल जाति की, पद्मिनि । बानि=बात । (४) सुजन=सु+जन, सज्जन । हेम=सुवर्ण । समतूल=समतुल्य, समान । मूल=मूल्य । (६) बढ़ए=बढ़ता है । (८) मतंगज=मतंग, गजराज । मोति=मोती, मुक्ता बानि=बोली, स्वर । (१०) रीतु=ऋतु ।

(२) हे राधे, हे पद्मिनि, तनिक तो अपने हित की बात सुनो । हे राधे, सत्य बात तो यह है कि जब प्रेम करना हो तो सुपात्र ही से करना ।

(४) सज्जन पुरुष का प्रेम हे राधे सुवर्ण के समान निर्मल और काँतिमान होता है । जिस प्रकार अग्नि में जलाने के पश्चात् सुवर्ण कंचन बन कर दुगने मूल्य पर बिकता है उसी प्रकार विरहाग्नि में जलने के पश्चात् सज्जनों का प्रेम भी द्विगुणित हो जाता है ।

(६) हे राधे, सज्जनों के प्रेम की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि भंग करने की चेष्टा करने पर भी वह टूटता नहीं है । जिस प्रकार कमल नाल को तोड़ने से उसके सूत्र बढ़ते जाते हैं उसी प्रकार सज्जनों के प्रेम को भंग करने की चेष्टा करने पर उसका विस्तार बढ़ने लगता है ।

(८) हे राधे, यह बात भी भली प्रकार समझ लो कि न प्रत्येक गजराज के मस्तक में गज मोती होता है और न प्रत्येक कंठ से कोकिला की सी सुमधुर स्वर लहरी ही निकलती है ।

(११) इसके अतिरिक्त हे राधे, न तमाम वर्ष वसंत ऋतु का ही आधिपत्य रहता है और न संसार के सभी स्त्री पुरुष गुणवन्त होते हैं।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुचतुर बाले, इस कारण भली भांति सोच विचार करके ही प्रेम रीति का आश्रय ग्रहण करो।

## राधा की दूती

### (५२)

सुनु मनमोहन कि कहब तोय।
मुगुधिनि रमनी तुअ लागि रोय ॥ २ ॥
निसिदिन जागि जपय तुअ नाम।
थर-थर काँपि पड़ए सोइ ठाम ॥ ४ ॥
जामिनि आध अधिक जब होइ।
बिगलित लाज उठए तब रोइ ॥ ६ ॥
सखिगन जन परबोधय जाय।
तापिनि ताप ततहिं तत ताय ॥ ८ ॥
कह कवि सेखर ताक उपाय।
रचइत तबहि रचिन बहि जाय ॥ १० ॥

(२) मुगुधिनि = मुग्धा, प्रेमासक्ता। लागि = लिये। (६) जामिनि = यामिनी, रात्रि। बिगलित = छोड़ कर, रहित होकर। (८ जत = जितना। परबोधय = प्रबोध करती है, समझाती है। तापिनि = तपी हुई, जली हुई। ताप = विरहाग्नि। ततहिं तत = उतना ही उतना। ताय = तपती है। (१०) ताक = उसका। रचइत = रचना करती है। रयनि = रैनि, रात्रि। बहि जाय = बह जाती है, व्यतीत हो जाती है।

(२) हे मन मोहन, सुनो, मैं तुमसे राधा की दशा क्या वर्णन करूँ। तुम्हारे प्रेम में मुग्ध वह राधा तुम्हारे लिये रोती है।

(४) हे मन मोहन, वह तो रात दिन निरंतर तुम्हारा ही नाम जपती रहती है और यदि प्रेमावेश के कारण अपने स्थान से उठने की चेष्टा करती है तो कृशगात होने के कारण थर थर काँप कर उसी स्थान पर गिर पड़ती है।

(६) तुम्हारी राह देखते देखते हे मन मोहन जब रात्रि आधी से अधिक व्यतीत हो जाती है तब लज्जा को छोड़ कर वह बाला अधीर हो रो उठती है।

(८) मोहन, तुम्हारे प्रेम में उसकी दशा ऐसी विचित्र हो गई है कि जितना ही सखियां उसको समझाती हैं उतना ही उतना विरह ज्वाला से जली हुई वह बाला विरहाग्नि से और भी अधिकाधिक जलती है।

(१०) कवि शेखर विद्यापति कहते हैं कि हे मोहन जब तक सखियां प्रेमाग्नि को शांत करने का उपाय रचती हैं तब तक रात्रि व्यतीत हो जाती है।

५३

माधव कि कहब से विपरीत
तनु भेल जर जर भामिनि अन्तर
चित बाढ़ल तसु प्रीत ॥ २ ॥
निरस कमल मुख कर अवलम्बइ
सखि माझ बइसलि गोइ।
नयन क नीर थीर नहि बाँधइ
पंक कयल महि रोइ ॥ ४ ॥
मरम क बोल, बयन नहि बोलय
तनु भेल कुहुससि खीना।
अवनि उपर धनि उठए न पारइ
धएलि भुजा धरि दीना ॥ ६ ॥
तपत कनक जानि काजर भेल तनु
अति भेल विरह हुतासे।
कवि विद्यापति मन अभिलासत
कान्हु चलह तसु पासे ॥ ८ ॥

(२) भेल = हो गया है। अन्तर = हृदय में। (४) निरस = नीरस, रसहीन, उदास। अवलम्बइ = अवलम्बन कर के, सहारा दे कर। गोइ = छुपा कर। पंक = कीचड़, गीला। कयल = करके। (६) बोल = भाव, अभिप्राय। कुहु = वह अमावस्या जिसमें चन्द्रमा न दिखाई दे। ससि = शशि, चन्द्रमा। खीना = क्षीण। धएलि = धर कर, पकड़ कर। दीना = दीन अवस्था वाली। (८) तपत = तप्त। जानि = जनि, समान। काजर = काला। हुतासे = हुताशन, अग्नि। अभिलासत = अभिलाषा करती है। पासे = पास, निकट।

(३) हे माधव तुम से यह विचित्र बात किस प्रकार कहूँ। हे माधव यद्यपि उस बाला का शरीर विरह से जर्जर हो गया है परन्तु उसके हृदय में तुम्हारे प्रति प्रेम बढ़ गया है। शरीर जर्जर होता जाता है परन्तु प्रीति बढ़ती जाती है। यही तो उस बाला की विचित्रिता है।

(४) अपने उदास मुरझाये से मुख को हाथ के सहारे टिका कर वह बाला सखियों के बीच मुख छुपा कर बैठ जाती है। उसके नेत्रों से आँसुओं का तार टूटता ही नहीं है और उसके रुदन करने से आस-पास की सारी पृथ्वी गीली हो गई है।

(६) इतना होने पर भी हे माधव, वह बाला अपने हृदय के भावों को किसी के सम्मुख प्रकट नहीं करती है। तुम्हारे विरह में उस बाला का शरीर अमावस्या के चंद्रमा के समान क्षीण हो गया है। तुम्हारे विरह में हे माधव वह बाला इतनी कृश हो गई है कि पृथ्वी से स्वयं उठ भी नहीं सकती है। उस दीन बाला को सखियाँ भुजा पकड़ कर पृथ्वी पर से उठाती हैं।

(८) तपाये हुए सुवर्ण के समान उस बाला की देह विरहाग्नि से जल कर काजल के समान काली हो गई है। कवि विद्यापति के मन में केवल यही अभिलाषा है कि कान्ह उस बाला के पास चल कर उसकी विरह व्यथा को दूर करें।

## ५४

लोटइ धरनि, धरनि धरि सोइ।
खने खन साँस खने खन रोइ॥ २॥
 खने खन मुरछइ कंठ परान।
 इथि पर की गति दैव से जान॥ ४॥
हे हरि पेखलौं से बर नारि।
न जीवइ बिनु कर परस तोहारि॥ ६॥
 केओ केओ जपय बेद दिठि जानि।
 केओ नव ग्रह पुज जोतिअ आनि॥ ८॥
केओ केओ कर धरि धातु बिचारि।
बिरह-बिखिन कोइ लखए न पारि॥ १०॥

(४) मुरछइ = मूर्च्छित हो जाती है। इथि = इसके। पर = पश्चात। से = उसे (६) पेखलौं = मैंने देखा है। जीवइ = जियेगी, जीवित रहेगी। (८) केओ = कोई। जपय = जाप करती है। दिठि = दृष्टि, नज़र। जोतिअ = ज्योतिषी। आनि = ले आ कर, बुला कर। (१०) धातु = नाड़ी। खिखिन = विक्षीण, क्षीण। लखए न-परि = लख नहीं सकता, देख नहीं पाता।

(२) हे माधव, तुम्हारे विरह में वह बाला कभी तो विषाद की मूर्ति बन कर पृथ्वी पर लोटने लगती है और कभी वह पृथ्वी पर वैसे ही बैठी रह जाती है। क्षण क्षण में वह बाला उसासें लेती हैं और दूसरे ही क्षण उच्च स्वर से रो उठती है।

(४) क्षण-क्षण में वह बाला मूर्छित हो जाती है और उसके प्राण कंठ तक आ जाते हैं अर्थात् वह मृतप्राय हो जाती है। इसके पश्चात बाला की क्या दशा होगी उसे केवल दैव ही जानता है।

(६) हे हरि, मैंने स्वयं उस श्रेष्ठ बाला को देखा है। हे माधव यह निश्चय है कि बिना तुम्हारे कर-स्पर्श के वह बाला जीवित नहीं रहेगी।

(८) बाला की इस दयनीय अवस्था को देख कोई सखी तो नज़र गुज़र का फेर समझ कर वेद पाठ (जप) करती है तथा जप कराती है और कोई ज्योतिषी को बुला कर नव ग्रहों की शांति के लिये पूजन कराती है।

(१०) कोई सखी उक्त बाला की नाड़ी पकड़ कर उसके रोग का पता लगाने की चेष्टा करती है परन्तु इस बात को कोई नहीं देख पाती कि बाला की यह दशा विरह के कारण है।

इसी प्रसंग को लेकर बिहारीलाल ने भी अनेकों अनूठी उक्तियाँ लिखी हैं। एक बिहारीलाल ही क्या मध्य रीति कालीन कवियों का तो यह सबसे प्रिय विषय रहा है। उनका मन जितना नायिका के विरह वर्णन में लगा है उतना और किसी प्रसंग में नहीं लगा है। रीति कालीन साहित्य विरह वर्णन से भरा पड़ा है। उदाहरण के लिये बिहारीलाल के दो दोहे उद्धृत किये जाते हैं :—

अजरयो आग वियोग की बह्यौ विलोचन नीर।
आठों जाम हियो रहै उठयो उसास शरीर ॥ १ ॥
ध्यान आनि ढिग प्रान पति मुदित रहति दिन राति।
पल कंपित पुलकति पलक पलक पसीजति जाति ॥ २ ॥

श्री सूरदास तो इस विषय के विशेषज्ञ हैं। उनका भ्रमर गीत ऐसे चित्रों से भरा पड़ा है। उनके द्वारा चित्रित राधा और गोपियों का विरह वर्णन संसार के साहित्य में एक दम अनूठा है। उनके सभी चित्र समान रूप से सुन्दर हैं इस कारण उनमें से दो चार को चुनना बहुत कठिन है।

५५

अबिरल नयन गरए जलधार।
नबजल बिंदु सहए के पार ॥ २ ॥
कि कहब सजनी तकर कहिनी।
कहए न पारिअ देखलि जहिनी ॥ ४ ॥
कुच-जुग ऊपर आनन हेरु।
चाँद राहु डर चढ़ल सुमेरु ॥ ६ ॥
अनिल अनल बम मलयज बीख।
जेहु छल सीतल सेहु भेल तीख ॥ ८ ॥
चाँद सतावए सविता हु जीनि।
नहि जीवन एकमत भेल तीनि ॥ १० ॥
किछु उपचार मान नहिं आन।
ताहि बेआधि भेषज पंचवान ॥ १२ ॥
तुअ दरसन बिनु तिलओ न जीब।
जइओ कलामति पीउख पीब ॥ १४ ॥

(२) गरए = गिरती है। (४) तकर = उसकी। कहिनी = कहानी। जहिनी = जैसी। (६) आनन = मुख, उ० आनन है अरविन्द न फूल्यो अलीगन फूले कहाँ मंडरात है। (सूर) (८) अनिल = वायु, पवन। अनल = अग्नि। बम = वमन करता है, उगलता है। मलयज = चंदन। बीख = विष। छल = थे। सेहु = वह भी। (१०) हु = से। जीनि = अधिक। एक मत भेल = एक मत हो गये। (१२) बेआधि = व्याधि, रोग। भेषज = दवा, निदान। तिलओ = तिल मात्र क्षण मात्र। जीब = जीवित रहेगी। जइओ = जब तक।

(२) हे माधव, तुम्हारे विरह में उस बाला के नयनों से निरंतर अश्रु वर्षा होती रहती है। बाला के नेत्रों से गिरने वाली नवीन जल की बूँदों अर्थात् अश्रुओं का कोई भी पार नहीं पा सकता।

निस दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहत पावस ऋतु हम पर जब तें श्याम सिधारे ॥ सूर

(४) हे सखी, मैं उस बाला की कहानी क्या कहूँ। मैंने उसे जिस दशा में देखा है वह वर्णन नहीं की जा सकती है।

(६) उस बाला के दोनों कुचों के ऊपर स्थित उदास तथा भयभीत मुख ऐसा प्रतीत होता है मानो राहु के भय से चंद्रमा सुमेरु पर्वत पर जा चढ़ा हो।

(८) तुम्हारे विरह में हे माधव उस बाला को शीतल वायु अग्नि की ज्वाला के समान लगती है और शरीर पर लगा चंदन मानो विष उगलता है। तुम्हारे विपरीत हो जाने से उस बाला के लिये समस्त सृष्टि ही विरोधी हो गई है। जो वस्तुऐं पहिले शीतल लगती थीं वही अब तीक्ष्ण लगती हैं।

(१०) चंद्रमा की शीतल किरणें उस बाला को अब सूर्य से भी अधिक दाहती हैं। वायु चंदन और चंद्रमा के एक मत हो जाने से उस बाला का जीवन धारण करना ही कठिन हो गया है।

(१२) हे माधव, कामदेव के पंचवाणों के लगने से उत्पन्न हुई व्याधि का इस संसार में न कोई उपचार है और न इस रोग की कोई औषधि ही है।

(१४) हे माधव, तुम्हारे दर्शन बिना वह बाला क्षण मात्र भी जीवित नहीं रहेगी। जब तक वह बाला तुम्हारे मुख चंद्र के अमृत का पान नहीं करेगी उस समय तक इसकी यही दशा रहेगी।

श्री सूरदास ने भी इसी भाव को लेकर एक अति सुन्दर पद रचा है।

बिनु गोपाल बैरिन भई कुँजैं।
तब यह लता लगत अति शीतल अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं ॥
वृथा बहित जमुना खग बोलत वृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार सँजीवन दधि सुत किरन भानु भईं भुंजैं ॥
ए, ऊधो, कहियो माधव सों विरह कदन करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियां भईं बरन ज्यौं गुंजैं ॥

५६

लाखे तरुअर कोटिहि लता
जुबति कत न लेख।

सब फूल मधु मधुर नहीं
फूलहु फूल बिसेख ॥ २ ॥
जे फुल भमर निन्दहु सुमर
बासि न बिसरए पार ।
जाहि मधुकर उड़ि उड़ि पड़
सेहे संसार क सार ॥ ४ ॥
सुन्दरि, अबहु बचन सुन
सबे परिहरि तोहि इछ हरि
आपु सराहहि पुन ॥ ६ ॥
तोहरे चिन्ता तोहरे कथा
सेजहु तोहरे चाव ।
सपनहु हरि पुनु पुनु कए
लए उठए तोर नाव ॥ ८ ॥
आलिंगन दए पाछु निहारए
तोहि बिनु सुन कोर ।
अकथ कथा आपु अबथा
नयन तेजए नोर ॥ १० ॥
राहि राही जाहि मुँह सुनि
ततहि अप्पए कान
सिरि सिबसिंघ इ रस जानए
कबि बिद्यापति भान ॥ १२ ॥

(२) लाखे = लाखों । कत = कितनी । बिसेख = विशेष । (४) जे = जिस । निन्दहु = नींद में भी । सुमर = स्मरण करता है । पड़ = बैठता है । सेहे = वही । सार = सार्थक । (६) इछ = इच्छा करती है । आपु = अपनी । (८) पुन = पुनः बार बार । कए = कहती है । नाव = नाम । (१०) सुन = शून्य । अबथा = अवस्था । (१२) राहि = राधा । राही = पथिक, यात्री । अप्पए = अर्पण करती है ।

(२) हे माधव, इस संसार में लाखों वृक्ष हैं और करोड़ों लताएँ हैं और संसार में इतनी युवतियाँ हैं जिनकी कोई गिनती नहीं । परन्तु हे माधव, यह

जान लो कि सभी फूलों में मधुर रस नहीं होता है वरन् सहस्रों फूलों में से कोई विशेष फूल ही मधुर रस से युक्त होते हैं।

(४) जिस फूल (राधा) का भ्रमर (माधव) नींद में भी स्मरण करता है, जिसकी सुगन्धि को वह विस्मरण नहीं कर सकता तथा जिस पुष्प पर भ्रमर उड़ उड़ कर पुनः जा बैठता है वही पुष्प इस संसार का सार है अर्थात इस संसार में उसी पुष्प का खिलना तथा जीवन सार्थक है।

(६) हे माधव मेरे वचनों को ध्यान पूर्वक सुनो। वह सुन्दरी बाला संसार की समस्त वस्तुओं को छोड़ कर केवल तुम्हारी ही कामना करती है। इस कारण हे माधव तुम अपने भाग्य की बारम्बार सराहना करो।

(८) हे माधव, उस बाला को केवल तुम्हारी ही चिंता है, केवल तुम्हारी ही कथा सुनने की उसे इच्छा है और शैय्या पर भी केवल तुमसे ही मिलने की उत्कंठा उस बाला के हृदय में रहती है। स्वप्न में भी वह बारम्बार तुम्हारा ही नाम ले उठती है और बार बार "माधव" "माधव" पुकार उठती है।

(१०) हे माधव, आलिंगन में लिये जाने की इच्छा से वह बाला पीछे की ओर निहारती है। तुम्हारे आलिंगन बिना उसकी गोद शून्य है। उस बाला की दीनावस्था ही स्वयं उसकी अकथ कहानी है। उसके नेत्रों से निरंतर अश्रु प्रवाह होता रहता है।

(१२) हे माधव, राधा जिस किसी भी यात्री के मुख से तुम्हारा नाम मात्र सुन लेती है उसी ओर अपने कान लगा देती है। कवि विद्यापति कहते हैं कि महाराजा शिवसिंह इस रस रीति से भली भाँति परिचित हैं।

## ५७

आसायें मन्दिर निसि गमावए
सुख न सूत सँयान ।
जखन जतए जाहि निहारए
ताहि ताहि तोहि भान ।। २ ।।
मालति ! सफल जीबन तोर
तोर बिरहे भुअन भम्मए
भेल मधुकर भोर ।। ४ ।।

जा तकि केवकि कत न आछए
सबहि रस समान
सपनहु नहिं ताहि निहारए
मधू कि करत पान ॥ ६ ॥
बन उपबन कुंज कुटीरहि
सबहि तोहि निरूप ।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरुछए
अइसन प्रेम सरूप ॥ ८ ॥
साहर नबह सउरभ न सह
गुजरि गति न गाब ।
चेतन पापु चिन्ताए आकुल
हरख सबे सोहाब ॥ १० ॥
जकर हिरदय जतहि रतल
से धसि ततही जाए ।
जइओ जतने बाँधि निरोधिअ
निमन नीर थिराए ॥ १२ ॥
ई रस राय सिबसिंघ जानए
कवि बिद्यापति भान ।
रानि लखिमा देइ बल्लभ
सकल गुन निधान ॥ १४ ॥

(२) आसायें = आशा में । गमावए = गंवाती है, व्यतीत करती है । सूत = सोती है । संयान = शयन पर, बिछौने पर । जखन = जिस क्षण, जभी । जतए = जिसे (४) भुअन = भुवन; संसार । भम्मए = भ्रमण करता है । जातकि = पारिजात पुष्प । केतकि = केतकी । कि = क्यों । (१०) साहुर = सहकार, आम्र । नबह = नया, नव कुसुमित । सउरभ = सौरभ, सुगन्ध । गुजरि = गुंजार कर के गाब = गाता है । चेतन = चैतन्य, जीव । पापु = पापी । हरख = हर्ष, आनन्द । सोहाब = सुहाता है । (१२) रतल = अनुरक्त । धस = धंस कर, घुस कर । जइओ = यद्यपि । निरोधिअ = निरोध करो, रोक रखो । निमन = निम्न, नीची जगह । थिराय = स्थिर होता है, भर जाता है ।

(२) हे माधव, तुम्हारे मिलन की आशा ही में वह बाला अपने गृह मंदिर में जाग कर रात्रि व्यतीत करती है सुख से शय्या पर शयन तक नहीं करती है। जब जहाँ तथा जिसे भी वह बाला देखती है भ्रमवश उन सबको माधव ही समझ लेती है।

(४) हे मालती (राधे इस संसार में केवल तेरा ही जीवन सार्थक है। तेरे विरह की ज्वाला से व्याकुल हो कर समस्त संसार भ्रमित हो रहा है तथा तेरे ही प्रेम में मधुकर (माधव) प्रेम विभोर हो रहे हैं।

(६) यद्यपि इस संसार में अनेकों पारिजात तथा केतकी पुष्प (अनुपम बालायें) हैं और यद्यपि सभी में समान रूप से मधु उपस्थित है, परन्तु हे बाले तेरा प्रेमी भ्रमर (माधव) स्वप्न में भी उनकी ओर देखता तक नहीं है फिर उनके मधु का क्यों पान करने लगा।

(८) हे राधे तेरा प्रेमी भ्रमर बन उपवन कुंज कुटीर इत्यादि सभी स्थानों में तेरे ही स्वरूप का निरूपण करता फिरता है, तेरे विरह में वह बार बार मूर्च्छित हो जाता है, ऐसा प्रेम स्वरूप तेरा भ्रमर है।

(१०) हे राधे, रसाल की नव कुसुमित मंजरियों की सुगन्ध अब उसे नहीं सुहाती है, उस सुगन्ध से मस्त हो कर अब वह गुंजन करके गीत नहीं गाता है। चिन्ता से व्याकुल पापी मन को तो आनन्द ही में सब कुछ सुहाता है।

(१२) जिस का मन जिस पर अनुरक्त होता है वह वहीं घुस पैठ करता है। चाहे जितने यत्न से मन को बाँध कर रोक रखो वह तो उसी ओर दौड़ पड़ता है बिल्कुल उसी प्रकार जैसे नीचे स्थान में पानी स्वतः ही भर जाता है।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि इस रस रीति को केवल रानी लखिमा देवी के प्राण बल्लभ, समस्त गुणों की खानि महाराजा शिवसिंह ही जानते हैं।

# नोक-झोंक

## ५८.

## नोंक-झोंक

कर धरु करु मोहे, पारे।
देब में अपरुब हारे, कन्हैया ॥ २ ॥
सखि सब तेजि चलि गेली।
न जानू कौन पथ भेली, कन्हैया ॥ ४ ॥
हम न जाएब तुअ पासे।
जाएब औघट घाटे, कन्हैया ॥ ६ ॥
विद्यापति एहो भाने।
गूजरि भजु भगवाने, कन्हैया ॥ ८ ॥

(२) धरु = धर कर। पारे = उस पार। देब = दूँगी। (४) भेली = गई हैं। (६) औघट = अवघट, दुर्गम, जिस घाट से कोई आता जाता न हो। घाट बाट अवघट यमुना तट बातें कहत बनाय, कोऊ ऐसो दान लेत है कौने सिखै पठाय। (सूर)

(२) हे कन्हैया ! मेरा हाथ पकड़ कर मुझे उस पार पहुँचा दो, इस सेवा के पुरस्कार स्वरूप अपनी अनुपम माला तुमको दूँगी।

(४) हे कन्हैया ! मेरे साथ की सब सखियाँ मुझे छोड़ कर चली गई हैं और हे कन्हैया मुझे तो यह भी पता नहीं कि वह सब किस मार्ग से गई हैं।

(६) हे कन्हैया, परंतु मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगी चाहे मुझे तुम्हारे संग औघट घाट ही क्यों न जाना पड़े।

(८) कवि विद्यापति यह कहते हैं कि हे गोपी भगवान का भजन करो उसी की कृपा से तुम्हारा संकट दूर होगा।

इस पद में प्रेमिका के हृदय का बड़ा ही विचित्र दिग्दर्शन है। जहाँ एक एक ओर वह बाला कहती है "हम न जाएब तुअ पासे" तो दूसरी ओर उसके

मुख से निकलता है "जाएब औघट घाटे" अर्थात इस बात का संकेत करती है कि चलो ऐकाँत स्थान में चलकर केलि क्रीड़ा करें। यही नहीं बाला यह भी स्पष्टतया जता देती है कि सखियाँ अनुपस्थित हैं। एक ओर हाँ है और दूसरी ओर नहीं। स्त्री चरित्र की विचित्रता इस पद में भली भाँति दर्शाई गई है।

(५६)

कुंज-भवन सयँ निकसलि रे
रोकल गिरिधारी ।
एकहि नगर बस माधव हे
जनि कर बटमारी ॥२॥
छाड़ू कन्हैया मोर आँचर रे
फाटत नब-सारी ।
अपजस होएत जगत भरि हे
जनि करिअ उघारी ॥४॥
संग क सखि अगुआइलि रे
हम एकसरि नारी ।
दामिनि आए तुलाएल हे
एक राति अँधारी ॥६॥
भनहि विद्यापति गाओल रे
सुनु गुनमति नारी ।
हरि क संग किछु डर नहि हे
तोंहे परम गमारी ॥८॥

(२) निकसलि = निकलते ही। बस = बसते हो। (४) उघारी = नग्न। अगुआइलि = आगे गईं। एकसिर = अकेली। तुलाएल = तुलना, कौंदना। (८) गमारी = गंवारी।

(२) कुंज-भवन से निकलते ही गिरधारी ने मेरा मार्ग रोक लिया। हे माधव, हम तुम दोनों एक ही नगर में बसते हैं अतः इस प्रकार की बटमारी (डाका) न करो।

(४) हे कन्हैया, मेरा आँचल छोड़ दो। तुम्हारे खींचने से मेरी नई साड़ी फटी जाती है। हे माधव, तुम्हारी इस हरकत से समस्त संसार में मेरी बदनामी होती है। अतः हे माधव, मेरी साड़ी खींच कर मुझे नग्न न करो।

(६) मेरे संग की सब सहेलियाँ, हे माधव आगे चली गई हैं और मैं अकेली रह गई हूँ। इसके अतिरिक्त हे माधव रात्रि अंधेरी है, मेघ छा गया है और बिजली भी कौंदने लगी है, इस कारण हे माधव मुझे जाने दो।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे गुनवंती नारी सुन, तू तो बड़ी गंवार है। स्वयं हरि के संग होने पर तुझे कुछ भी भय नहीं करना चाहिये।

## ६०.

तुअ गुन गौरब सील-सोभाव।
सुनि कए चढ़लिहुँ तोहरि नाब ॥ २ ॥
हठ न करिअ कान्हु कर मोहि पार।
सब तहँ बड़ थिक पर-उपकार ॥ ४ ॥
आइलि सखि सब साथ हमार।
से सब भेलि निकहि बिधि पार ॥ ६ ॥
हमरा मेल कान्हु तोहरोअ आस।
जे अँगिरिअ ता न होइअ उदास ॥ ८ ॥
भल मन्द जानि करिअ परिनाम।
जप अपजस दुइ रहल ए ठाम ॥ १० ॥
हम अबला कत कहब अनेक।
आइति पड़ले बुझिअ बिबेक ॥ १२ ॥
तोहँ पर नागर हम पर नारि।
काँप हृदय तुअ प्रकृति विचारि ॥ १४ ॥
भनई बिद्यापति गावे।
राजा सिबसिंघ रूपनारायन इ रस सकल से पावे ॥१६॥

(२) तुअ = तुम्हारे। कए = कर। (४) तहँ = से। बड़ = बड़ा, उत्तम। थिक = है। (६) निकहि = निकल गई। निधि = भली प्रकार। (८) अँगिरिअ = अंगीकार करो, स्वीकार करो। ता = उससे। उदास = उदासीन। (१२) आइति पड़ले = अवसर पड़ने पर। बुझिअ = परख करो।

(२) हे माधव, तुम्हारे शील स्वभाव तथा गुण गौरव के वर्णन को सुनकरही मैं तुम्हारी नाव पर चढ़ी हूँ।

(४) इसलिये हे माधव, हठ न करो और मुझे शीघ्र ही पार उतार दो क्योंकि संसार का सर्वोत्तम धर्म है पर उपकार करना।

(६) हे माधव, जो भी सखियाँ मेरे साथ आई थीं वह सब भली प्रकार पार उतर गई हैं।

(८) हे कान्ह मुझे तो केवल एक तुम्हारी ही आशा है। यदि मुझे अंगीकार करते हो तो मेरी ओर से उदासीन न होना।

(१०) हे माधव, यश अपयश को प्रथक करने तथा अन्तर बताने वाली रेखा अति सूक्ष्म होती है। दोनों एक ही स्थान पर निवास करते हैं इस कारण भाग्य को इस क्षण मन्द जान कर मैं तुमको प्रणाम करती हूँ।

(१२) प्रत्येक व्यक्ति हम को अबला बताता है परंतु हे माधव इतना तो हम भी जानती हैं कि ज्ञान तथा विवेक की परीक्षा केवल अवसर पड़ने पर ही होती है।

(१४) हे माधव, मैं तुम्हारे लिए पर नारी हूँ और तुम मेरे लिए पर पुरुष हो अतः तुम्हारी प्रकृति, तुम्हारे स्वभाव पर विचार करते ही मेरा हृदय काँपने लगता है।

(१६) कवि विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिंह रूपनारायण समस्त रस रीति को भली प्रकार जानते हैं।

## ६१

नाव डोलाव अहीरे
जिबइत न पाओब तीरे
खर नीरे लो।
खेवा न लेअए मोले
हँसि हँसि की दहु बोले
जिब डोले लो ॥२॥
किए बिके ऐलिहु आपे
बढ़ेलिहु मोहि बड़ सापे
मोरे पापे लो ॥

करितहुँ पर—उपहासे
परिलिहुँ तन्हि बिधि-फाँसे
नहि आसे लो ।।४।।
न बूझसि अबुझ गोआरी
भजि रहु देव मुरारी
नहिं गारी लो
कवि विद्यापति भाने
नृप सिबसिंघ रस जाने
नव कान्हे लो ।।६।।

(२) हे अहीर (कृष्ण) तू तो नाव को बहुत अधिक हिला डुला रहा है इसी से तो नाव किनारे नहीं लगती है और जल धारा भी तो कितनी प्रखर है। हे कान्ह खेवा कोई तुमने मोल तो ले नहीं लिया है, राधा की इस उक्ति पर दोनों परस्पर हास परिहास करने लगे और इस रीति से दोनों के मन डोलने लगे तो अर्थात मन प्रसन्न हो गये।

(४) क्या मैं तुम्हारे हाथ बिक गयी हूँ और अपने इस कार्य के लिए मेरा श्राप न लो। हे कान्ह जो पर उपहास करता है उसको विधाता किसी न किसी प्रकार फाँस लेता है अर्थात दुख देता है।

(६) अबूझ गोरी, जान बूझकर अनजान बनती हुई गोरी (राधे) कान्ह की इस रस रीति को नहीं समझ सकी और कृष्ण मुरारी के नाम मात्र का ही जाप करती रही। कवि विद्यापति कहते हैं कि इस रास को राजा शिव सिंह ही जानते हैं।

# सखी-शिक्षा

## राधा को शिक्षा

### ६२

प्रथमहि अलक तिलक लेब साजि ।
चंचल लोचन काजर आँजि ॥ २॥
जाएब बसन आँग लेब गोए।
दूरहि रहब तें अरथित होए ॥ ४ ॥
मोरि बोलब सखि रहब लजाए।
कुटिल नयन देब मदन जगाए॥ ६ ॥
झाँपब कुच दरसाओब आध ।
खन खन सुदृढ़ करब निवि-बाँध ॥७॥
मान करए किछु दरसब भाव।
रस राखब तें पुनु पुनु आव॥ १० ॥
हम कि सिखाओबि अओ रस-रंग ।
अपनहि गुरु भए कहत अनंग॥ १२॥
भनई बिद्यापति ई रस गाव ।
नागरि कामिनि भाव बुझाव ॥ १४ ॥

(२) अलक = केश । लेब = लो, लेना । (४) आँग = अंग । अरथित = अर्थी, याचक, इच्छा रखने वाला । (६) मोरि = मोड़ कर । (१२) अओ = ऐसा ।

( २ ) हे राधे प्रियतम से मिलने जाने से पहिले अपने केशों और मस्तक के तिलक को भली प्रकार सजा लेना और अपने चंचल नेत्रों में काजल आँज लेना ।

( ४ ) जाते समय वस्त्रों से अपने अंगों को भली प्रकार ढाँक लेना और हे राधे जो चाहक हो अर्थात इच्छा रखने वाला तथा प्रार्थी हो उस व्यक्ति से सदैव दूर ही रहना ।

( ६ ) हे राधे, मोहन से मुख मोड़ कर बातें करना और बार बार लज्जा का भाव प्रदर्शित करना। अवसर देख कर अपने तिरछे कटाक्षों से प्रियतम के मन में कामदेव को जाग्रित कर देना।

( ८) अपने कुचों को ढके रखना और कभी कभी झलक मात्र दिखा भर देना, और हे राधे क्षण क्षण पश्चात अपने नीवी-बंधन को कसने का प्रयत्न करना।

( १० ) इसके अतिरिक्त हे राधे, मान करने का भी कुछ भाव प्रकट करना। इस प्रकार रस रीति को नियंत्रित रखने से रस रीति में और भी अधिक वृद्धि होती है।

( १२ ) हे सखी, हमें ऐसे रस रंग की शिक्षा क्या देती हो। इस संबंध में तो हमारा गुरु वह महात्मा हैं जो स्वयं कामदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं।

( १४ ) कवि विद्यापति कहते हैं कि यह चतुर बाला रस रीति के इस भाव से भली प्रकार परिचित है।

## ६३

प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख।
जिब जोखे नागर दे दस लाख ॥ २ ॥
केओ दे हास सुधा सम नीक।
जइसन परहोंक तइसन बीक ॥ ४ ॥
सुनु सुन्दरि नब मदन-पसार।
जनि गोपह आओब बनिजार ॥ ६ ॥
रोस दरस रस राखब गोए।
धएले रतन अधिक मूल होए ॥ ८ ॥
भलहि न हृदय बुझाओब नाह।
आरति गाहक महँग बेसाह ॥ १० ॥
भनइ विद्यापति सुनहु सयानि।
सुहित बचन राखब हिय आनि ॥ १२ ॥

( २ ) जिब = जिसके। जोखे = जोंख कर, तौल कर, मूल्य स्वरूप।

(४) केओ = किसी, कोई। परहौक = बोहनी। बीक = बिक्री। (६) पसार = प्रसार विस्तार, फैलाव। गोपह = गुप्त रखो। बनिजार = बनजारा, व्योपारी। (८) दरस = दरसाना, प्रकट करना। रस = प्रेम। धएले = धरे हुए। मूल = मूल्य। (१०) भलहि = भली प्रकार। आरति = अरि गरज़मन्द। बेसाह = ख़रीदता है, क्रय करता है। उ० भरत कि राउर पूत न होहीं, आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीं। (तुलसी।) (१२) सुहित = सुहृद्, मित्र।

( २ ) हे सुन्दरी, सब से पहिले कुटिल कटाक्ष करना जिसके मूल्य स्वरूप तुम्हारा प्रेमी नागर दस लाख प्राणों को तौल कर देगा अर्थात सहस्रों प्राणों से तुम पर निछावर हो जायेगा।

(४) हे सुन्दरी, किसी पुरुष को अपनी अमृत मयी मुस्कान के दर्शन देना तथा किसी की ओर देख भर लेना। क्योंकि यह सत्य है कि जैसी बोहनी होती है वैसी ही बिक्री भी होती है। ऐसा व्यापारियों का विश्वास है। शुभ लक्षणों के प्रकट होने से कार्य अवश्य सिद्ध होता है।

(६) हे सुन्दरी सुन, कामदेव के नवीन प्रसार अर्थात अपने नव यौवन को छुपाने की चेष्टा न कर। क्यों कि नगर में अद्भुत यौवन पारखी तथा व्यापारी आया हुआ है।

(८) हे सुन्दरी, पारखी व्यापारी के सन्मुख होने पर रोष को प्रकट करते हुये अपने प्रेम को छुपाये रखना क्यों कि धरे हुए रत्न का मूल्य सदैव अधिक होता है।

( १० ) हे सुन्दरी अपने प्राणनाथ को अपने हृदय की प्रेम भावना से परिचित न होने देना वरन् उनको और भी अधिक आतुर होने देना क्योंकि गरज़मन्द ग्राहक सदैव ही वस्तुओं को अधिक मूल्य पर ख़रीदता है।

( १२ ) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुचतुरे सुन और अपने सुहृद् मित्र की बात को गाँठ बाँध ले।

## ६४

सुनु सुनु ए सखि बचन बिसेस।
आजु हम देब तोहे उपदेस॥ २॥
पहिलहि बैठबि सयनक-सीम।
हेरइत पिया मुख मोड़बि गीम॥ ४॥

परसइत दुहु कर बारबि पानि ।
मौन रहबि बहु करइत बानि ॥ ६ ॥
जब हम सोंपब करे कर आपि ।
साधस धरबि उलटि मोहे कांपि ॥ ८ ॥
बिद्यापति कत इह रस ठाठ ।
भए गुरु काम सिखाओब पाठ ॥१०॥

( ४ ) समनक = शैय्या की । सीम = सीमा, एक ओर । गीम = गरदन । (६) परसइत = स्पर्श करते ही । बारिब = वारण करना, मना करना । पहु = प्रीतम, प्रभु । बानि = बातचीत । (८) करे = कर में, हाथ में । आपि = अर्पण करके । साधस = संभ्रम, भय से । उलटि = उलट कर । (१०) ठाठ = रीति ।

( २ ) हे सखी मेरे बचनों को सुन । आज मैं तुझे उपदेश देती हूँ ।

(४) हे सखी, जब तुम प्रीतम से मिलने जाओ तो सर्व प्रथम तुम शय्या के एक ओर अर्थात एक किनारे बैठना और जब प्रीतम तुम्हारे मुख को देखने की चेष्टा करें तो अपनी गरदन दूसरी ओर को मोड़ लेना ।

(६) जब प्रीतम तुम्हारा अंग स्पर्श करने लगें तब दोनों हाथों से उनकी इस चेष्टा को रोकना तथा सक्रिय विरोध करना और जब प्रीतम तुमसे वार्तालाप करने लगें तो मौन धारण कर लेना ।

( ८ ) हे सखी, जब मैं उनके हाथों में तुम्हारे हाथ को अर्पण करके तुम्हें उनको सौंपूँ तो तुम संभ्रम तथा भयभीत हो कर काँपते हुए पलट कर मुझे पकड़ लेना ।

( १० ) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी रस रीति के इस पाठ को स्वयँ कामदेव ने गुरु बन कर मुझे सिखाया है ।

## ६५

परिहरि, ए सखि, तोहे परनाम ।
हम नहि जाएब से पिआ-ठाम ॥ २ ॥
बचन-चातुरि हम किछु नहि जान ।
इंगित न बूझिए न जानिए,मान ॥ ४ ॥

सहचरि मिली बनावए भेस ।
बाँधए न जानिए अप्पन केस ॥ ६ ॥
कशु नहि सुनिए सुरत क बात ।
कइसे मिलब हम माधव साथ ॥ ८ ॥
से वर नागर रसिक सुजान ।
हम अबला अति अलप गेआन ॥ १० ॥
बिद्यापति कह कि बोलब तोए ।
आजुक मीलल समुचित होए ॥ १२ ॥

( २ ) नह = नहीं । (४) इंगित = इशारा । (६) अप्पन = अपने । (८) सुनिए = सुनी है (१०) से = वह । अलय = अल्प । गेआन = ज्ञान (१२) तोए = तुझे, तुमको । आजुक = आज का । मीलल = मिलना, मिलन । समुचित = यथेष्ठ, उपयुक्त ।

( २ ) हे सखी, इन बातों को छोड़ो, मैं तुमको प्रणाम करती हूँ । मैं प्रीतम के पास नहीं जाऊँगी ।

( ४ ) न तो मुझे बातें बनाना तथा वाक्य चातुरी ही आती है और न मैं संकेत ही समझती हूँ। यही नहीं है सखी मैं तो मान करना भी नहीं जानती हूँ ।

( ६ ) रही सजने तथा शृंगार करने की बात सो मेरा शृंगार तो मेरी सखी सहेलियाँ ही करती हैं मुझे तो स्वयँ अपने केश बाँधने भी नहीं आते हैं ।

( ८ ) हे सखी मैंने तो कभी काम क्रीड़ा की बातें तक नहीं सुनी हैं अतः मैं किस प्रकार माधव से मिलू ।

( १० ) हे सखी माधव तो चतुर नागर तथा रसिक शिरोमणि हैं तथा मैं अबला अल्प बुद्धि वाली हूँ । मेरा उन से किस प्रकार मिलन हो सकता है।

( १२ ) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले मैं तुमसे कहता हूँ कि कुछ ऐसा प्रबन्ध करो कि तुम्हारा और माधव का आज का मिलन यथेष्ठ तथा सर्वथा उपयुक्त हो।

६६

काहे डरसि सखि चलु हम संग।
माधव नहिं परसब तुअ अंग ॥ २ ॥
इह रजनी फुल कानन माझ।
के एक फिरत साजि बहु साज ॥ ४ ॥
कुसुम क घोर धनुष धरि पानि।
मारत सर बाला जनजानि ॥ ६ ॥
अतए चलह सखि भीतर कुंज।
जहाँ रह हरी महाबल पुंज ॥ ८ ॥
एत कहि आनल उ धरि हरि पास।
पूरल बल्लभ सुख—अभिलास ॥ १० ॥

(४) फुल कानन = पुष्प बन। माझ = मध्य। एक = अकेले। (८) अतए = अतएव; इसलिये। हरी = हरि, माधव। महापुंज = महा बल शाली (१०) एत = इतना। आनल = लाई। पूरल = पूर्ण हुआ। बल्लभ = प्रियतम, विद्यापति का उपनाम।

(२) हे सखी, तू भयभीत क्यों होती है, हम भी तो तेरे साथ चल रही हैं। माधव तुम्हारे अंग का स्पर्श नहीं करेंगे।

(४) ऐसी रात्रि में, पुष्प बन में इस तरह नाना प्रकार के श्रृंगार करके कौन बाला अकेली घूमती है।

(६) हे सखी, क्या तुझे मालूम नहीं कि फूलों का कठोर धनुष धारण करके धनुर्धर कामदेव बाला स्त्रियों को खोज खोज कर बाण मारता है।

(८) अतएव हे सखी कुंज में चलो वहाँ महा बलशाली माधव तुमको काम देव के तीक्ष्ण बाणों की चोट से बचावेंगे।

(१०) इतना कह सुन कर सखियाँ बाला को माधव के पास लाईं और इस प्रकार प्रीतम (विद्यापति) की सुख अभिलाषा पूर्ण हुई।

६७

परिहर मन किछु न कर तरास।
साधस नहिं कर चल पिय पास ॥ २ ॥
दुर कर दुरमति कहलम तोए।
बिनु दुख सूख कबहु नहि होए ॥ ४ ॥
तिल आध दूख जनम भरि सूख।
इथे लागि धनि किए होइ बिमूख ॥ ६ ॥
तिला एक मूनि रहु दु नयान।
रोगि करए जइसे औषध पान ॥ ८ ॥
चल चल सुन्दरि करह सिंगार।
बिद्यापति कह एहि से बिचार ॥ १० ॥

(२) तरास = त्रास, भय। (४) दुर = दूर। कहलम = मैं कहती हूँ। तोए = तुझ से। (६) तिल आध = आधे क्षण। होई = होती है। बिमूख = विमुख, विरत। (८) तिला = तिल, क्षण। मूनि = मूँद कर, बन्द करके। (१०) एहि से = यही ही।

(२) हे सखी, संशय को त्याग, कुछ भी भय न कर और निर्भर होकर मेरे साथ प्रीतम के पास चल।

(४) हे सखी, ना समझी को दूरकर, मैं तुझ से कहती हूँ कि इस संसार में बिना दुख के सुख कभी नहीं प्राप्त होता है।

(६) हे सखी दुख तो केवल आधे क्षण का है परन्तु सुख सारे जीवन का है इस कारण हे बाले तू इससे विमुख क्यों होती है।

(८) हे सखी, क्षण भर के लिए अपने दोनों नेत्रों को बंद कर लेना और दुख को इस प्रकार सहन कर लेना जिस प्रकार कोई रोगी कड़वी दवा को पीता है।

(१०) अतः हे सखी, हे सुन्दरी चल और शृंगार कर। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले इस संबंध में मेरा भी यही विचार है।

# श्री कृष्ण को शिक्षा

६८

हमे दरसइत कतहुं बेस करु
हमे हेरइत तनु झाँप।
सुरति सिंगारि आज धनि आओलि
परसइत थर थर काँप॥ २॥
सुनु हे कान्हु कहिये अवधारि
सकल काज हम बुझल बुझाएल
न बुझल अन्तर नारि॥ ४॥
अभिनव काम नाम पुनु सुनइत
रोखत गुन दरसाइ।
अरि सम गंजए मन पुनु रंजए
अपन मनोरथ साइ॥ ६॥
अन्तर जीउ अधिक करि मानए
बाहर न गन तरासे।
कह कवि-सेखर सहज विषयरत
बिदगधि केलि बिलासे॥ ८॥

(२) दरसइत = दर्शन देकर, दिखा कर। कतहुँ = कितना ही। बेस = वेश भूषा, शृंगार। (४) अवधारि = निश्चय करके। (६) अभिनव = नवीन, नया। रोखत = रोष करती है। गुन = कला, चोचले, नखरे। गंजए = गंजना करती है, तिरस्कार करती है। उ० रस सिंगार मंजन किये, कंजन भंजन दैन; अंजन रंजन हूँ बिना खंजन गंजन नैन। (बिहारी) (८) तरासे = त्रास के कारण।

(२) हे कान्ह आज उस बाला ने स्वयं मुझे दिखा कर कितना ही शृंगार किया परंतु मेरे देखते ही देखते उसने अपना शरीर वस्त्रों से छुपा लिया। शृंगा करके उस बाला ने यह भाव प्रकट किया कि वह अभिसार के लिये उत्सुक थी परन्तु लज्जा वश प्रकट रूप से आने का उसको साहस नहीं था वरन वह छुप कर ऐकान्त में आने की इच्छुक थी। इस भाव को उसने अपने शरीर को वस्त्रों से ढक कर प्रकट किया। हे कृष्ण मनमाना शृंगार किये हुए परन्तु भय से थरथर काँपती हुई वह बाला आज केलि क्रीड़ा के लिये आ रही है।

(४) हे कृष्ण सुनो, मैं निश्चय पूर्वक कहती हूँ कि हमने उस बाला को केलि क्रीड़ा (काज तथा प्रयोजन) के संबंध में भली भांति समझा बुझा दिया है परन्तु तो भी स्त्री के मन की बात कोई भी समझ नहीं पाता है। स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जाना कुत्यो मनुष्या।

(६) हे कान्ह क्योंकि वह बाला काम क्रीड़ा के क्षेत्र में एक दम नवीन है अतः काम क्रीड़ा का नाम सुनते ही नख़रे दिखा कर रोष प्रकट करती है। हे कान्ह, वह तो काम क्रीड़ा को शत्रु समान मान कर हम सब सखियों की ताड़ना करती है। परन्तु सत्य तो यह है कि वह इस प्रसंग को सुन कर मन ही मन प्रसन्न होती है और अपने मनोरथ को पूर्ण होते देख मन ही मन फूली नहीं समाती है।

(८) हे कान्ह वह बाला तो बड़ी विचित्र है। हृदय से तो वह तुम्हें अपने प्राणों से भी अधिक चाहती है परन्तु भय के कारण अपने प्रेम को प्रकट नहीं करती है। कवि शेखर (विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि केलि विलास में चतुर वह बाला तो स्वभावतयः ही केलि प्रिय है।

## ६६

सुन सुन सुन्दर कन्हाई। तोहे सोंपल धनि राई॥ २ ॥
कमलिनि कोमल कलेबर। तुहु से भूखल मधुकर॥ ४ ॥
सहज करबि मधुपान। भूलह जनि पँचबान॥ ६ ॥
परबोधि पयोधर परसिह। कुंजर जनि सरोरुह॥ ८ ॥
गनइत मोतिम हारा। छले परसब कुच भारा॥ १० ॥
न बुझए रति-रसरंग। खन अनुमति खन भंग॥ १२ ॥
सिरिस-कुसुम जिनि तनु। थोरि सहब फुलधनु॥ १४ ॥
विद्यापति कवि गाब। दूति क मिनति तुए पाब॥ १६ ॥

(४) भूखल = भूखा। (८) परबोधि = प्रबोध करके, समझा कर। (१०) गनइत = गिनते हुए। छले = छल से। (१२) बुझए = जानती है। (१४) जिनि = समान। (१६) मिनति = विनति, विनती करती हैं, प्रार्थना करती है। पाब = पैर, चरण।

(२) हे श्याम सुन्दर सुनो, मैं इस अनुपम बाला (राधा) को तुम्हें सौंपती हूँ।

(४) हे कान्ह इस बाला का शरीर कमल के समान कोमल है और तुम केलि क्रीड़ा के लिए अति आतुर भूखे भ्रमर के समान हो रहे हो।

(६) अतः हे कान्ह बड़े धैर्य से इस बाला का रस पान करो। परंतु हे कान्ह, इस रसक्रीड़ा करते समय कामदेव को उत्तेजित करना भूल न जाना। प्रथम बाला में काम उत्तेजित करना तत्पश्चात् रस केलि में संलग्न न हो।

(८) हे कान्ह सर्व प्रथम आतुरता से नहीं वरन समझा बुझा कर तब बाला के कुचों का स्पर्श करना। जिस प्रकार मस्त हाथी कमल कोरकों को रौंद डालता है उस प्रकार कुचों को दलना मलना नहीं।

(१०) हे कान्ह, गले में पड़ी मोतियों की माला के मोतियों को गिनते हुए छल से बाला के उत्तुंग कुचों का स्पर्श करना ऐकाऐकी भूल कर भी नहीं।

(१२) हे कान्ह अभी वह बाला केलि क्रीड़ा के रस रंग से परिचित नहीं है, काम क्रीड़ा से मिलने वाले अपूर्व सुख से अभी बाला परिचित नहीं है, इसी कारण उत्सुकता वश क्षण भर में राज़ी हो जाती है परन्तु भय से दूसरे ही क्षण केलि क्रीड़ा में भाग लेने से मना कर देती है।

(१४) शिरीष पुष्प के समान हे कान्ह उस बाला का शरीर कोमल है और इस कारण कामदेव के पुष्प धनुष का भार सहने में असमर्थ है।

(१६) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे कान्ह मैं तुम्हारे पाँव पकड़ कर तुमसे विनय करती हूँ कि इस बाला के साथ इसी प्रकार से व्यवहार करना।

## ७०.

प्रथम समागम भुखल अनङ्ग।
धनि बल जानि करय रतिरङ्ग ॥२॥
हठ करब अति आरति पाए।
बड़हु भुखल नहिं दुहु कर खाए ॥४॥
चेतन कान्हु तोंहहि अति आथि।
के नहि जान महत नव हाथि ॥ ६ ॥
तुअ गुन गन कहि कत अनुबोधि।
पहिलहि सबहि हललि परबोध ॥ ८ ॥

हठ नहिं करब रती परिपाटि ।
कोमल कामिनि बिघटति साटि ॥ १० ॥
जावे रभस सह ताबे बिलास
बिर्माति बुझिअ जयँ न जाएब पास ॥ १२ ॥
धसि परिहरि नहि धरविए बाहु ।
उगिलल चाँद गिलए जनि राहु ॥ १४ ॥
भनइ बिद्यापति कोमल काँति ।
कौसल सिरिस सुमन अलि भाँति ॥ १६ ॥

(४) पाए = पा कर । (६) चेतन = चैतन्य, चतुर । आथि = आस्ति, हो । कै = क्या । महत = महावत । हाथि = हाथी । (८) अनुबोधि = समझा बुझा कर, स्मरण करा कर । हललि = लाई हूँ । (१०) रति = रति क्रीड़ा । परिपाटि = परिपाटी, ढंग । बिघटति = बिघटित, नष्ट प्राय । साटि = शास्ति; दंड, पीड़ा । बिघटति साटि = शास्ति घटेगी, पीड़ा होगी । (१२) जावे = जितना । रभस = प्रेमोत्साह, काम क्रीड़ा । सह = सहन करे । तावे = उतना । बिमति = गैर राज़ी । जयँ = यदि । (१४) गिलए = निगल जाता है ।

(२) बाला के संग प्रथम समागम होने की उत्सुकता में हे कान्ह तुम्हारी कामोत्तेजना बड़ी प्रबल हो रही होगी और तुम क्षुधित की भाँति बड़ी आतुरता से अवसर की प्रतीक्षा कर रहे होंगे । परन्तु हे कान्ह, आतुर होने पर भी बाला से बलात्कार न करना और बल पूर्वक केलि क्रीड़ा न करना ।

(४) हे कान्ह, बाला को व्याकुल जान कर हठ न करना । यह तो निश्चित है कि तुम समागम के लिये भूखे व्यक्ति की भाँति आतुर हो रहे हो परतु हे कान्ह यह तो सभी जानते हैं कि बहुत भूखे होने पर भी कोई दोनों हाथों से भोजन नहीं करने लगता है ।

(६) हे कान्ह तुम तो स्वयं चतुर हो । क्या चतुर महावत नये फँसाये हाथी को सधाना भी नहीं जानता है ।

(८) हे कान्ह, तुम्हारे गुणों का बखान करके, तुम्हारे यश का उसे स्मरण करा कर तथा पहिले ही से उससे सब बातें प्रकट करके तब उस बाला को तुम्हारे पास लाई हूँ ।

(१०) हे कान्ह, समागम के समय केलि क्रीड़ा के ढंग तथा काम प्रसंग की विशेषताओं पर हठ न करना क्योंकि बाला का शरीर अत्यन्त कोमल है। अतः केलि क्रीड़ा में उसे पीड़ा होगी।

(१२) हे कान्ह, जितनी काम क्रीड़ा वह बाला सहन कर सके उतना ही विलास करना और यदि वह केलि के लिये सहमत न हो तो उसके पास न जाना।

(१४) हे कान्ह, एक बार केलि क्रीड़ा करके छोड़ देने के पश्चात पुनः धंस कर (आगे बढ़ कर) उसकी बांह न पकड़ना। जिस प्रकार अपने मुख से उगल कर राहु चंद्रमा को पुनः नहीं ग्रसता है उसी प्रकार तुम उस बाला को एक बार छोड़ कर पुनः न पकड़ना।

(१६) विद्यापति कहते हैं कि हे कान्ह वह बाला अत्यंत कोमलांगी है। इसलिये जिस प्रकार भौंरा बड़े कौशल से शिरीष पुष्प का मकरंद पान करता है उसी प्रकार तुम भी बाला के साथ रति क्रीड़ा करना।

## ७१

बुझब छयलपन आज।
राहि मनि रतने आनलि अति जतने।
बँचि सब रमनि समाज ॥ २ ॥
सिरिस कुसुम जनि अति सुकुमार धनि
आलिगब दृढ़ अनुरागे।
निर्भय करब केलि केहि नहि बूझे गेलि
भौंरभरे माँजरि न माँगे ॥ ४ ॥
पिरीतिक बोलि नियरे बइसाओब
नख हनि आनब कोल।
नहि नहि कर धनि कपट भुलब जनु
यदि कह कातर बोल ॥ ६ ॥

छयलपन = छैलापन, रसिकता। मनि = मणि। आनलि = लाई हूँ। बँचि = बंचना करके, छल करके। (४) केहि = किसे। भरे = भार से। मँजरि = मँजरी। माँगे = भग्न होती है, टूटती है। (६) पिरीतिक = प्रीति पूर्वक। बइसाओब =

बैठावो। हनि = हनन करके, क्षत विक्षत करके। आनब = बैठा लेना। कोल = कोर, गोद।

(२) हे कान्ह, आज तुम्हारी रसिकता की परीक्षा होगी। समस्त स्त्री समाज को धोखा देकर रत्नों में मणि के समान राधा को बड़े यत्न से तुम्हारे पास लाई हूँ।

(४) हे कान्ह, राधा शिरीष पुष्प के समान अति कोमलांगी नहीं है इस कारण बड़े प्रेम से उसका आलिंगन करना। हे कान्ह, तुम निर्भय होकर राधा के साथ केलि क्रीड़ा करना क्योंकि इसे कौन नहीं जानता है कि भ्रमरों के शरीर के भार से कोमल मंजरी टूटती नहीं है। अतः हे कान्ह तुम निर्भय होकर अपना कार्य करना।

(६) हे कान्ह, पहिले प्रीति पूर्वक वचन बोल कर राधा को अपने पास बिठा लेना और फिर नखों से उसके कुचों को क्षत विक्षत करके उसे गोद में बिठा लेना। तुम्हारी इन चेष्टाओं पर यदि वह बाला "नहीं" "नहीं" करे तथा दीन वचन कह कर छोड़ देने की प्रार्थना करे तो भी हे कान्ह उसके दीन वचनों से भुलावे में न आ जाना वरन् निर्भयता पूर्वक केलि क्रीड़ा करना।

# मिलन

## मिलन

### ७२

सुन्दरि चललिहु पहु घर ना।
चहुदिसि सखि सब कर धर ना ॥ २ ॥
आइतहु लागु परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु डर ना ॥ ४ ॥
जाइ तहि हार टुटिए गेल ना।
भूखन बसन मलिन भेल ना ॥ ६ ॥
रोए रोए काजर दहाए देल ना।
अदकँहि सिंदुर मेटाए देल ना ॥ ८ ॥
भनइ बिद्यापति गाओल ना।
दुख सहि सहि सुख पाओल ना ॥ १० ॥

(२) चललिहु = चलो। धर = पकड़ कर।(४) भूखन = भूषण, आभूषण। (८) अदकँहि = आतंक से ,डर से।

(२) हे सुन्दरी प्रीतम के घर चल। चारों ओर से सखियाँ बाला को पकड़ कर ले चलीं।

(४) प्रीतम के पास जाने में वह सुन्दरी भय से ऐसे काँपने लगी जैसे राहु के डर से चंद्रमा काँपता है।

(६) रास्ते में जाते हुए बाला के गले का हार टूट गया और भूषण बसन सब अस्त व्यस्त हो गये।

(८) बाला ने रो-रो कर अपना सारा काजल धो बहाया और भय से पसीना आने के कारण उसके मस्तक पर लगा सिंदूर बिंदु मिट गया।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी बिना दुख पाये कभी सुख नहीं मिलता है।

७३

कौतुक चललि भवन कए सजनि गे
सँग दस चौदिस नारि ।
बिच बिच सोभित सुन्दरि सजनि गे
जेहि घर मिलत मुरारि ॥ २ ॥
लए अभरन कए षोड़स सजनि गे
पहिर उतिम रँग चीर ।
देखि सकल मन उपजल सजनि गे
मुनिहुक चित नहि थीर ॥ ४ ॥
नील बसन तन घेरलि सजनि गे
सिर लेल घोंघट सारि ।
लग लग पहु के चलइत सजनि गे
सकुचल अंकम नारि ॥ ६ ॥
सखि सब देल भवन कए सजनि गे
घुरि आइलि सभ नारि ।
कर धए लेल पहु लग कए सजनि गे
हेरए बसन उघारि ॥ ८
भए बर सनमुख बोलइ सजनि गे
करे लागल सविलास ।
नव रस रीति पिरीत भेल सजनि गे
दुहु मन परम हुलास ॥ १० ॥
बिद्यापति कबि गाओल सजनि गे
ई थिक नब रस रीति ।
बयस जुगल समुचित थिक सजनि गे
दुहु मन परस पिरीति ॥ १२ ॥

( २ ) कौतुक = कुतूहल युक्त हो कर, प्रसन्नता पूर्वक । चौदिस = चतुर्दिशि चारों ओर । (४) उतिम = उत्तम । चीर = साड़ी । थीर = स्थिरता, धैर्य (६) लेल = लिया । घोंघट = घूँघट । सारि = संभाल कर । लग = निकट । अंकम = हृदय (८) देल भवन काए = भवन काए देल, घर में ला रखा । घुरि = पलट कर । सभ = सब । (१०) भए = होकर । करे लागल = करने लगे । (१२) ई = यह । थिक = अस्ति, है । जुगल = युगल, दोनों की । समुचित = उचित ।

(२) सजनी प्रसन्नता पूर्वक प्रीतम के घर को चली और चारों ओर अनेकों सखियाँ उसको घेर कर चलीं । सखियों के मध्य में बाला सुशोभित थी और सब उसे मुरारि के घर की ओर ले चलीं ।

(४) उस समय बाला आभूषणों से लदी और सोलहों श्रृंगार किये हुई थी तथा अति सुंदर साड़ी धारण किये हुए थी । बाला की उस समय की अपूर्व छटा को देखकर ऋषियों मुनियों के चित्त भी स्थिर न रह सके और उनके मन में भी मदन का संचार होने लगा ।

(६) उस समय बाला नीली साड़ी पहिने थी और उसने घूँघट काढ़ रखा था । प्रियतम के निकट जाने में बाला का हृदय भय तथा लज्जा से सकुच रहा था ।

(८) सब सखियों ने मिल कर उस बाला को प्रीतम के भवन में ला रखा अर्थात पहुँचा दिया और उसे वहाँ पहुँचा कर सब सखियाँ पलट आईं । सखियों के चले जाने पर प्रीतम उस बाला को हाथ पकड़ कर अपने पास ले आये और उसके अँचल को हटा कर उसके मुख चंद्र का दर्शन करने लगे ।

(१०) प्रीतम बाला के सन्मुख होकर उससे बोले और फिर काम क्रीड़ा में लग गए । क्योंकि दोनों प्रिया और प्रीतम की नई उमंगें थी और दोनों में नई प्रीति की रीति जाग्रति हुई थी इस कारण दोनों के मन परम प्रसन्न थे ।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि नवीन प्रीति की यही रीति है । दोनों की समान अवस्था होने के कारण दोनों के हृदयों में परम कोटि की प्रीति का उत्पन्न होना उचित ही है ।

## ७४

अहे सखि अहे सखि लए जनि जाह।
हम अति बालिक आकुल नाह ॥ २ ॥
गोट गोट सखि सब गेलि बहराय ।
बजर किवाड़ पहु देलन्हि लगाय ॥४॥
तेहि अवसर पहु जागल कन्त।
चीर सँभारलि जिउ भेल अन्त ॥ ६ ॥
नहि नहि करए नयन ढर नोर।
काँच कमल भमरा झिकझोर ॥ ८॥
जइसे डगमग नलनि क नीर।
तइसे डगमग धनि क ससीर ॥ १० ॥
भन विद्यापति सुनु कविराज ।
आगि जारि पुनि आगि क काज ॥ १२ ॥

(२) लए जाह = ले जावो। बालिक = बालिका। आकुल = व्याकुल, कामातुर। (४) गोट = एक। बहराय = बाहर गईं। बजर = वज्र, कठोर। देलन्हि दिया। (६) पहु = प्रभु, यहाँ कामदेव से आशय है। सँभारलि = सँवारा, हटाने की चेष्टा की। जिउ भेल अंत = प्राण निकल गये। (१०) नलनि क = कमल के पत्ते का।

(२) हे सखी, हे सखी ! मैं तुमसे विनती करती हूँ कि मुझे प्रीतम के पास न ले चलो। हे सखी मैं तो अभी बालिका हूँ पूर्ण यौवन प्राप्त नहीं हूँ और प्रियतम अत्यंत कामातुर हो रहे हैं।

(४) एक एक करके सब सखियाँ बहाना बना बना कर बाहर निकल गईं और प्रीतम ने एकाँत देख कर कमरे के वज्र के समान भारी किवाड़ बंद कर लिए।

(६) इसी अंतर में प्रीतम के हृदय में काम जाग्रत हो गया और उनके वस्त्र हटाने की चेष्टा करते ही ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेरे प्राण निकल गये हों।

(८) मैं तो केवल नेत्रों से अश्रु वर्षा करके मुख से "नहीं", "नहीं" कहने लगी परंतु प्रीतम ने मुझे आलिंगन पाश में बाँधकर ऐसा विवश कर दिया जिस

प्रकार कोई भ्रमर अधखिली कली को झिंझोड़ डालता है।

(१०) कमल के पत्ते पर पड़ी पानी की बूँद जिस प्रकार पवन से चंचल गति रहती है उसी प्रकार प्रीतम की काम चेष्टा से बाला का शरीर काँपने लगा।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे कविराज सुनो आग यद्यपि जलाई जाती है तो भी फिर आग की आवश्यकता होती है।

७५.

कत अनुनय, अनुगत अनुबोधि।
पति-गृह सखिन्हि सुताओलि बोधि ॥२॥
विमुखि सुतलि धनि समुखि न होए।
भागल दल बहुलाबए कोए ॥४॥
बालमु बेसनि विलासिनी छोटि।
मेल न मिलए देलहु हिम कोटि ॥६॥
बसन झपाए बदन धर गोए।
बादर तर ससि बेकत न होए ॥८॥
भुज-जुग चाँप जीव जौं साँच।
कुच कँचन कोरी फल काँच ॥ १० ॥
लग नहि सरए, करए कसि कोर।
करे कर बारि करहि कर जोर ॥ १२ ॥
एत दिन सैसब लाओल साठ।
अब भए मदन पढ़ाओल पाठ ॥ १४ ॥
गुरु जन परिजन दुअओ नेबार।
मोहर मुदल अछि मदन-भंडार ॥ १६ ॥
भनइ विद्यापति इहो रस भान।
राए सिवसिंघ लखिमा बिरमान ॥ १८ ॥

(२) अनुगत = खुशामद। सुताओल = ला सुलाया। (४) विमुख = दूसरी ओर मुख करके। बहुलाबए = फेरे, वापिस करे। (६) बेसनि = व्यसनी, कामातुर। हिम = हेम, सुवर्ण। (८) गोए = गोप्य, छुपा कर। बादर = बादल।

तार = नीचे (१०) चाँप = दबा कर। जीव = जीव, प्राण पण से। संचि = संचय करती है। कोरी = अछूता, नया। (१२) सरए = सरना, खिसकना, सरकना। कसि = कस ले, बाँध ले। बारि = हटाना। (१४) साठ = साथ। लाओल = निभाया। (१६) नेवार = निवारण करना। आछि = अच्छी तरह, भली प्रकार से। मुदल = मूँदना, बंद करना। बिरमान = बिरमाना, मोहित करना।

(२) मैंने सखियों की कितनी ही विनती की, कितनी ही खुशामद की, कितनी ही समझाया परन्तु तो भी सखियों ने बहला फुसला कर प्रीतम के भवन में ला ही सुलाया।

(४) पति गृह में आकर बाला शय्या पर दूसरी ओर मुँह फेर कर सो गई। जिस प्रकार उठ कर भागती हुई सेना को कोई भी रो कर तथा बहला फुसला कर अथवा कह सुन कर पुनः युद्ध क्षेत्र में शत्रु से सम्मुख खड़ा नहीं कर सकता उसी प्रकार प्रीतम किसी भांति भी बाला का मुख अपनी ओर करने में सफल नहीं हुए।

(६) उस समय प्रीतम तो कामातुर हो रहे थे परन्तु विलास करने वाली बाला छोटी अर्थात अपूर्ण यौवना थी। वयस का अन्तर होने के कारण आभूषणों का लालच देने पर भी दोनों में परस्पर मिलन न हो सका।

(८) उस समल बाला ने वस्त्र से अपने मुख को छुपा लिया। उस समय घूँघट में उसका मुख ऐसा प्रतीत होता था मानो जैसे बदली में चंद्रमा के छुप जाने से उसका बिम्ब प्रकठ रूप से दिखाई नहीं देता है।

(१०) बाला ने प्रीतम की कामर्त्त देखकर अपने कच्चे तथा अछूते फलों के समान सुवर्ण कुचों को अपने दोनों हाथों से दबा लिया और प्राणों के समान उनकी रक्षा करने लगी।

(१२) प्रीतम के बार-बार बुलाने पर भी बाला पास नहीं आती है अतः प्रीतम को चिन्ता है कि किस प्रकार वह बाला को प्रेमालिंगन में बांधे। पास बुलाने की चेष्टा करने पर बाला अपने हाथ से प्रीतम के हाथ को हटा देती है और बार-बार हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती है।

(१४) उस समय बाला मन ही मन सोचती है कि अब तक तो शैशव ने साथ निभाया है परंतु अब तो शैशव के स्थान पर कामदेव मेरा शिक्षक होकर बिलकुल ही नवीन पाठ पढ़ा रहा है।

(१६) शैशव के जाते और प्रीतम से मिलन होते ही गुरुजनों और परिजनों से संबंध टूट सा जाता है और मदन भंडार अर्थात रूप यौवन पर प्रीतम का आधिपत्य हो जाने के कारण मानो प्रीतम के प्रेम की मुहर उस पर लग जाती है।

(१८) कवि विद्यापति कहते हैं कि इस रस रीति को केवल राजा शिवसिंह, जो लखिमा देवी को विमोहित करने वाले हैं, समझते हैं।

## ७६

सखि परबोधि सयन-तल आनि।
पिय हिय हरखि धएल निज पानि॥ २॥
छुबइत बालि मलिन भइ गेलि।
बिधु-कर मलिन कमलनी भेलि॥ ४॥
नहि नहि कहइ नयन झर नोर।
सूति रहलि राहि सयनक ओर॥ ६॥
आलिंगए नीबि-बंध बिन खोरि।
कर कुच परस सेह भेल थोरि॥ ८॥
आचर लेइ बदन पर झाँप।
थिर नहि होअइ थर थर काँप॥ १०॥
भनइ बिद्यापति धीरज सार।
दिन दिन मदन क होय अधिकार॥ १२॥

(२) सयन-तल = शय्या तक। (४) बालि = बाला। बिधु-कर = विधुकर, चंद्रमा। (६) सूति रहलि = सो रही। (८) खोरि = खोला।

(२) सखियाँ बहुत समझा बुझा कर बाला को शय्या के पास लाईं। प्रीतम ने मन में प्रसन्न हो कर बाला के हाथ को अपने हाथ में पकड़ लिया।

(४) प्रीतम के कर स्पर्श होते ही मारे भय के बाला मानो कलाहीन हो गई उसी प्रकार जैसे चंद्रमा की किरणों में कमलिनी की शोभा फीकी हो जाती है।

(६) बाला उस समय मुख से बार बार "नहीं" "नहीं" कह रही थी और उसके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। इस कारण भय तथा लज्जा से व्याकुल होकर नव यौवना राधा शय्या के एक ओर सो रही।

(८) उस समय प्रीतम ने बाला के लहंगे का नीवी-बंध बिना खोले, उसका आलिंगन किया और अपने हाथों से धीरे धीरे उसके कुचों को स्पर्श किया।

(१०) प्रीतम की इस हरकत पर उस बाला ने लज्जा वश अंचल से अपना मुख छुपा लिया उस समय बाला का शरीर थर थर काँप रहा था और चित्त स्थिर नहीं था।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि काम चेष्टा का सार धैर्य है क्योंकि जैसे जैसे वयस बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे बाला के शरीर पर दिन प्रति दिन कामदेव का आधिपत्य बढ़ता जाता है।

७७

प्रथमहि गेलि धनि प्रीतम पास।
हृदय अधिक भेल लाज तरास॥ २॥
ठाढ़ि भेलन्हि धनि अंगो न डोले।
हेम-सूरति सयँ मुखहु न बोले॥ ४॥
कर दुहु धए पहु पास बइसाए।
रूसल छलि धनि बदन सुखाए॥ ६॥
मुख हेरि ताकए भमर झाँपि लेल।
अंकम भरि कँ कमल मुखि लेल॥ ८॥
भनइ बिद्यापति दह इ सुमति मति।
रस बूझ हिन्दूपति हिन्दूपति॥ १०॥

(२) गेलि = ले गई। (४) ठाढ़ि = खड़ी। भेलन्हि = हुई। सयँ = समान। (६) बइसाए = बिठाया। रूसल छलि = रूठी हुई थी। (८) भमर = भ्रमर, (कृष्ण)। (१०) दह = दे दो।

(२) सखियाँ बाला को पहिले ही पहल प्रीतम के पास ले गईं। प्रथम मिलन होने के कारण बाला के हृदय में लज्जा तथा भय समाया हुआ था।

(४) जिस समय बाला प्रीतम के पास खड़ी हुई तो निर्जीव सुवर्ण प्रतिमा के समान न तो उसके अंग हिल डुल रहे थे और न उसके मुख से शब्द ही निकलते थे।

(६) प्रीतम ने बाला के दोनों हाथ पकड़ कर उसे अपने पास बैठाया परंतु क्यों कि बाला रूठी हुई थी इस कारण उसने अपना शरीर सिकोड़ लिया।

(८) भ्रमर कृष्ण द्वारा अपना मुख भली भाँति देखे जाने पर बाला ने उसे आँचल से छुपा लिया। परन्तु ज्यों ही बाला ने अपना मुख छुपाया कि अवसर पाकर प्रीतम कृष्ण ने उसे गोद में ले लिया।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुमति अब प्रीतम को अपनी अनुमति दो अर्थात उनकी प्रणय भिक्षा की प्रार्थना को स्वीकार करो। इस रस रीति को हिंदू कुल भूषण राजा शिवसिंह भली भाँति समझते हैं।

७८

जतने आएलि धनि सयन क सीम।
पाँगुर लिखि खिति नत रहु गीम ॥ २ ॥
सखि हे, पिया पास बैठिल राहि।
कुटिल भौंह करि हेरइछि काहि ॥ ४ ॥
नवि बर नारि पहिल पिया मेलि।
अनुनय करइत रात आध गेलि ।६।
कर धरि बालमु बइसाओल कोर।
एक पए कह धनि नहि नहि बोल ॥ ८ ॥
कोर करइत मोड़इ सब अंग।
प्रबोध न मानु, जनि बाल भुजंग ॥१०॥
भनइ बिद्यापति नागरि रामा।
अन्तर दाहिन बाहर बामा ॥ १२ ॥

(२) जतने = यत्न से। पाँगुर = पैर की उँगली। खिति = क्षिति, पृथ्वी। (४) हेरइछि = देखती है। (६) नवि = नवीना। मेलि = मिली, भेंट हुई। (१०) प्रबोध = आश्वासन, दिलासा, तसल्ली। (१२) अंतर = हृदय से। दाहिन = अनुकूल —उ० बार बार बिनवों नँद लाला, मो पै दाहिन होहु कृपाला (सूर) बामा = प्रतिकूल।

(२) बड़े यत्न से वह बाला शय्या के समीप आई। परंतु उस समय वह अपने पैर की उँगली से पृथ्वी को कुरेद रही थी और अपनी गरदन नीचे किए हुए थी।

(४) हे सखी, उस समय प्रीतम ने राधा को अपने पास बैठा लिया। हे सखी राधे, तू अपनी भौंह को तिरछा करके क्रोध पूर्वक मुद्रा से हमें क्यों देखती है।

(६) क्योंकि नवीना सुन्दरी बाला की प्रीतम से प्रथम भेंट हुई है इस कारण अनुनय विनय करते तथा मनाते आधी रात्रि व्यतीत हो गई।

(८) प्रीतम ने हाथ पकड़ कर बाला को गोद में बैठा लिया परन्तु बाला तो बस बार बार "नहीं" "नहीं" ही कहती रही।

(१०) गोदी में बैठते ही बाला अपने अंगों को ऐंठती है अर्थात् भाव भंगी दिखाती है और आश्वासन दिये जाने पर भी नहीं मानती है। उसकी भाव भंगी तथा अंगों के ऐंठने की क्रिया काले सर्प के बच्चे के लहराने के समान प्रतीत होती थी।

(१२) विद्यापति कहते हैं कि बाला परम रसिक तथा चतुर है, हृदय से तो वह प्रीतम की चेष्टाओं के अनुकूल है परंतु बाहर से ऊपरी मन से बार बार अपने को प्रतिकूल दिखाती है।

प्रियतमा की "नाहीं" का वर्णन प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों ने किया है परन्तु दूलह कवि ( रचना काल सं. १८००-१८२५ वि० ) ने तो मानों प्रियतमा की नाहीं की साक्षात तस्वीर इस कवित्त में उतार दी है।

धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं, पाँय
दियो पलिकाही "नाहीं" "नाहीं" कै सुहाई हौ।
बोलत में नाहीं, पट खोलत में नाहीं, कवि
दूलह उछाही लाख भाँतिन लहाई हौ॥
चुंबन में नाहीं, परिरंभन में नाहीं, सब
आसन बिलासन में नाहीं ठीक ठाई हौ।
मेलि गलबाहीं, केलि कीन्ही चितचाही, यह
"हाँ" ते भली "नाहीं" कहाँ तें सीखि आई हौ।

कविवर बिहारी लाल भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं हैं। ज़रा उनका दोहरा भी देखिये।

जदपि नाहिं नाहीं नहीं, बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हाँसी भरिनु, हाँ सीयै ठहराति॥

७६

अधर मँगइते अश्रौंध कर माथ।
सहए न पार पयोधर हाथ॥ २॥
बिघटल नीबी कर धर जाँति।
अँकुरल मदन, धरए कत भाँति॥ ४॥
कोमल कामिनि नागर नाह।
कश्रोन परि होएत केलि निरबाह॥ ६॥
कुच-कोरक तब कर गहि लेल।
काँच बदरि अरुनिम रुचि भेल॥ ८॥
लाबए चाहिश्र नखर बिसेख।
भौंहनि आबए चाँद क रेख॥ १०॥
तसु मुख सौं लोभे रहु हेरि।
चाँद भपाब बसन कत बेरि॥ १२॥

(२) अश्रौंध = औंधा, नीचा। (४) बिघटल = विघटित, खुली हुई। जाँति = चाँपकर, दबा कर। अँकुरल = अँकुरित, पैदा हुआ। भाँति = आकार। (६) कश्रोन परि = किस प्रकार। (८) बदरि = बैर। रुचि = छटा। (१०) नखर = नख की रेखा। बिसेख = सुंदर। चाँद क रेख = चंद्र की रेखा, टेढ़ा पन। (१२) तसु = उसका। बेरि = दफ़ा।

(२) प्रीतम से एकाँत में मिलने पर बाला की अवस्था बड़ी विचित्र हो गई। प्रीतम द्वारा ओठों के चुंबन की अनुमति माँगने पर बाला ने अपना शिर झुका लिया ताकि प्रीतम बल पूर्वक उसके ओठों का चुंबन न कर सकें। इतना ही नहीं वरन प्रीतम का कुचों पर हाथ रखना भी वह सहन नहीं कर सकती थी।

(४) प्रीतम द्वारा खोले गये नीवी-बंध को बाला ने बल पूर्वक हाथ से दबा लिया। कदाचित बाला को यह भय था कि प्रीतम के मन में उत्पन्न काम न जाने क्या स्वरूप धारण कर ले।

(६) बाला तो अति कोमल है परंतु प्रीतम पूर्ण युवा तथा चतुर है, ऐसी परिस्थिति में केलि-क्रीड़ा किस प्रकार हो सकती है।

(८) उसी समय प्रियतम ने कुचाग्रों को अपने हाथों में पकड़ लिया। प्रियतम द्वारा मसले जाने पर कच्चे बेर फल के समान छोटे छोटे कुचों पर लाल रंग की अनुपम छटा फैल गई।

(१०) जब प्रियतम ने कुचों पर नख रेखा देनी चाही उस समय बाला की भवें वक्र हो गईं और उसकी मुद्रा क्रोधित हो गई।

(१२) बाला के क्रोधित मुख की सुन्दरता देखने के लोभ से प्रियतम बार बार उसके मुख की ओर देखने लगे और बाला ने प्रीतम की इस चेष्टा से लज्जित होकर अपना मुख चंद्र अंचल से छिपा लिया।

८०

जखन लेल हरि कँचुअ अछोड़ि।
कत परजुगति कएल अंग मोड़ि॥२॥
तखनुक कहिनी कहल न जाय।
लजि सुमुखि धनि रहलि लजाय॥४॥
कर न मिझाए दूर जर दीप।
लाजे न मरए नारि कठजीब॥६॥
अंकम कठिन सहए के पार।
कोमल हृदय उखड़ि गेल हार॥८॥
भनइ विद्यापति तखनुक भान।
कओन कहल सखि होएत बिहान॥१०॥

(२) जखन = जिस + खन, जिस क्षण। कंचुअ = कंचुकी, चोली। अछोड़ि = छुड़ा ली, उतार ली। परजुगति = प्रयुक्ति, उपाय। (४) तखनुक = उस समय की। कहिनी = कहानी। रहलि = रह गई। (६) मिझाए = बुझता है। जर = जलने वाला। कठजीब = कठोर जीवी, कठोर प्राण। (८) अंकम = अंक में भर लेना, आलिंगन कर लेना। उखड़ि गेल = उमड़ आया, निशान पड़ गया। बिहान = प्रातः काल—उ० लसै सेत सारी ढक्यो तरल तर्‌योना कान, पर्‌यो मनौ सुरसरि सलिल रवि प्रतिबिंब बिहान। (बिहारी)।

(२) जिस समय हरि ( कृष्ण, प्रीतम) ने बाला की कंचुकी उतारी तो बाला ने उसकी इस चेष्टा के विरोध स्वरूप अनेकों प्रकार से अपने अङ्गों को मोड़ा और प्रीतम की इच्छा न पूरी होने के लिए अनेकों उपाय किये।

(४) हे सखी, उस समय की कहानी कही नहीं जा सकती है। चंद्रमुखी बाला लज्जा से लजा कर रह गई।

(६) दीपक शय्या से कुछ दूर जल रहा था, बाला ने अपने हाथ से उसे बुझाने की चेष्टा की परंतु दूर होने के कारण दीपक बुझा नहीं। बाला का प्राण भी ऐसा कठोर था कि मारे लज्जा के वह मर भी न गई।

(८) हे सखी, कामातुर प्रीतम के आलिंगन को कौन सह सकता है। इस कारण आलिंगन से बाला के शरीर पर गले में पड़े हार का निशान उभड़ आया।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि केलि प्रसंग में इतना समय व्यतीत हो गया कि किसी को मालूम ही नहीं पड़ा। इतने में किसी सखी ने प्रातः काल होने की सूचना युगल प्रेमियों को दी।

इस पद का छटवाँ चरण बड़ा विचित्र है। इस चरण के भाव के अनुकूल ही कवि-कुल-गुरु कालिदास ने "मेघदूत" में एक पद लिखा है। पद का अनुवाद इस प्रकार है।

नीवी ग्रंथी शिथिल करके वस्त्र प्रेमी छुड़ावे।
मुग्धा प्यारी अरुण अधरा काम क्रीड़ा दिखावे॥
भोली लज्जा विवश तब हो चूर्ण मुष्टी चलावे।
पै होती है विफल मणि का दीप कैसे बुझावे॥

## ८१

ए हरि बले यदि परसबि मोय।
तिरि-बध-पातक लगाये तोय॥
तुहु रस आगर नागर ढीठ।
हम न बूझिए रस तीत कि मीठ॥४॥
इस परसंग उठओ मझु काँप।
बान हरिनि जनि कएलन्हि झाँप॥६॥

असमय आस न पूरए काम ।
भल जन न कर बिरस परिनाम ॥८॥
बिद्यापति कह बुझलँहु साँच ।
फलहु न मीठ होअए काँच ॥१०॥

(२) बले = बल पूर्वक । तिरि = तिरिया, त्रिया, स्त्री । (४) आगर = खान, समूह—उ० जेहि नाम श्रुति कीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी। (तुलसी) । तीत = तिक्त, कड़वा । (६) उठओं = उठते ही । मझु = मैं । झाँप = बेधी जाकर । (८) बिरस = रसहीन । बुझलहुँ = बूझती हूँ, जानती हूँ, समझती हूँ ।

(२) हे कृष्ण यदि तुम बल पूर्वक मेरा स्पर्श करोगे तो स्त्री हत्या का पाप तुम्हें लगेगा ।

(४) हे कृष्ण, तुम तो रस की खान, परम चतुर परंतु ढीठ नागर हो परंतु मुझे तो यह भी नहीं मालूम है कि केलि रस मधुर होता है या कड़वा अर्थात् केलि क्रीड़ा के संबंध में मेरा ज्ञान एक दम शून्य बराबर है ।

(६) हे कृष्ण, केलि क्रीड़ा का प्रसंग उठते ही मैं काँप उठती हूँ जिस प्रकार बाण से बेधी जाने पर हरिणी उछल पड़ती है ।

(८) हे कृष्ण, यह समझ रखो कि कुसमय में चेष्टा करने से न तो आशा ही पूर्ण होती है और न कार्य ही सिद्ध होता है । इसी कारण भले व्यक्ति कभी ऐसा कार्य नहीं करते हैं जिसका परिणाम बुरा हो ।

(१०) विद्यापति कहते हैं कि हे कृष्ण मैं इस बात को भली भाँति जानता हूँ कि कच्चे फल में मिठास नहीं होता है ।

## ८२

रति-सुबिसारद तुहु राख मान ।
बाढ़िले जौबन तोहे देब दान ॥२॥
आबे से अलप रस न पूरब आस।
थोरे सलिल तुअ न जाब पियास ॥४॥
अलप अलप रति यहि चाहि नीति ।
प्रतिपद चाँद-कला सम रीति ॥६॥

थोर पयोधर न पूरब पानि ।
न दिह नख-रेख हरि रस जानि ॥८॥
भनइ विद्यापति कइसन रीति ।
काँच दाड़िम प्रति ऐसन प्रीति ॥१०॥

(२) सुबिसारद = सु+विशारद, चतुर, प्रवीण । मान = मर्यादा । (४) अबे = अब, इस समय । पूरब = पूर्ण होना । जाब = जावेगी । (६) प्रतिपद = प्रतिपदा । (८) दिह = दो, देना । (१०) कइसन = कैसी, किस प्रकार की ।

(२) हे कृष्ण, तुम तो रस क्रीड़ा में परम चतुर तथा प्रवीण हो अतः तुम ही मेरी मर्यादा की रक्षा करो । यौवन का पूर्ण विकास होने के पश्चात् मैं स्वयं तुमको उसका दान दे दूँगी ।

(४) हे कृष्ण, अभी तो मुझ में यौवन रस बहुत ही कम है, इससे तुम्हारी लालसा पूर्ण नहीं होगी । जिस प्रकार थोड़े पानी से प्यास नहीं बुझती है उसी प्रकार तुम्हारी वासना अतृप्त ही रह जावेगी ।

(६) हे कृष्ण नीति का भी यही आदेश है, कि जिस प्रकार प्रतिपदा से चंद्रमा थोड़ा-थोड़ा बढ़ता है उसी प्रकार रति क्रीड़ा को भी थोड़ा थोड़ा करके बढ़ाना चाहिये ।

(८) हे कृष्ण अभी तो मेरे कुच छोटे छोटे हैं, उनसे तो तुम्हारे हाथ भी नहीं भरेंगे । अतः हे कृष्ण, अभी से उन पर नख रेखा मत दो । तुम तो स्वयं रस की बात जानते हो ।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे कृष्ण, यह तुम्हारी कैसी रीति है कि कच्चे अनारों के समान छोटे कुचों पर तुम्हारा इतना मोह है ऐसी प्रीति है ।

इसी भाव से मिलता जुलता बिहारी का वह प्रसिद्ध दोहा है, जिसने उनका प्रवेश जैपुर दरबार में कराया था । दोहा इस प्रकार है:—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल ।
अली कली ही सों बंध्यो, आगे कौन हवाल ॥

८३.

निबि बंधन हरि किए कर दूर।
ऐहो पए तोहर मनोरथ पूर ॥२॥
हेरने कओन सुख न बुझ बिचारि।
बड़ तुहु ढीठ बुझल बनमारि ॥४॥
हमर सपथ जौं हेरह मुरारि।
लहु लहु तब हम पारब गारि ॥६॥
बिहर से रहसि हेरने कौन काम।
से नहि सहबहि हमर परान ॥८॥
कहाँ नहि सुनिए एहन परकार।
करए विलास दीप लए जार ॥१०॥
परिजन सुनि सुनि तेजब निसास।
लहु लहु रमह सखीजन पास ॥१२॥
भनइ विद्यापति एहो रस जान।
नृप सिवसिंध लखिमा-बिरमान ॥१४॥

(२) ऐहो पए = इससे भी। (४) बनमरि = कृष्ण। (६) पारब गारि = गाली दूँगी। (८) बिहर = विहार करो। रहसि = रहस्य, ऐकांत। बिहर से रहसि = ऐकांत में अथवा चुपचाप विहार करो। (१०) कहाँ = कहीं भी। (१२) तेजब = उस क्षण, केलि समय। निसास = निश्वास, उसाँस। रमह = रमण करो, सम्भोग करो।

(२) हे कृष्ण, आप ने मेरी नीबी बंध को क्यों खोल दिया है, इससे क्या आप का मनोरथ पूर्ण हो जायेगा।

(४) नीबी-बंध खोल कर मेरे नग्न शरीर को निहारने में क्या सुख है, इसे तो मैं विचार करके भी नहीं समझ पाई हूँ, परंतु यह निश्चय है कि हे बनमाली कृष्ण तुम बहुत ही ढीठ हो।

(६) हे कृष्ण तुमको हमारी शपथ है जो तुम हमारे नग्न शरीर को देखो। यदि तुम नहीं मानते तो मैं धीमे स्वरों में तुमको गाली दूँगी।

(८) हे कृष्ण चुपचाप विहार करो, भला मेरे नग्न शरीर को देखने का क्या प्रयोजन है। तुम्हारी इस कुचेष्टा को मेरा प्राण सह नहीं सकता है।

(१०) हे कृष्ण, हमने तो कभी रति क्रीड़ा का ऐसा ढंग सुना नहीं कि काम क्रीड़ा के समय दीपक जला लिया जाये।

(१२) हे कृष्ण चुपचाप केलि करो, नहीं तो तुम्हारे मुख से निकलने वाली तेज़ निश्वास से पड़ोसी घटना चक्र के तारतम्य को समझ जायेंगे। इसके अतिरिक्त मेरी सब सखियाँ भी पास ही हैं वह भी सुन लेंगी। अतः हे कृष्ण धीरे-धीरे सम्भोग करो।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह इस रीति को भली प्रकार जानते हैं।

८४.

सुन-सुन नागर निबि-बंध छोर।
गाँठिते नाहि सुरत-धन मोर॥ २॥
सुरत क नाय सुनल हम आज।
न जानिअ सुरत करए कौन काज॥ ४॥
सुरत क खोज करब जहाँ पाव।
घर कि अछए नाहि सखिरे सुधाब॥ ६॥
बेरि एक माधब सुन मझु बानि।
सखि सँय खोजि माँगि देब आनि॥ ८॥
बिनति करए धनि माँगे परिहार।
नागरि चातुरि भन कबि-कंठहार॥ १०॥

(२) हे चतुर नागर सुनो, मेरा नीबी बंधन छोड़ दो। इसकी गाँठ में सुरत रूपी धन बँधा हुआ नहीं है। कुछ काल पहले तक सर्वत्र तथा देहातों में आज भी स्त्रियाँ रुपये पैसों को कमर बंद में बाँधती हैं। श्री राधा इसी लोक व्यवहार को लेकर कृष्ण से परिहास करती हैं कि सुरत रूपी धन मेरे नीबी-बंध में बंधा हुआ नहीं है, अतः उसे छोड़ दो।

(४) हे कृष्ण, मैंने तो "सुरत" का नाम ही आज सुना है मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि "सुरत" वस्तु क्या है तथा किस काम आती है।

(६) हाँ आज से जहाँ पाऊँगी सुरत धन की खोज करूँगी। सखियों को स्मरण करा कर पूँछूगी कि "सुरत" रूपी धन मेरे घर में है या नहीं।

(८) हे माधव एक बार मेरी बात तो सुन लो। सखियों द्वारा खोज करा कर यदि सुरत रूपी धन प्राप्त कर सकूँगी तो तुम को अवश्य ला कर दूँगी।

(१०) बाला इस प्रकार विनती करके कामातुर कृष्ण को मना रही हैं। कवि कण्ठ हार विद्यापति चतुर बाला की इस वाक् चातुरी का वर्णन करते हैं।

इस पद में स्त्रियोचित परिहास तथा विनोद प्रियता का बड़ा सुन्दर चित्रण है। कृष्ण राधा से सुरत दान माँग रहे हैं और राधा जान कर भी अनजान बनती हुई कैसे भोले पन तथा सफ़ाई से कृष्ण को बनाती हुई उनसे परिहास कर रही हैं।

८५.

हरि-कर हरिनि-नयनि तन सौंपलि
सखिगन गेलि आन ठाम।
अवसर पाइ धनि कर धरि नागर
विनति करए अनुपाम ॥ २ ॥
हरिनि नयनि धनि रामा।
कनुक सरस परस संभाषन
मेटल लाजक धामा ॥ ४ ॥
सुखद सेजोपरि नागरि नागर
बइसल नव-रति-साधे।
प्रति अंग चुम्बन रस अनुमोदन
थर-थर काँपए राधे ॥ ६ ॥
मदन-सिंहासन करल अरोहन
मोहन रसिक सुजान।
भय-गढ़ तोड़ल अलप समाधल
राखल सकल समान ॥ ८ ॥
कह कवि-सेखर गरुअ भूख पर
करु जल थोर अहार।
अइसन दुहु मन तलफइ पुन पुन
उपजल अधिक विकार ॥ १० ॥

(२) सौंपिल = सौंप दिया । (४) कानु = कान्ह , कृष्ण । सरस = रसमय । परस = स्पर्श । (६) सेजोपरि = सेज पर । बइसल = बैठे । (८) अरोहन = आरोहण, सवार होना । समाधल = समाधान, संतोष । समान = स + मान, मान सहित । (१०) गरुअ = गुरु, भारी, अधिक ।

(२) अंत में हार कर मृगनैनी राधा ने अपना शरीर कृष्ण को सौंप दिया इसी समय सब सखियाँ वहाँ से उठ कर दूसरे स्थान को चली गईं । उपयुक्त अवसर जान कर चतुर नागर ने बाला का हाथ पकड़ कर उससे सुरत दान देने की विनती की ।

(४) इस विनती तथा प्रेमावेश से पकड़े गए हाथ का और तत्पश्चात कान्ह द्वारा आलिंगन किये जाने जाने के फलस्वरूप बाला का लज्जा रूपी गढ़ टूट गया ।

(६) इसके पश्चात नागरि और नागर अर्थात राधा और कृष्ण नवीन रति रीति की अभिलाषा से सुंदर शय्या पर बैठ गये । शय्या पर बैठ कर रस रीति तथा केलि क्रीड़ा को उत्तेजना देने के लिए कृष्ण ने राधा के प्रत्येक अंग का चुंबन करना प्रारंभ किया परंतु इस बीच राधा भय तथा लज्जा से थर-थर काँपती रही ।

(८) चुंबन के पश्चात दोनों ने मदन-सिंहासन पर आरोहण किया अर्थात रति क्रीड़ा ( संभोग ) में लग गये परंतु क्योंकि राधा रति क्रीड़ा के संबंध में एक दम नवीना थी और भय तथा लज्जा से काँप रही थी इस कारण रसिक श्रेष्ठ मोहन ने राधा के सुरत संबंधी भय के विशाल गढ़ को समूल नष्ट कर देने की इच्छा से अल्प-कालीन संभोग से ही संतोष किया और इस प्रकार राधा के मान की रक्षा की ।

(१०) कवि शेखर विद्यापति कहते हैं कि जिस प्रकार अधिक भूख लगी होने पर यदि थोड़ा सा आहार और जल मिल जाता है तो तृप्ति होने के स्थान पर मन और भी अधिक तड़पता है, उसी प्रकार अल्प रति के कारण तृप्ति होने के स्थान पर दोनों के मनों में और भी अधिक विकार पैदा हो गया तथा अतृप्त लालसायें भड़क उठीं ।

८६.

सुरत समापि सुतल वर नागर
पानि पयोधर आपी ।
कनक संभु जनि पूजि पुजारी
धएल सरोरुह झाँपी ॥ २ ॥
सखि हे माधव, केलि बिलासे
मालति रमि अलि ताहि अगोरसि
पुनु रति-रंग क आसे ॥ ४ ॥
वदन मेराए धएल मुख-मंडल
कमल मिलल जनि चन्दा ।
भमर चकोर दुअओ अरसाएल
पीवि अमिय-मकरन्दा ॥ ६ ॥
भनइ अमीकर सुनह मधुरपति
राधा-चरित अपारे ।
राजा सिबसिंघ रुपनरायन
सुकबि भनथि कंठहारे ॥ ८ ॥

(२) समापि = समाप्त करके । सुतल = सो गया । आपी = अर्पित कर, रख कर (४) अगोरसि = अगोरना, पहरा देना, घेरना—उ० कुंवरि लाख दुहु वार अगोरे, दुहुं दिसि पंवर ठाढ़ कर जोरे ( जायसी ) पुनु = पुनः । (६) मेराए = मिला कर । दुअओ = दोनों । अरसाएल = अलसा गए । (८) अमीकर = चंद्रमा परन्तु यहाँ अभिप्राय है राजा शिव सिंह के राज मंत्री से ।

(२) रति क्रीड़ा समाप्त करके रसिक श्रेष्ठ नागर बाला के पीन पयोधरों पर अपना हाथ रख कर सो गया । बाला के कुच पर रखे हुए हाथ की शोभा ऐसी थी मानो पूजन करने के पश्चात पुजारी ने सुवर्ण महादेव को सुन्दर कमल पुष्प से ढक दिया हो

(४) हे सखी केलि विलास करने के पश्चात कृष्ण बाला के साथ रमण करते रहे उसी प्रकार जैसे भ्रमर मालती लता का रस पान करने के पश्चात पुनः रस पान की लालसा में मालती लता को घेरे रहता है ।

(६) रति क्रीड़ा के पश्चात कृष्ण ने अपना मुख बाला के मुख से सटा कर रखा उसी भाँति जिस प्रकार कमलिनी चन्द्रमा की ओर झुक जाती है। रति क्रीड़ा के परिणाम स्वरूप तथा केलि रस रूपी मकरन्द को पान करने के पश्चात भ्रमर कृष्ण ) और चकोर ( चंचल नेत्री राधा ) दोनों अलसा गये।

(८) अमीकरे कहते हैं कि हे मथुरापति सुनो कृष्ण प्रेयसी राधा का चरित्र अपार है। इस अपार चरित्र को राजा शिवसिंह रुपनारायन भली प्रकार जानते हैं।

## ८७.

हे हरि हे हरि सुनिए स्रवन भरि
अब न बिलास क बेरा।
गगन नखत छल से अबेकत भेल
कोकिल करइछ फेरा ॥ २ ॥
चकवा मोर सोर कए चुप भेल
उठिए मलिन भेल चन्दा।
नगर क धेनु डगर कए संचर
कुमुदनि बस मकरंदा ॥ ४ ॥
मुख केर पान सेहो रे मलिन भेल
अबसर भल नहिं मंदा।
बिद्यापति भन एहो न निक थिक
जग भरि करइछ निंदा ॥ ६ ॥

(२) स्रवन भरि—श्रवण भर कर, कान भर कर, भली प्रकार। छल = थे। अबेकत = अव्यक्त हो गये, छुप गये। करइछ = कर रही है। (४) सँचर = जा रही हैं। (६) केर = का। सेहो = वह भी। मंद = बुरा। निक = नीक, ठीक।

(२) हे हरि, हे कृष्ण, भली प्रकार चेत कर के सुन लीजिये। उठिये, अब विलास का समय नहीं है। आकाश में चमकने वाले नक्षत्र छुप गये हैं और कोकिला भी इधर उधर पुकार रही है।

(४) हे कृष्ण, चकवा तथा मोर जो कि सारी रात्रि शोर मचाते रहे थे वह भी चुप हो गये हैं। हे कृष्ण उठिये, चंद्रमा का प्रकाश मंदा हो गया

है और प्रातः काल हुआ जान कर तमाम नगर की गऊयें राजपथ से जा रही हैं ! अपने प्रीतम चन्द्रमा के अस्त हो जाने के कारण कुमुदनियों से मकरंद झरना बंद हो गया है और वह मुंद गई हैं ।

(६) हे कृष्ण प्रातःकाल हो जाने के कारण मेरे मुख का पान भी नीरस हो गया है अतः अब रमण करने का उपयुक्त अवसर नहीं है । विद्यापति कहते हैं कि हे कृष्ण अब ऐसा न करो अर्थात अब रमण न करो अन्यथा सारा जग तुम्हारी निंदा करेगा ।

८८

रयनि समापलि फुलल सरोज ।
भमि भमि भमरी भमरा खोज ॥ २ ॥
दीप मंद रुचि अम्बर रात ।
जुगुतहि जानलि भए गेल परात ॥ ४ ॥
अबहु तेजहु पहु मोहि न सोहाए ।
पुनु दरसन होत मदन दोहाए ॥ ६ ॥
नागर राख नारि मान-रंग ।
हठ कएले पहु हो रस-भंग ॥ ८ ॥
तत करिअए जत फाबए चोरि ।
परजन रस लए न रह अगोरि ॥ १० ॥

(२) समापलि = समाप्त हो गई । (४) रुचि = कान्ति । रात = राता, लाल । परात = प्रातःकाल । (६) दोहाए = दुहाई है, सौगंध है । (८) मान-रंग = आदर और प्रेम । (१०) परजन = पर पुरुष ।

(२) हे कृष्ण, रात्रि समाप्त हो गई है, कमल खिल उठे हैं और भ्रमरी घूम-घूम कर अपने भ्रमर की, जो कि रात्रि भर कमिलिनी के पराग कोष में क़ैद था, खोज कर रही है ।

(४) हे कृष्ण, दीपक की कांति मंद हो गई है और सूर्योदय समीप होने के कारण समस्त आकाश रक्त वर्ण हो उठा है । मैं इन युक्तियों से जान गई हूँ कि प्रातःकाल हो गया है ।

(६) हे कृष्ण, हे प्रभु अब तो मुझे छोड़ दीजिये, अब मुझे संग नहीं सुहाता है कामदेव की शपथ खाकर मैं विश्वास दिलाती हूँ कि हमारा मिलन फिर होगा ।

(८) हे नागर कृष्ण, नीति का वचन है कि प्रेमिका के आदर और प्रेम की सदैव रक्षा की जावे नहीं तो हे प्रभु हठ करने से रस भंग (रंग में भंग) होने की संभावना रहती है।

(१०) हे कृष्ण, रति क्रीड़ा केवल उतनी ही करनी उचित है जितनी दूसरों की दृष्टि से अलक्ष्य रह सके। यदि बाहर के व्यक्तियों, पर पुरुषों को रस रंग का आभास मिल जाता है तो फिर उस रहस्य को छुपाया नहीं जा सकता है।

# सखी-संभाषण

## सखी-संभाषण

### ८६.

आजु बिपरित धनि देखिअ तोय ।
बुझए न पारिअ संसय मोय ॥ २ ॥
तुअ मुख-मंडल पुनिम क चाँद ।
का लागि भए गेल ऐसन छाँद ॥ ४ ॥
नयन-जुगल भेल काजर बिथार ।
अधर निरस करु कओन गमार ॥ ६ ॥
पीन पयोधर नख रेख देल ।
कनक-कुंभ जनि भगनहु भेल ॥ ८ ॥
अंग बिलेपन कुंकुम भार ।
पीताम्बर धरु इथे कि बिचार ॥ १० ॥
सुजन रमनि तुहु कुलवति बाद ।
का सँय भंजलि मरम क साध ॥ १२ ॥
कामिनी कहिनी कह सम्बाद ।
कह कबि-सेखर नह परमाद ॥ १४ ॥

(२) बिपरीत = विपरीत, बदली हुई, परवर्तित । (४) पुनिम = पूर्णिमा । का लागि = किस लिये । छाँद = मलिन । (६) बिथार = बिथुरना, फैल गया है । गमार = गंवार । (१०) भार = भरा हुआ । पीताम्बर धरु = पीताम्बर धारण किये हो, पीली पड़ गई हो । इथे = इसका । (१२) कुलवति = कुल की मर्यादा । बाद = छोड़ कर । का सँय = किसके साथ । भुंजलि = भोग किया । मरम क साध = हृदय की इच्छा से । (१४) कहिनी = कहानी । संबाद = हाल । परमाद = प्रमाद, शिकायत, बदनामी ।

(२) हे सखी क्या कारण है कि आज मैं तुमको एक दम बदली हुई सी देख रही हूँ । अपने इस संशय का रहस्य मैं समझ नहीं पाती हूँ ।

(४) हे सखी, तेरा मुख मंडल जो कि पूर्णिमा के चंद्र के समान तेजोमय रहता था किस कारण वह आज ऐसा मलिन हो रहा है।

(६) हे सखी, तेरे दोनों नेत्रों का काजल मुख पर फैल गया है तथा किस गंवार ने तेरे रसीले ओष्ठों को एक दम से रस हीन कर दिया है।

(८) हे सखी, किस ने तेरे उत्तुंग कुचों पर नख रेखा का आघात दे दिया है। तेरे कुचों पर दी गई नख रेखा ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी सुन्दर सुवर्ण कलश में दरार पड़ गई हो।

(१०) हे सखी, तेरा सारा शरीर अंगराज तथा केशर के लग जाने से स्थान स्थान पर लाल हो गया है। और हे सखी इसका क्या कारण है कि तुम पीताम्बर धारण किये हो अर्थात तुम्हारा शरीर एकदम पीला पड़ गया है।

(१२) हे सुरसिका रमणी, मुझे बता कि अपने कुल की मर्यादा को त्याग कर तूने स्वेच्छा से किसके साथ संभोग किया है ?

(१४) हे सखी, हे बाले, अपनी प्रणय कहानी मुझसे कह और मुझे अपना हाल बता। कवि शेखर कहते हैं नहीं तो तेरी इस प्रणय कथा की चारों ओर बदनामी फैल जायेगी।

## ६०.

आज देखलिसि कालि देखलिसि
आज कालि कत भेद।
सैसव बापुर सीमा छाड़ल
जऊबन बाँधल फेद॥ २॥
सुन्दर कनककेआ मुति गोरी।
दिन दिन चाँद-कला सँय बाढ़लि
जऊबन सोभा तोरी॥ ४॥
बाल पयोधर गिरि क सहोदर
अनुपामिए अनुरागे।
कओन पुरुष कर परसए पाओल
जे तनु जितल परागे॥ ६॥
मन्द हास बंकिम कए दरसए
चंगिम भौंह बिभंगे।

लाज बेआकुलि सामु न हेरए
आओल नयन-तरंगे ॥ ८ ॥
विद्यापति कबिबर यह गाएब
नब जौबन नब कन्ता ।
सिवसिंघ राजा एह रस जानए
मधुमति देबि-सुकन्ता ॥ १० ॥

(२) बापुर = बापुरो, दीन, बेचारा । छाड़ल = छोड़ रहा है । जऊबन = यौवन । (४) कनककेआ = कनकीय, सुवर्ण निर्मिता । मुति = मूर्ता । (६) अनुपामिए = उपमा देते हैं । जितल = जीत लिया है । जितल-परागे = पराग को जीत लिया है अर्थात पीला पड़ गया है । (८) चंगिम = सुन्दर । बिभंगे = भंग, तिरछी । सामु = सामने ।

(२) हे सखी, मैंने तुझे कल देखा था और आज भी देखा है । तेरी आज और कल की अवस्थाओं में कितना परिवर्तन हो गया है । ऐसा प्रतीत होता है मानो बेचारा शैशव तेरे शरीर को छोड़ रहा है और यौवन उसे अपने चंगुल में फाँसने की चेष्टा कर रहा है ।

(४) हे गोरी, हे बाले, तेरा शरीर सुवर्ण निर्मित प्रतिमा के समान सुन्दर है । जिस प्रकार चंद्रमा की कलायें दिन प्रति दिन बढ़ती जाती हैं और उसकी शोभा को बढ़ाती जाती हैं वैसे ही यौवन का विकास तेरी अनुपम शोभा को बढ़ा रहा है ।

(६) पर्वतों के सहोदर समान तेरे छोटे छोटे उत्तुंग कुचों की उपमा नहीं दी जा सकती है । हे बाले, किस पुरुष ने अपने निर्दयी हाथों से उनको स्पर्श किया है जिसके कारण वह पीले पड़ गये हैं ।

(८) हे सखी, क्या कारण है कि तेरी मंद मुस्कान आज कुटिल मालूम होती है और तेरी सुन्दर भौंहें तिरछी हो रही हैं। हे सखी, क्या कारण है कि तुम लज्जा से व्याकुल हो कर सामने की ओर देखती तक नहीं हो परंतु तुम्हारी आँखों में प्रसन्नता की ज्योति चमक रही है ।

(१०) कविवर विद्यापति कहते हैं कि यह सब इस कारण है कि बाला की उठती जवानी है तथा उसका प्रियतम रसिक सुजान है । मधुमति देवी के पति राजा शिवसिंह इस रस रीति से परिचित हैं ।

## ६१.

सामरि हे झामरि तोर देह।
की कह क सयँ लाएलि नेह ॥ २ ॥
नींद भरल अछ लोचन तोर।
कोमल बदन कमल-रुचि चोर ॥ ४ ॥
निरस धुसर करु अधर पँवार।
कोन कुबुधि लुटु मदन-भँडार ॥ ६ ॥
कोन कुमति कुच नख-खत देल।
हाय हाय सम्भु भगन भए गेल ॥ ८ ॥
दमन लता सम तनु सुकुमार।
फूटल बलय टुटल गृम हार ॥ १० ॥
केस कुसुम तोर, सिर क सिंदूर।
अलक तिलक हे सेउ गेल दूर ॥ १२ ॥
भनइ बिद्यापति रति-अबसान।
राजा सिवसिंघ ई रस जान ॥ १४ ॥

(२) सामरि = श्यामा, सुन्दरी। झामरि = झांवर, मलिन, कुम्हलाया हुआ उ० निसि न नींद आवै दिवस न भोजन भावै चितवत मग भई दृष्टि झाँवरी। (सूर) (४) भरल = भरे। चोर = चोरी गई है, मंद पड़ गई है। (६) धुसर = धूसर, पांडु, मटमैला। पंवार = प्रवाल, मूंगा। (१०) दमन-लता = द्रोण पुष्प की लता। बलय = चूड़ी। गृम = ग्रीवा, गला। (१२) अलक = आलता, महावर। (१४) अबसान = समाप्ति।

(२) हे सखी तेरी सुंदर श्यामल देह आज मलिन क्यों हो रही है। हे सखी भला बता तो किस से तूने नेह जोड़ा है, किस से प्रेम किया है।

(४) तेरे सदा प्रफुल्लित नेत्र नींद से अलसाये हो रहे हैं और कमल पुष्प के समान सुन्दर शरीर की शोभा मंद पड़ गई है। हे सखी इसका क्या कारण है?

(६) हे सखी, मूंगे के समान लाल अधरों को किसने पांडु तथा नीरस कर दिया है। किस मूर्ख तथा कुबुद्धि व्यक्ति ने तेरे अक्षत मदन भंडार (यौवन) को लूट लिया है।

(८) हे सखी किस कुमति ने तेरे सुन्दर कुचों पर नख रेखा दी है। हाय-हाय कैसे दुख की बात है कि कनक के बने महादेवों (कुचों) को किसी ने तोड़ दिया है।

(१०) हे सखी, द्रोण लता के समान तेरा सुकुमार शरीर आज मलिन क्यों हो रहा है। तेरी कलाइयों में पड़ी चूड़ियाँ टूट गई हैं, गले का हार टूट गया है, इस का हे सखी क्या कारण है?

(१२) हे सखी तेरे केशों में गुंथे पुष्पों को किसने नोच डाला है तथा तेरे मस्तक पर लगा सिंदूर, तिलक तथा पैरों का महावर यह सब कैसे ध्वस्त व्यस्त हो गये हैं, इसका क्या कारण है।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले यह सब लक्षण रति क्रीड़ा की समाप्ति के हैं। इस रस रीति को राजा शिवसिंह ही भली प्रकार जानते हैं।

कविवर बिहारीलाल ने भी इस प्रसंग को ले कर अनूठी उक्तियाँ लिखी हैं। दो चरणों के छोटे छोटे दोहों में बिहारी ने रति लक्षिता का मानो चित्रसा खींच दिया है। तनिक बानगी देखिये।

यों दलि मलियत निरदई दई कुसुम से गात।
कर धर देखो धरधरा अजौं न उर से जात॥ १॥
सही रंगीली रतिजगे जगी पगी सुख चैन।
अलसौंहैं सौंहैं किये कहैं हँसौंहै नैन॥ २॥
औरै ओप कनी बिकनी गनी घनी सिरताज।
मनी धनी के नेह की बनी छनी पट लाज॥ ३॥
लाज गरब आलस उमंग भरे नैन मुसक्यात।
राति रमी रति देत कह औरे प्रभा प्रभात॥ ४॥

## ६२

ए धनि ऐसन कहवि मोय।
आजु जे कैसन देखिय तोय।। २ ।।
नयन बयन आनहि भाँति।
कहइत कहिनि भूलसि पाँति।। ४ ।।
सुरँग अधर बिरँग भेलि।
का सयँ कामिनि कएल केलि ।। ६ ।।
बेकत भए गेल गुपुत काज।
अतए ककर करह लाज ।। ८ ।।
सघन जघन काँपए तोर।
मदन मथन कएल जोर।। १० ।।
गोर पयोधर रातुल गात।
नखर आँचर झापसि हात ।। १२ ।।
अमिअ-सागर तुहु से राहि।
मुकुंद मातंग बिहर ताहि।। १४ ।।
कह कबि-सेखर कि कर लाज।
कह न कहिनि सखिन समाज।। १६ ।।

(६) बिरँग = बेरंग, मलिन। (८) अतए = अतएव । ककर = किसकी। (१०) जघन = जाँघें। (१२) रातुल = राता, लाल। नखर = नख रेखा। (१४) अमिअ-सागर = अमृत भरा सागर। मातंग = मतंग, हाथी।

(२) हे बाले मुझे बता, आज जो तुम ऐसी दिखाई पड़ रही हो उसका क्या कारण है।

(४) हे सखी तेरे नेत्र तथा तेरी वाणी कुछ और ही तरह की हो गई है तथा अपनी कथा सुनाते सुनाते तू बीच में से कही बात तक भूल जाती है, तेरा ध्यान आज किस ओर है।

(६) हे सखी तेरे सुन्दर लाल अधर आज बेरंग मलिन हो रहे हैं। बता तो सखी आज तूने किसके संग केलि क्रीड़ा की है।

(८) हे सखी, तेरे इन लक्षणों से तेरे समस्त गुप्त कार्य (रति क्रीड़ा) प्रकट हो गये हैं, अतएव उनको कह सुना, तू किसकी लज्जा करती है।

(१०) हे सखी तेरी पुष्ट जंघायें काँप रही हैं ऐसा मालूम होता है मानो कामदेव तेरे समस्त शरीर का मंथन कर रहा हो।

(१२) हे सखी, किस कार्य से तेरे गोरे टीक पयोधर लाल हो रहे हैं और हे सखी उन पर लगी नख रेखा को तू अपने हाथ से छुपा क्यों रही है।

(१४) हे राधे तू तो अमृत भरे सागर के समान है जिसमें कृष्ण रूपी हाथी ने मनमानी क्रीड़ा की है।

(१६) कवि शेखर (विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि हे सखी तू लज्जा किस की करती है अपनी सखियों से रति क्रीड़ा की कहानी कह क्यों नहीं देती है।

बिहारीलाल ने भी इस प्रसंग पर अनूठी उक्तियाँ लिखी हैं, दो चार दोहे देखिये।

नटि न सीस सावित भई लुटी सुखनि की मोट।
चुप करिए चारी करत सारी परी सरौट ॥ १ ॥
लखि-लखि अँखियन अधखुलिन,आँग मोरि अँगराय।
आधिक उठि लेटत लटकि, आलस भरी जँभाय ॥ २ ॥
मोसों मिलवति चातुरी, तूँ नहिं भानति भेव।
कहे देत यह प्रकट ही, प्रगटयो पूस पसेव ॥ ३ ॥
रँगी सुरत रंग पिय हिये, लगी जगी सब राति।
पैंड़ पैंड़ पर ठठकि कै, ऐंड़ भरी ऐंड़ाति ॥ ४ ॥ इत्यादि

## ६३

आजु देखिए सखि बड़ अनमनि सनि
वदन मलिन सन तोरा।
मन्द बचन तोहि कोन कहल अछि
से न कहिए किछु मोरा ॥ २ ॥
आजुक रयनि सखि कठिन बितल अछि
कान्हु रभस कर मंदा।
गुन-अबगुन पहु एकओ न बुझलनि
राहु गरासल चंदा ॥ ४ ॥
अधर सुखाएल केस अरुझाएल
घाम तिलक बहि लागे।

बारि बिलासिनि केलि न जानथि
भाल अरुन उड़ि गेला ॥ ६ ॥
भनइ बिद्यापति सुन वर जौबति
ताहि करव किए बाधे।
जे किछु देल आँचर बाँधि लेल
सखि सभ कर उपहासे ॥ ८ ॥

(२) अनमनि = अनमनी, उदासीन। मंद = बुरे। (४) आजुक = आज की। बितल = व्यतीत हुई है। मंदा = मंद, बुरी तरह से। (६) घाम = पसीना। बहि गेला = बह गया, धुल गया। बारि = बालि, बालिका। जानथि = जानती थी। अरुन = अरुण, सिन्दूर बिंदु। (८) बाधे = बाधा देना, रोकना।

(२) हे सखी, आज तो तुम बड़ी अनमनी सी दिखाई देती हो। क्या कारण है कि आज तुम्हारा मुख चन्द्र मलिन दिखाई पड़ता है। क्या किसी ने तुझ से बुरे वचन ( दुर्वचन ) कहे हैं ? हे सखी कुछ मुझे भी तो इसका कारण बता।

(४) हे सखी ऐसा मालूम होता है कि तेरी आज की रात्रि बड़ी कठिनता से व्यतीत हुई है। कदाचित कान्ह ने तेरे संग बुरी तरह केलि क्रीड़ा की है। जिस प्रकार बिना किसी तरह का सोच विचार किये राहु चन्द्रमा को ग्रस लेता है उसी भाँति कान्ह ने भी गुण अवगुण का विचार न करते हुए तेरे संग काम क्रीड़ा की है।

(६) हे सखी कान्ह की काम क्रीड़ा के परिणाम स्वरूप तेरे अधर सूख गये है और तेरे केश उलझ गये हैं। अधिक परिश्रम से पसीना निकलने के कारण तेरे मस्तक पर लगा तिलक भी धुल गया है। हे सखी, तुम तो अभी अर्ध विकसित कली के समान बालिका ही थीं तथा काम क्रीड़ा के रस से सर्वथा अनभिज्ञ थीं, कदाचित इसी कारण तुम्हारे मस्तक पर लगा सिंदूर-बिंदु नष्ट हो गया है।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सर्व श्रेष्ठ सुन्दरी सुनो, तुमने कान्ह की काम चेष्टा में कैसे तथा किस प्रकार बाधा दी। हे सखी यदि कोई किसी को कुछ दे तो उसे आँचल फैला कर लेना चाहिये अतः कान्ह के प्रेम को वर-दान जान कर ग्रहण कर। इस प्रकार कह कह कर सब सखियाँ राधा से परिहास करने लगीं।

श्री सूरदास ने भी इसी प्रसंग को लेकर अति सुन्दर पद लिखे हैं। श्री सूर के इष्ट देव कृष्ण थे इस कारण उन्होंने कृष्ण रूप पर घटित होने वाले वर्णन को अधिक रुचि से लिखा है। रति लक्षिता के प्रसंग में उन्होंने कृष्ण के स्वरूप का वर्णन किया है। विद्यापति और सूर में केवल इसी दृष्टि कोण से भेद है वैसे यदि नाम निकाल दिया जाये तो घटनावली लगभग समान ही है। उनके भी दो चार पद देखिये।

भोर भए मुख देखि लजाने।
रति की केलि-बेलि सुख सींचति सोभित अरुन नैन अलसाने ॥
काजर रेख बनी अधरन पर नैन कपोल पीक लपटाने।
मनहुँ कंज ऊपर बैठे अलि उड़ि न सकत सकरंद लोभाने ॥
है हिय हार अलंकृत बिनु गुन आय सुरति रन जीति सयाने।
सूरदास-प्रभु पाय धारिए जानति हौं पर हाथ बिकाने ॥ १ ॥

अथवा आजु हरि रैनि उनींदे आए।
अंजन अधर, ललाट महाउर नैन तमोर खवाए ॥
गुन बिनु माल बिराजत उर पर चंदन खौरि लगाए।
मगन देह सिर पाग लटपटी जाबक रंग रंगाए ॥
हृदय सुभग नख रेख बिराजत कंकन पीठि बनाए।
सूरदास प्रभु यहै अचंभव तीन तिलक कहँ पाए ॥ २ ॥

## ६४

न कर न कर सखि मोहि अनुरोध।
की कहब हमहु तकर परबोध ॥ २ ॥
अलप बयस हम कानु से तरुना।
अतिहु लाज डर अतिहू करुना ॥ ४ ॥
लोभे निठुर हरि कएलन्हि केलि।
की कहब जामिनि जत दुख देलि ॥ ६ ॥
हठ भेल रस मोर हरल गेआन।
निबि-बँध तोड़ल कखन के जान ॥ ८ ॥
देल आलिंगन भुज-जुग चापि।
तखन हृदय मझु ऊठल काँपि ॥ १० ॥

नयन बारि दरसाओलि रोइ ।
तबहु कान्हु उपसम नहि होइ ॥ १२ ॥
अधर सुरस मधु कएलन्हि मन्द ।
राहु गरासि निसि तेजल चन्द ॥ १४ ॥
कुच-जुग देलन्हि नख-परहार ।
केहरि जनि गज-कुम्भ बिदार ॥ १६ ॥
भनइ बिद्यापति रसवति नारि ।
तुहु से चेतन लुबुध मुरारि ॥ १८ ॥

(२) हे सखी, मुझसे अनुरोध न कर, अभी तो मुझे इस बात का कुछ प्रबोध ही नहीं है, मैं तुझ से क्या कहूँ ।

(४) हे सखी मैं तो अभी अल्प वयस हूँ और कान्ह तरुण हैं अर्थात मेरी आयु तो अभी कम है परन्तु कान्ह व्यस्क हैं, इस कारण मुझे बहुत ही लजा लग रही है, डर लग रहा है, हे सखी मुझ पर करुणा कर, मुझ पर दया कर।

(६) हे सखी कान्ह तो मेरे रूप पर रीझे हुए हैं, वह अति कठोर हैं, वह मेरी अल्प व्यस्कता का भी ध्यान न करके रस केलि के लिए आतुर हो रहे हैं। हे सखी मैं तुझसे क्या कहूँ, रात्रि का समय ही दुख वाला देने है ।

(८) हे सखी वह हठ करके रस केलि करने का आग्रह कर रहे हैं और उनके इस आग्रह से मेरा ज्ञान सुधि बुधि सभी समाप्त हुआ जा रहा है । और सखी वह मेरा निबिबन्ध (नाड़ा) न जाने क्या जान कर खोल रहे है ।

(१०) हे सखी उन्होंने दोनों भुजाओं में मुझे बाँध कर मेरा आलिंगन किया, और उनके इस कार्य से मेरा हृदय न जाने किस अदृष्य आशंका से काँप उठा ।

(१२) हे सखी मैंने अपने विरोध को जलधार बहा कर प्रकट किया परंतु इसका कान्ह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

(१४) हे सखी, कान्ह ने मेरे अधरों का रसामृत पान करके उनकी अनुपमता को मंद कर दिया बिल्कुल उसी प्रकार जैसे राहु के ग्रस लेने पर उज्ज्वल चन्द्रमा की कांति मंद पड़ जाती है ।

(१६) हे सखी, तब कान्ह ने मेरे कुचों पर अपने नखों से प्रहार किया और उनको इस प्रकार क्षत विक्षत कर दिया जैसे बनराज सिंह मस्त गजराज के मस्तक को विदीर्ण कर देता है ।

(१८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे रसवंती नार सुन, मेरे ऊपर रत श्रेष्ठ मुरारी आसक्त हैं, तेरे रूप पर मुग्ध हैं।

८५

कि कहब हे सखि आजु क विचार।
से सुपुरुष मोहे कएल सिंगार॥ २॥
हँसि हँसि पहु आलिंगन देल।
मनमथ अंकुर कुसुमति भेल॥ ४॥
आँचर परसि पयोधर हेरु।
जनम पंगु जनि भेटल सुमेरु॥ ६॥
जब निबि-बंध खसाओल कान।
तोहर सपथ हम किछु जदि जान॥ ८॥
रति-चिन्हे जानल कठिन मुरारि।
तोहर पुने जीअलि हम नारि॥ १०॥
कह कवि-रंजन सहज मधु राई।
न कहि सुधामुखि गेल चतुराई॥ १२॥

(६) पंगु = पग हीन। भेंटल = भेंट करता हो। ८) खसाओल = खोल कर गिरा दिया। जदि = यदि। (१०) जानल = जाना, समझा। पुने = पुण्य से। जीअलि = जीवित रही। (१६) मधु = मधु के सदृश। गेल = चली गई, खत्म हो गई।

(२) हे सखी मैं तुझे आज की बात क्या बताऊँ। मैंने तो पुरुष श्रेष्ठ कान्ह को मोहने के लिए आज शृंगार किया था।

(४) जिस समय प्रभु ने मेरा आलिंगन किया उस समय मेरे मनोमंदिर में स्थापित कामाँकुर मानो विकसित हो उठा अर्थात मेरे मन में काम का पूर्ण रूप से संचार हो गया।

(६) हे सखी जिस समय प्रियतम ने मेरे आँचल को स्पर्श करके मेरे उरोजों को देखा तो उस समय उनकी मुद्रा उस पंगु के समान हो रही थी जिसने सुमेरु पर्वत का दर्शन पा लिया हो।

(८) जिस समय कान्ह ने हे सखी मेरे नीबी-बंध को खोल कर अलग किया उस समय, मैं तेरी शपथ खाकर कहती हूँ सखी, मुझे कान्ह के अभिप्राय

का लेश मात्र भी आभास नहीं था। मैं पूर्ण रूप से अनजान थी।

(१०) रति के चिन्हों अर्थात केलि के परिश्रम तथा आतुरता से उस समय मैंने जाना है सखी कि कान्ह कितने कठोर हृदय के हैं। हे सखी केवल तेरे पुण्य प्रताप से ही में उस संकट से जीवित बच सकी हूँ।

(१२) कवि रंजन (विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि उस समय मधु के सदृष्य राधा ने इन सब बातों को स्वभाविक सरलता से ही बता दिया। उस समय उसकी समस्त चतुराई मानो ख़त्म हो गई थी।

## ९६

दृढ़ परिरम्भन पीड़लि मदने।
उबरि अएलहुँ सखि पुन पुने ॥ २ ॥
टुटि छिड़िआएल मोतिम हार।
सिन्दुर लोटाएल सुरंग पँवार ॥ ४ ॥
सुन्दर कुच जुग नख-खत भारी।
जनि गज-कुंभ विदारल हरी ॥ ६ ॥
अधर दसन देखि जिउ मोरा काँपे।
चाँद-मंडल जनि राहु क झाँपे ॥ ८ ॥
समुद ऐसन निसि न पारिए ऊर।
कखन उगत मोर हित भए सूर ॥ १० ॥
सोयँ न जाएब सखि तन्हि पिया ठाम।
बरु जिब मारि नड़ाबथि काम ॥ १२ ॥
भनइ विद्यापति तेज भय लाज।
आग जारिये पुनु आगि क काज ॥ १४ ॥

(२) परिरम्भन = परिरंभण, आलिंगन। अएलहुँ = आई हूँ। (४) छिड़िआएल = छिटक गया, बिखर गया। सुरंग = लाल। पँवार = प्रवाल, मूंगा। (८) दसन = दंशन, आक्रमण। (१०) समुद = समुद्र। ऊर = ओर, किनारा, छोर। कखन = किस + क्षण। (१२) तन्हि = उस। बरु = भले ही। नड़ाबथि = छोड़ दे। (१४) तेज = तज कर।

(२) हे सखी, कान्ह के दृढ़ आलिंगन तथा कामदेव की कठिन पीड़ा से मैं केवल अपने पूर्व जन्मों के पुण्यों के कारण ही बच कर आई हूँ।

(४) हे सखी, कान्ह के एक आलिंगन से मेरी मोतियों की माला टूट कर बिखर गई और माथे का सिंदूर इस प्रकार चारों ओर फैल गया मानो लाल मूंगे के दाने बिखर गये हों।

(६) सुन्दर कुचों पर नखों द्वारा किये गये घाव ऐसे प्रतीत होते हैं सखी मानो वनराज सिंह ने मस्त हाथी के मस्तक को चीर फाड़ डाला हो। (इस चरण में शब्द "हरि" बड़ा विचित्र है। हरि सिंह को भी कहते हैं और हरि कृष्ण का एक नाम भी है। इस प्रकार एक ही शब्द से दोनों का आभास मिलता है।)

(८) हे सखी प्रीतम द्वारा ओठों पर दाँतों का आक्रमण होते देख कर तो मेरे प्राण काँप उठे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो राहु चंद्रमा को ग्रस लेने के लिए झपट रहा हो।

(१०) हे सखी, वह रात्रि तो समुद्र के समान अनन्त हो गई थी उसका अन्त होता दिखाई ही नहीं देता था। मैं तो बराबर यही सोचती रही कि किस क्षण सूर्य उदय होकर मेरा निस्तार करेगा।

(१२) हे सखी, अब तो मैं कभी प्रियतम के मिलन स्थान को नहीं जाऊँगी भले ही कामदेव मुझे अपने बाणों से मार ही क्यों न डाले।

(१४) समस्त लोक लज्जा तथा लोक भय को त्याग कर विद्यापति कहते हैं कि हे बाले अग्नि जलाती अवश्य है किन्तु पुनः अग्नि ही की आवश्यकता पड़ती है।

९७

कि कहब हे सखि रातु क बात।
मानिक पड़ल कुबानिक हात ॥ २ ॥
काँच कंचन न जानए मूल।
गुँजा रतन करए समतूल ॥ ४ ॥
जे किछु कभु नहि कला रस जान।
नीर खीर दुहू करए समान ॥ ६ ॥
तान्हि सौं कहाँ पिरीत रसाल।
बानर-कंठ कि मोतिम माल ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति इह रस जान।
बानर मुंह की सोभए पान ॥ १० ॥

(२) मानिक = माणिक्य, रत्न । कुबानिक = अचतुर व्यौपारी । (४) मूल = मूल्य । गुंजा = घुंघची । समतूल = समतुल्य, समान । (६) कभु = कभी । (८) रसाल = रस मय । (१०) की = क्या । सोभए = शोभता है ।

२) हे सखी मैं तुझसे रात्रि की बात क्या कहूँ । उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई अमूल्य रत्न ऐसे अचतुर व्यौपारी के हाथ पड़ गया था जो उसका मूल्य तक नहीं जानता था ।

(४) हे सखी, जिस अनाड़ी के हाथ में पड़ी थी उसे तो काँच और कंचन के मूल्य के अंतर का भी कदाचित पता नहीं था, इसी कारण उसने घुंघुची और रत्न के समान समझ कर उनको व्यवहार किया ।

(६) हे सखी, रात्रि को प्रियतम की चेष्टायें इस तरह की थीं मानो उन्होंने कभी केलि रस को जाना ही न था । इसी कारण उन्होंने दूध और पानी को समान समझ कर मुझ से ऐसा व्यवहार किया ।

(८) इस कारण हे सखी मेरी उनसे किस प्रकार प्रीति हो सकती है । मेरा उनका संबंध तो कुछ ऐसा मालूम होता है मानो रत्नों की माला को बन्दर के गले में डाल दिया गया हो ।

(१०) इस रस रीति से परिचित कवि विद्यापति कहते हैं कि बन्दर के मुख में क्या पान का बीड़ा शोभता है ।

## ६८

पहिलुक परिचय प्रेम क संचय
रजनी आध समाजे ।
सकल कला-रस सँभरि न भेले
बैरिनि भेलि मोरि लाजे ॥ २ ॥
साए साए अनुसए रहलि बहुते ।
तन्हिहि सुबन्धु के कहिए पठाइअ
जौं भमरा होअ दूते ॥ ४ ॥
खनहि चीर धर खनहि चिकुर गह
करए चाह कुच-भंग ।
एकलि* नारि हम कत अनुरंजब
एकहि बेरि सब संगे ॥ ६ ॥

तखन बिनय जत से सब कहब कत
कहए चाहल कर जोली ।
नव रसरंग भंग भए गेल सखि
ओर धरि भेल न बोली ॥ ८ ॥
भनइ बिद्यापति सुनु बर जौबति
पहु अभिमत अभिमाने ।
राजा सिबसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ बिरमाने ॥ १० ॥

(२) पहिलुक = प्रथम बार का । पेम = प्रेम । संचय = उत्पत्ति । समाजे = व्यतीत हो गई । सँभारि = संभल कर, अच्छी तरह । सँभरि न भेले = संभल कर न हुआ, अच्छी तरह नहीं हुआ । भेलि = हो गई । (४) साय = सखी । अनुसए = अनुताप, पछताव । रहलि = रह गया । बहुते = बहुत अधिक । कहिए पठाइअ = बुला भेजा । जौं = जिस प्रकार । (६) एकलि = अकेली । अनुरंजब = अनुरंजन करूँगी, प्रेम निबाहूँगी । (८) तखन = तत + क्षण, उस समय । जत = जितना । चाहल = चाहा, इच्छा की । जोली = जोड़ कर । ओर = अंत । धरि = तक । ओर धरि = अन्त तक । (१०) अभिमत = युक्तियुक्त । बिरमाने = विरमण, पति, प्रीतम ।

(२) हे सखी, क्योंकि मेरा और प्रीतम का पहली ही बार परिचय, हुआ था अर्थात् प्रथम प्रथम भेंट हुई थी अतः प्रेम के संचय में ही, प्रेमोत्पत्ति में ही आधी रात्रि व्यतीत हो गई । कुछ तो इस कारण से और कुछ समय पर मेरी लज्जा के बैरिन हो जाने से समस्त केलि क्रीड़ा संभाल कर अच्छी तरह न हो सकी ।

(४) हे सखी, इसका मुझे बहुत ही पछतावा है, इस कारण सखी जिस प्रकार भ्रमर दूत बन कर ऋतुराज के आगमन की सूचना देता है उसी भाँति प्रीतम के किसी सुहृद मित्र द्वारा उनको बुला भेजो ।

(६, हे सखी, केलि के समय प्रीतम कभी तो मेरा आँचल पकड़ते थे, कभी मेरी वेणी को स्पर्श करते थे और कभी अपने नखों द्वारा मेरे सुन्दर कुचों को विदीर्ण करना चाहते थे । हे सखी मैं अकेली बाला किस प्रकार उनकी समस्त चेष्टाओं को सहन करूँगी, किस प्रकार मैं अकेली उनसे प्रेम निबाहूँगी, अतः आओ सखी हम सब मिल कर एक बार ही उनसे प्रेम करें ।

(८) कान्ह ने समागम के समय यह देख कर कि राधा उनकी प्रार्थना तथा विनय को पूर्ण नहीं करती हैं, अर्थात उनकी प्रत्येक चेष्टा का यथोचित समाधन नहीं करती है इस कारण उन्होंने दोनों हाथ जोड़ कर राधा से प्रार्थना करनी चाही। हे सखी, इस प्रकार ऐन मौके पर दोनों हाथ प्रार्थना के लिए जोड़े जाने के कारण केलि रंग में भंग हो गया और इस प्रकार रंग में भंग कर देने के अपराध के भय स्वरूप कान्ह के मुख से बात तक न निकली।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरियों में श्रेष्ठ राधे सुनो, तुम्हारे प्रीतम कान्ह पूर्ण रूप से युक्ति युक्त तथा अभिमानी हैं। इस रस रीति को लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह रूपनारायण भली प्रकार जानते हैं।

# कौतुक

## कौतुक

### ६६

उठ उठ माधव कि सुतसि मंद।
गहन लाग देखु पुनिम क चंद॥ २॥
हाररोमावलि जमुना-गंग।
त्रिबलित्रिबेनी बिप्र अनंग॥ ४॥
सिंदुर तिलक तरनि सम भास।
धूसर मुख-ससि नहि परगास॥ ६॥
एहन समय पूजह पँचबान।
होअ उगरास देह रतिदान॥ ८॥
पिक मधुकर पुर कहइत बोल।
अलपओ अवसर दान अतोल॥ १०॥*
बिद्यापति कबि एहो रस भान।
राए सिबसिंघ सब रस क निधान॥ १२॥

(२) सुतसि = सो रहा है। मंद = असमय। (६) भास = प्रकाशवान। धूसर = मटमैला, प्रभाहीन। परगास = प्रकाश। (८) उगरास = उग्रास, ग्रहण छूटना। (१०) पुर = गांव। अलपओ = अल्प, थोड़ा। अतोल = अतुल, अनंत।

(२) हे माधव उठिये, ऐसे असम यक्यों सो रहे हो। तनिक देखिये तो पूर्णिमा के चंद्रमा में ग्रहण लग रहा है अर्थात् बाला का मुख चन्द्र रति चिन्ता से मलिन हो रहा है।

(४) हे माधव बाला का शरीर तीर्थ राज प्रयाग के समान है। शरीर की रोमावलि और गले में पड़ा हार क्रमशः यमुना और गंगा हैं और बाला के पेट पर पड़ी तीन रेखायें अर्थात् त्रिबली त्रिवेणी के समान है और स्नान के शुभाशुभ का फल देने वाला विप्र कामदेव है। रोमावलि श्याम होती है और यमुना का नाम कालिंदी है इस कारण कवि ने यह उपमा दी है।

(६) बाला के मस्तक पर लगा सिंदुर बिंदु अस्ताचल गामी सूर्य की भाँति प्रकाशवान है और सूर्य के प्रकाश में आभा हीन दिखाई देने वाले पूर्ण चंद्र के समान बाला का प्रभाहीन मुख चंद्र प्रकाशित नहीं हो रहा है।

उपर्युक्त पदों में कवि ने चंद्र ग्रहण का पूरा चित्र बाला के चिन्तित मुख मण्डल पर घटित किया है। चंद्र ग्रहण अधिकतर सूर्यास्त होते ही प्रारम्भ हो जाता है अतएव उस समय चंद्र और सूर्य दोनों दिखाई पड़ते हैं। धार्मिक व्यक्ति इस समय गंगा स्नान करते हैं तथा विप्रों को दान देते हैं। ऐसे समय में त्रिवेणी स्नान का बड़ा महात्मय है। कवि बाला के शरीर की उपमा त्रिवेणी से दे कर तथा चिन्तित मुख को ग्रसित चंद्र के अनरूप बता कर माधव को इस शरीर रूपी त्रिवेणी में स्नान करने (रति क्रीड़ा करने को) प्रोत्साहित करता है।

(८) हे माधव इस समय तुम साक्षात कामदेव का पूजन करो तथा रति का दान दो तभी हे माधव चंद्र का उग्रास होगा। ग्रहण के समय विप्रों को दान देने की आज्ञा है और पिछले चरण में कवि ने कामदेव को विप्र की संज्ञा दी है। इस कारण ऐसे अवसर पर कामदेव को उसका प्रिय दान (रति दान) देने से बाला के मुख चन्द्र को ग्रसने वाली चिन्ता रूपी राहू को निवारण करने का आदेश कवि करता है।

(१०) हे माधव, कोयल तथा भ्रमर ग्रहण का दान लेने वाले व्यक्तियों की भाँति चारों ओर गाँव गाँव में कहते फिर रहे हैं कि अवसर बहुत कम है अतः इच्छा कर अनंत दान करो।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि सर्व रसों की खान राज शिवसिंह इस रस रीति से परिचित हैं।

१००

त्रिबलि तरंगिनि पुर दुग्गम जानि
मनमथ पत्र पठाऊ।
जोबन-दलपति तोहि समर लागि
ऋतुपति दूत बढ़ाऊ॥ २॥
माधव, अब, देखु साजिए बाला।
तसु सैसव तोहें जे संतापल
से सब आओत पाला ॥ ४॥

कुंडल चक्र तिलक अंकुस कए
चँदन कवच अभिरामा ।
नयन कमान, कटाख बान दए
साजि रहल अछि बामा ॥ ६ ॥
सुन्दरि साजि खेत चलि आइलि
बिद्यापति कबि भाने ।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ परमाने ॥ ८ ॥

(२) त्रिबलि तरंगिनि = त्रिबली रूपी नदी। दुग्ग = दुर्गम । दलपति = सेनापति। लागि = लिए। (४) संतापल = संताप दिया है, दुख दिया है। (६) चक्क = चक्र। (८) खेत = क्षेत्र, रणक्षेत्र।

(२) त्रिवली रूपी नदी के तट पर बसे हुए नगर को दुर्गम जान कर कामदेव रूपी राजा ने उसे विजय करने के लिए आज्ञा पत्र भेजा है। बाला के यौवन रूपी सेनापति को युद्ध का निमंत्रण देने के लिए कामदेव ने ऋतुराज वसंत को अपना दूत बनाकर भेजा है।

(४) हे माधव, तनिक बाला के शृंगार रूपी रण सज्जा की ओर देखो। उसके शैशव ने जितना भी संताप तुमको दिया था उस सब का अब अंत होना चाहता है।

(६) हे माधव, तनिक यौवन की रणसज्जा को देखो। बाला के कानों में पड़े कुण्डल चक्र हैं, मस्तक पर लगा टीका अंकुश है और उसके शरीर पर लगा चन्दन का लेप सुन्दर कवच के समान है। तथा अपने नयन रूपी धनुष पर कटाक्ष रूपी बाण चढ़ा कर बाला ने अपनी रण सज्जा सजाई है।

(८) हे माधव, इस प्रकार अस्त्रों से सुसज्जित हो कर बाला युद्ध भूमि (सुरत रण भूमि) में चली आई है, ऐसा कवि विद्यापति कहते हैं। राजा शिव-सिंह रूपनारायण लखिमा देवी के प्राणपति इस रहस्य को जानते हैं।

## १०१

अम्बर बदन झपावह गोरी ।
राज सुनइ छिअ चाँद क चोरी ॥ २ ॥
घर घर पहरि गेल अछि जोहि ।
अबहि दूखन लागत तोहि ॥ ४ ॥
कतए नुकाएब चाँद क चोर ।
जतहि नुकाओब ततहि उजोर ॥ ६ ॥
हास सुधारस न कर उजोर ।
बनिक धनिक धन बोलब मोर ॥ ८ ॥
अधर क सीम सदन कर जोति ।
सिंदूर क सीम बैसाओलि मोति ॥ १० ॥
भनइ बिद्यापति होह निरसंक ।
चाँदहु काँ थिक भेद कलंक ॥ १२ ॥

(२) पहरि = प्रहरी । जोहि = जोहना, खोज गया है, ढूँढ गया है । (६) कतए = कहाँ । नुकाएब = नुकावेगा, छिपावेगा । (८) बोलब = कहेंगे । (१०) सीम = निकट । जोति = ज्योति, प्रकाश । (१२) निरसंक = निश्चिन्त । काँ = में । थिक = है ।

(२) हे गोरी, हे बाले अपने मुख को आँचल से छुपा ले । राजा पर समाचार पहुँचा है कि किसी ने चंद्रमा को चुरा लिया है ।

(४) राजा के प्रहरी प्रत्येक घर में चोरी गये चंद्रमा को ढूंढने गये हैं, हे सखी, यदि वह तुम्हारा मुख देख लेंगे तो चंद्रमा को चुराने का कलंक तुझे लग जायेगा ।

(६) हे सखी, चंद्रमा को चुराने वाला चोर उसे कब तक छिपावेगा क्योंकि जितना ही उसे छुपाया जायगा इतना ही उसका प्रकाश फैलता जायेगा । अर्थात हे सखी तेरे मुख चंद्र की शोभा बृजराज कृष्ण से कब तक छुपी रहेगी । जितना ही तू उसे छुपाने की चेष्टा करेगी उतनी ही उसकी प्रशंसा चारों ओर फैलती जायेगी ।

(८) हे सखी हँस कर अपनी हँसी रूपी अमृत से चारों ओर प्रकाश न फैला क्योंकि धनी व्योपारी उस धन को अपना बताने लगेंगे ।

(१०) और हे बाले, उनका यह दावा ठीक ही समझा जायगा क्योंकि तेरे ओष्ठों के निकट प्रकाश फैलाने वाले दाँत मुक्ता के समान हैं और तेरा सिंदूर बिंदु लाल माणिक्य के समान दीखता है। हे सखी, मुक्ता और माणिक्य धनी व्यौपारियों के पास साधारणतयः होते हैं इस कारण उनका कहना ठीक ही समझा जायेगा।

(१२) कवि विद्यापति बिना किसी संकोच तथा शंका के कहते हैं कि हे बाले तुम्हारे मुख और चंद्रमा में समानता तो है केवल अंतर इतना ही है कि चंद्रमा में कलंक है और तुम्हारा मुख चंद्र निष्कलंक है।

## १०२

लोलुअ बदन-सिरी अछि धनि तोरि।
जनु लागिह तोहि चाँद क चोरि॥ २॥
दरस हलह जुन हेरह काहु।
चाँद-भरम मुख गरसत राहु॥ ४॥
धवल नयन तोर जनि तरुआर।
तीख तरल तेहि कटाख क धार॥ ६॥
निरखि निहारि फास गुन जोलि।
बाँधि हलब तोहि खंजन बोलि॥ ८॥
सागर-सार चोराओल चंद।
ता लागि राहु करए बड़ दंद॥ १०॥
भनइ विद्यापति होउ निरसंक।
चाँदहु की किछु लागु कलंक॥ १२॥

(२) लोलुअ = लोल, चंचल। सिरी = श्री, शोभा। जनु = नहीं। (४) हलह = हट जाओ। (६) धवल = धवल, उज्ज्वल। तरुआर = तलवार। तीख = तीक्ष्ण। तरल = चंचल। (८) निरखि = नीचे की ओर। फास = पाश, फन्दा। जोलि = बाँध कर। हलब = ले जायगा। बोलि = समझ कर। (१०) सागर-सार = समुद्र का सार पदार्थ, अमृत।

(२) हे बाले, तेरे मुख चंद्र की शोभा कैसी चंचल तथा अनुपम है। कहीं तुझे चंद्रमा को चुराने का कलंक न लग जाये।

(४) अतएव हे सखी, झटपट हट जाओ, कहीं कोई देख न ले। ऐसा न हो कि चंद्रमा के धोखे में कहीं राहु तुम्हारे मुख चंद्र को ही ग्रस ले।

(६) हे बाले तेरे उज्ज्वल नेत्र तलवार की भाँति कटीले हैं तथा तेरे कटाक्ष की धार बर्छी तीक्ष्ण तथा चंचल है।

(८) हे सखी, तू सदैव ही नीचे की ओर ही देखा कर अन्य था कोई चतुर शिकारी तेरे नेत्रों को खंजन समझ कर गुण रूपी पाश में बाँध कर ले जायेगा।

(१०) सागर से निकले सार पदार्थ अमृत को चन्द्रमा ने चुराया था इसी कारण राहु अब तक उससे द्वंद करता है। हे सखी तेरा मुख चन्द्रमा के समान है, अतः कहीं चंद्रमा के धोखे में राहु तेरे मुख को न ग्रस ले।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले तू शंका न कर नहीं तो चंद्रमा के समान तुझे भी कलंक लग जायेगा।

इस पद के तीसरे और चौथे चरणों में दर्शित भाव "श्रृंगार तिलक" के इस श्लोक के भाव से कैसे मिलते हैं मानो कवि ने इसी श्लोक का भावार्थ पद में व्यक्त कर दिया हो।

झटिति प्रविश गेहे मा बहिस्तिष्ठ कान्ते
ग्रहण-समय-बेला वर्त्तते शीत रश्मेः।
तव मुखम कलंकं वीक्ष्य नूनं स राहुः
ग्रसित तव मुखेन्दु पूर्णचंद्र विहाय॥

## १०३

साँझ क बेरि उगल नव ससधर
भरम विदित सबिताहु।
कुंडल चक्क तरास नुकाएल
दूर भेलि हेरथि राहु॥ २॥
जनु बइससि रे बदन हाथ लाई।
तुअ मुख चंगिम अधिक चपल भेल
कति खन धरब नुकाई॥ ४॥
रक्तोपल जनि कमल बइसाओल
नील नलिनि दल तहु।
तिलक कुसुम तहु माझु देखि कहु
भमर आबथि लहु लहु॥ ६॥

पानि-पलव-गत अधर बिम्ब-रत
दसन दाड़िम-बिज तोरे।
कीर दूर भेल पास न आएब
भौंह धनुहि के भोरे॥८॥

(६) रक्तोपल=लाल कमल यहाँ तात्पर्य है लाल हथेली से। नील नलिनि = नील कमल यहाँ तात्पर्य है उज्वल नेत्रों से। (८) पानि-पलव-गत=पानि पल्लव गति, हाथ पल्लव के समान है। बिज=बीजे। भोरे=भ्रम से।

(२) सन्ध्या के समय नवीन चंद्र का उदय हुआ, जिससे सब को सूर्य का भ्रम हो गया अर्थात् सूर्यास्त हो रहा था, उसी समय बाला घर से निकली। सूर्य अभी पूर्णतः अस्त नहीं हुए थे अतएव बाला के मुख चन्द्र को देख कर स्वयं उनको भी आश्चर्य हुआ कि मेरे अस्त होने से पूर्व यह कौन सा नवीन चंद्रमा उदय हो गया है। बाला के कुण्डल रूपी चक्र के भय से राहु छुप गया और दूर से ही इस अपूर्व मुख चन्द्र को देखने लगा।

(४) जिस समय हे बाले तुम हथेली पर अपना मुख टिका कर बैठी थीं उस समय तुम्हारे मुख की सुंदरता तथा नेत्रों की चंचलता और भी अधिक हो गई थी। हे सखी अपने इस अनुपम सौंदर्य को कब तक छुपाओगी।

(६) रक्त कमल के समान तुम्हारी हथेलियों और नील कमल के समान तुम्हारे नेत्रों को मानो किसी ने वहाँ सुन्दरता से सजा दिया है। जिस प्रकार विकसित कमल पुष्प पर भ्रमर मंडराते हैं उसी प्रकार तुम्हारे मस्तक पर लगे तिलक को देख कर प्रेमी रूपी भ्रमर धीरे-धीरे उसकी ओर आकर्षित होते हैं।

(८) हे सखी, तेरे कोमल हाथ नव पल्लव के समान हैं, अधर बिम्बाफल के समान और दाँत अनार के बीज के समान सुंदर हैं। कीर के समान तेरी नासिका भौंहों से ऐसी दूर है मानो भौंह रूपी धनुष के भ्रम से कीर दूर भाग गया हो और पास न आता हो।

१०४

बड़ कौसलि तुअ राधे।
किनल कन्हाई लोचन आधे ॥ २ ॥
ऋतु पति हटवए नहि परमादी।
मनमथ मधथ उचित मूलवादी ॥ ४ ॥
द्विज पिक लेखक मसि मकरंदा।
काँप भमर-पद साखी चंदा ॥ ६ ॥
बहि रति रंग लिखापन माने।
श्री सिवसिंघ सरस-कवि भाने ॥ ८ ॥

(२) कौसलि = चतुरा। किनल = क्रय कर लिया, ख़रीद लिया। लोचन आधे = कटाक्ष। (४) ऋतुपति = ऋतुराज बसंत। हटवए = हार वाला, व्यौपारी, परमादी = प्रमादी, बुद्धिमान। मधथ = मध्यस्थ, दलाल। मूल = मूल्य। बादी = कहने वाला, जानने वाला। (६) द्विज-पिक = कोयल रूपी ब्राह्मण। मसि = स्याही, रोशनाई। मकरंदा = पराग। काँप = काँड़े का क़लम। भमर पद = भ्रमर पद, भौंरे का पैर। साखी = साक्षी, गवाह। (८) बहि = बही खाता। लिखापन = लिखा गया। माने = मान, परिमाण, मिक़दार।

(२) हे राधे, तू तो बड़ी ही चतुर है। तूने तो एक कटाक्ष में ही कान्ह को खरीद लिया है अर्थात् अपना जर ख़रीद ग़ुलाम बना लिया है।

(४) हे राधे, व्यौपारी ऋतुराज बसंत तनिक भी चतुर तथा बुद्धिमान नहीं है, परंतु उसका दलाल कामदेव वस्तुओं के उचित मूल्य को जानने वाला है। इस चरण में सखी ने राधा के शरीर पर कामदेव के बढ़ते हुए आधिपत्य की ओर इशारा किया है।

(६) हे राधे, कोयल रूपी ब्राह्मण ऋतुराज बसंत का लेखक (मुनीम) है और पुष्पों से झड़ने वाला पराग ही उस मुनीम की लिखने की स्याही है। भ्रमरों के पैर लेखनी हैं तथा ऋतु राज बसंत के व्यौपारिक पत्रों पर साक्षी करने वाला व्यक्ति चन्द्रमा है।

(८) हे राधे, ऋतुराज बसंत का मुनीम कामदेव अपने बहीखाते में प्रेमी-प्रेमिकाओं की काम-क्रीड़ा का परिमाण लिखता रहता है। सरस कवि (विद्यापति का उपनाम) राजा शिवसिंह से इस प्रकार कहते हैं।

विद्यापति को उपर्युक्त पद इतना सुन्दर लगा कि स्वयं उन्होंने ही इस पद का संस्कृतानुवाद कर डाला। श्लोक नीचे लिखा जाता है।

रत्नाकर सुता भार्या यस्य कृष्णस्य राधिके।
लोचनार्द्धेन स क्रीतस्त्वया ते कौशलम्महत ॥
हट्टाधिपो बसन्तस्सोऽप्रमादी विचक्षणः।
योग्य मूल्यार्थवादी च मध्यस्थो मन्मथोऽभवत् ॥
भ्रमरस्य पदं कर्पो लेखकः कोकिलो द्विजः।
अभूत् कृष्ण-क्रये राधे शशीपात्रं मसी मधु ॥
वहिर्नेति रति क्रीड़ा मानो वेदन लेखकः।
कृष्णस्य शिवसिंहेन वाणी विद्यापतेः कवेः ॥

## १०५

कंचल गढ़ल हृदय-हथिसार।
ते थिर थम्भ पयोधर भार ॥ २ ॥
लाज-सिकर धर दृढ़ कए गोए।
आनक वचन हलह जनु कोए ॥ ४ ॥
दूर कर अगे सखि चिन्ता आन।
जओबन-हाथि करिय अवधान ॥ ६ ॥
मनसिज-मदजल जओं उमताए।
धरि हसि पिअतम-आंकुस लाए ॥ ८।
जाबे न सुमत ताबे अगोर !
मुसइत मनिहसि मानस-चोर ॥ १० ॥
भन विद्यापति सुन मतिमान।
हाथि महत नब के नहि जान ॥ १२ ॥

(२) हथिसार = हस्तीशाला। ते = उसको। थिर = स्थिर। थम्भ = स्तंभ। भारी = भार। (४) सिकर = शृंखला, जंजीर। गोए = छुपा कर। आनक = अन्य, दूसरे। हलह = खोलो। कोए = कभी। ६) हाथि = हाथी। अवधान = मनोयोग, ध्यान, सावधानी। (८) मनसिज = कामदेव। मदजल = मस्त हाथी के मस्तक से चूने वाला जल। उमताए = उमदाना, मस्त होना। (१०) जाबे =

जब तक। तावे = तब तक। मुसइत = मूस लेता है, चुरा लेता है। मनिहसि = मना करना। (१२) महत = मस्त, मस्त।

(२) उस सुन्दरी के हृदय रूपी हस्तीशाला को विधाता ने सुवर्ण से बनाया है अर्थात् उसका वर्ण सुवर्ण के समय है और उस हस्तीशाला को स्थिर रखने के लिए पीन पयोधरों को स्तम्भ की भांति स्थापित किया है।

(४) इस हृदय रूपी हस्तीशाला को दृढ़ करने के लिए विधाता ने लज्जा रूपी श्रंखला से उसे सुदृढ़ कर दिया है, अन्य प्रकार के वचन बोल कर, अर्थात् इस प्रकार के काम केलि रूपी वचनों को बोल कर इस लज्जा रूपी श्रृंखला मत खोलो कान्ह।

(६) हे सखी, तेरे मन में जो कोई भी अन्य चिन्ता है, जो कुछ भी तेरे मन में खटक रहा है हे सखी उस को दूर कर दे, अपने यौवन रूपी हाथी को सावधानी से बाँध कर रख। इस चरण के विचित्रता यही है कि हाथियों को बाँधने के लिए जंजीरों को काम में लाया जाता है और इसी कारण कवि में लज्जा को श्रृंखला का रूप दिया है, अर्थात् लज्जा रूपी श्रृंखला से अपने यौवन रूपी हाथी को बाँध रख।

(८) हे सखी जिस समय कामदेव रूपी मदजल तेरे रूपी हाथी हृदय से चूने लगे अर्थात् जिस समय तेरे मन पर कामदेव का पूर्ण आधिपत्य हो जाये उस समय तू प्रियतम रूपी अंकुश से उस पर अपना क़ाबू रख।

(१०) हे सखी जब तक तुझे सुधि रहे अर्थात जब तक तेरी बुद्धि काम के वशीभूत न हो जाये तब तक तू इस अँकुश को आगेर कर संभाल कर रख क्योंकि थोड़ी सी असावधानी से ही मन रूपी चोर मना करने पर भी मूस लेता है, चुरा लेता है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे मतिमान सुन्दरी सुन, मस्त हाथी रूपी मन को अपने बस में रख।

## १०६

कओड़ि पठाओोले पाव नहि घोर।
घीब उधार माँग मतिभोर ॥ २ ॥
बास न पावए माँग उपाति।
लोभ क रासि पुरुष थीक जाति ॥ ४ ॥

कि कहब आज कि कौतुक भेल ।
अपदहि कान्हक गौरब गेल ॥ ६ ॥
आएल बइसल पाब पोआर ।
सेज क कहिनी पूछए विचार ॥ ८ ॥
ओछाओन खँड़तरि पलिया चाह ।
आओर कहब कत अहिरिनि-नाह ॥ १० ॥
भनइ विद्यापति एहु गुनमँत ।
सिरि सिबसिंघ लखिमा देइ कंत ॥ १२ ॥

(२) कउड़ि = कौड़ी, मूल्य । पठाओल = भेजने पर भी । पाब = पाता है । घोर = मट्ठा । घीब = घी, घृत । मतिभोर = मूर्ख । (४) वास = वास स्थान, रहने का स्थान । उपाति = भोजन । थिक = है । (६) भेल = हुआ । अपदहि = कुस्थान, बुरी जगह । गौरब = गौरव, मान प्रतिष्ठा । (८) पोआर = पुआल । (१०) ओछाओन = बिछावन, बिछौना । खड़तरि = जीर्ण शीर्ण चटाई । आओर = और । पालिया = पलंग ।

(२) मूल्य देने पर भी मट्ठा तक तो प्राप्त होता नहीं है, हे मूर्ख घी जैसी वस्तु तो उधार न माँग ।

(४) न तो रहने का स्थान ही मिलता है और न भोजन ही प्राप्त होता है, परन्तु पुरुष की जात तो स्वयं ही लोभी है ।

(६) हे सखी मैं क्या बताऊँ कि आज क्या कौतुक हुआ । कुस्थान पर कान्ह का गौरव गया था खंडित हो गया ।

(८) हे सखी, कान्ह आकर पुआल पर बैठ गये, हे सखी मैं सोच कर भी सेज पर बैठने की बात न कह सकी ।

(१०) जीर्ण शीर्ण चटाई पलंग पर बिछी हुई थी और उसी पर आकर अहीरिनी के नाथ ( कान्ह ) आ कर बैठ गये ।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे गुणमन्त नारी सुन, हम रस रीति की बात को केवल लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं जानता है ।

# अभिसार

## अभिसार

### १०७

धनि धनि चलु अभिसार
सुभ दिन आजु राज पन मनमथ
पाओव कि रीति बिथार ॥२॥
गुरुजन नयन अंध करि आओल
बांधव तिमिर बिसेख ।
तुअ उर फुरत बान कुच लोचन
बहु मंगल करि लेख ॥ ४ ॥
कुलबति धरम करम भय अब सब
गुरु—मंदिर चलु राखि ।
प्रियतम संग रंग करु चिर दिन
फलत मनोरथ साखि ॥ ६ ॥
नीरद बिजुरि बिजुरि सँय नीरद
किंकिन गरजन जान ।
हरखए बरखए फुल सब साखी
सिखि-कुल दुहु गुन गान ॥ ८ ॥

(२) राजपन = राज्य पाया है । बिथार = विस्तार । (४) बिसेख = विशेष । फुरत = फड़कता है । लेख = लेखो, समझो । (६) साखि = शाखी, वृक्ष । (८) नीरद = मेघ । सँय = सँग । सिखि-कुल = मोर ।

(२) हे सखी, हे बाले, अभिसार के लिए चल । हे सखी, आज का दिन बहुत ही शुभ है क्योंकि आज मन्मथ कामदेव ने अपना राज्य पाया है अर्थात तेरे शरीर में पूर्ण यौवन का विकास हुआ है । अतः प्रेम रीति के विस्तार के लिए अभिसार को चल ।

(४) हे सखी, मैं गुरुजनों के नेत्रों पर परदा डाल आई हूँ अर्थात उनको बहका आई हूँ और कुटुम्बी तथा सम्बन्धी इस संबंध में बिल्कुल अंधकार में हैं।

अर्थात उनको इस बात का तनिक भी पता नहीं है। अतः अभिसार ( प्रणय मिलन ) को चलने में कोई भय नहीं है। हे सखी, तेरा बाँधा कुच तथा बाँया लोचन फड़क रहा है, इस लक्षण को बहुत ही शुभ जान कर अभिसार के लिए चल ।

(६) हे सखी, अभिसार को चलते समय कुलवंती स्त्री के समस्त धर्म कर्म तथा भय को गुरुजनों के घर ही छोड़ चल। हे सखी अभिसार को चल और प्रीतम के सँग अनंत काल तक क्रीड़ा कर। तेरा आशा वृक्ष अवश्य फूले फलेगा ।

(८) हे सखी जिस प्रकार मेघ बिजली के साथ और बिजली मेघ के साथ रहती है उसी प्रकार हे राधे तू कृष्ण के संग और कृष्ण तेरे संग अनंत काल तक नित्य विहार करें। हे राधे तेरी किंकणी के बजने की मधुर ध्वनि मेघ गर्जन के समान है। हे राधे तुम्हारे प्रेम-पूर्वक क्रीड़ा करने से जो रस की वर्षा होगी उससे समस्त वनास्पतिक जगत फूल उठेगा और मोरों के झुंड तुम दोनों का गुण गान करेंगे अर्थात तुम्हारी प्रेम-क्रीड़ा से जिस रस का सृजन होगा उससे समस्त संसार पल्लवित हो कर तुम्हारा यशोगान कर उठेगा ।

१०८

कह कर सुन्दरि न कर बेआज।
देखिअ आज अपूरब साज॥ २॥
मृगमद पंक करसि अंगराग ।
कोन नागर परिनत होअ भाग॥ ४॥
पुनु पुनु उठसि पछिम दिसि हेरि।
कखन जाएत दिन कत अछि बेरि॥ ६॥
नूपुर उपर करसि कसि थीर ।
दृढ़ कए पहिरसि तम सम चीर॥ ८॥
उठसि विहँसि हँस तेजिए सार ।
तोर मन भाव सघन अँधियार॥१०॥
भनइ विद्यापति सुनु बर नारि।
धैरज धर मन मिलत मुरारि॥ १२॥

(२) बेआज = छल, कपट, फ़रेब। (४) मृगमद = कस्तूरी । अंगराग = लेप। कोन = कौन, किस। परिनत = परिणित । परिनत होअ भाग = भाग्योदय

हुआ। (६) कत = कितना। (८) करसि = करके। कसि = कस कर। थीर = स्थिर तम सम = काले,कृष्ण वर्ण। (१०) तेजिए सार = सार त्याग कर अर्थात अकारण ही। भाव = भाता है अच्छा लगता है।

(२) हे सुन्दरी बाले, अपने मन की बात कह। छल कपट न कर। आज तो तेरे अपूर्व ठाठ दिखाई देते हैं।

(४) शरीर पर तू ने कस्तूरी का लेप किया है, हे सखी आज किस नागर का भाग्योदय हुआ है।

(६) हे सखी, क्या कारण है कि तू आज बार बार पच्छिम दिशा की ओर देख उठती है तथा बारम्बार पूँछती है कि दिन कब छिपेगा तथा सूर्यास्त होने में अभी कितना समय है।

(८) सखी, तू ने अपने नुपूरों को पैर के ऊपरी भाग में कस कर स्थिर कर लिया है जिससे चलने में वह बजें नहीं और शब्द न हो और हे सखी अन्धकार के समय काले वस्त्र भी तू ने धारण कर रखे हैं। हे सखी इस वेश-भूषा का क्या कारण है तथा किस हेतु तूने यह भेष बनाया है।

(१०) हे सखी, क्या कारण है कि आज तू अकारण ही बार-बार उठ बैठती है, मुस्कराती है तथा हँसती है। इतना ही नहीं आज तुझे सघन अंधकार प्रिय क्यों लग रहा है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरियों में श्रेष्ठ बाले मेरी बात सुन। अपने मन में धैर्य धारण कर, तुझे मुरारी अवश्य मिलेंगे अर्थात मुरारी से तेरा मिलन अवश्य होगा।

## १०६

माधव, धनि आएलि कत भाँति।
प्रेम-हेम परखाओल कसौटी
भादव कुहु तिथि राति ॥ २ ॥
गगन गरज घन ताहि न गन मन
कुलिस न कर मुख बंका
तिमिर-अंजन जलधार धोए जनि
तें उपजावति संका ॥ ४ ॥

भाग भुजग सिर कर अभिनय कर-
झाँपल फनि मनि दीप।
जानि सजल घन से देई चुम्बन
तें तुअ मिलन समीप ॥ ६ ॥
नारि-रतन धनि नागर ब्रजमनि
रस गुन पहिरल हार ।
गोविंद चरन मन कह कवि रंजन
सफल भेल अभिसार ॥ ८ ॥

(२) प्रम,हेम=प्रेम रूपी सुवर्ण। भादव=भादों मास, भाद्रपद। कुहु-तिथि=अमावस्या। (४) गन=गिनती है। कुलिस=कुलिश, बज्र। वंका=बंक, विमुख। तिमिर-अंजन=अंधकार रूपी अंजन। (६) भाग=भागते हुए। भुजग=भुजंग, सर्प। कर=करती है। अभिनय=नृत्य। (८) पहिरल=पहना है।

(२) हे माधव वह बाला अपने प्रेम रूपी सुवर्ण की भाद्रपद की अमावश्या की रात्रि रूपी कसौटी पर परखने के लिए किस प्रकार आवे। अर्थात् हे माधव, भाद्रपद की अमावस्या की घोर अंधकार की घोर अंधकार पूर्ण रात्रि है। यदि बाला अभिसार के लिए आना भी चाहे तो आवे किस प्रकार।

(४) आकाश में मेघ गरज रहे हैं परंतु इसे बाला मन में गिनती नहीं है अर्थात् इस की उसे परवाह नहीं है। हे माधव आज तो वज्रपात भी उसे अपने कार्य से विमुख नहीं कर सकता है। ऐसी अंधेरी रात्रि में होने वाली वर्षा ऐसी प्रतीत होती है मानो अंधकार रूपी अंजन को धो बहाने के लिए जल की धार गिर रही हो। हे माधव इस घनघोर वर्षा से बाला के आने में कुछ शंका होती है।

(६) चलते समय वह बाला हे माधव ऐसी प्रतीत होती है जैसे भागते हुए सर्प के सिर पर मानो नृत्य करती हो अर्थात बाला टेढ़ी मेढ़ी चाल से बच बच कर तेज़ी से चलती है। जिस प्रकार सर्प अपनी मणि को छुपाये रखता है उसी प्रकार बाला ने जलते हुए दीपक को अपने हाथ से छुपा रखा है। वर्षा में आती हुई बाला हे माधव ऐसी प्रतीत होती है मानो जल से भरे बादलों को चुम्बन करती हुई वह तुम्हारे पास मिलन को आ रही हो।

(८) हे माधव, बाला नारियों में मणि के समान है और तुम हे नागर

व्रज रत्न हो। रसिकता और गुण ग्राहकता तुमसे ऐसे अभिन्न हैं मानो तुमने इन गुणों को हार के समान धारण कर रखा हो। कवि रंजन (विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि हे बाले गोविंद के चरण कमलों का मन में ध्यान करके अभिसार के लिये चल।

११०.

चन्दा जनि उग आजुक राति।
पिआ के लिखिअ पठाओब पाँति॥ २॥
साओन सयँ हम करब पिरीत।
जत अभिमत अभिसार क रीत॥ ४॥
अथवा राहु बुझाएब हँसी।
पिबि जनि उगिलह सीतल ससी॥ ६॥
कोटि रतन जलधर तोहें लेह।
आजुक रयनि घन तम कए देह॥ ८॥
भनइ विद्यापति सुभ अभिसार।
भल जनि करथि पर क उपकार॥ १०॥

(२) जनु=नहीं। पठाओब=पठाऊंगी, भेजूंगी। पाँति=पंक्ति, पत्र। (४) साओन=श्रावण मास। सयँ=से। जत=जो। अभिमत=निश्चित, मनोनीत, वांछित। (६) पिबि=पीकर। उंगिलह=उगल दो। (८) देह=दो, दे दो। (१०) करथि=करते हैं। पर=दूसरे।

(२) हे चंद्र देव, आज रात्रि को उदय नहीं होना। आज मैं अपने प्रीतम के पास पत्र लिख कर भेजूंगी।

(४) हे चंद्र मैं श्रावण मास से ही प्रीतम से प्रेम कर रही हूँ और अभिसार करने की भी यही निश्चित रीति है अर्थात् अभिसार के लिए यह मास उपयुक्त है।

(६) हे राहु, यदि मेरी प्रार्थना को अमान्य करके चंद्र उदय न होना स्वीकार न करे तो तुम ही कौतुक वश उसे ग्रस लेना। परंतु हे देव तरस खा कर उस शीतल चंद्रमा को कहीं उगल न देना।

(८) हे जलधर सघन मेघ यदि आज की रात्रि को तुम सघन अंधकार मय कर दो तो मैं तुमको अनगिनती बहुमूल्य रत्न दूंगी। अतः हे सघन मेघ आज की रात्रि को पूर्ण अंधकारमय कर दो।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि यह शुभ अभिसार का समय है और भले व्यक्ति सदैव ही दूसरों का उपकार करते हैं । अतः हे देव घोर अंधकार करके अभिसार में सहायता करो ।

## १११

आजु मोयँ जाएब हरि-समागम
कत मनोरथ भेल ।
घर गुरुजन निंद निरूपइत
चन्दा ऊदल देल ॥२॥
चन्दा भलि नहि तुअ रीति
एहि मति तोहें कलंक लागल
किछु न गुनह भीति ॥४॥
जगत नागरि मुख जितल जब
गगन गेला हारि ।
तहिओ राहु गरास पड़ला
देब तोह कि गारि ॥६॥
एक मास बिहि तोहि सिरिजए
दए सकलओ बल ।
दोसर दिन पुनु पुर न रहसी
ऐही पाप क फल ॥८॥
भनइ विद्यापति सुन तोयँ जुबती
न कर चाँद क साति ।
दिना सोरह चाँद क आइत
ताहि पर भल राति ॥१०॥

(२) जाएब = जाना है । निंद = नींद, निद्रा । निरूपइत = निरूपण करते, विचार करते । निंद निरूपइत = नींद का विचार करते करते अर्थात सोते न सोते । (४) भल = भली, अच्छी । गुनह = गनह, गिनता है । भीति = डर । (६) जितल = जीत लिया, पराजित किया । गेला = गये । तहिओ = वहाँ भी । पड़ला = पड़ गए । (८) बिहि = विधाता, ब्रह्मा । पुर = पूर्ण । रहसी = रहता

है। (१०) साति=शास्ति, निंदा। आइत=आयत, वशीभूत। ताहि पर=उसके बाद, उसके पश्चात।

(२) आज तो मुझे, हे सखी, अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए हरि से मिलने जाना है। परंतु कोढ़ में खाज घर के गुरुजनों के सोते न सोते चंद्रमा उदय हो गया।

(४) हे चंद्रमा तेरी यह रीति ठीक नहीं है। इसी कारण हे चंद्रमा तुझे कलंक लगता है परंतु कलंक के भय की तुझे कुछ परवाह नहीं है।

(६) हे चंद्रमा, संसार में जब स्त्रियों ने अपनी कमनीयता तथा लावण्य से तुम्हारे मुख को जीत लिया अर्थात अपनी मुख श्री से तुमको पराजित कर दिया तब तुम हार कर आकाश में भाग गये। पराजित हो कर भाग जाने के बाद वहाँ आकाश में भी तुम राहु के ग्रास में पड़ गये। तुम तो स्वयं ही पीड़ित हो, अतएव हे चंद्र मैं तुझे गाली क्या दूँ।

(८) हे चन्द्र, एक मास में तो विधाता तेरा सृजन करते हैं और तुझे समस्त बल तथा कलायें प्रदान करते हैं परंतु दूसरे ही दिन तू पुनः पूर्ण नहीं रहता। यह इसी पाप का ही फल है।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे युवती सुन, तू चंद्रमा की निंदा न कर। मास के सोलह दिन ही तो चंद्रमा के वशीभूत होते हैं अर्थात चंद्रमा तो केवल सोलह दिनों तक ही प्रकाश फैलाता है उसके पश्चात तो तेरी प्रिय अंधेरी रात्रि ही रहती है।

## ११२

गगन अब घन मेह दारुन, सघन दामिनि झलकई
कुलिस पातन सबद झनझन, पवन खरतर बलगई ॥२॥
सजनी, आजु दुरदिन भेल।
कंत हमर नितांत अगुसरि, सँकेत-कुंजहि गेल ॥४॥
तरल जलधर बरिख झर झर, गरज घन घनघोर।
साम नागर एकले कइसन पंथ हेरए मोर ॥६॥
सुमिरि मझु तनु अबस भेल जनि अथिर थर थर काँप।
इ मझु गुरुजन नयन दारुन, घोर तिमिरहि झाँप ॥८॥
तुरित चल अब किए बिचारत, जीवन मझू अगुसार।
कवी सेखर बचन अभिसर, किए से बिघिन-बिथार ॥१०॥

(२) घन = घना, निविड़ । पातन = पात होना, गिरना । खरतर = सन सनाती हुई । चलगई = बहर रही है, चल रही है । (४) अगुसरि = अग्रसर हो कर, आगे जा कर । नितांत = बहुत अधिक । (६) तरल = अस्थिर, चंचल । साम = श्याम । (८) मझु = मेरा । अबस = बे बस । इ = यह । (१०) किए = क्या । मझु = मध्य, बीच । अगुसार = अग्रसर हो ओ । विथार — विस्तार ।

(२) आकाश में मेघों के कारण निविड़ अंधकार छा गया है और रह रह कर बादलों में बिजली चमकती है, वज्रपात का झन झन शब्द होता है और अत्यंत तेज़ी से सनसनाती हुई वायु बह रही है । ।

(४) सखी आज का दिन बहुत बुरा है । हमारे प्रियतम हम से बहुत अधिक अग्रसर होकर अर्थात बहुत पहले ही संकेत कुंज को चले गये हैं ।

(६) आकाश में चंचल मेघों से झर झर वर्षा होती है और मेघ रह रह कर गरज उठते हैं, ऐसे समय में हमारे प्रीतम श्याम सुंदर अकेले कैसी आतुरता से हमारी बाट ताकते होंगे ।

(८) हे सखी, उनकी दशा को स्मरण करके मेरा शरीर बेबस हुआ जाता है और मैं अस्थिरता से बार बार काँप उठती हूँ । इधर हे सखी यह हाल है कि एक तो गुरुजनों की तीक्ष्ण दृष्टि से बचकर निकलना कठिन है और दूसरे चारों ओर घोर अंधकार छाया हुआ है ।

(१०) अतः हे सखी, शीघ्र चल, सोच विचार क्या करती है । उठ और जीवन पथ पर अग्रसर हो जा । कवि शेखर कहते हैं कि हे बाले, अभिसार को चल, ऐसे विघ्न विस्तारों की चिंता क्या करनी ।

## ११३

रयनि काजर बम भीम भुजंगम
कुलिस परए दुरबार ।
गरज तरङ्ग मन रोस बरिस घन
संसअ पड़ अभिसार ॥ २ ॥
सजनी, बचन छड़इत मोहि लाज ।
होएत से होओ बरु सब हम अंगिकरु
साहस मन देल आज ॥ ४ ॥
अपन अहित लेख कहइत परतेख
हृदय न पारिअ ओर ।

चाँद हरिन वह राहु कवल सह
प्रेम पराभव थोर ॥ ६ ॥
चरन बेढ़िल फनि हित मानलि धनि
नेपुर न करए रोर ।
सुमुखि पुछओं ताहि सरुप कहसि मोहि
सिनेह क कत दुर ओर ॥ ८ ॥
ठामहि रहिअ घुमि परस चिन्हिअ भूमि
दिग मग उपजु संदेह ।
हरि हरि सिव सिव तावे जाइअ जिउ
जावे न उपजु सिनेह ॥ १० ॥
भनइ विद्यापति सुनह सुचेतनि
गमन न करह विलम्ब ।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
सकल कला अवलम्ब ॥ १२ ॥

(२) बम = वमन करती है, उगलती है। भीम = विशाल, भयंकर। दुरबार = मुश्किल, कठिन। रोस = रोष, क्रोध। (४) अंगिकरु = अंगीकार करूंगी सहन करूँगी। (६) लेख = देख कर। परतेख = प्रत्यक्ष रूप से। ओर = सीमा। वह = वहन करके, धारण करके। कवल = कौर, ग्रास। सह = सहता है। पराभव = पराजय, हार। (८) बेढ़िल = लिपट जाना। फनि = सर्प। मानलि = मान लिया, समझा। रोर = शोर। पुछओं = पूँछती हूँ। सरुप = सत्य। दुर = अन्तिम। (१०) ठामहि = एक ही स्थान पर। घुमि = घूम घूम कर। चिन्हिअ = चीन्हती है, जानी जाती है। (१२) सुचेतनि = बुद्धिमती सुचतुरा। गमन = जाने में।

(२) हे सखी, विशालकाय सर्प के समान रात्रि काजल को वमन करती है अर्थात् रात्रि पूर्णतया अंधकार पूर्ण है। यह अंधेरी रात्रि ऐसे कुठार के समान है जिससे बचना कठिन है। इसके अतिरिक्त हे सखी, मेघ अपने मन में बड़ क्रोध करके गर्जन तर्जन कर रहे हैं। अतः हे सखी, अभिसार को जाना तो तनिक संशय पूर्ण मालूम होता है।

(४) हे सखी, वचन को छोड़ते अर्थात् वचन भंग करते मुझे लज्जा आती है। हे सखी, जो होना होगा वह भले ही हो जाय मैं प्रत्येक परिस्थिति को स्वीकार करूँगी। मेरे मन आज मुझे साहस प्रदान कर।

(६) अपनी बदनामी को समझ कर भी मैं प्रत्यक्ष रूप से कहती हूँ कि कोई भी हृदय की सीमा अर्थात हृदय में उत्पन्न होने वाले प्रेम के परिणाम को नहीं जान सकता है। प्रेम बड़ी अद्भुत वस्तु है। राहु का ग्रास हो जाने पर भी चन्द्रमा अपने प्रिय हरिण रूपी काले धब्बे को धारण किये रहता हैं। अतः हे सखी, प्रेम में पराजय तो है ही नहीं अर्थात् किसी भी विघ्न बाधा से प्रेम का नाश नहीं होता है।

(८) तनिक इस अनुपम प्रेम की झलक देखिये। पैर में सर्प लिपट जाने पर भी बाला ने इस घटना को हितकर ही समझा क्योंकि सर्प लिपट जाने से नूपुर झंकार नहीं करते थे। हे सखी, मैं तुमसे पूँछती हूँ, सत्य सत्य बतलाओ कि प्रेम की अन्तिम सीमा क्या है।

(१०) हे सखी, अन्धकार इतना सघन है कि मैं चारों ओर घूम घूम कर एक ही स्थान पर आ निकलती हूँ। केवल स्पर्श से ही पृथ्वी जानी जाती है अंधकार के कारण दीखती नहीं है। हे सखी अंधकार के कारण मुझे दिशा और राह के विषय में संदेह है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मुझे दिग्भ्रम हो गया हैं जिससे मैं राह भूल जाती हूँ। हे हरि, हे शिव, जब तक किसी के प्रति प्रीत उत्पन्न नहीं होती है तभी तक मन इधर उधर भटकता रहता है और प्रेम हो जाने पर केंद्रीभूत हो जाता है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बुद्धिमति बाले सुन, अभिसार के लिए जाने में विलंब न कर। इस रस रीति को सकल कला निधान राजा शिवसिंह रूपनारायण भली प्रकार जानते हैं।

(११४)

सखि हे, आज जायब मोहिं।
घर गुरुजन डर न मानब
वचन चूकब नहिं॥ २॥
चानन आनि आनि अंग लेपब।
भूषन कए गजमोति।
अंजन बिहुन लोचन-जुगुल
धरत धवल जोति॥ ४॥

धवल बसन तनु भपाएब
गमन करब मंदा ।
जइओ सगर गगन ऊगत
सहस सहस चन्दा ॥ ६ ॥
न हम काहुक डीठि निवारबि
न हम करब ओत ।
अधिक चोरी पर सँय करिअ
एहे सिनेह क सोत ॥ ८ ॥
भन विद्यापति सुनहु जुवती
साहस सफल काज ।
बूझ सिवसिंघ इ रस रसमय
सोरम देवि समाज ॥ १० ॥

(२) चूकब = चूकना, पूरा न करना । (४) चानन = चंदन । बिहुन = विहीन, धरत = धारण करते हैं । धबल = धवल, उज्ज्वल । (६) मंदा = धीरे धीरे । सगर = समग्र, समूचा । (८) निवारबि = निवारण करूँगी, बचाऊँगी । ओत = ओट, परदा । सोत = स्रोत ।

(२) हे सखी, आज मैं अभिसार को अवश्य जाऊँगी । इस सम्बन्ध में हे सखी, मैं घर के गुरुजनों के भय को भी नहीं मानूँगी और प्रीतम को दिये वचनों को अवश्य पूरा करूँगी ।

(४) हे सखी चन्दन लाकर मेरे अंगों पर लेप कर दो और मुझे गजमोतियों के आभूषण धारण करा दो । हे सखी, अंजन विहीन मेरे दोनों नेत्र एक विचित्र उज्ज्वल ज्योति को धारण कर रहे हैं ।

(६) हे सखी; श्वेत वस्त्रों को पहन कर मैं धीरे धीरे अभिसार के लिए गमन करूँगी । हे सखी मैं अभिसार को उस समय गमन करूँगी जब समस्त (समग्र) आकाश में अनगिनती तारिकायें चंद्रमा की उज्ज्वल ज्योति के समान उग आवेंगी ।

(८) हे सखी, अभिसार को जाते समय मैं न तो किसी की दृष्टि बचा कर जाऊँगी और न किसी से ओट करूँगी । क्योंकि हे सखी यह तो प्रेम की निर्मल धारा है इसमें चोरी का क्या काम है ?

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरियों में श्रेष्ठ युवती सुनो, सदैव साहस से ही कार्य में सफलता मिलती है। सुरसिका सोरम देवी के पति राजा शिवसिंह इस रस रीति को भली भाँति जानते हैं।

सोरम देवी—कवि विद्यापति के आश्रयदाता महाराजा शिवसिंह की अनेक स्त्रियाँ थीं—लछमणा देवी (लखिमा देवी व ठकुराइन), मधुवती देवी, सुखमा देवी, सोरम देवी, मेधा देवी तथा रुपिणी। इनके नाम तो विद्यापति की कविताओं में पाये जाते हैं यह ज्ञात नहीं कि इनके अतिरिक्त और भी थीं अथवा नहीं। इन रानियों में से लखिमा देवी प्रायः सबसे बड़ी थी। इन्हीं को राजा शिवसिंह ने पट्ट महिषी बनाया था। अतएव सब कार्यों में इनकी प्रधानता देख पड़ती है। विद्यापति ने इनको सम्बोधित करके कवितायें रची हैं। विद्यापति ने दूसरी रानियों को सम्बोधित करके भी कविता की रचना की है। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

(१) बिद्यापति कबिवर यह गावए, नव जौबन नव कन्ता।
सिवसिंघ राजा एह रस जानए, मधुमति देबि-सुकन्ता।
पदावली पद संख्या ६०.

(२) बिद्यापति कबि गाओल सजनी, रस बझए रसमंत
राजा सिवसिंघ मन दए सजनी, मोदवती देइ कंत ॥
पदावली पद संख्या ९६.

(३) इति उपदेस सुनि गुनि सुमिरल तइखन चलला धाई
मोदवती पति राघवसिंह गति, कबि बिद्यापति गाई ॥
पदावली पद संख्या २०६.

११५

प्रथम जउवन नव गरुअ मनोभव
छोटि मधुमान रजनि।
जागे गुरुजन गेह राखए चाह नेह
संसअ पड़लसजनि ॥ २ ॥
नलिनी दल निर चित न रहए थिर
तत घर तत हो वहार।
बिहि मोर बड़ मंदा उगि जानु जाए चन्दा
सुति उठि गगन निहार ॥ ४ ॥

पथहु पथिक संका पय पय धए पंका
कि करति ओ नव तरुनी।
चलए चाह धसि पुनु पर खसि खसि
जालक छेकलि हरिनी ॥ ६ ॥
साए साए कओन वेदन तसु जाने।
निकुंज बनहि हरि जाइति कओन परि
अनुखन हन पंचवाने ॥ ८ ॥
विद्यापति भन कि करत गुरुजन
नींद निरूपन लागी।
नयेन नीर भरि धीर भपावए
रयनि गमावए जागी ॥ १० ॥

(२) मधुमास = चैत्र मास। (४) दल = पत्ता। निर = नीर, पानी। तुत = तत्काल, फौरन। बहार = बाहर। बिहि = विधाता, भाग्य। सुति = सोकर। (६) पय = पग। धय = धरता है। पंका = पंक, कीचड़। खसि = खोलना। छेकल = छिकी हुई, घिरी हुई। (८) साए = सजनी। हन = मारता है, हनन करता है। (१०) निरूपन = निरूपण।

(२) हे सखी, मेरा यौवन भी प्रथम है, अर्थात यौवन चढ़ाव पर है और इस कारण हृदय के मनोभावों का आधिक्य है, परंतु इसके विपरीत चैत्र मास की सुन्दर रजनी जिसमें पिय से मिलन होना है छोटी है और सम्पूर्ण मनोभावों के पूर्ण रूप से व्यक्त हो सकने की संभावना नहीं है। समस्त गुरुजन जागे हुए हैं, अपने स्नेह को, अपने मनोभावों को मैं किस प्रकार गुप्त रख सकूँगी इसका मुझे बहुत ही संशय है।

(४) जिस प्रकार कमल के पत्ते पर जल बिंदु नहीं ठहराती है उसी प्रकार मेरा चित्त भी स्थिर नहीं है, मैं क्षण में भीतर, क्षण में बाहर जाती हूँ। हे विधाता मेरा भाग्य बहुत मंद है। मैं तो अभागिन हूँ क्योंकि देख, तनिक उठ कर देख तो, चंद्रमा तक उदय हो गये हैं।

(६) जिस प्रकार पथिक कीचड़ में फँस जाने के भय से पथ में सशंकित हो कर संभल संभल कर पग रखता है उसी प्रकार का व्यवहार हे नव तरुणी तू क्यों करती है। बढ़ने को अग्रसर भी होती है और फिर पाँव भी पीछे हटा लेती है। जिस प्रकार जाल में फँसी हरिणी जितना ही जाल से निकल जाना

चाहती है, वह उतनी ही उस जल में फँसती चली जाती है, इसी प्रकार की दशा नवयुवती की है। प्रेम पाश में फाँसी युवति इस जाल से निकल जाना चाहती है परंतु फिर उसी में फँसती जाती है।

(८) हे सजनी, मुझे कौन व्यथा पहुँचाता है, कौन मेरे मन को मथे डालता है, उसे कौन जानता है, माधव किस के लिए बनों कुंजों में घूमते फिरते हैं, और अपने पंचबाणों से हमारा हृदय बींधता है।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी अब हम क्या करें, इधर तो गुरुजन का भय है दूसरे निद्रा भी सताने लगी है। उधर माधव से मिलन की असमर्थता के कारण नयनों में नीर भर भर आता है, समस्त रात्रि जाग कर ही व्यतीत हुई है।

## ११६.

अबहु राजपथ पुरुजन जागि।
चाँद-किरन नभमंडल लागि॥ २॥
सहए न पारए नब नब नेह।
हरि हरि सुन्दरि पड़लि संदेह॥ ४॥
कामिनि कएल कतहु परकार।
पुरुष क बेस कएल अभिसार॥ ६॥
धम्मिल लोल झोंट कए बंध।
पहिरल बसन आन करि छन्द॥ ८॥
अम्बर कुच नहि सम्बरु भेल।
बाजन-जन्त्र हृदय करि लेल॥ १०॥
अइसए मिललि धनि कुंज क माझ।
हेरि न चीन्हइ नागर राज॥ १२॥
हेरइत माधब पड़लन्हि धंद।
परसइत भाँगल हृदय क दंद॥ १४॥
भनइ विद्यापति सुन बर नारि।
दूध-समुद जनि राज-मरालि॥ १६॥

(४) सहए न पारए = सह नहीं सकती है। नब = नव, नया। (६) परकार = प्रकार, उपाय। (८) धम्मिल = केश, वेणी। सं. = धम्मिल्ल। झोंट = झोंटा, जूड़ा। आन = दूसरी। छन्द = तरह, युक्ति, आकार। (१०) अम्बर = वस्त्र।

सम्बरु=संभले, छुपे। बाजनजन्त्र=सितार बाजा। (१४) धंद=संदेह। परसइत=स्पर्श करते ही। भाँगल=भग्न हो गये। दंद=द्वन्द, दुविधा। (१६) समुद=समुद्र। दूध-समुद्र=दूध का समुद्र, क्षीर सागर। मरालि=हंस।

(२) चंद्रमा की किरणों ने यद्यपि समस्त आकाश में फैल कर अपना आधिपत्य जमा लिया है, परंतु हे सखी, राजपथ पर निवासी अब भी जाग रहे हैं।

(४) बाला अपने नवीन प्रेमातिरेक को सह नहीं सकती है इस कारण हे माधव बाला के मन में तुम्हारे मिलन की ओर से संदेह हो गया है।

(६) पुरजनों के जगे होने के कारण तुम से मिलने के लिए बाला ने जानते हो माधव क्या क्या उपाय किये हैं। बाला ने पुरुष का वेश धारण करके अभिसार करने का निश्चय किया है।

(८) बाला ने अपनी चंचल वेणी को साधुओं की जटा के समान बाँधा है और बिल्कुल ही दूसरी प्रकार के वस्त्रों को धारण किया है।

(१०) परन्तु हे माधव कपड़ों से कसे जाने पर भी बाला के कुच छुप नहीं सके। अतः उनको छुपाने के लिए बाला ने अपने हृदय पर सितार वाद्य रख लिया।

(१२) इस प्रकार, इस वेश में बाला और माधव का कुंजों में मिलन हुआ। बाला ने ऐसी चतुरता से वेश बदला था कि परम चतुर नागरों के सिरताज माधव भी उसे देख कर पहिचान न सके।

(१४) बाला को देख कर माधव सन्देह में पड़ गये परंतु बाला का स्पर्श करते ही उनकी शंका दूर हो गई और उन्होंने बाला को पहिचान लिया।

(१६) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे युवती श्रेष्ठ सुन, तुम और माधव इस प्रकार केलि-क्रीड़ा करो, जिस प्रकार राजहंस क्षीरसागर में केलि विलास करते हैं।

## ११७

चरन नूपुर उपर सारी।
मुखर मेखल कर निवारी॥ २॥
अम्बर सामर देह झपाई।
चलहु तिमिर पथ समाई॥ ४॥
समुद कुसुम रभस रसी।
अवहिं उगत कुगत ससी॥ ६॥

आएल चाहिअ सुमुखि तोरा ।
पिसुन-लोचन भम चकोरा ॥ ८ ॥
अलक तिलक न कर राधे ।
अंग बिलेपन करह बाधे ॥ १० ॥
कुसुमित कानन कालिन्दि-तीर ।
तहाँ चलि आओल गोकुल बीर ॥ १२ ॥
तयँ अनुरागिनि ओ अनुरागी ।
दूषन लागत भूषन लागी ॥ १४ ॥
भनइ बिद्यापति सरस कवि ।
नृपति-कुल-सरोरुह रवि ॥ १६ ॥

(२) उपर = ऊपर । मुखर = मुखरा, शब्द करने वाली । मेखल = मेखला, करधनी । निबारी = निवारण की । (४) सामर = श्यामल, काली । तिमिर-पथ = अंधकार पूर्ण रास्ता । समाई = समा कर, घुस कर । (६) कुसुम = फूल । रभस = क्रीड़ा करो । रसी = रस युक्त । कुगत = कुगति, जिसका आगमन अशुभ हो । (८) पिसुन = दुष्ट । भम = भ्रमण कर रहे हैं । (१०) करह बाधे = बाधा कर दो, मत लगाओ । (१२) आओल = आया है । (१४) तयँ = तू ।

(२) हे बाले पैर के नूपुर को साड़ी के ऊपर चढ़ा लो और शब्द करने वाली करधनी को हाथ से इस प्रकार पकड़ो कि वह शब्द न करे ।

(४) और हे बाले काले वस्त्रों में अपनी सुन्दर देह को छुपा लो अर्थात काले वस्त्र धारण करो और अंधकार पूर्ण रास्ते में अन्धकार में घुस कर चलो।

(६) हे बाले इस प्रकार से चल कर पुष्पों के समुद्र में अथवा पुष्पोद्यान में चल कर मनमानी रस युक्त क्रीड़ा करो । हे बाले, शीघ्रता करो अन्यथा थोड़ी ही देर में कुगति चंद्रमा उदय हो जायेगा ।

(८) हे सखी, तेरा प्रीतम अब आना ही चाहता है । तेरे दुष्ट नेत्र उसके दर्शन के लिए चकोर को नाईं चारों ओर घूम रहे हैं ।

(१०) हे राधे, अभिसार को चलते समय अपने मस्तक पर तिलक और पैरों में महावर न लगाओ और अपने शरीर पर अंगराग भी न लगाओ ।

(१२) हे राधे, यमुना किनारे स्थित पुष्प बन में तेरा प्रीतम गोकुल का राज दुलारा आया हुआ है ।

(१४) हे राधे, तू उससे प्रीति करती है और वह भी तेरे प्रति अनुराग रखता है। हे राधे, अभिसार को जाते समय तेरे भूषणों की ध्वनि से पुर निवासियों को तेरे अभिप्राय का अनुमान हो जायेगा और तुझे व्यर्थ कलंक लगेगा।

(१६) सरस कवि (विद्यापति का उपनाम) विद्यापति कहते हैं कि कमल के समान राजवशों के लिए सूर्य समान राजा शिवसिंह इस रस रीति से परिचित हैं।

## ११८

जागल घर पर निंद भेल भोर।
सेज तेजल उठि नंदकिसोर ॥ २ ॥
सघन गगन हेरि नखतर पाँति।
अवधि न पाओल छूटल राति ॥ ४ ॥
जलधर रुचिहर सामर काँति।
जुबति-मोहन-बेस धरु कत भाँति ॥ ६ ॥
धनि अनुरागिन जानि सुजान।
घोर अँधियारे कएल पयान ॥ ८ ॥
पर-नारी पिरित क ऐसन रीति।
चलल निभृत पथ न मानय भीति ॥ १० ॥
कुसुमित कानन कालिन्दि-तीर।
तहँ चलि आओल गोकुल बीर ॥ १२ ॥
कबि सेखर पथ मीलल जाई।
आएल नागर भेंटल राई ॥ १४ ॥

(२) जागल = जागे हुए थे। निंद = नींद, निद्रा। भेल भोर = विभोर हो गये। (४) नखतर = नक्षत्र। अवधि = अन्दाज़, अनुमान। छूटल = छूट गई है, व्यतीत हो गई है। (६) जलधर = मेघ। रुचिहर = रुचि को हरण करने वाले, शोभा को हरने वाले। मोहन = मोहने वाला। (८) पयान = प्रस्थान, गमन (१०) निभृत = निर्जन, ऐकांत, सूना। मानय = मानती है। (१४) मीलल = मिलो। जाई = जा कर। राई = राधा।

(२) घर पर जो जो व्यक्ति जागे हुऐ थे वह सब निद्रा में विभोर हो गये उनको निद्रित देख कर नन्द के किशोर अपनी सेज छोड़ कर उठे।

(४) अंधकार पूर्ण आकाश में नक्षत्रों को देख कर रात्रि कितनी व्यतीत हो गई है इसका अनुमान वह न कर सके।

(६) अपनी श्यामल काँति से नील वर्ण मेघों की शोभा को हरने वाले नन्द के किशोर ने बड़ी तत्परता से युवतियों को मोहने वाले वेश को धारण किया।

(८) बाला को अपने प्रति अनुरक्त जान कर परम चतुर नन्द के किशोर ने घोर अंधकार में उससे मिलने के लिए प्रस्थान किया।

(१०) परकीय बाला के प्रेम व्यापार की ऐसी रीति है कि युवती बाला अकेली रात्रि के समय ऐकांत पथ पर चली जाती है और तनिक भी भय नहीं मानती है।

(१२) हे राधे, यमुना किनारे स्थित पुष्प वन में तेरा प्रीतम गोकुल का राजदुलारा आया हुआ है।

(१४) कवि शेखर (विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि हे राधे परम चतुर नागर तुम से मिलने आया है अतः आगे पथ पर जा कर उससे मिलो।

## ११६

तपन क ताप तपत भेल महि तल
तातल बालू दहन समान।
चढ़ल मनो-रथ भामिनी चलु पथ
ताप तपत नहि जान ॥ २ ॥
प्रेम क गति दुरबार।
नबिन जौबनि धनि चरन कमल जिनि
तइओ कएल अभिसार ॥ ४ ॥
कुल-गुन-गौरब सति जस-अपजस
तृन करि न मानए राधे।
मन मथि मदन महोदधि उछलल
बूड़ल कुल-मरजादे ॥ ६ ॥
कत कत विघिन जितल अनुरागिनि
साधल मनमथ-तंत ।

गुरुजन-नयन निवारइत सुबदनि
पाठ करए मन मंत ॥ ८ ॥
केलि कलावति कुसुम सरिस-कुल
कौसल करल पयान ।
जत छल मनोरथ पूरल मनमथ -
इह कविसेखर भान ॥ १० ॥

(२) तपन = सूर्य । तपत = तपती है, तप्त है । तल = धरातल । तातल = तप्त । दहन = अग्नि । चढ़ल = चढ़ कर । मनो-रथ = इच्छा रूपी रथ । (४) दुरवार = दुर्वार, कठिन । नबिन = नवीन, नया । जिनि = समान । तइओ = तौ भी (६) सति = सती स्त्रियों का । मधि = मध्य । महोदधि = महा समुद्र । उछ-लल = उछलता है, तरंगें लेता है । (८) तंत = तंत्र, मंत्र । सु-बदनि = सुंदर मुख वाली । मंत = मंत्र । (१०) सरिस = सरसी, तालाब । कुल = कूल, किनारे । कौसल = कौशल से, छल से । जत = जो । छल = था ।

(२) हे बाले, सूर्य के प्रचण्ड ताप से पृथ्वी का धरातल तप रहा है और बालू अग्नि के समान गर्म हो गया है । अतः हे बाले, इच्छा रूपी रथ पर चढ़ कर राजपथ से अभिसार के लिए चल और ताप तथा तप्त बालू की तनिक भी परवाह न कर ।

(४) सखी प्रेम का पथ कैसा दुर्वार है कैसा कठिन है । बाला नव यौवन है, उसके चरण कमल के समान कोमल हैं, परन्तु तो भी वह अभिसार के लिए जाने को तत्पर है । ताप के प्रभाव से नवीन कोमल पेड़ पौधे शीघ्र ही कुम्हला जाते हैं परंतु बड़े वृक्षों पर ताप का प्रभाव कम पड़ता है अर्थात् ताप की अधिकता छोटे पेड़-पौधों के लिए अधिक घातक होती है । इसी कारण कवि ने बाला के यौवन को नवीन यौवना कहा है ।

(६) अभिसार की लालसा में राधा ने अपने कुल की मर्यादा तथा गौरव और सती ललनाओं के चरित्र से संबंध रखने वाले यश अपयश को भी तृण के समान मान रखा है । अर्थात् उसे इनकी तृण बराबर भी चिंता नहीं है । इसका स्पष्ट कारण यही है कि राधा के मनो मंदिर में कामदेव रूपी महासागर तरँगें ले रहा है और तरँगों में कुल की मर्यादा गौरव इत्यादि सभी कुछ डूब गया है ।

(८) हे माधव, उसके मिलन मार्ग में जितने भी विघ्न पड़ते जाते हैं उतनी ही वह तुम्हारे प्रति आकर्षित होती जाती है । मानो तुमने उस पर

मन्मथ-तंत्र अर्थात वशीकरण कर दिया है। वह सुन्दर मुख वाली बाला गुरुजनों की दृष्टि से बचती हुई मन ही मन मिलन मंत्र का जाप करती है अर्थात संपूर्ण मन से तुम से मिलने की इच्छा करती है।

(१०) हे माधव, कुसुम सरोवर के किनारे केलि क्रीड़ा करने के निमित्त बाला ने बड़े छल तथा कौशल से प्रस्थान किया है। कवि शेखर कहते हैं कि बाला की इस चेष्टा से कामदेव का मनोरथ पूर्ण रूप से सिद्ध हो गया है।

## १२०.

निअ मंदिर सयँ पग दुइ चारि।
घन घन बरिस मही भर बारि॥ २॥
पथ पीछर बड़ गरुअ नितम्ब।
खसु कत बेरि नहीं अवलम्ब॥ ४॥
बिजुरि-छता दरसावए मेघ।
उठए चाह जल धारक थेघ॥ ६॥
एक गुन तिमिर लाख गुन भेल।
उतरहु दखिन भान दुर गेल॥ ८॥
ए हरि जानि करिअ मोयँ रोस।
आजुक बिलम्ब दइब दिअ दोस॥ १०॥

(२) निअ = निज, अपने। सयँ = से। बरिस = बरस कर। भर = भर गई, प्लावित हो गई। बारि = जल। (४) पीछर = पिच्छिल, फिसलने वाला। खसु = गिर पड़ी। बेरि = दफ़ा। (६) छता = छटा। धारक = धार बाँध कर, मूसलाधार। थेघ = कर। (८) गुन = गुण। उतरहु = उत्तर दिशा। भान = ज्ञान। दुर गेल = दूर हो गया, जाता रहा। (१२) दइब = दैव, विधाता। दिअ = दो, प्रदान करो।

(२) मैं अपने भवन से निकल कर दो चार पग ही गई थी कि घनघोर बादलों से वर्षा होने लगी और सारी पृथ्वी जल से भर गई।

(४) इसके अतिरिक्त हे माधव एक विपत्ति और भी थी। राजपथ पर फिसलन थी और भारी नितंबों के कारण तथा किसी सहारे के न होने से मैं कितनी ही बार राजपथ पर फिसल कर गिर पड़ी।

(६) हे माधव, मेघ उस समय विद्युत छटा दिखा रहे थे और जल धारा बाँध कर अर्थात घनघोर मूसलाधार रूप में बरसना चाहते थे।

(८) उस समय मेघों के घिरे रहने से अंधकार लाख गुना तिमिर हो उठा था और इस कारण हे माधव, उत्तर और दक्षिण दिशाओं का ज्ञान भी नहीं होता था। अर्थात् अंधकार के कारण दिशा-ज्ञान ही नहीं रहा था।

(१०) हे हरि, हे माधव इस कारण मुझ पर क्रोध न करो वरन् आज के विलंब के लिए दैव विधाता ही को दोष दो।

## १२१.

माधव, करिअ सुमुखि समधाने।
तुअ अभिसार कएलि जत सुन्दरि
कामिनि करु के आने ॥ २ ॥
बरिस पयोधर धरनि बारि भरि
रयनि महा भय भीमा।
तइओ चललि धनि तुअ गुन मन गुनि
तसु साहस नहि सीमा ॥ ४ ॥
देखि भवन-भित लिखित भुजँग-पति
तसु मन परम तरासे।
से सुबदनि कर झपइत फनिमनि
बिहुसि आएलि तुअ पासे ॥ ६ ॥
निअ पहु परिहरि अइलि कमल-मुखि
परिहरि निअ कुल गारी
तुअ अनुराग मधुर मद मातलि
किछु न गुनलि बर नारी ॥ ८ ॥
ई रस-रसिक बिनोद क बिन्दक
कबि बिद्यापति गाबे।
काम प्रेम दुहु एक मत भए रहु
कखने की न करावे ॥ १० ॥

(२) समधाने = समाधान करके के = कौन। आने = अन्य, दूसरा। (४) भीमा = भयंकर, डरावनी। तसु = उसके। (६) भित = भित्ति, दीवाल। तरासे = त्रास, भय। से = वह। सुबदनि = सुन्दर मुख वाली। बिहुसि = विहंस कर, प्रसन्नता पूर्वक। (८ निअ = निज, अपने। पहु = प्रभु, पति। गारी = गाली, कलंक सूचक आरोप। मातलि = मतवाली हो कर। गुनलि = गिनती है, परवाह

करती है। बिन्दक=ज्ञाता, जानने वाला—उ० परम साधु परमारथ बिन्दक, संभु उपासक नहिं हरि निंदक। ( तुलसी ) कखने=किस+क्षणे, किस समय, कब।

(२) हे माधव, बाला का समाधान करो अर्थात् बाला से वार्तालाप करके उसे संतुष्ट करो। तुम्हारे संग अभिसार करने की लालसा से आने वाली सुन्दरियों में इस बाला के अतिरिक्त और कौन दूसरी बाला इसके समान है।

(४) हे माधव, घनघोर वर्षा होने के कारण सारी पृथ्वी जल से भर गई थी और रात्रि भी महा भयंकर थी तो भी हे माधव, तुम्हारे गुणों का मन ही मन स्मरण करके यह बाला तुम्हारे पास आई थी। इसका साहस असीम है।

(६) चलते समय अपने भवन की दीवाल पर बनी गरुड़ की आकृति को देख कर बाला के मन में बड़ा भय उत्पन्न हुआ था। परन्तु वह सुन्दर मुख वाली बाला अपने हाथ से मस्तक पर धारण की हुई सर्प की मणि को छुपा कर बड़ी प्रसन्नता तथा उत्सुकता से तुम्हारे पास आई थी।

(८) हे माधव उक्त कमलमुखी बाला अपने पति को छोड़ कर तथा समस्त कुल लज्जा का परित्याग करके तुम्हारे पास आई थी। हे माधव तेरे प्रेम पद में मतवाली होने के कारण वह सुन्दरियों में श्रेष्ठ बाला किसी भी वस्तु की परवाह नहीं करती है।

(१०) इस रस रीति तथा आमोद-प्रमोद के ज्ञाता कवि विद्यापति कहते हैं कि काम वासना तथा प्रेम के एक मत हो जाने पर इनकी सम्मलित शक्ति कब और क्या नहीं करा लेती। मनुष्य इनकी सम्मलित शक्ति के सम्मुख एकदम निरीह तथा बेबस हो जाता है।

## १२२.

राहु मेघ भए गरसल सूर।
पथ परिचय दिबसहि भेल दूर॥ २॥
नहि बरिसए अचसन नहिं होए।
पुर परिजन संचर नहि कोए॥ ४॥
चल चल सुन्दरि कर गए साज।
दिवस समागम सपरत आज॥ ६॥
गुरुजन परिजन डर करु दूर।
बिनु साहस अभिमत नहि पूर॥ ८॥

एहि संसार सार वथु एक ।
तिला एक संगम, जाव जिव नेह ॥१०॥
भनइ विद्यापति कवि कंठहार ।
कोटिहुँ न घट दिवस-अभिसार ॥ १२ ॥

(२) दिवसहि = दिन में ही । (४)अवसन = अवसन्न, समाप्त । (६) सपरत समाप्त होगा । (८) करु = करो । अभिमत = अभिमति, मनोवांछा । पूर = पूर्ण । (१०) वथु = वस्तु । तिला = तिल + एक, एक क्षण । संगम = रति क्रीड़ा । (१२) कोटिहुँ = करोड़ों । घट = घट सकता है, हो सकता है ।

(२) मेघों ने राहु का रूप धारण करके सूर्य को ग्रस लिया है अर्थात मेघों में छुप जाने के कारण सूर्य इतने हीन प्रभ हो गये हैं कि दिन में ही रास्ते की पहिचान दूर हो गई है अर्थात् दिन में ही रास्ता नहीं दिखाई देता है ।

(४) हे सखी, न तो मेघ बरसता ही है और न खुलता ही है तथा गाँव में भी कोई व्यक्ति आता जाता दिखाई नहीं पड़ता है ।

(६) हे सुंदरी, चलो और श्रृंगार करो । आज दिन के समय का मिलन अवश्य ही सफल तथा संपूर्ण होगा ।

(८) हे सुंदरी, गुरुजनों तथा ग्राम निवासियों का डर अपने हृदय से दूर कर दो क्योंकि बिना साहस किये तुम्हारी मनोवांछा पूर्ण नहीं होगी ।

(१०) एक क्षण की रति क्रीड़ा के लिए जीवन भर प्रेम करना (प्रयत्न करना) हे सखी संसार में यही एक सार वस्तु है ।

(१२) कवि कंठहार ( विद्यापति की उपाधि ) विद्यापति कहते हैं कि हे सुंदरी,करोड़ों उपाय करने पर भी दिन के समय अभिसार नहीं हो सकता है ।

## १२३.

आज पुनिम तिथि जानि मोयँ अएलिहुँ
उचित तोहर अभिसार ।
देह-जोति ससि-किरन समाइति
के बिभिनावए पार ॥२॥
सुंदरि अपनहु हृदय बिचारि ।
आँख पसारि जगत हम देखलि
के जग तुअ सम नारि ॥४॥

तोहें जानि तिमिर हीत कए मानह
आनन तोर तिमिरारि ।
सहज विरोध दूर परिहरि धनि
चलु उठि जतए मुरारि ॥६॥
दूति वचन हीत कए मानल
चालक भेल पंचबान ।
हरि-अभिसार चलति कर कामिनि
विद्यापति कवि भान ॥८॥

(२) पुनिम = पूर्णिमा । अएलिहुँ = आई हूँ । समाइति = समा जायेगी, मिल जायेगी । विभिनावए = विभिन्न करना, पृथक करना । (६) हीत = हितु, मित्र । तिमिरारि = तिमिर + अरि, चंद्रमा । जतए = जहाँ । (८) चालक = प्रेरक ।

(२) हे सुंदरी, पूर्णिमा जानकर आज मैं आई हूँ । आज की रात्रि अभिसार के लिए अति उत्तम है । हे सुंदरी, चंद्र किरणों के समान तेरी उज्ज्वल देह चाँदनी में मिल जायेगी और तेरे शरीर को कोई भी उस से विभिन्न न कर सकेगा ।

(४) हे सुंदरी अपने मन में भली प्रकार सोच विचार कर लो, मैंने अपनी आँखों को खोल कर समस्त जगत को ढूँढ मारा है, तेरे समान इस संसार में और दूसरी सुंदरी कौन है ।

(६) हे सुन्दरी, तेरे उज्ज्वल वर्ण होने के कारण अंधकार तुझे अपना मित्र नहीं मानता है अर्थात अंधकार में तेरी उज्ज्वल देह साफ़ पृथक दिखाई देती है कदाचित इसका कारण यह है कि तेरा मुख अंधकार के शत्रु चंद्रमा के समान है । अतः हे बाले स्वभाविक लज्जा विरोध को परित्याग कर के उठ और वहाँ चल जहाँ मुरारी तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

(८) हे सुंदरी, दूती के वचनों को मित्र के सदुपदेश के समान मान और कामदेव के पंचशरों की प्रेरक बन । कवि विद्यापति कहते हैं कि कृष्ण से गुप्त रीति से मिलने के लिए बाला चल दी ।

अंधकार में बाला के उज्ज्वल मुख के न छुप सकने की घटना को लेकर कवि बिहारी ने भी मनोहर उक्तियाँ कहीं हैं। उदाहरण देखिये :—

सघन कुँज, घन घन तिमिर, अधिक अँधेरी रात।
तऊ न दुरिहै श्याम यह, दीप सिखा सी जात ॥१॥
निसि अँधियारी नील पर, पहिरि चली पिय गेह।
कहौ दुराई क्यों दुरै, दीप सिखा सी देह ॥२॥
छप्यो छपाकर छिति छयो, तम ससिहरि न सँभारि।
हँसति हँसति चली ससिमुखी, मुख ते घूँघट टारि ॥३॥

बाला की कमनीय कांति के चंद्र किरणों में घुल मिल जाने तथा दोनों के प्रथक न पहिचाने जा सकने की घटना को लक्ष्य बना कर कवि श्रेष्ठ बिहारी ने एक बड़ी ही मधुर उक्ति कही है :—

जुवति जोन्ह में मिलि गई, नेकु न परति लखाय।
सोंधे के डोरन लगी, अली चली संग जाय ॥

## १२४.

अरुन किरन कछु अंबर देल।
दीप क सिखा मलिन भए गेल ॥२॥
हठ तज माधव जएवा देह।
राखए चाहिअ गुपुत सनेह ॥४॥
दुरजन जाएत परिजन काग।
सगर चतुरपन होएत मलान ॥६॥
भमर कुसुम रमि न रह अगोरि।
केओ नहि बेकत करए निअ चोरि ॥८॥
अपनयँ धन हे धनिक धर गोए।
परक रतन परगट कर कोए ॥१०॥
काब चोरि औं चेतन चोर।
जागि जाए पुर परिजन मोर ॥१२॥
भनइ विद्यापति सखि कह सार।
से जीवन जे पर उपकार ॥१४॥

(४. जएवा देह = जाने दो। गुपुत = गुप्त, छुपा हुआ। (६) सगर = समग्र, सारा, सब। मलान = म्लान, मलिन। (८) रमि = रमण करके, विहार करके।

केओ = कोई भी। चोरि = चोरी। (१०) परक = दूसरे का। (१२) फाबि = फबता है, शोभता है। (१२) चेतन = चैतन्य। (१४) सार = सत्य।

(२) हे माधव, सूर्य की प्रथम किरणों से आकाश कुछ रक्त वर्ण हो गया है और दीप की ज्योति भी मलिन पड़ गई है।

(४) अतः हे माधव हठ छोड़ो और मुझे जाने दो। अपनी प्रेम क्रीड़ा को संसार की दृष्टि से गुप्त रखना हमारे लिए आवश्यक है।

(६) यदि किसी दुर्जन ने परिवार वालों के कान में इस घटना को भनक भी डाल दी तो हे माधव तुम्हारी सारी चतुराई मलिन हो जाएगी अर्थात तुम्हारी चतुराई में बट्टा लग जायेगा।

(८) हे माधव, पुष्पों का रस पान करने के पश्चात भ्रमर उनको अगोर कर नहीं बैठा रहता है और हे माधव न कोई व्यक्ति अपनी चोरी की बात को स्वयं प्रकट ही करता है। अतः हे माधव मुझे जाने दो।

(१०) हे माधव धनी व्यक्ति तो अपने धन को भी छुपा कर रखते हैं दूसरों की थाती रत्न राशि को कहीं कोई प्रकट करता है। अर्थात प्रेम धन से धनी प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रेम रूपी धन को छुपा कर रखता है और जिस के पास दूसरे की प्रेम रूपी थाती हो वह क्या उसे किसी के सम्मुख प्रकट करता है।

(१२) हे माधव, यह सत्य है कि चतुर चोर को ही चोरी शोभा देती है इस कारण मुझे जाने दो। कहीं मेरे कुटुंबी तथा पुरवासी जाग न जायें?

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी,यह जीवन पर उपकार के लिए ही है। केवल यही एक बात इस संसार में सत्य है।

## १२५

दुहु रुप-लावनि मनमथ मोहनि
निरखि नयन भुलि जाय।
रजनि-जनित रति विशेष अलापन
अलप रहल दुहु गाय ॥ २ ॥
चाँचर कुंतल ताहे कुसुम-दल
लोलत आनहि भाँति ।
दुहु-दुहु हेरि मुख हृदय बाढ़ए सुख
बोलत भूलत पाँति ॥ ४ ॥

निज निज मंदिर नागरि नागर
चलइत करु अनुबंध ।
विरह-विषानल दुहु तनु जारल
लोचन लागल धंद ॥ ६ ॥
भीतक चीत पुतुलि सन दुहु जन
रहल बिदायक बेला ।
प्रेम-पयोनिधि उछलि उछलि पड़
चेतन अचेतन मेला ॥ ८ ॥
दुहु जन चीत-रीत हेरि सहचरि
छन छन गगनहि चाय ।
रजनि पोहाओल सब जन जागल
से उर अधिक डराय ॥ १० ॥
सेखर बुझि तब करि कल अनुभव
दुहु सँग भंग कराव ।
निज निज मंदिर गमन करल दुहु
गुरुजन भेद न पाव ॥ १२ ॥

(२) लावनि = लावण्य । अलापन = अल्प । (४) चाँचर = चंचल । ताहे = ताहि, उसके । (६) अनुबंध = आगा पीछा । (८) भीतक = भीत पर लिखी हुई, दीवाल पर बनी हुई । चीत = चित्रित । बिदायक = विदा के समय की । (१०) चाय = चाव, उमंग ।

(२) दोनों का रूप लावण्य इतना सुंदर तथा अनुपम है कि देख कर मन्मथ भी मोहित हो जाता है उनको देख कर पलकों का गिराना तक भूल जाते हैं अर्थात अपलक नेत्रों से ताकते रह जाते हैं । रति की रात्रि विशिष्ठ रूप से अल्प होती है, सुख के समय पलक झपकते ही समाप्त हो जाते हैं और रति क्रीड़ा के पश्चात दोनों शिथिल होकर अलस भाव से सुख सेज पर पौढ़े जाते हैं ।

(४) चंचल केश तथा उनमें गुँथे पुष्प विचित्र प्रकार से हिलते हैं, दोनों एक दूसरे का मुख देख देख कर असीम सुख का अनुभव करते हैं, प्रेमोन्माद की दशा होने के कारण उनके मुख से अटपटे शब्द निकलते हैं, बोलना कुछ चाहते हैं निकलता कुछ है, दोनों प्रेम विह्वल हो रहे हैं ।

(६) अपने अपने गृहों में सुचतुर नागर भली प्रकार से आगा-पीछा सोच कर संपक बुद्धि से सारा कार्य करते हैं, परंतु राधा माधव दोनों विरह ज्वाला से दग्ध हो रहे हैं, विरह रूपी विष उन दोनों के शरीरों को भस्म किये जा रहा है और विरह के फल स्वरूप नयनों से बहती जलधारा के कारण उनके नेत्र के सन्मुख धुंध सा छाया रहता है।

(८) जिस पकार दीवार पर चित्रित पुतली एक बारगी ही जड़ समान होती है उसी प्रकार की दशा दोनों की हो रही है दोनों चित्रलिखित से हो रहे हैं और जो अवस्था प्रेमी और प्रेमिका की विदा के अवसर पर होती है वही दशा इस मिलन के समय उन दोनों की हो रही है। शृंगार में संयोग वियोग का कितना वास्तविक चित्रण है। उन दोनों की चेतनावस्था अथवा अचेतन अवस्था में दोनों के मन में भरा प्रेम समुद्र छलका पड़ रहा है, आग उमग उमग कर निकला पड़ रहा है।

(१०) दोनों यह अनुभव कर रहे हैं कि दोनों की रति केलि की उमंग रस क्रीड़ा का चाव उमग उमग कर आकाश को जा रही है अर्थात अधिकाधिक बढ़ती जा रहा है परंतु इसके साथ ही यह डर उनको खाये जा रहा है कि रात्रि समाप्ति पर है और सभी कवि गुरुजन इत्यादि जागने ही वाले हैं।

(१२) कवि शेखर ( विद्यापती का उपनाम ) विचार करते हैं कि दोनों की रात भंग करने तथा दोनों को प्रथक करने के लिए क्या किया जाय, अतः हे प्रेमी युगल तुम दोनों ऊपर अपने भवनों को पधारो जिससे कि गुरुजन तुम्हारी इस रति क्रीड़ा का पता न पा सके।

# छलना

## छलना

### १२६

मंदिर अछलों सहचरि मेलि ।
परसंगे रजनि अधिक भई गेलि ॥ २ ॥
जब सखि चललहुँ अप्पन गेह ।
तब मझु नींद भरल सब देह ॥ ४ ॥
सूति रहल हम करि एक चीत ।
दैव-बिपाक भेल विपरीत ॥ ६ ॥
न बोल सजनि सुनु सपन-सम्बाद ।
हँसइत केहु जनि कर परिवाद ॥ ८ ॥
बिषाद पड़ल मझु हृदयक माँझ ।
तुरित घोंचायलौं नीबिक काज ॥ १० ॥
एक पुरुष पुनु आओल आगे ।
कोप अरुन आँखि अधरक दागे ॥ १२ ॥
से भय चिकुर चीर आनहि गेल ।
कपाल काजर मुख सिंदुर भेल ॥ १४ ॥
अंतर कहब केह अपजसगाब ।
विद्यापति कह के पतिआब ॥ १६ ॥

(२) अछलों = मैं थी । परसंगे = प्रसंग, वार्तालाप । (४) चललहु = चल दीं । अप्पन = अपने । (६) सूति रहलि = सो रही । । एक चीत = ऐकाग्र चित्त । दैव = दैव योग से । विपाक = फल, परिणाम । (८) सपन = स्वप्न । परिवाद = प्रवाद, शिकायत । (१०) विषाद = खेद, दुःख । घोंचायलौं = शिथिल कर दिया खोल दिया । नीबिक = नीवी का । काज = बंधन । (१२)दागे = दाग दिया, चिन्ह बना दिया । (१४) आनहि = अन्य प्रकार का । (१६) अंतर = हृदय की बात । के = कौन । पतिआब = पतिआयेगा, विश्वास करेगा ।

(२) हे सखी, मैं अपने भवन में थी और सखियों से वार्तालाप करते करते अधिक रात्रि व्यतीत हो गई।

४) जब सब सखियाँ अपने अपने घरों को चली गईं तो नींद आने के कारण मेरी देह में आलस्य भर गया।

(६) अतः हे सखी, मैं एकाग्र चित्त होकर सो गई परंतु दैवयोग से मेरे एकाग्र चित्त होने का परिणाम बिलकुल उल्टा हुआ।

(८) हे सखी, चुप रह, बीच में बोलो मत और मुझ से स्वप्न की कथा सुन। हे सखियो, बात सुन हँसना नहीं, नहीं तो पुरवाली मेरी बदनामी करेंगे, मेरे संबंध में प्रवाद करेंगे।

(१०) हे सखी, इस स्वप्न को देख कर मेरा हृदय दुःख से भर गया। उसी समय हे सखी किसी व्यक्ति ने मेरे लहँगे के नीबी बंध के बंधन को खोल कर शिथिल कर दिया, ऐसा मुझे स्वप्न में भास हुआ।

(१२) इसके पश्चात हे सखी क्रोध से लाल नेत्र किये एक पुरुष मुझे दिखाई पड़ा और उस पुरुष ने अपने दाँतों से मेरे ओष्ठों पर चिन्ह बना दिया।

(१४) हे सखी, उस पुरुष के भय से मेरे केश तथा वस्त्र और प्रकार के हो गए अर्थात अस्त व्यस्त हो गये, नेत्रों का काजल मस्तक पर जा लगा और सिंदूर सारे मुख पर फैल गया।

(१६) हे सखी, अपने हृदय की बात मुझे बता, तेरा अपयश कौन करेगा, किस में सामर्थ्य है कि तेरे संबंध में प्रवाद करे। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले, ऐसी बात का, स्वप्न की घटना का कौन विश्वास करेगा।

## १२७

कुसुम तोरए गेलहुँ जाहाँ।
भमर अधर खँडल ताहाँ॥ २॥
तें चलिएलहुँ जमुना तीर।
पवन हरल हृदय चीर॥ ४॥
ए सखि सरुप कहल तोहि।
आनु किछु जनि बोलसि मोहि॥ ६॥
हार मनोहर बेकत भेल।
उजर उरग संसअ लेल॥ ८॥

तें धसि मजूर जोड़ल झाँप ।
नखर गाड़ल हृदय काँप ॥ १० ॥
भन विद्यापति उचित भाग ।
वचन पाटव कपट लाग ॥ १२ ॥

(२) तोरए = तोड़ने के लिए । गेलहुँ = मैं गई थी । जाहाँ = जहाँ । खंडल = तोड़ दिया, काट लिया । (४) तें = वहाँ से । (६) सरुप = सत्य । (८) उजर = उजले, उज्ज्वल । उरग = सर्प । (१०) मजूर = मयूर, मोर । जोड़ल झाँप = झपट पड़ा । (१२) पाटव = पटुता, चतुरता ।

(२) हे सखी, जहाँ मैं आज पुष्प चुनने के लिए गई थी वहाँ पुष्प चुनते समय एक भ्रमर ने मेरे ओष्ठों को काट खाया । इसी से हे सखी ओष्ठों पर क्षत रेखा है ।

(४) हे सखी, वहाँ से मैं यमुना तीर चली गई, वहाँ खुली वायु लगने से मेरे वस्त्र अस्त व्यस्त हो गये ।

(६) हे सखी, मैं तुमसे बिलकुल सत्य कह रही हूँ । इन सब चिन्हों का दूसरा अर्थ लगा कर मुझसे परिहास न कर ।

(८) हे सखी, पवन द्वारा वस्त्रों के अस्त व्यस्त हो जाने के कारण मेरे गले में पड़ा मनोहर हार प्रकट हो गया । उसे देख कर उज्ज्वल अथवा श्वेत सर्प का सहसा भ्रम होता था ।

(१०) सर्प का भ्रम कराने वाले उज्ज्वल हार को देख कर मयूर मेरी ओर झपट पड़ा और हार रूपी सर्प को पकड़ने के लिए उसने मेरे वक्षस्थल में अपने पंजे गड़ा दिये । मारे भय के मैं तो काँप उठी थी सखी !

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले क्या वाक्चातुर्य्य से कपट की बात छुप सकती है ?

## १२८

सखि हे तोहे हमर बहु सेवा ।
ऐसनि नानि कबहु जनि बोलबि
जाति कुल किए मोर लेवा ॥ २ ॥
गोकुल नगर कान्हु रति-लंपट
जौबन सहज हमारा ।

तुहु सखि रभसि मोहे जनि बोलबि
लोक करब पतिआरा ॥ ४ ॥
केसर कुसुम हेरि हम कौतुक
भुज जुग मेटल ताहि ।
दाड़िम भरम पयोधर ऊपर
पड़लहु कीर लोभाहि ॥ ६ ॥
चकित उभय भुज इति उति पेखल
तैं बेस भए गेल आन ।
इथे परिवाद कहसि मोहे बैरिनि
इह कबि सेखर भान ॥ ८ ॥

(२) बानि = वाणी, बात । किए = क्यों । लेबा = लेती हो, नष्ट करती हो । (४) रभसि = कौतुक वश, दिल्लगी में । (६) मेटल = मसल दिया । (८) उभय = दोनों । पेखल = फेंकने से । बेस = वेश । परिवाद = प्रवाद ।

(२) हे सखी, मैं तुम्हारी बहुत सेवा करूँगी । हे सखी, ऐसी बात मत कहो, मेरी जाति कुल, क्यों नष्ट करती हो ?

(४) हे सखी, गोकुल निवासी कान्ह तो बहुत ही लंपट और रसिक हैं और मैं भोली भाली युवती हूँ । हे सखी, ऐसी बात दिल्लगी में भी मुझ से न कह, यदि पुरजनों ने सुन लिया तो वह उसे सत्य ही मान लेंगे ।

(६) हे सखी, केशर के पुष्प को देख कर मैंने कौतुक वश उसे दोनों हाथों से मसल दिया । इसी कारण मेरे अंगों में अंगराग लगा दीख पड़ता है । हे सखी, मेरे कुचों को अनार समझ कर सुग्गे उस पर लुभा गये । अतः उनकी चोंचों के आघात से कुच क्षत विक्षित हो गये हैं ।

(८) हे सखी, सुग्गे की इस विचित्र हरकत से चकित हो कर मैंने अपने दोनों हाथों को इधर उधर फेंका। इस कारण मेरा वेश दूसरे प्रकार का हो गया है अर्थात अस्त-व्यस्त हो गया है । कवि शेखर कहते हैं कि हे सखी केवल इतनी सी घटना को लेकर ही मेरी बैरिनें तरह तरह के प्रवाद फैला रही हैं ।

## १२६.

खरि नरि-बेग भासलि नाई।
धरए न पारथि बाल कन्हाई ॥ २ ॥
ते धसि जमुना भेलहुँ पार।
फूटल वलआ टूटल हार ॥ ४ ॥
ए सखि ए सखि न बोल मंद।
बिरह बचन बढ़ाए दंद ॥ ६ ॥
कुंडल खसल जमुन माँझ।
जाहि जोहइत पड़लि साँझ ॥ ८ ॥
अलक तिलक तें बहि गेल।
सुध सुधाकर बदन भेल ॥ १० ॥
तटिनि तट न पाइअ बाट।
तें कुच गड़ल कठिन काँट ॥ १२ ॥
भन विद्यापति निअ अपसाद।
बचन-कओसल जितिअ बाद ॥ १४ ॥

(२) खरि = तेज़। नरि = नदी। भासलि = भस गई, बह गई। नाई = नाव। धरए = धारा। पारथि = पार कर सकी। (४) धसि = धँस कर, तैर कर। (६) बिरह = विरस, कठोर। दंद = द्वंद, झगड़ा। (८) खसल = खस गया, गिर गया। जोहइत = खोजते हुए। पड़लि = पड़ गई,हो गई। (१०) अलक = आलता, महावर। सुध = शुद्ध, निर्मल। (१२) तटिनि = नदी, सरिता। तें = वहाँ। काँट = काटा। (१४) अपसाद = पराजय। कओसल = कौशल, चातुर्य। बाद = वाद विवाद, मुक़दमा।

(२) हे सखी यमुना को नौका द्वारा पार करते समय नदी की प्रखर धारा के कारण मेरी नाव बह गई और नाव का केवट बालक कान्ह उसे धारा से पार कराने में असमर्थ रहा।

(४) इस कारण हे सखी, मैंने यमुना को तैर कर पार किया और इसी के फलस्वरूप मेरी चूड़ियाँ फूट गईं और हार टूट गया।

(६) हे सखी, सारी कथा को सुन कर कोई बुरी बात न कह क्योंकि कठोर तथा अप्रिय वचनों से केवल झगड़ा ही बढ़ता है।

(८) हे सखी, यमुना को तैर कर पार करने में मेरे कान का कुंडल उस में गिर पड़ा और उसी को खोजने में मुझे संध्या हो गई।

(१०) पानी में भीगने के कारण मेरे मस्तक का तिलक तथा पैरों की महावर धुल कर बह गई और मेरा मुख निर्मल चंद्र की भाँति बाह्य उपकरणों से शून्य हो गया।

(११) हे सखी अंधकार हो जाने के कारण नदी तट से घर का मार्ग दिखाई न पड़ा और उसे ढूँढने में समय लग गया। मार्ग ढूँढते समय मेरे कुचों में कठोर काँटे चुभ गये और इस कारण मेरे कुच क्षत हो गये हैं।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि बाला अपनी वचन चातुरी से अपने विरुद्ध लगाये गये, अपवाद को जीतना चाहती है।

१३०.

ननदी सरुप निरूपह दोसे।
बिनु बिचार बेभिचार बुझओबह
सासू करतन्हि रोसे ॥ २ ॥
कौतुक कमल नाल सयँ तोरल
करए चाहल अवतंसे।
रोष कोष सयँ मधुकर आओल
तेंहि अधर करु दँसे ॥ ४ ॥
सरवर-घाट बाट कंटक-तरु
देखहि न पारल आगू।
साँकरि बाट उबटि कहु चललहु
तें कुच कंटक लागू ॥ ६ ॥
गरुअ कुंभ सिर थिर नहिं एक था
तें उधसल केस-पास।
सखि जन सयँ हम पाछे पड़लिहु
तें भेल दीघ निसास ॥ ८ ॥
पथ अपबाद पिसुन परचारल
ताथहु उतर हम देला।
अमरख चाहि धैरज नहि रहले
तें गदगद सर भेला ॥ १० ॥

भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
ई सभ राखल गोई ।
ननदी सयँ रस रीति बढ़ावह
गुपुत बेकत नहि होई ॥ १० ॥

(२) सरुप = स्वरूप, आकृति । निरुपह = निरूपण करके, देख कर । करतन्हि = करेगी । (४) सयँ = समेत, सहित । अवतंसे = शिरोभूषण, हार, माला । आओल = आया । तेंहि = उसने । करु दंसे = काट लिया । (६) आगू = आगे । साँकरि = संकरा । उवटि = उवट, विकट मार्ग, ऊँचा-नीचा, ऊबड़-खाबड़—उ० जोरि उवट भुँई परी भलाई, की मरि पंथ चलै नहिं जाई । (जायसी) (८) कुंभ = घड़ा । थिर नहिं थाकए = स्थिर नहीं होता था । (१०) पिसुन = दुष्ट गण । परचारल = प्रचार किया, फैलाया । तथिहु = वहाँ । देला = दिया । अमरख = अमर्ष, क्रोध का आवेग । चाहि = वश । सर = स्वर ।

(२) हे मेरी नंद, तुम मेरी आकृति को देख कर मुझे दोष लगाती हो । यदि तुम बिना विचारे ही इन लक्षणों को व्यभिचार का प्रत्यक्ष प्रमाण समझ लोगी तो मेरी सास मुझ पर क्रोध करेगी ।

(४) हे ननदी, गले में पहिरने के लिए हार बनाने की इच्छा से सनाल कमल पुष्प को तोड़ते समय कमल के भीतरी भाग में से क्रोधित भ्रमर निकला और उसी ने क्रोध वश मेरे ओष्ठों को काट खाया । इसी से हे ननदी मेरे ओष्ठों पर दंत चिन्ह हैं ।

(६) हे ननदी, सरोवर के मार्ग में काँटेदार वृक्षों के नीचे अंधकार होने के कारण मैं आगे का मार्ग न देख सकी । इसके अतिरिक्त मार्ग के संकरे तथा ऊँचा नीचा होने के कारण बच बच कर चलने से मेरे कुचों में काँटे चुभ गये । कुचों पर क्षत रेखा होने का यही कारण है ।

(८) हे ननदी, सिर पर पानी भरे भारी घड़े के स्थिर न होने से मेरी वेणी खुल कर बिखर गई । इस प्रकार मैं सखियों से पीछे रह गई और दौड़ कर उन्हें पाने की चेष्टा करने के कारण मेरी साँस फूल गई । इस कारण हे ननदी मेरी साँस जल्दी जल्दी आ रही है ।

(१०) हे ननदी मार्ग में दुष्ट व्यक्ति मेरे चरित्र के विरुद्ध नाना प्रकार के प्रवाद फैला रहे थे । उन प्रवादों को सुन कर मैंने वहीं उनको उत्तर दिया ।

क्रोध के आवेश में मेरी वाणी में धैर्य नहीं रहा और इस कारण मेरा स्वर गद्गद् हो रहा है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सर्वश्रेष्ठ सुंदरी सुनो, इन सब बातों को गुप्त ही रखो और हे बाले अपनी ननदी से प्रीति तथा प्रेम बढ़ाओ उसी की सहायता से गुप्त बातें प्रकट नहीं हो सकेंगी।

१३१.

जाहि लागि गेलि हे ताहि कहाँ लइलि हे
ता पति वैरि पितु काहाँ।
अछलि हे दुख सुख कहह अहन मुख
भूषन गमओलह जाहाँ॥ २॥
सुंदरि, कि कए बुझ ओब कंते।
जन्हिका जनम होइत तोहे गेलिहु
अइलि हे तन्हिका अंते॥ ४॥
जाहि लागि गेलहु से चलि आएल
तें मोयँ धाएल नुकाई
से चलि गेल ताहि लए चललिहु
तें पथ भेल अनेआई॥ ६॥
संकर - वाहन खेड़ि खेलाइत
मेदिनि - वाहन आग।
जे सब अछलि सँग से सब चललि भँग
उबरि अएलँहु अति भागे॥ ८॥
जाहि दुइ खोज करइ छथि सासुन्हि
से मिलु अपना संगे
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
गुपुत नेह रति-रंगे॥ १०॥

कवि विद्यापति द्वारा रचित यह पद श्लेष का उत्तम नमूना है। कवि ने श्लेष का आश्रय स्थान स्थान पर लिया है। इस श्लेष पद के दो अर्थ निकलते हैं एक माधव पक्ष में और दूसरा जल पक्ष में। अतः अर्थ भी दोनों पक्षों में दिया जा रहा है। भाषा तथा शब्दों पर आधिपत्य का यह अनूठा उदाहरण

है। हिंदी में बहुत कम कवियों ने श्लेष पद लिखे हैं। कवि सेनापति ने अपने "कवित्त रत्नाकार' की एक तरंग में केवल श्लेष कवित्त ही लिखे हैं। परंतु सेनापति के आविर्भाव से २५० वर्ष पूर्व रचित इस श्लेष पद की महत्ता और भी अधिक हो जाती है ?

(२) जाहि लागि = जिसके लिए, जल के लिए। कहाँ लइलि = कहाँ लाई, नहीं लाई। ता पति = पति का, उसके पति ( समुद्र )। बैरि = बैरी, शत्रु, प्रेम का प्रतिद्वंदी, समुद्र का बैरी अर्थात अगस्त्य। पितु = पिता, जन्म दाता, अगस्त्य का पिता, घट घड़ा। अहन = अपने। गमओलह = खो दिये, गँवा दिये। (४) जन्हिका = दिवस। जनम होइत = जन्म होते ही, निकलते ही। तन्हिका = उसके, दिवस के। अंते = दिवस के अंत समय, संध्या का। (६) से = वह प्रीतम, वह जल वर्षा। चलिआएल = चला आया, वर्षा आ गई। से चलि गेल = जब प्रीतम चला गया, जब वर्षा चली गई अर्थात थम गई। (८) ईकर = वाहन = बैल वृषभ। खेलाइत = खेल रहे थे, लड़ रहे थे। मेदिनि-वहन = पृथ्वी का भार वहन करने वाला, कृष्ण सर्प। भँग = छिटक कर। उबरि = बच कर, छुटकारा पाकर। भागी = भागती हुई, भाग्य से। (१०) जाहि दुइ = जिन दोनों की, मेरी और प्रीतम की; जल और घड़ा। संगे = साथी, प्रीतम, समान वस्तुएँ ?

माधव पक्ष में

(२) हे सखी जिस माधव के मिलन के कारण मैं वहाँ गई थी तू उसे लिवा कर कहाँ लाई। परंतु हे बाले, यह तो बता कि तेरे पति का प्रेम-प्रतिद्वंदी तथा तेरे मन में मिलन की आशा का जन्म दाता है कहाँ ? हे बाले रति क्रीड़ा की मस्ती में जहाँ तूने अंगराज तथा वस्त्राभूषण इत्यादि गँवाये हैं उस रस क्रीड़ा के आन्दोल्लास का वर्णन तुम अपने ही मुख से करो।

(४) हे सुन्दरी क्या बात बना कर अपने पति को समझाओगी ? दिवस के उदय होते ही तुम घर से गई थीं और अब दिवस का अंत होने पर पलटी हो। इस बीच कहाँ रहीं ?

(६) हे सखी जिस प्रियतम से मिलने मैं गई थी वह स्वयं ही वहाँ आ गया और उसने दौड़ कर मुझे अपने अंक में छुपा लिया। जब मेरे साथ की सहेलियाँ चली गईं तब मैं प्रीतम के साथ वहाँ से चली। मार्ग में माधव ने हे सखी, मेरे साथ बहुत अन्याय किया।

(८) पृथ्वी का भार वहन करने वाले साक्षात माधव आगे आगे थे और मैं उनकी गौओं से खेलती तथा हँसते भर क्रीड़ा करती आई। मार्ग में माधव को अन्याय करते तथा छेड़ छाड़ करते देख कर मेरे संग की सहेलियाँ इधर उधर चली गईं और मैं माधव से छुटकारा पाकर भागती हुई चली आई हूँ।

(१०) हे बाले, सब सखियाँ अपनी अपनी सखियों से मिल गई हैं और तुम्हारी सास तुम दोनों—तुम्हारी और माधव, की खोज में हैं। कवि विद्या-पति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ युवती सुनो, तुम गुप्त रीति से किये गये प्रेम तथा रति क्रीड़ा के चिन्हों से रंगी हुई हो अर्थात गुप्त प्रेम तथा रति क्रीड़ा का प्रभाव स्पष्ठ रूप से लक्षित होता है।

२. जल-पक्ष में

(२) हे सखी, मैं जल लाने के लिए वहाँ गई थी परंतु हे बाले, यह तो बता कि तेरा समुद्र के वैरी (अगस्त्य) का पिता (घड़ा) कहाँ है ? हे बाले, जहाँ तेरे अंगराग इत्यादि नष्ट हो गये हैं वहाँ के दुख सुख की बात स्वयं अपने ही मुख से कहो।

(४) हे बाले, क्या बात बना कर अपने पति को समझाओगी ? सूर्य के उदय होते ही तुम घर से गईं थीं और अब दिवस का अंत होने पर तुम पलटी हो। इस बीच कहाँ रहीं ?

(६) हे सखी, मैं तो जल के लिए गई थी सो जल स्वयं ही आ गया अर्थात वर्षा होने लगी और इस कारण मुझे दौड़ कर छुप जाना पड़ा। उसके जाने पर अर्थात वर्षा थम जाने पर मैं उसे (जल को) ले कर चली परंतु हे सखी उसके कारण—वर्षा के कारण—सारा पथ अन्य प्रकार का हो रहा था।

(८) हे सखी, मार्ग में बैल (सांड) आपस में लड़ रहे थे और वर्षा के कारण निकला सर्प मेरे आगे आगे जा रहा था। मेरे संग की सब सहेलियाँ इधर उधर छिटक कर भाग गईं। सखी, मैं तो बड़े भाग्य से ही बच कर आई हूँ।

(१०) जिन दोनों—जल और घड़े—की खोज मेरी सास जी कर रहीं हैं वह तो हे सखी, अपने अपने साथियों से मिल गये। वर्षा के कारण घड़ा फूट गया, घड़े का जल वर्षा के जल में मिल गया और घड़े की मिट्टी पृथ्वी में मिल गई। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सर्व श्रेष्ठ सुन्दरी सुन, तू किसी के प्रेम में गुप्त रूप से रंगी हुई है। अर्थात वर्षा, मिट्टी तथा कीचड़ के चिन्ह स्पष्ट रूप से तेरे शरीर पर दिखाई देते हैं।

# मान

१३२.

## मान

खनहि खन महँघि भइ किछु अरुन नयन कइ
कपट धरि मान सम्मान लेहि।
कनक जयँ प्रेम कसि पुनु पलटि बाँक हँसि
आधि सयँ अधर मधु-पान देहि ।।२।।
अरेरे इन्दुमुखि अढ़ न कर पिअ हृदय खेद हर
कुसुम-सर रंग संसार सारा ।।३।।
वचन बस होसि जनु ससरि भिन्न होइत तनु
सहज वरु छाड़ि देव सयनसीमा।
प्रथमे रस भंग भेल लोभे मुख सोभ गेल
बाँधि भुज-पास पिय धरव गीमा ।।५।।
जदि नयन-कमल-वर मुकल कल कान्ति धर
खरनखर-घात कइ सेहे बेला ।
परम पद लाभ सम मोद चिर हृदय रम
नागरि सुरत-सुख अमिअ मेला ।।७।।
सरस कवि सुरस भन चारु तर चतुरपम
नारी आराहिअइ पंचबान ।
सकल जन सुजन गति राम लखिमाक पति
रूप नरायन सिवसिंघ जान ।।६।।

(१) महँघि = मँहई, भारी। जयँ = जैसे, समान। आधि = टाल मटोल करके। (३) अढ़ = अड़, हठ, ज़िद। कुसुम-सर = पुष्प वाण वाले, कामदेव। (५) सयन = बंधन। गीमा = ग्रीवा, गर्दन। (७) मुकुल = कमल। कल = कली। कान्ति = रूप। खर = प्रखर। नख = रख का। सेह = उसी। बेला = समय। अमिअ = अमिय, अमृत। (६) आराहिअइ = अराधिये, प्रार्थना करना।

(२) हे बाले, माधव से मिलन होने पर क्षण क्षण के पश्चात अपने आप को माधव से उच्च तथा गुरुतर दिखाने की चेष्टा करना और अपने नेत्रों को कुछ लाल कर लेना अर्थात क्रोध युक्त मुद्रा धारण कर लेना और इस प्रकार मान का कपट करके माधव से सम्मान प्राप्त करना। हे बाले, माधव के प्रेम को सुवर्ण की भांति कसौटी पर परखना फिर कुछ मुख फेर कर मुस्कराना तथा कटाक्ष करना और हे सुन्दरी बड़ी टाल मटोल करने के पश्चात ही माधव को अपने अधरामृत को पान करने देना।

(३) दूसरी सखी वचन—हे चंद्र मुखी बाले हठ न कर और मान भंग करके अपने प्रीतम के हृदय के दुख का नाश कर। हे बाले, आज तो समस्त संसार कामदेव के रंग में रंगा हुआ है।

(४) पहली सखी वचन—हे बाले, हे सखी, कहीं माधव के वचन चातुरी-पाश में न फंस जाना क्योंकि प्रीतम के संसर्ग से, प्रीतम के साथ समागम से, तन की दशा कुछ और ही हो जाती है। हे बाले, स्वभाविक रूप से ही अपने प्रेम बँधन को ढीला कर दो। इस प्रकार से राधा माधव की प्रथम रस क्रीड़ा मिलन भँग हो गई। माधव राधा के मुख की शोभा को देख उस पर लुभा गये अर्थात अनुरुक्त हो गये, इस कारण प्रीतम ने बाला को अपने भुजपाश में लपेट कर गले से लगा लिया।

(७) सखी वचन माधव प्रति--हे राधव यदि बाला के नेत्र रूपी कमल कली का रूप धारण करने लगें अर्थात आलस्य वश यदि उसकी आँखें झिपने लगें तो उसी समय नख का तीव्र प्रहार करना। परमपद को प्राप्त करने की उत्कर्ष अभिलाषा के समान प्रसन्न चित्त से बाला के साथ रमण करना क्योंकि हे माधव चतुरा बाला के साथ सहवास करने का सुख अमृत के समान सुखकारी होता है।

(६) सरस कवि (विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि हे मनोहारिणी चतुरा बाला कामदेव पंचबान की आराधना करो क्योंकि कामदेव ही समस्त प्राणियों तथा रसिकों का अवलम्बन है एक मात्र सहारा है। लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह रूपनारायण ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के समान इस मर्म को जाना है!

## १३३

लोचन अरुन बुझल वड़ भेद।
रयनि उजागर गरुअ निवेद ॥ २ ॥
ततहि जाइ हरि न करह लाथ।
रयनि गमओलह जन्हिके साथ ॥ ४ ॥
कुच कुँकुम माखल हिय तोर।
जनि अनुराग राँगि करु गोर ॥ ६ ॥
आनक भूषण तोर कलङ्क।
वड़ ओ भेद मन्द ओ परसङ्क ॥ ८ ॥
चिटि-गुड़ चुपड़लि राड़क पोरि।
लओले लाथ बेकत भेल चोरि ॥ १० ॥
भनइ विद्यापति वजवहु वाद।
वड़ अपराध मौन पए साध ॥ १२ ॥

(२) बुझल = बता देते हैं। उजागर = जागरण। निवेद = निवेदन करना, बताना। (४) लाथ = बहाना। (६) माखल = लिपटा हुआ है। राँगि = रँग कर, डूब कर। करु = काला। गोर = गोरा, गौर वर्ण, उज्ज्वल। (८) आनक = अन्य के। (१०) चिटि—गुड़ = गुड़ पर लिपटी चींटी। पोरि = पौर, घर। लओले लाथ = बहाना करने पर भी। (१२) बजबहु = बजना यहाँ आशय है बोलना। वाद = व्यर्थ।

(२) हे माधव, लाल नेत्र समस्त रहस्य को स्वयँ ही प्रकट कर देते हैं। तुम्हारे अरुण नेत्रों से मैंने सारा भेद जान लिया है। उनकी लाली रात्रि के अधिक जागरण को बताती है।

(४) हे हरि, हे माधव, जिसके साथ तुमने रात्रि व्यतीत की है उसी के पास जाओ। व्यर्थ का बहाना बना कर धोखा देने की चेष्टा न करो।

(६) हे माधव, जिसके साथ तुमने रात्रि व्यतीत की है उसके कुचों पर लगा केशर तुम्हारे वक्षस्थल पर लिपटा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है मानो उस बाला ने अनुराग के रँग में रंग कर तुम्हारे वक्षस्थल को काले से गोरा बना दिया है।

(८) हे माधव, तन की यह दशा तथा रति क्रीड़ा को लक्षित करने वाले

यह भूषण ( नेत्रों की लाली तथा अँगराग) किसी दूसरे व्यक्ति के लिए गर्व का विषय हो सकते हैं परन्तु तुम्हारे लिए तो यह कलंक स्वरूप हैं। इस प्रकार की संगति तुम्हारे लिए बुरी बात है।

(१०) हे माधव, जिस प्रकार शूद्र के घर में यत्न पूर्वक रखे गुड़ की गंध पाकर चीटियाँ उसे चट कर जाती हैं उसी प्रकार यत्न पूर्वक बहाने बना कर चोरी को छुपाने पर भी वह प्रकट हो ही गई।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माधव व्यर्थ के वाद विवाद से क्या लाभ। बड़े से बड़े अपराध का निवारण मौन धारण कर लेने से हो जाता है। मौन अर्ध सम्मति। मौन अपराध की स्वीकृत भी है और क्षमा की प्रार्थना भी। अतः हे मोहन व्यर्थ का वाद विवाद बंद करके मौन धारण करो।

नेत्रों द्वारा रहस्य भेदन को बिहारी ने भी समझा है और स्थान-स्थान पर उसका वर्णन भी किया है। एक दोहा देखिये :—

आज कछू औरे भये, ठये नये ठिकठैन।
चित के हित के चुगुल में, नित के होहिं न नैन॥

कविवर सेनापति ने तो उलाहनों की झड़ी सी लगा दी है :—

याके भौन बसे, तौन कीजे, हौं न मानौं रोस,
कहौ एती कौन तैं सकुच उर आनी हैं।
सेनापति आवत बनावत हौ प्रात बात,
निपट कुटिल सब कपट की बानी हैं।
तेरे काज दीन रहैं, तो बिन मलीन हम,
तोही सौं अधीन, हाथ तेरेई बिकानी हैं।
रावरे सुजान ! हम बावरे अजान, कीजै
ताही सौं सयान जे कहावति सयानी हैं।

एक दृष्य और देखिये :—

आए परभात सकुचात, अलसात गात,
जाउक तिलक लाल भाल पर लेखिये।
सेनापति मानिनी के रहे राति; मनि नीके,
ताही तैं अधर रेख अंजन की रेखियै॥
सुख रस भीने, प्रान प्यारी बस कीने पिय,
चिन्ह ए नवीने परतछ्छ अछ्छ पेखियै।

होत कहा नींदै, एतौ रैनि के उनींदे अति,
आरसीलै नैना आरसी लै क्यों न देखियै ॥

एक और भी चित्र देखिये :—

नीके रमनी के उर लागे नख-छत, अरु
घूमत नयन, सब रजनि जगाए हौ ।
आए परभात, बार-बार हौं जँभात, सेना
पति अलसात, तऊ मेरे मन भाए हौ ।

१३४

कुकुम लओलह नख-खत गोइ ।
अधरक काजर अएलह धोइ ॥ २ ॥
तइओ न छपल कपट-बुधि तोरि ।
लोचन अरुन बेकत भेल चोरि ॥ ४ ॥
चल चल कान्ह बोलह जनु आन ।
परतख चाहि अधिक अनुमान ॥ ६ ॥
जानओं प्रकृति बुझओं गुनसीला ।
जस तोर मनोरथ मनसिज-लीला ॥ ८ ॥
बचन नुकावह बेकतओ काज ।
तोय हँसि हेरह मोय बड़ लाज ॥ १० ॥
अपथहु सपथ बुझावह राधे ।
कोन परि खेओम सठ अपराधे ॥ १२ ॥
भनइ विद्यापति पिअ अपराध ।
उद्‌घट न कर मनोरथ साध ॥ १४ ॥

(२) लओलह = लगा कर । अधरक = अधर का । अएलह = आये हो । (४) छपल = छिपती है । (६) परतख = प्रत्यक्ष । (८) जानओं = जानती हूँ । (१०) नुकावह = छुपाते हो । हेरह = देखने से । (१२) अपथहु = बुरी राह । कोन परि = किस प्रकार । खेओम = क्षमा करूँ । (१४) उदघट = उद्घाटन, प्रकट । साध = इच्छा ।

(२) हे माधव, नायिका ने अपने नखों से बकोट कर जो चिन्ह तुम्हारे वक्षस्थल पर बना दिये थे उनको तुम अंगराग लगा कर छुपा लाये हो तथा

नायिका के नेत्रों का चुम्बन करने से जो काजल तुम्हारे अधरों पर लग गया था उसे धो आये हो ।

(४) परन्तु हे माधव, इतना कष्ट उठाने पर भी तुम्हारा छल कपट छुप नहीं सका है । तुम्हारे लाल लाल नेत्र तुम्हारी चोरी को प्रकट कर रहे हैं।

(६) हे कान्ह, रहने दो, बहाना न करो । प्रत्यक्ष को अनुमान की आवश्यकता क्या है ?

(८) हे माधव, मैं तो तुम्हारी प्रकृति तथा गुण, शील सबसे भली भाँति परिचित हूँ । और हे माधव यही नहीं वरन तुम्हारे मनोरथ तथा कामदेव की विचित्र लीलाओं से भी मैं परिचित हूँ ।

(१०) अपनी प्रत्यक्ष करनी को बातें बना कर छुपाने की चेष्टा करते हो माधव । जब तुम हंस कर मेरी ओर देखते हो तो मुझे तो लज्जा आती है ।

(१२) हे माधव, बुरी राह जाने पर भी शपथ खा कर राधा को बहकाना चाहते हो । तुम्हारे इस घृणित अपराध को किस प्रकार क्षमा करूँ ।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे राधे, अपने प्रीतम के अपराध को प्रकट न कर वरन् उसे गुप्त रख कर अपनी इच्छा पूर्ण कर ।

कवि कुल गुरु श्री सूरदास ने भी एक स्थल पर माधव का यही रूप चित्रित किया है । उनके माधव तथा विद्यापति के माधव में किंचित मात्र अन्तर नहीं है ।

आजु हरि रैनि उनींदे आए ।
अंजन अधर, ललाट महाउर, नैन तमोर खवाए ॥
गुन बिनु माल बिराजत उर पर, चंदन खौरि लगाए ।
मगन देह, सिर पाग लटपटी जावक रंग रंगाए ॥
हृदय सुभग नख रेख बिराजत, कंकन पीठि बनाए ।
सूरदास प्रभु यहै अचंभव तीन तिलक कहँ पाए ॥

इस क्षेत्र में कविवर सेनापति भी पीछे नहीं हैं, परन्तु उनकी नायिका मान करने के स्थान पर परिहास से काम लेती है और इस कारण नायक को लज्जित होना पड़ता है ।

जाउकौ लिलार ता के पाउ कौ अधर नैन
अंजन है आज मन रंजन लसत हौ ।

बारी हौं तिहारी छवि ऊपर बिहारी, मेरे
तारन कौं प्यारे सुधा-रस बरसत हौ ॥
छूजियै न पाइ हौं तौं सेवक हौं सेनापति,
प्रानपति मेरे तुम जीतै सरसत हौ।
मान बिन सारौ, सरबस वारि डारौं, लाल
वारौं ए चरन जे चरन परसत है ॥

अथवा बिन ही जिरह, हथियार बिन ताके अब,
भूलि मति जाहु सेनापति समझाए हो।
करि डारी छाती घोर घाइन सौं राती-राती
मोहिं धौं बतावौ कौन भाँति छूटि आए हौ ॥
पौढ़ौ बलि सेज, करौं औषद को रेज बेगि।
मैं तुम जियत पुरबिले पुन्य पाए हौ।
कीने कौन हाल। वह वाधिनि है बाल ! ताहि
कोसति हौं लाल, जिन फारि-फारि खाए हौ।

इस क्षेत्र में बिहारी ने भी दूर की दौड़ लगाई है। ज़रा उनके भी दो चार दोहे देखिये :—

जिहि भामिनि भूषन रच्यौ, चरण महाउर भाल ।
वही मनौ अँखियाँ रंगी, ओंठनि के रंग लाल ॥
मोहिं करत कत बावरी, किये दुराव दुरै न ।
कहें देत रँग राति के, रँग निचुरत से नैन ॥
पल सोहैं पगि पीक रंग, छल सो हैं सब बैन।
बल सौहैं कत कीजियत, ए अलसौहैं नैन ॥
रह्यौ चकित चहुँधा चितै, चित मेरो मति भूलि।
सूर उदै आये रही, दृगन साँझ सी फूलि ॥
तरुन कोकनद बरन बर, भये अरुन निसि जागि।
वाही के अनुराग दृग, रहे मनौ अनुरागि ॥ इत्यादि

बिहारी की सतसई में ऐसे चित्रों की भरमार है। कितने ही अनूठे दृश्य उपस्थित किये जा सकते हैं परन्तु उदाहरण के लिए उपरोक्त ही काफ़ी हैं। सतसई तो ऐसे चित्रों की खान है।

## १३५

आध आध मुदित भेल दुहु लोचन
बचन बोलत आध आधे।
रति आलस सामर तनु झामर
हेरि पुरल मोर साधे ॥ २॥
माधव, चल चल चलतिन्हि ठाम।
जसु पद-जावक, हृदयक भूषन
अबहू जपत तसु नाम ॥ ४॥
कत चंदन कत मृगमद कुंकुम
तुअ कपोल रहु लागि।
देखि सौति अनुरुप कएल बिहि
अतए मानिए बहु भागि ॥ ६॥

(२) मुदित = मुंदे हुए। सामर = श्यामल। झामर = मलीन। पुरल = पूरी होती है। साधे = साध, अभिलाषा। (४) तन्हि = उसी। अनुरूप = समान (६) बिहि = विधाता। अतए = इसी में।

(२) हे माधव, आपके नेत्र रात्रि जागरण के कारण आधे मुंदे हुए हैं और तुम्हारे मुख से अटपटे शब्द निकल रहे हैं। काम क्रीड़ा-जनित थकावट से आपका श्यामल तन मलीन हो रहा है परन्तु उसे देख कर हे माधव, मेरे मन की अभिलाषा पूर्ण होती है।

(४) माधव, जाओ उसी के घर जाओ जिसके पाँव की महावर को अपने वक्षस्थल पर आभूषण की नाईं धारण किये हुए हो और जिसका नाम बार-बार तुम्हारे मुख से निकल पड़ता है।

(६) हे माधव, जितना भी चंदन और जितनी भी कस्तूरी उस बाला के मस्तक पर लगी होगी वह सब की सब तुम्हारे कपोलों पर लग गई है। हे माधव, मैं तो इसी में अपना सौभाग्य मानती हूँ कि विधाता ने मुझे एक योग्य तथा रूप गुण में मेरे अनुरूप सौत दी है।

श्री सूरदास ने भी इसी भाव को लेकर अनूठे पद कहे हैं। एक पद देखिये :—

लाल उनींदे नैन भये।
राजत हैं रतनारे नैना मानहु नलिन नए॥
पीक कपोल ललाट महाउर बंदन बलित खए।
जनु तनु जाये संघ अरुन दल मनसिज बीज बए॥
बिनु गुन हार पयोधर' मुद्रा हृदय सुदेस ठए।
अंजन अधर सुमंत्र लिख्यो रति-दीक्षा लेन गए॥
सूरदास बिथुरे कच मुख पर नख नाराच हए।
ता ऊपर आनंद-इंदु जनु मानहुँ समर जए॥

एक चित्र और देखिये—

आजु बने ब्रज तें बन आवत।
जद्यपि हैं अपराध भरे हरि देखि तऊ मोहिं भावत॥
नख-रेखा मुक्तावलि के तट अंग अनूप लसी।
मनो सुरसरी ईस सीस तें लै विधुकला धसी॥
केलि करत काहू जुवती कर कुमकुम भरि उर दीन्हों।
मनो भारती पंचधार ह्वै नभ तें आगम कीन्हों।
निरखत अंग सूर के प्रभु को प्रकट भई तिरबेनी।
मन बच करम दुरित नासन को मानहु स्वर्ग-नसेनी॥

एक चित्र और भी देखिये

भोर भए मुख देखि लजाने।
रति की केलि-बेलि सुख सींचति सोभित अरुन नैन अलसाने॥
काजर रेख बनी अधरन पर नैन कपोल पीक लपटाने।
मनहुँ कंज ऊपर बैठे अलि उड़ि न सकत मकरंद लुभाने॥
है हिय हार अलंकृत बिनु गुन आप सुरति रन जीति सयाने।
सूरदास-प्रभु पाय धारिए जानति हौं पर हाथ बिकाने॥

बिहारी ने तो इस रंग में रस की धारा सी बहा दी है। उनके दोहे छोटे होने पर भी खूब चुटकी लेते हैं। उनमें वर्णित व्यंग अनुपम है।

पलनि पीक अंजन अधर धरे महाउर भाल।
अजु मिले सु भली करी भले बने हौ लाल॥

मोहू से बातनि लगे लगि जहि जिहि नाँय।
सोई लै उर लाइये लाल लागियत पाँय॥
पावक सो नैननि लगै जावक लाग्यो भाल।
मुकुर होहुगे नेकु में मुकुर विलोको लाल॥ इत्यादि

१३६.

सुन सुन सुन्दरि, कर अवधान।
बिनु अपराध कहसि काहे आन॥२॥
पुजलौं पसुपति जामिनि जागि।
गमन विलम्ब भेल तेहि लागि॥४॥
लागल मृगदम कुंकुम दाग।
उचरइत मंत्र अधर नहि राग॥६॥
रजनि उजागर लोचन घोर।
ताहि लागि तोहे मोहे बोलसि चोर॥८॥
नवकवि सेखर कि कहब तोय।
सपथ करह तब परतीत होय॥१०॥

(२) अवधान = मनोयोग, ध्यान। काहे=क्यों। (४) पुजलौं = पूजन किया। जामिनी=यामिनी, रात्रि। (६) लागल=लग गये। राग = लालिमा। (८) उजागर=जागरण से। घोर=भयानक,रक्त वर्ण,लाल। ताहि लाग=इसी कारण। बोलसि=बोलती हो, कहती हो। (१०) कि = क्या।

(२) हे सुन्दरी सुन और मेरी बात पर ध्यान दे। हे सुन्दरी बिना अपराध के ही ऐसी उल्टी सीधी तथा दूसरी प्रकार की बातें क्यों कह रही हो।

(४) हे सुन्दरी, मैंने तो सारी रात्रि जागरण करके देवाधिदेव महादेव का पूजन किया था इसी कारण यहाँ आने में मुझे इतनी देर लग गई।

(६) मैंने कस्तूरी और केशर से महादेव का पूजन किया था, शरीर पर लगे दाग उसी के हैं। और हे सुन्दरी सारी रात्रि भर मंत्र उच्चारण करने से मेरे ओष्ठों की लालिमा नष्ट हो गई है।

(८) हे सुन्दरी, सारी रात्रि जागने के कारण मेरे नेत्र लाल हो गये हैं कदाचित इसी लालिमा के कारण ही तुम मुझे चोरी लगाती हो, मुझे झूठा बताती हो।

(१०) हे सुन्दरी और अधिक क्या कहूँ कदाचित शपथ खाने से तुझे मेरी बात का विश्वास हो जाये।

## १३७.

ए धनि माननि करह संजात।
तुअ कुच हेम-घट हार भुजंगिनि
ताक उपर धर हात ॥२॥
तोहे छोड़ि जदि हम परसब कोय।
तुअ हर-नागिनि काटब मोय ॥४॥
हमर वचन यदि नहिं परतीत।
बुझि करह साति जे होय उचित ॥६॥
भुज-पास बाँधि जघन-तर तारि।
पयोधर पाथर हिय दह भारि ॥८॥
उर-कारा बाँधि राख दिन-राति।
बिद्यापति कह उचित इह साति ॥१०॥

(२) संजात = संयत करो, क्रोध छोड़ो। तुअ = तुम्हारे। (४) ताक = उसके। उपर = ऊपर। (६) साति = शास्ति, दण्ड। उचीत = उचित। (८) पास = पाश, जंजीर। तर = नीचे, तले। तारि = ताड़ना करके, ठोक पीट कर। पाथर = पत्थर। दह = दे दो। भारि = भारी। (१०) उर-कारा = हृदय रूपी कारागार। राख = रखो। इह = यह।

(२) हे मानिनी बाले, अपने आप को संयत करो और क्रोध छोड़ो। यदि मेरी बात का विश्वास न हो तो मुझ से शपथ ले लो। हे बाले, सुवर्ण घट के समान तुम्हारे कुच तथा गले में पड़ी हार रूपी सर्पिणी के ऊपर हाथ रख कर शपथ खाता हूँ। शास्त्रों में सुवर्ण को स्पर्श करके शपथ लेना प्रमाणित माना जाता है। इस प्रकार शपथ के बहाने माधव बाला के कुचों को स्पर्श करना चाहते हैं।

(४) हे बाले मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि यदि मैं तेरे अतिरिक्त और किसी बाला को स्पर्श करूँ तो तेरे गले में पड़ी माला सर्पिणी बन कर मुझे डस ले।

(६) हे बाले, यदि अब भी मेरे वचनों पर तुझे विश्वास न हुआ तो भली भाँति सोच समझ कर जो दण्ड उचित समझो मुझे दो।

(८) हे बाले, सब से उत्तम दण्ड तो यह है कि मुझे अपनी भुजा रूपी ज़ंजीर से बाँध अपनी कदली खम्भ के समान जाँघों के बीच दबा कर मेरी ख़ूब ताड़ना करो और इसके पश्चात मेरे ऊपर अपने कठोर स्तन रूपी भारी पत्थर रख कर मुझे दबा दो।

(१०) हे सुन्दरी, यदि इससे भी मन न भरे तो अपने हृदय रूपी कारागार में मुझे दिन रात बांध कर रखो। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी, ऐसे अपराधों के लिए यह दण्ड समुचित है।

वाह नटनागर कैसी विलक्षण तुम्हारी शपथ है और दण्ड भी कैसा विलक्षण सोचा है। तुम्हारी लीला की बलिहारी नटनागर।

## १३८

अरुन पुरब दिसा बितलि सगर निसा
गगन मगन भेला चंदा।
मूदि गेलि कुमुदिन तइयो तोहर धनि
मूदल मुख अरबिंदा ॥२॥
चाँद बदन कुबलय दुहु लोचन
अधर मधुरि बिरमान।
सगर सरीर कुसुम तोय सिरिजल
किए दहु हृदय पखान ॥४॥
अस कति करह ककन नहिं पहिरह
हार हृदय भेल भार।
गिरि सम गरुअ मान नहिं मुंचसि
अपरुब तुअ बेवहार ॥६॥
अवगुन परिहरि हेरह हरखि धनि
मानक अबधि बिहान।
राजा सिबसिंघ रूप नरायन
कबि बिद्यापति भान ॥८॥

बितिल = बीत गई व्यतीत होगई। सगर = समग्र, तमाम। मगन = मग्न हो गया, डूब गया। मूदि गेलि = मुंद गई। मूदल = मुंदा हुआ है। (४) कुबलय =

कुवलय, नील कमल । बिरमान = विद्यमान, विराजमान । तोयँ = तुझे । सिरि-जल = सिरजा है, बनाया है । किए = क्यों । दहु = दिया है । पखान = पाषाण, पत्थर । (६) अस = ऐसा । कति = क्यों । ककन = कंकण । मुँचसि = छोड़ती है । (८) हरखि = हर्ष समेत, प्रसन्नता से । मानक = मान की । बिहान = प्रातः काल ।

(२) हे सुन्दरी, पूर्व दिशा में लाली छा गई है तथा सारी रात्रि व्यतीत हो गई है । आकाश में चन्द्रमा भी अस्त हो गया है । हे सुन्दरी, रात्रि व्यतीत हो जाने से कुमुदनियाँ मुँद गई हैं परन्तु हे बाले, तेरा मुख कमल अभी क्यों मुंदा हुआ है, विकसित क्यों नहीं हुआ है ।

(४) हे सुन्दरी तेरा मुख कमल के समान और नेत्र नील कमल के समान हैं तेरे लाल ओष्ठों पर मानो मधुरी पुष्प विराजमान है । हे सखी प्रतीत तो यह होता है कि विधाता ने तेरे समस्त शरीर का पुष्पों से ही सृजन किया है परन्तु न जाने तुझे पत्थर के समान कड़ा हृदय क्यों दिया है ?

(६) हे सुन्दरी, ऐसा क्यों करती है । कंकण तो धारण करती नहीं है परन्तु अपने वक्षस्थल पर भार स्वरूप हार को धारण किये हुए है । हे बाले, तेरा व्यवहार बहुत अद्भुत है । पहाड़ के समान भारी मान को छोड़ती क्यों नहीं है ।

(८) हे सुन्दरी, माधव के अवगुणों को परित्याग करके उसकी ओर प्रसन्न मुख से देख । हे बाले, मान रूपी रात्रि के प्रातःकाल होने का समय आ गया है अर्थात मान को त्यागने का समय आ गया है । कवि विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिंह रूपनरायन इस रस रीति से परिचित हैं ।

## १३९.

मदन-कुंज पर बइसल नागर
बृन्दा सखि मुख चाहि ।
जोड़ि जुगुल कर बिनति करए कत
तुरित मिलावह राहि ॥२॥
हम पर रोखि बिमुख भइ सुन्दरि
जबहु चललि निज गेहा ।
मदन-हुतासन मझु मन जारल
जीब न बाँधइ थेहा ॥४॥

तुअ आत चतुर सिरोमनि नागर
तोहे कि सिखाओब बानि ।
तुहु बिनु हमर मरम कोन जानत
कइसे मिलाएब आनि ॥ ६ ॥
चन्दन चाँद पवन भेल रिपु सम
बृन्दावन बन भेल ।
कोकिल मयूर झंकार देत कत
मझु मन मनमथ सेल ॥ ८ ॥
छल छल नयन बयन भरि रोअत
चरन पकड़ि गहि जाब ।
हा हा से धनि हमए न हेरब
सिंह भूपति रस गाव ॥ १० ॥

(२) बइसल = बैठा है। चाहि = देखता है। राहि = राधा। (४) रोखि = रोष करके। मदन—हुतासन = कामाग्नि। जारल = जला रही है। थेहा = स्थिरता। (६) बानि = बात। (८) सेल = शूल। (१०) बयन = हिचकी।

(२) हे सुन्दरी, तेरा प्रीतम नागर मदन कुंज में बैठा है और आशापूर्ण नेत्रों से सखियों के मुखों को निहार रहा है। हे सुन्दरी, अपने दोनों हाथ जोड़ कर बार बार वह सखियों से तुरन्त ही राधा को मिलाने के लिए प्रार्थना कर रहा है।

(४) हे सुन्दरी, माधव कह रहे हैं कि जब से राधा मुझ पर क्रोधित हो कर तथा मुझ से विमुख हो कर अपने घर को चली गई है उस समय से कामाग्नि मेरे शरीर को भस्म किये दे रही है और मेरा चित्त स्थिर नहीं होता है।

(६) माधव सखियों से कहते हैं कि हे सखियो, तुम तो परम चतुरा नागरी हो तुमको नई बात क्या सिखाऊं। तुम्हारे अतिरिक्त हमारे हृदय की बात और कौन जान सकता है, इसलिये किसी प्रकार से भी राधा को लाकर मुझ से मिलावो।

(८) हे सखी, राधा के वियोग में शीतल चन्दन, चन्द्रमा तथा मन्द पवन सभी तो मेरे शत्रु के समान हो गये हैं। हमारा क्रीड़ास्थल वृन्दावन साधारण बन के अनुरूप हो गया है। कोकिला तथा मयूर की वाणी मेरे हृदय में कामदेव के शूल के समान पीड़ा देती है।

(१०) हे सुंदरी, माधव के नेत्रों से झर झर आँसू गिर रहे हैं और वह हिचकियां ले ले कर रो रहे हैं। यही नहीं वह तो सखियों के चरण पकड़ कर प्रार्थना कर रहे हैं। हे सुन्दरी, हमसे तो माधव की यह दशा देखी नहीं जाती है। कवि भूपति सिंह इस रस को गाते हैं।

कविकुल गुरु सूरदास ने भी इसी प्रसंग को लेकर समूचे भ्रमर गीत की रचना कर डाली है। दोनों में अंतर केवल इतना ही है कि विद्यापति ने माधव को विरह वेदना सखियों से कही है और श्री सूरदास ने गोपियों की विरह वेदना उद्धव से निवेदन कराई है। घटनावली वही है अंतर केवल वक्ता और श्रोता का है। सूरदास का एक पद देखिये :—

बिन गोपाल बैरिन भई कुँजैं
तब ये लता लागत अति सीतल अब भई विषय ज्वाल की पुंजैं।
वृथा बहति जमुना खग बोलत वृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं।
पवन पानि धनसार सजीवनि दधि सुत किरन भानु भईं भुंजैं।
ये उधो कहियो माधव सों विरह करद कर मारद लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भईं बैरन ज्यों गुंजैं।

भ्रमर गीत ऐसे चित्रों से भरा पड़ा है, यही विषय उसकी आधार भूत है। विरह के प्रसंग में और चित्र दिखाये जाऐंगे।

## १४०.

माधव, इ नहि उचित बिचार।
जनिक एहन धनि काम-कला सनि
से किअ करु व्यभिचार ॥ २ ॥
प्रानहु ताहि अधिक कए मानब
हृदयक हार समान।
कोन परजुगति आन के ताकब
की थिक तोहर गेआन ॥ ४ ॥
कृपन पुरुष के केओ नहि निक कह
जग भरि कर उपहास।
निज धन अछइत नहिं उपभोगब
केवल परहिक आस ॥ ६ ॥

भनइ विद्यापति सुनु मथुरा पति
इथिक अनुचित काज ।
माँगि लायब वित से जदि हो नित
अपन करब कोन काज ॥ ८ ॥

(२) इ = ऐसा । जनिक = जिसकी । एहन = ऐसी । सनि = समान । किए = क्यों । (४) मानब = मानते हैं । परजुगति = प्रयुक्ति, प्रयोजन । थिक = है । (६) निक = नीक, अच्छा । अछइत = रहते । परहिक = दूसरे की । (८) वित = धन, द्रव्य ।

(२) हे माधव, तुम्हारा ऐसा विचार उचित नहीं है । काम की कला के समान जिसकी स्त्री हो वह अन्य से व्यभिचार क्यों करे ?

(४) हे माधव, जिस बाला को तुम प्राणों से भी अधिक करके मानते हो तथा जो हृदय पर धारण किये हुए हार के समान तुमको प्रिय है उसके होते किस प्रयोजन से अन्य स्त्री की ओर ताकते हो, हे माधव, क्या यही तुम्हारा ज्ञान है ।

(६) जिस प्रकार कृपण पुरुष को कोई भी अच्छा नहीं समझता वरन उसका उपहास ही होता है उसी प्रकार यह संसार तुम्हारा उपहास करेगा माधव । कृपण का उपहास इसी कारण होता है कि वह अपने धन के रहते उस का उपभोग नहीं करता हैं केवल दूसरों से सहायता की आशा रखता है । तुम्हारी भी माधव यही दशा है ।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे मथुरा पति सुनो; तुम्हारा यह कार्य सर्वथा अनुचित है । हे माधव यदि माँगा हुआ धन नित्य रहता अर्थात यदि मँगनी की वस्तु से ही काम चल जाता तो लोग अपने धन के लिए क्यों कष्ट उठाते ।

## १४१.

बिरह ब्याकुल बकुल तरु तर
पेखल नंद—कुमार रे ।
नील नीरज नयन सयँ सखि
ढरइ नीर अपार रे ॥ २ ॥

पेखि मलयज-पङ्क मृगमद
तामरस घनसार रे।
निज पानि पल्लव मूँदि लोचन
धरनि पड़ अँसभार रे ॥ ४ ॥
वहइ मंद सुगंध सीतल
मंद मलय समीर रे।
जनि प्रलय कालक प्रबल पावक
दहइ सून सरीर रे ॥ ६ ॥
अधिक बेपथ टूटि पड़ खिति
मसृन मुकुता - माल रे।
अनिल तरल तमाल तरु वर
मुंच सुम नस जाल रे ॥८ ॥
मान - मनि तजि सुदति चलु जहि
राए रसिक सुजान रे।
सुखद स्रुति अति सरस दण्डक
कवि विद्यापति भान रे ॥ १० ॥

(२) बकुल = मौलश्री। (४) मलयज = चंदन। तामरस = कमल-सियरे बदन सूखि गए कैसे, परसत तुहिन तामरस जैसे। (तुलसी)। पानि = हाथ। (६) दहइ = दाह करती है। सून = शून्य। (८) बेपथ = व्यथित। मसृन = चिकना अनिल = वायु। तरल = चंचल। मुँच = गिरते हैं। सुमनस = सुंदर पुष्प। (१०) सुदति = सुदती, सुंदरी, उ० (१) धीर धरो सोच न करो मोद भरो यदु-राय, सुदति सँदेसे सनि रही अधरनि में मुसुकाय। (शृंगार सतसई) (२) भौन भरी सब संपति दंपति श्री पति ज्यौं सुख सिंधु में सोवैं, देव सो देवर प्राण सो पूत सु कौन दशा सुदती जिहि रोवैं। (केशव)। राए = राई, राधा। स्रुति = सुनने में। दण्डक = दण्डक छंद।

**(२) हे सुंदरी, आज मैंने विरह से व्याकुल नन्द के कुमार को मौलश्री के पेड़ के नीचे देखा। हे सखी, उनके नील कमल के समान नेत्रों से झर-झर आँसू गिर रहे थे।**

**(४) हे सुंदरी, तेरे तन पर धारण कराये जाने वाले अंगराज, कस्तूरी,**

कपूर तथा कमल पुष्प इत्यादि वस्तुओं को देख कर अपने दोनों हाथों से नेत्रों को मूँद व्याकुल हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े।

(६) शीतल, मंद, सुगंधित, मलय समीर प्रलय कालीन प्रबल अग्नि के समान उनके शून्य शरीर को दाह करती है। तेरे विरह में ऐसी दशा हैं उनकी।

(८) अधिक व्यथित होने के कारण उनके गले में पड़ी मोतियों की माला टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ी है। वायु द्वारा आँदोलित होने पर तमाल वृक्ष के पुष्प जिस प्रकार गिर कर बिखर जाते हैं उसी प्रकार माधव भी पृथ्वी पर व्याकुल तथा व्यथित पड़े हैं।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि अतएव हे सुंदरी, मधुर दण्डक छंद के समान कर्ण प्रिय अर्थात मधुर वाणी बोलने वाली राधे, हे रसिक सुजान मान छोड़ और माधव के पास चल।

## १४२.

रामा, कि अब बोलसि आन
तोहर चरन सरन से हरि
अबहु मेटह मान ॥ २ ॥
गोबर्धन गिरि बाम कर धरि
कएल गोकुल पार
बिरह से खिन करक कंकन
गरुअ मानए भार ॥ ४ ॥
दमन काली कएल जे जन
चरन जुगल - बरे।
अब भुजंगम भरम भूलल
हृदय हार न धरे ॥ ६ ॥
सहज चातक छाड़ए न बरत
न बइसे नदि तीर।
नाबन जलधर-बारि बिनु
न पिबए ताहरि नीर ॥ ८ ॥

(४) कएल = किया। खिन = क्षीण। करक = कर का, हाथ का। गरुअ = अधिक। (६) जन = पुरुष। वरे = श्रेष्ठ। भूलल = भूल कर, भ्रम से। (८) बरत = व्रत। बइसे = बैठता है। नबिन = नवीन।

(२) हे सुंदरी, क्या अन्य बात बोलती हो। माधव तुम्हारे चरण शरण आये हैं अब तो मान को त्यागो।

(४) हे सुंदरी, जिस माधव ने अपने बायें हाथ पर गोबर्धन धारण करके समस्त गोकुल को विपत्ति से उबारा था वही माधव विरह के क्षीण हो जाने के कारण अपने हाथ के कंकण को भी अति भारी मान रहे हैं।

(६) हे सुंदरी, जिस पुरुष रत्न ने अपने श्रेष्ठ चरण कमलों से काली नाग का दमन किया था वही माधव गले के हार को सर्प के भ्रम से धारण नहीं करते हैं। उनको विरह के कारण मति भ्रम हो रहा है।

(८) हे सुंदरी, जिस प्रकार चातक न तो अपना व्रत छोड़ता है, न नदी तीर बैठता है और न नवीन बादलों से बरसने वाले जल के अतिरिक्त किसी और नीर को ही पीता है उसी प्रकार हे सखी, माधव भी अनन्य रूप से तुम्हारे प्रति अनुरक्त हैं।

## १४३

सखि हे बूझल कान्ह गोआर।
पितरक टाँड़ काज दहु कओन लह
ऊपर चकमक सार॥ २॥
हम तो कएल मन गेलहि होएत भल
हम छलि सुपुरुख भाने
तोहर वचन सखि कएल आँखि देखि
अमिअ-भरम बिष पान॥ ४॥
पसुक संग हुन जनम गमाओल
से कि बुझथि रति रंग।
मधु-जामिनि मोर आज बिफल गेलि
गोप गमारक संग॥ ६॥
तोहर वचन कूप धसि जाएब
तैं हमे गेलहु अघाट।

चंदन भरम सिमर आलिंगल
सालि रहल हिय काँट ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति हरि बहु वल्लभ
कएल बहुत अपमान ।
राजा सिवसिंह रुपनरायन
लखिमा पति रस जान ॥ १० ॥

(२) गोआर = गोहार कर, पुकार कर । पितरक = पीतल का । टाँड = बहाँ पर पहिरने का आभूषण । (४) कएल = कहती हैं । गेलहि = जाने से । भल = भला । अमिय = अमृत । (६) मधु जामिनि = मधु यामिनि, वसंत ऋतु की रात्रि ! गेलि = हो गई । गमारक = गँवार । (८) अबाट = कुबाट, कुपथ । सिमर = सेंमल ।

(२) राधा वचन सखी प्रति—हे सखी, कान्ह से पुकार कर अर्थात निश्चय पूर्वक यह पूछो कि उन्होंने चमचमाती पालिश वाला परंतु पीतल का टाँड मुझे क्यों दिया । अर्थात कान्ह का प्रेम ऊपर से तो बड़ा भव्य तथा वास्तविक दिखाई पड़ता है परंतु वास्तव में वह एक साधारण वरन् बहुत ही सस्ती, झूँठी तथा निरर्थक वस्तु है ।

(४) हे सखी, मैंने तो मन में विचारा था कि कान्ह के पास जाने से, तथा प्रेम करने से अवश्य भला होगा । इसी कारण उन महापुरुषों को मैंने देखा भी था । मैं तो उनको वास्तव में महापुरुष ही समझती थी । हे सखी, तुम्हारे वचनों पर विश्वास करके अपनी आँखों के रहते भी मैंने अमृत के धोखे में विष पान कर लिया ।

(६) हे सखी, मेरा तो सारा जीवन पशुओं के संग रहने से बरबाद हो गया, वह भला रति रंग की बातों को क्या जाने । हे सखी, गोप गँवारों के संग रहने से वसन्त ऋतु की सुखद रात्रि बेकार हो गई ।

(८) हे सखी, तेरे वचनों पर विश्वास करके मैं तो कुँए में गिर पड़ी हूँ, सीधा मार्ग त्याग कर कुपथ पर आ पड़ी हूँ । हे सखी, चंदन के भ्रम से मैंने सेंमल को अपनाया इसी बात का दुख मेरे हृदय में बराबर पीड़ा देता है ।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी अनेकों स्त्रियों के पति माधव, ने हमारा बहुत अपमान किया है, अर्थात हम से प्रेम कर के हमें गौरवान्वित

करने के स्थान पर लज्जित किया है। लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह रुपनारायण इस रस को जानते हैं।

## १४४.

मधु सम बचन कुलिस सम मानस
प्रथमहि जानि न भेला।
अपन चतुरपन पिसुन हाथ देल
गरुअ गरब दुर गेला ॥ २ ॥
सखि हे, मंद प्रेम परिनामा।
बड़ कए जीवन कएल अपराधिन
नहि उपचर एक ठामा ॥ ४ ॥
झाँपल कूप देखिहि नहिं पारल
आरति चललहु धाई।
तखन लघूगुरु किछु नहिं गूनल
अब पछतावक जाई ॥ ६ ॥
एक दिन अछलहु आन भान हम
अब बूझिल अबगाहि।
अपन मूँह अपने हम चाँछल
दोख देब गए काहि ॥ ८ ॥
भनइ बिद्यापति सुनु बर जौवति
चित्त गनब नहिं आने।
पेमक कारन जीउ उपेखिए
जग जन के नहिं जाने ॥ १० ॥

( २ ) कुलिस = वज्र। मानस = मानती है। दुर गेला = दूर कर दिया। ( ४ ) उपचर = उपचार, शांति। (६) आरति = जल्दी से। तखन = उसी क्षण गूनल = गुना, समझा। (८) आन भान = अनजान, नासमझ। चाँछल = छील लिया। दोख = दोष। देब = दें। ( १० ) पेमक = प्रेम के। उपेखिए = उपेक्षण उपेक्षा की।

(२) हे सखी, माधव के मधु के समान मीठे वचन अब वज्र के समान कठोर मालूम होते हैं। हे सखी, अपनी समस्त चतुराई पशु समान हृदयहीन

व्यक्तियों के हाथों में सौंप देने से मेरा तो समस्त गर्व दूर हो गया है।

(४) हे सखी, प्रेम का परिणाम तो बुरा होता ही है। इस जीवन में प्रेम जैसा अपराध करने के कारण मुझे किसी स्थान पर शांति नहीं मिलती है।

(६) हे सखी, तेज़ चलने के कारण, अर्थात सोच-विचार किये बिना ही शीघ्रता से कार्य करने के कारण, मुझे प्रेम रूपी बंद कुआँ देख नहीं पड़ा और मैं उसमें गिर गई। उस समय तो मैंने छोटी बड़ी अर्थात् किसी भी बात को कुछ नहीं समझा था, कुछ भी सोच विचार नहीं किया था इस कारण अब पछताने से क्या होता है।

(८) हे सखी, उस समय तो मैं अनजान, ना समझ थी परंतु अब तो प्रेम की गहराइयों को खूब डूब कर अर्थात् भली भाँति समझ गई हूँ। मैंने तो स्वयं अपने शिर को अपने हाथों ही छीला था अर्थात् स्वयं अपने हाथ से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी थी अतः दोष मैं किसको दूँ।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सर्व श्रेष्ठ सुंदरी सुन, तू अपने मन में कुछ और न समझ। तूने प्रेम के कारण अपने प्राणों तक की उपेक्षा की है, संसार का कौन व्यक्ति इस बात को नहीं जानता है।

## १४५.

माधव, दुर्ज्जय मानिनि मानि।
बिपरित चरित पेखि चकरित भेल
न पुछल आधहु बानि ॥ २॥
तुअ रूप साम आखर नहि सूनए
तुअ रूप रिपु सम मानि।
तुअ जन सयँ सम्भास न करई
कइसे मिलाएब आनि ॥ ४॥
नील बसन बर, काँचन चुरि कर
मौतिक माल उतारि।
करि-रद चुरि कर मोति माल बर
पहिरल अरुनिम सारि ॥ ६॥

असित चित्र उर पर छल, मेटल
मलयय देह लगाइ ।
मृगमद तिलक धोइ दृगचल, कच
सयँ मुख लए छपाइ ॥ ८ ॥
एक तील छल चारु चिबुक पर
निदिं मधुप-सुत सामा ।
तृन अग्रे करि मलयज रंजल
ताहि छपाओल रामा ॥ १० ॥
जलधर देखि चन्द्रातप झाँपल
सामरि सखि नहिं पास ।
तमाल तरु गन चूना लेपल
सिखि पिक दूरि निवास ॥ १२ ॥
मधुकर डर धनि चम्पक-तरु तल
लोचन जल भरिपूर ।
सामर चिकुर हेरि मुकुर पटकल
टूटि भए गेल सत चूर ॥ १४ ॥
तुअ गुन-मान कहए सुक पंडित
सुनतहि उठल रोसाइ ।
पिंजर झटकि फटिक पर पटकत
धाए धएल तहि जाइ ॥ १६ ॥
मेरु सम मान सुमेरु कोप सम
देखि भेल रेनु समान ।
विद्यापति कह राहि मनावए
आपु सिधारह कान ॥ १८ ॥

(२) चकरित = चक्रित, चकित (४) अखर = अक्षर । सूनए = सुनती है । सम्भास = सम्भाषण, बात चीत । (६) चुरि = चूड़ी । पौतिक = पेरोज़, फ़िरोज़ा, नील मणि । करि = हाथी । रद = दाँत । अरुनिम = अरुण, लाल । (८) असित-चित्र = काला गोदना । छल = था । मलवय = मलयज, चंदन । (१०) तील = तिल । निदिं = निंदा करता था, लज्जित करता था । सामा = श्यामलता । तृन

अग्रे = तिनके की नोक । रंजल = रंजित करके, रंग कर । (१२) चंद्रातप = चँदोवा । सिखि = मोर । निबास — निर्वास, हटा दिया, खदेड़ दिया । (१४) पटकल = पटक दिया । सत = शत, सैकड़ों । (१६) गाम = समूह । (१८) रेनु = रेणु, धूल ।

(२) हे माधव, मानिनी राधा का मन बड़ा दुर्ज्जेय, तथा कठोर है । मैं तो उसकी उलटी रीति तथा एकदम बदले हुए स्वभाव को देख कर चकित हो गई । वह तो आधी बात भी नहीं पूछती है ।

(४) हे माधव, तुम्हारे स्वरूप का बोध कराने का हेतु होने के कारण वह तो शब्द 'श्याम' तक को नहीं सुनती है । तुम्हारे स्वरूप को शत्रु समान मान कर तुम जैसे श्याम व्यक्तियों से बात तक नहीं करती है । हे माधव, मैं किस प्रकार उसे मना कर लाऊँ ।

(६) हे माधव, तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप होने के कारण उसने अपने सुंदर नीले वस्त्रों, नीले रंग की चुड़ियों तथा नीलमणि की माला को उतार कर हाथों में हाथी दाँत की चूड़ियाँ, गले में मोती की माला और लाल रंग की साड़ी पहिन ली है ।

(८) हे माधव, सुँदरी के वक्षस्थल पर एक काला गोदना था, उसे तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप समझ कर उसे अपनी देह पर चंदन लगा कर छुपा दिया है । यही नहीं, हे माधव, उसने तो मस्तक पर लगा कस्तूरी का तिलक तथा नेत्रों के कोनों में लगे अंजन को भी धो डाला है और तिलक तथा अंजन रहित मुख को अपने केशों से छुपा लिया है ।

(१०) अपनी श्यामता से भौंरे के बच्चे की श्यामलता को लज्जित करने वाला एक सुंदर तिल उस सुंदरी के चिबुक पर था । उस तिल को भी सुंदरी ने तिनके की नोक से चंदन लगा कर मिटा दिया है ।

(१२) श्यामल मेघों को तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप समझ मेघों के घिरने पर वह सुंदरी चँदोवा तनवा लेती है । श्याम सखी को उसने अपने पास से दूर कर दिया है । काले तमाल वृक्षों को उस बाला ने चूने से पुतवा दिया है और काले मयूरों तथा कोयलों को अपने पास से दूर खदेड़ दिया है ।

(१४) काले भ्रमरों को भगाने के लिए वह बाला चम्पा के वृक्ष तले जा बैठी है और उसके नेत्रों से झर झर आँसू गिर रहे हैं । शीशे में अपने केशों

की श्यामलता का प्रतिबिंब देख कर उसे ऐसा क्रोध आया कि उसने शीशे को उठा कर पटक दिया जिससे उसके सैकड़ों टुकड़े हो गये।

(१६) एक दिन हे माधव, महा पंडित शुक (तोते) ने तुम्हारा गुण गान करना प्रारंभ किया। उसे सुनते ही बाला इतनी क्रोधित हुई कि उसने तोते के पिंजरे को झटके से उठा कर स्फटिक पत्थर पर पटक दिया और उसे वहीं पड़ा छोड़ कर स्वयं अन्यत्र चली गई।

(१८) हे माधव, सुंदरी का सुमेरु पर्वत के समान मान तथा मेरु के समान विशाल क्रोध यदि वास्तव में देखा जाए तो रेणु के समान है। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे कान्ह राधा को मनाने के लिए आप स्वयं ही जाँय।

## १४६.

मानिनि हम कहिए तुअ लागी।
नाह निकट पाइ जे जन बँचए
तेकर बड़हि अभागी ॥ २ ॥
दिनकर बंधु कमल सब जानए
जल तेहि जीवन होई।
पंक विहिन तनु भानु सुखाबए
जल पटाब बरु कोई ॥ ४ ॥
नाह समीप सुखद जत बैभब
अनुकुल होएत जोई।
तेकर विरह सकल सुख संपद
खन खन दगधए सोई ॥ ६ ॥
तुहु धनि गुनमति बूझि करह रति
परिजन ऐसन भास।
सुनइत राहि हृदय भेल गदगद
अनुमति कएल प्रगास ॥ ८ ॥

(२) तुअ लागी = तुम्हारे लिये। पाइ = पाँव, चरण। बँचए = वंचित होते हैं। ते = वह। (४) पङ्क = कीचड़, जल। विहिन = विहीन। पटाब = पटाई करो, सींचो। (६) संपद = संपदा, संपत्ति। (८) प्रगास = प्रकाशित किया।

(२) हे मानिनी राधे, हम तो तुम्हारे ही हित की बात कहते हैं । जिस स्त्री के हाथ पति की चरण सेवा से वंचित हो जाते हैं वह हाथ वास्तव में बहुत ही अभागे होते हैं।

(४) हे राधे, कमल सूर्य के निकलने पर विकसित होते हैं और सूर्य के अस्त हो जाने पर मुँद जाते है इस कारण सब कोई कमल को सूर्य का बंधु समझते हैं। परंतु उसका जीवन भी जल के बिना नहीं रहता है। यदि कोई उसे जल से सींचे नहीं तो जल के बिना स्वयं सूर्य ही उसे अपने प्रखर तेज से सुखा डालता है। हे राधे, माधव का प्रेम इसी संजीवन जल के समान है।

(६) हे राधे, प्रीतम की उपस्थिति में ही वैभव के समस्त साधन आनंद तथा सुख प्रदान करते हैं और प्रीतम से वियोग हो जाने पर वही सुख संपत्ति प्रति क्षण जी को जलाती है।

(८) हे राधे, तू तो स्वयं समझदार है अतः परिजनों की यही इच्छा है कि तुम फिर माधव से रति रंग करो। सखी की इस बात को सुन कर राधा का हृदय गद्‌गद् हो गया और इशारे से उसने अपनी अनुमति प्रकट की।

## १४७.

मानिनि आब उचित नहि मान
एखनुक रंग एहन सन लगइछ
जागल पए पँचबान ॥ २ ॥
जूड़ि रयनि चकमक करु चाँदनि
एहन समय नहिं आन।
एहि अवसर पिय-मिलन जेहन सुख
जकरहि होए से जान ॥ ४ ॥
रभसि रभसि अलि बिलसि बिलसि करि
करए मधुर मधु पान ।
अपन अपन पहु सबहु जेमाओलि
भूखल तुअ जजमान ॥ ६ ॥
त्रिबलि तरंग सितासित संगम
उरज संभु निरमान ।

आरति पति मँगइछ परतिग्रह
करु धनि सरवस दान ॥ ८ ॥
दीपक-दिप सम थिर न रहए मन
दृढ़ करु अपन गेआन ।
संचित मदन बेदन अति दारुन
विद्यापति कवि भान ॥ १० ॥

(२) आब = अब, इस समय। एखनुक = इस क्षण, इस समय। रंग = समां। लगइछ = लगता है, प्रतीत होता है। जागल = जग गया है (४) जूड़ि = शीतल। जेहन = जैसा। जकरहि = जिसको। (६) जेमाओलि = जिमाओ, इच्छा पूर्ण करो। (८) सितासित = गंगा और युमना, यहाँ अभिप्राय है हार और रोमावलि से। निरमान = निर्माण किया है, स्थापना की है। आरति = आर्त, व्याकुल। मगइछ = माँगता है। परतिग्रह = प्रतिग्रह, दान। (१०) दिप = शिखा, लौ।

(२) हे मानिनी सुंदरी, अब मान करना उचित नहीं है। इस समय तक का वातावरण ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव सोते से जाग उठा हो।

(४) शीतल रात्रि है, चंद्रमा झकाझक चमक रहा है, हे मानिनी बाले ऐसा समय फिर नहीं आने का है अतः इस का पूर्ण उपभोग कर। इस अवसर पर प्रीतम से भेंट करने में जो सुख है उसे वही जान सकता है जिसने इस सुख का उपभोग किया हो।

(६) हे सुंदरी, इस समय भ्रमर उमंग में आकर इठलाता हुआ सुंदर पुष्पों के मधु का पान कर रहा है। हे सखी, तुम्हारे प्रीतम इस समय केलि रस के भूखे हैं अतः सब बालायें अपने अपने प्रियतमों को मनमाना भोजन कराती है, अत: तुम भी हे बाले अपने प्रीतम को मनमाना भोजन ( केलि-क्रीड़ा ) करा कर तृप्त करो।

(८) हे सखी, इस समय की तेरी छवि ऐसी सुंदर है मानो त्रिबेनी की तरंग में गंगा और यमुना ( हार और रोमावलि ) की संगम हो रहा हो और संगम स्थान पर कुच रूपी शिव की स्थापना की गई हो। हे बाले, तेरा व्याकुल पति इस तीर्थराज ( प्रयाग ) के संगम पर तुझ से दान माँगता है अतः तू अपना सर्वस्व उसे दान कर दे।

(१०) हे बाले, मन की दशा बड़ी चंचल होती है । दीपक की लौ के समान मन कभी स्थिर नहीं रहता है सदैव चंचल रहता है, अतः हे बाले अपने ज्ञान अर्थात अपनी बुद्धि को सावधान कर । कवि विद्यापति कहते हैं कि अधिक दिनों से एकत्रित हो रही काम पीड़ा बड़ी दारुण होती है ।

## १४८.

अखिल लोचन तम- ताप विमोचन
उदयति आनंद कंदे ।
एक नलिनि मुख मलिन करए जदि
इथे लागि निंदह चंदे ॥ २ ॥
सुन्दरि, बूझल तुअ प्रतिभाति
गुन गन तेजि दोष एक घोषसि
अंत अहीरनि जाति ॥ ४ ॥
सकल जीव-जन जीव समीरन
मन्द सुगंद सुसीते ।
दीपक - जोति परस जदि नासए
इथे लागि नींद मारुते ॥ ६ ॥
स्थावर जंगम कीट पतंगम
सुखद जे सकल सरीरे ।
कागद - पत्र परस जओं नासए
इथे लागि निंदह नीरे ॥ ८ ॥
खन-खन सकल कुसुम मन तोषए
निसि रहु कमलिनि संगे ।
चंपक एक जइओ नहि चुंबए
इथे लागि निंदह भृंगे ॥ १० ॥
पाँच-पाँच गुन दस गुन चौगुन
आठ दुगुन साख माझे ।
विद्यापति कान्हु आकुल तो बिनु
विषाद न पावसि लाजे ॥ १२ ॥

(२) अखिल = समस्त। ताप = ज्वाला। विमोचन = नाश करने वाला। उदयति = उदय हुआ है। इथे = इस कारण। निंदह = निंदा करती हो। चंद्रे = चंद्रमा। (४) प्रतिभाति = प्रतिभा, बुद्धि। घोषति = घोषणा करती हो, बार बार कहती हो (६) जीव = प्राण। समीरन = वायु। सुसीते = सुशीतल। नासए = नष्ट हो जाती है, बुझ जाती है। नीन्द = निंदा करती हो। मारुते = मारुत, पवन। (८) नीरे = नीर, जल। (१) तोषए = तुष्टि करता है। जइओ = तो भी। (१२) विषाद = दुख। पावसि = पाती हो! पाँच पाँच दस गुन चौगुन आठ दुगुन = ५ × ५ × १० × ४ × ८ × २ = १६०००.

(२) समस्त संसार के प्राणियों के नेत्रों की ज्वाला तथा अंधकार को नाश करने के लिए उदित होने वाले चंद्रमा के निकलने से यदि केवल कमलिनि का मुख मलिन हो जाता है अर्थात केवल कमलिनी ही मुँद जाती है तो क्या केवल इसी कारण तुम चंद्रमा की निंदा करती हो।

(४) हे सुंदरी, तुम्हारी बुद्धि की थाह मैंने पाली है। गुणों के समूह को तज कर अर्थात उनका विचार न करके जो तुम केवल एक दोष मात्र की ही घोषणा करती फिरती हो इसी से तुम्हारी बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। और हे बाले, इस क्षुद्र दृष्टि का कारण केवल यही है कि तुम हो तो आखिर अहीर ही। कपि को भला रत्न की पहिचान क्या हो सकती है?

(६) समस्त संसार के जीवों तथा प्राणियों को जीवन दान देने वाली शीतल मंद सुगंधित वायु के स्पर्श से यदि दीपक की ज्योति नष्ट हो जाती है अर्थात यदि दीपक बुझ जाता है तो क्या केवल इसी कारण ही पवन की निंदा की जा सकती है।

(८) इस संसार के समस्त स्थावर, जंगम कीट पतिंगादि अर्थात् समस्त देहधारियों को सुख पहुँचाने वाली वस्तु जल के स्पर्श से यदि काग़ज़ गल जाता है तो क्या केवल इसी कारण हे सखी जल की निंदा की जा सकती है?

(१०) प्रति क्षण सकल पुष्पों को संतुष्ट करने वाला तथा प्रेम के वशीभूत हो कमिलिनी कोष में क़ैद होकर रात व्यतीत करने वाला भ्रमर यदि केवल चंपा के पुष्प का चुम्बन नहीं करता है तो क्या इस कारण भ्रमर की निंदा की जा सकती है?

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुंदरी, १६००० सखियों के मध्य

में रह कर भी कान्ह तेरे लिए व्याकुल हैं। क्या उनके इस दुख से तुझे लज्जा नहीं आती है ?

कवि कुल गुरु श्री सूरदास ने भी राधा के मान और सखियों द्वारा दिये उपालंभों का बड़ा सुंदर चित्रण किया है। उनके चित्र मानो बोलते से प्रतीत होते हैं।

श्यामा तू अति श्यामहिं भावै ।
बैठत उठत चलत गउ चारत तोरिय लीला गावै ॥
पीतै पीत बसन भूषण सजि, पीत धात अंग लावै ।
चंद्रानन सुनि मोर चंद्रिका माथे मुकुट बनावै ॥
अति अनुराग सैन संभ्रम मिलि संग परम सुख पावै ।
बिछुरत तोहिं क्वासि राधा कहि कुंज-कुंज प्रति धावै ।
तेरो चित्र लिखै अरु निरखै बासर बिरह गँवावै ।
सूरदास रस रास रसिक सों अंतर क्यों करि आवैं ॥

एक चित्र और देखिये हरि मुख "राधा" "राधा" बानी ॥
धरनी परे अचेत नहिं सुधि सखी देखि बिकलानी ॥
बासर गयो रैनि इक बीती बिनु भोजन बिनु पानी ।
बाँह पकरि तब सखिन जगायो धनि-धनि सारंग पानी ॥
ह्याँ तुम बिबस भये हौ ऐसे ह्याँ तौ वै बिबसानी ।
सूर बने दोऊ नारि-पुरुष तुम दुहुँ की अकथ कहानी ॥

१४६.

चानन भरम सेवलि हम सजनी
पूरत सब मनकाम ।
कंटक दरस परस भेल सजनी
सीमर भेल परिनाम ॥ २ ॥
एकहि नगर बसु माधब सजनी
पर-भामिनि बस भेल ।
हम धनि एहनि कलावति सजनी
गुन गौरब दुर गेल ॥ ४ ॥

अभिनव एक कमल फुल सजनी
दोना नीमक डार।
सेहो फुल ओतहि सुखायल छथि सजनी
रस मय फुलल नेवार ॥ ६ ॥
बिधि बस आज आएल सजनी
एत दिन ओतहि गमाय।
कोन परि करब समागम सजनी
मोर मन नहि पतिआय ॥ ८ ॥
भनई विद्यापति गाओल सजनी
उचित आओत गुनसाह।
उठ वधाव करु मन भरि सजनी
आज आओत घर नाह ॥ १० ॥

(२) चानन = चंदन । सेवलि = सेवा की। सोमर = सेमल। परिनाम = परिणाम, नतीजा। (४) ऐहनि = ऐसी। कलावति = कलायुक्त, चतुर। (६) अभिनव = कौतुक वश। दोना = डाल दिया। नीमक = नीम वृक्ष की। सेहो = वह। ओतहि = वहीं। नेवार = नेवारी पुष्प, बन मल्लिका। (८) कोन = क्या। परि = पड़ी है। (१०) आओत = आता है। बधाव = बधावा, आनंद, मंगलाचार।

(२) हे सखी, मनसा वाचा कर्मणा से मैंने जिस वृक्ष (कृष्ण) की चंदन समझ कर पूजा की उसका परिणाम यह हुआ कि वह विकसित होने पर देखने तथा स्पर्श में चंदन वृक्ष के स्थान पर सेंमल का वृक्ष निकला। अर्थात जिस माधव की मैंने चंदन के समान शीतल जान कर पूजा था वही माधव दुखदाई सिद्ध हुआ।

(४) हे सखी, इसी नगर में रहते हुए माधव अन्य स्त्री के वश में हो गये और मुझ जैसी कलायुक्त तथा गुणशील रमणी का परित्याग कर दिया। माधव को इस करनी से मेरा समस्त गौरव तथा गुण व्यर्थ हो गया।

(६) हे सखी, माधव ने कौतुक वश एक नवीन कमल पुष्प को अर्थात मुझको कड़ुवे नीम की डाली पर डाल दिया अर्थात विकट परिस्थिति में डाल दिया। उनके इस काम से वह पुष्प वहीं सूख गया और उसके रस से सिंचित होकर नेवारी का पुष्प रस युक्त होकर खिल उठा।

(८) हे सखी, इतने दिवस वहीं व्यतीत करके भाग्य से ही आज माधव यहाँ आये हैं। अतः किसी को क्या पड़ी है जो उनसे भेंट करे। मुझे तो उनका रंच मात्र भी विश्वास नहीं है।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुंदरी, मंगलाचार करो, आज तुम्हारा सर्व गुण शील पति अवश्य आवेगा। हे सुंदरी, उठ आनंद-मंगल मना, आज तेरा प्रीतम घर आवेगा।

१५०.

सजनी, अपद न मोहि परबोध।
तोड़ि जोड़िअ जहाँ गाँठ पड़ए तहाँ
तेज तम परम बिरोध ॥ २ ॥
सलिल सनेह सहज थिक सीतल
इ जानए सब कोई ।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइअ
तइओ बिरत रस होई ॥ ४ ॥
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ
कुल ससि नीली रंग।
अनुभवि पुनु अनुभवए अचेतन
पड़ए हुतास पतंग ॥ ६ ॥

(२) अपद = अनुचित रीति। परबोध = प्रबोध करो, समझाओ। (४) सलिल = जल। सहज = स्वभातः। से = उसे। जतने = यत्न से। जुड़ाइअ, ‍ंडा कीजिये। बिरत = हीन। (६) कुल—ससि = कुल रूपी चंद्रमा। अनुभवि = अनुभव करके।

(२) हे सखी, मुझे अनुचित रीति से न समझाओ। जिस प्रकार कोई वस्तु तोड़ी जाकर फिर जोड़ी जाती है तो उस स्थान पर गाठ पड़ ही जाती है उसी प्रकार मन के टूट जाने पर मेरे हृदय में गाँठ पड़ गई है। जिस प्रकार प्रकाश तथा अंधकार का परस्पर विरोध है उसी प्रकार मेरा और माधव का है।

(४) स्नेह तो हे सखी, जल की भाँति स्वभावतः ही शीतल होता है यह तो सब कोई जानते हैं। परंतु यदि जल को गर्म करके फिर यत्न पूर्वक ठंडा

किया जाये तो वह अवश्य ही रस हीन हो जाता है। इसी प्रकार प्रेम भी उत्तेजित होने के पश्चात यदि ठण्डा पड़ जाये तो रस विरोध अवश्य उत्पन्न हो जाता है।

(६) हे सखी, यह तो बता कि रस रीति को उत्तेजित (उत्पन्न) करना सरल है कि उसे भंग कर देना। हे सखी कुल रूपी चंद्रमा में नीला धब्बा पड़ जाने पर कितना भी प्रयत्न करने पर भी क्या उसमें फिर स्वभाविक रंग उत्पन्न हो सकता है। एक बार अग्नि की दाहक शक्ति का अनुभव करके केवल अचेतन अवस्था में ही पतिंगा फिर अग्नि-शिखा में प्रवेश करके उसके दाह का अनुभव करता है। अर्थात यदि फतिंगा चैतन्य होता तो पुनः अग्नि में प्रवेश करके उसकी दाहक शक्ति का अनुभव न करता। उसी प्रकार एक बार प्रेम की दाहक शक्ति का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् केवल अचैतन्य अवस्था में ही मैं पुनः उसका अनुभव करने का विचार कर सकती हूँ।

## १५१.

कबहुँ रसिक सयँ दरसन होए जनु
दरसन होए जनु नेह।
नेह बिछोह जनु काहुक उपचए
बिछोह धरए जनु देह॥ २॥
सजनी दुर करु ओ परसंग।
पहिलहि उपजइत प्रेमक अंकुर
दारुन बिधि देल भंग॥ ४॥
दैवक दोष प्रेम जदि उपजए
रसिक सयँ जनु होय।
कान्ह से गुपुत नेह करि अब एक
सबहु सिखाओल मोय॥ ६॥
एहन औषध सखि कहि नहि पाइअ
जनि जौवन जरि जाव।
असमंजस रस सहए न पारिअ
इह कवि सेखर गाव॥ ८॥

(२) काहुक = किसी को। (४) दुर करु = दूर करो, बंद करो। देल भँग = तोड़ डाला। (६) दैबक = विधि की विडंबना से। सिखाओल = शिक्षा देती हूँ। (८) जरि जाव = जल जावे।

(२) हे सखी, मेरी तो विधाता से यही प्रार्थना है कि रसिक व्यक्तियों का मुझे कभी दर्शन ही न हो और यदि दर्शन हो भी जावे तो उनसे नेह का नाता न जुड़े और यदि किसी भाँति स्नेह हो भी जावे तो किसी को वियोग का दुख न उठाना पड़े और यदि किसी कारण वश वियोग हो भी जाय तो यह शरीर ही न रहे।

(४) हे सखी, इस विषय अर्थात वार्तालाप को बंद करो। मेरे हृदय में पहिली बार ही प्रेमांकुर उपजा था। कठोर विधाता ने उसे भी तोड़ डाला।

(६) हे सखी, मेरी तो यही प्रार्थना है कि यदि विधि की विडंबना से किसी के हृदय में प्रेमाकुर उत्पन्न हो भी जाए तो वह रसिक जनों के प्रति कदापि न हो। कृष्ण से गुप्त प्रेम करके यही एक शिक्षा मैं प्रेमियों को देती हूँ।

(८) हे सखी, ऐसी औषधि भी तो मुझे कहीं नहीं मिलती जिसके खाने से मेरी यह जवानी जल जाती है। कवि शेखर कहते है कि ऐसी द्विविधा की दशा में प्रेम-रस का माधुर्य सहन नहीं किया जाता है।

## १५२

जनम होअए जनु, जौं पुनि होई।
जुबति भए जनगए जनु कोई ॥ २ ॥
होइ जुबति जनु ही रसमति।
रसओ बुझए जनु हो कुलमति ॥ ४ ॥
इथन माँगओं बिहि एक पए तोहि।
थिरता दिहह अबसानहु मोहि ॥ ६ ॥
मिलि सामी नागर रसधार।
परबस जनु होए हमर पिआर ॥ ८ ॥
होए परबस कुछ बुझए बिचारि।
पाए बिचार हार कओन नारि ॥ १० ॥
भनइ बिद्यापति अछ परकार।
दद समुद होअ जीव दए पार ॥ १२ ॥

(४) रसमंती = सुरसिका । कुलमति = कुलीन, उच्च कुल वाली। (६) धन = वरदान। पए = ही। थिरता = स्थिरता। दिहह = दो, प्रदान करो। अव-सानहु = अंतिम अवस्था में। (८) सानी = स्वामी, पति। रसधार = सुरसिक। (१०) हार = गले का हार अर्थात अति प्रिय। कओन = कौन सी। (१२) अछ = है। परकार = प्रकार, उपाय। दद समुद = द्वंद समुद्र, कलह रूपी समुद्र। दए = देकर।

(२) हे सखी, मेरी तो यही प्रार्थना है कि मृत्यु हो जाने के पश्चात् फिर मेरा पुनर्जन्म न हो और यदि कर्मानुसार पुनर्जन्म हो भी तो स्त्री के रूप में जन्म न हो।

(४) और हे सखी, यदि भाग्यवश स्त्री का जन्म ही मिले तो सुरसिका न हो और यदि दैवयोग से सुरसिका हो तो उच्च कुल में जन्म न मिले।

(६) हे विधाता, मैं तो तुझ से केवल एक यही वरदान माँगती हूँ कि अंतिम अवस्था में भी मुझे स्थिरता प्रदान करना।

(८) हे विधाता, तुझ प्रार्थना है कि यदि हमको परम रसिक तथा चतुर शिरोमणि पति मिले तो भी मेरा प्रेम उसके आधीन न रहे अर्थात् मैं प्रेम परवश न रहूँ।

(१०) और हे विधाता, यदि मैं प्रेम परवश हो भी जाऊं तो मेरे पति की बुद्धि, समझबूझ, चैतन्य रहे क्योंकि चैतन्य होने पर ही वह निश्चय कर सकेगा कि कौन स्त्री उसके गले का हार हो सकती है अर्थात उसी दशा में वह यह समझ सकेगा कि कौन स्त्री उसके प्रेम के सर्वथा उपयुक्त हो सकती है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि इस प्रार्थना की अक्षरशः पूर्ति होने का केवल एक ही उपाय है कि अपने प्राणों की बलि चढ़ा कर इस कलह रूपी समुद्र से पार हो जाओ।

## १५३.

चरन - नखर - मनि - रंजन छाँद
धरनि लोटायल गोकुल-चाँद ॥ २ ॥
ढरिक ढरिक परु लोचन नीर।
कतरूप मिनति कएल पहु मोर ॥ ४ ॥

लागल कुदिन कएल हम मान ।
अबहु न निकसए कठिन परान ॥ ६ ॥
रोस तिमिर अत बेरि किए जान ।
रतनक भए गेल गैरिक भान ॥ ८ ॥
नारि जनम हम न कएल भागि ।
मरन सख भेल मानक लागि ॥ १० ॥
विद्यापति कह सुनु धनि राइ ।
रोअसि काहे कह भल समुझाइ ॥ १२ ॥

(२) नखर = नख । रंजन = रंजित करने । छाँद = बहाना, चाल बाज़ी = (क) योगी सबै छंद अस खेला, तू भिखार केहि माँह अकेला—(जायसी कवि) छोभ छल छंदन को काढ़े पाप द्वंदन के फिकिर के फंदन को फारि है पै फारि है —(पद्माकर) (४) कतरुप = कितने रूप से कितने प्रकार से । मिनति = मिनती, विनय । (८) अत = उस । बेरि = समय । किए = क्या । जान = जाना, बूझा । गैरिक = काषाय मिट्टी, गेरु मिट्टी । मान = समझा । (१०) भाग = भाग्यशाली । मानक = मान के कारण ।

(२) हे सखी, मेरे चरण के नख रूपी मणि को महावर से रंजित करने के बहाने गोकुल का चंद्र ( कान्ह ) पृथ्वी पर लोट गया ।

(४) हे सखी, उस समय उसके नेत्रों से झरझर आँसू गिर रहे थे और मेरे प्रभु, मेरे प्रीतम कान्ह ने न जाने कितने प्रकार से मेरी विनती की ।

(६) हे सखी, वह दिन न जाने कैसा अभागा था जिस दिन मैंने मान किया था । परंतु मेरे प्राण बड़े कठोर हैं कि इतनी यातना सहने पर भी नहीं निकले ।

(८) हे सखी, उस समय क्रोध रूपी अंधकार में मेरी मति को क्या हो गया था, मैं न जाने क्या का क्या समझ गई कि रत्न ( कान्ह ) को मैंने गेरु मिट्टी अर्थात निरर्थक वस्तु समझ लिया ।

(१०) हे सखी, इसी कारण मैं अपने नारी जीवन को सफल न कर सकी । मान की लज्जा के कारण मुझे हे सखी मृत्यु की शरण लेने पर बाध्य होना पड़ेगा ।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे राधे सुनो, मैं तुमसे ख़ूब समझा कर कहती हूँ कि केवल रोने से क्या लाभ होगा अतः रोना व्यर्थ है ।

१५४

धनि भलि मालिनि सखि गन माँझ।
अनुनय करइत उपजए लाज ॥ २ ॥
पिरितक आरति बिरति न सहई।
इंगिति भंगिए दुहु मव कहई ॥ ४ ॥
राहि—सुचेतनि कान्हु समान।
मनहि समाधल अभिमान मन ॥६॥
अधर मुरलि जौं धएल मुररि।
फोइ कबरि धरि बाँधि समारि ॥ ८ ॥
जौं निज पुर-पथ धएल मुरारि।
सखि लखि अनतए चलु बर नारि ॥१०॥
हरि जब छाया कर धनि पाय।
धनि संभ्रम बइसलि कर लाय ॥ १२ ॥
कह कवि - सेखर बुझय समान।
इंगित रस पसारल पंचबान ॥ १४ ॥

(४) पिरितक = प्रीति की। आरति = आतुरता, व्याकुलता। बिरति = विरक्ति, उदासीनता। (६) समाधल = समाधान किया। (८) फोई = खुले हुए, मुक्त। कबरि = केश, कवरी, वेणी—उ०, अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित गूँथे सुमन रसा ह। कबरी अति कमनीय सुभग सिर राजति गौरी बालहिं। ( सूर )

(२) सखियों के साथ पुष्प चयन करते समय कान्ह द्वारा सबके सम्मुख अनुनय विनय करने से हे सखी मुझे तो बड़ी लज्जा आई।

(४) प्रेम की आतुरता उदासीनता नहीं सह सकती है, इशारे तथा भाव भंगी मन की बातें अवश्य प्रकट कर देते हैं।

(६) राधा परम चातुरी हैं और कान्ह भी पूर्ण वयस्क हैं अतः दोनों ने अपने अपने मान का मन ही मन समाधान कर लिया।

(८) मन ही मन समाधान करके कान्ह ने अपनी मुरली अधरों पर रखी और राधा ने अपने खुले केशों को बहुत सँभाल कर यत्न पूर्वक वेणी बाँध ली। इस प्रकार दोनों ने मान का समाधान किया।

(१०) जब मुरारी अपने घर के रास्ते की ओर चले तो सखियों की ओर दृष्टिपात करके परम चतुर राधा दूसरी ओर को चली गई।

(१२) जब कान्ह ने मार्ग में राधा को पाकर उस पर अपनी छाया की तो राधा भ्रम-वश झटपट उनका हाथ पकड़ कर वहीं बैठ गई।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे रसिक गण इस घटनावली को समझो। इस प्रकार कामदेव तनिक से इशारे से ही अपनी रस-रीति का प्रसार करता है।

## श्री कृष्ण का मान

### १५५

राधा - माधव रतनहि मंदिर
निबसय सयनक सूख।
रस रस दारुन दर उपजल
कान्ह चलल तब रूस ॥ २ ॥
नागर-अंचल कर धरि नागरि
हसि मिनती करु आधा।
नागर - हृदय पाँचसर हनलक
उरज दरसि मन बाधा ॥ ४ ॥
देख सखि झूठक मान।
कारन किछुओ बुझए न पाइए
तब कहि ऐखल कान ॥ ६ ॥
ऐख समापि पुन रहस पसारल
भेल मधथ पँचबान।
अवसर जानि मनावथि राधा
कवि विद्यापति मान ॥ ८ ॥

(२) रतनहि = रत्न जड़ित। निबसय = निवास करते हैं। सथनक = शैय्या के। सूख = सुख। सयनक सूख = शय्या के सुख में, मिलनानंद में, भोग विलास में। रस रस = रसाँ-रसाँ, धीरे-धीरे। दंद = द्वंद, कलह। (४) हनलक = हनन

किया मारा। बाधा = चंचलता। (६) रोखल = रुष्ट हुआ। (८) समापि, समाप्त करके। पसारल = प्रसार। मधथ = पंच, मध्यस्थ। मनावथि = मनाती है।

(२) अपने रत्न जटित मंदिर में राधा-माधव मिलनानंद में निवास करते थे कि धीरे-धीरे दारुण कलह उत्पन्न हो गया और तब कान्ह रूठ कर वहाँ से चल दिए।

(४) उस समय रसिक शिरोमणि नागर के वस्त्र का कोना पकड़ कर परम सुरसिका राधा उनकी विनती करने लगी। उसी समय कामदेव ने कान्ह के हृदय में अपना पंचशर मारा और राधा के उन्नत उरोजों को देख कर उनका मन चंचल हो उठा।

(६) हे सखी, देख, यह तो माधव का झूठा मान था। जब इस मान का कोई कारण ही ज्ञात न हो सका तो माधव किस कारण रुष्ट हुए यह भी न जाना जा सका।

(८) हे माधव, अपने क्रोध को समाप्त करके तथा कामदेव को मध्यस्थ बना कर पुनः राग-रंग तथा रस-रीति का प्रसार करो। कवि विद्यापति कहते हैं कि उपयुक्त अवसर जान कर राधा माधव को मनाती हैं।

१५६

एत दिन छलि नव रीति रे।
जल मीन जेहन पिरीति रे॥ २॥
एकहि बचन बीच भेल रे।
हँसि पहु उतरो न देल रे॥ ४॥
एकहि पलंग पर कान रे।
मोर लेख दूर देस भान रे॥ ६॥
जाहि बन केओ नहि डोल रे।
ताहि बन पिया हँसि बोल रे॥ ८॥
धरब योगिनिया के भेस रे।
करब में पहुक उदेस रे॥ १०॥
भनइ विद्यापति भान रे।
सुपुरुष न कर निदान रे॥ १२॥

(२) छलि = थी। (४) बीच = अंतर। उतरो = उत्तर। (६) लेख = = लेखे, लिए। (८) जाहि = जिस। केओ = कोई। (१०) उदेस = तलाश, खोज। (१२) निदान = अंत, अवसान।

(२) हे सखी, नवीन होने के कारण इतने दिनों तक मेरी और माधव की प्रीति उसी प्रकार की थी जैसी प्रीति मीन की जल के साथ होती है।

(४) परंतु एक वचन से ही अर्थात् मेरे एक बात कहते ही प्रीति-रीति में अंतर आ गया और अब तो प्रीतम मेरी बात को हँस कर भी उत्तर नहीं देता है।

(६) हे सखी, यद्यपि मैं और माधव एक ही शय्या पर सो रहे थे परंतु ऐसा प्रतीत होता था मानो मेरे लिये वह कहीं दूर थे।

(८) हे सखी, जिस बन में कोई नहीं आता जाता हो उस बन में जाकर प्रीतम के संग रस केलि करूँगी अर्थात् ऐकांत स्थान में जाकर प्रीतम को मनाऊँगी।

(१०) हे सखी, प्रेम-योगिनी का वेष धारण करके मैं अपने प्रीतम की खोज करूँगी।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माधव यह जान लो कि सत्पुरुष प्रेम का अंत कदापि नहीं करते हैं।

## १५७.

जतहि-प्रेम रस ततहि दुरंत।
पुन कर पलटि पिरित गुनमंत ॥ २ ॥
सबतहु सुनिये अइसन बेवहार।
पुनु टूटए पुनु गाँथिए हार ॥ ४ ॥
ए कन्हु कन्हु तोहहि सयान।
बिसरिए कोप करए समधान ॥ ६ ॥
प्रेमक अँकुर तोहे जल देल।
दिन दिन बाढ़ि महातरु भेल ॥ ८ ॥
तुअ गुन न गुनल सउतिन आछ।
रोपि न काटिए विषहुक गाछ ॥ १० ॥

जे नेह उपजल प्रानक ओल।
से न करिअ दुर दुरजन बोल॥ १२॥
जगत बिदित भेल तोहि हम नेह।
एक परान कएल दुइ देह॥ १४॥
भनइ विद्यापति न कर उदास।
बड़क बचन करिए बिसवास॥ १६॥

(२) दु'त = कलह। पिरित = प्रीति। (४) सबतहु = सर्वत्र ही। (६) तोहहि = तुम तो। (१०) सउतिन = सपत्नी, सौत। गाछ = वृक्ष, पौधा। (१२) ओल = अ'तर में, अ'तस्तल में। दुर = दूर, भिन्न, अलग। (१६) बड़क = बड़े लोगों के।

(२) हे माधव, जहाँ प्रेम रस होता है वहीं प्रेम कलह भी होता है परंतु गुणवान् व्यक्ति एक बार प्रीति भंग हो जाने पर पुनः प्रीति करते हैं।

(४) हे माधव, हमने तो सर्वत्र ही ऐसी रीति होती सुनी है कि बार बार हार टूट जाने पर उसे फिर गूँथ लिया जाता है।

(६) हे कान्ह, हे माधव, आप तो चतुर शिरोमणि हो। अतः क्रोध का परित्याग करके परस्पर समाधान कर लो।

(८) हे माधव, राधा के हृदय में अंकुरित तुम्हारे प्रेम का अंकुर प्रेम रस से सींचे जाने पर बहुत शीघ्र ही एक विशाल तरुवर का स्वरूप धारण कर लेगा अर्थात प्रेम पूर्ण रूप से विकसित हो जायेगा।

(१०) हे माधव तुम भी विचित्र हो। तुम ने राधा के गुण तो देखे ही नहीं और सौत कर लाए। यह तो सभी कहते हैं कि अपने हाथ से रोपा हुआ वृक्ष यदि विष वृक्ष भी हो तो भी उसे न काटना चाहिये परँतु तुमने तो प्रेमांकुर को ही नष्ट कर डाला।

(१२) हे माधव, प्राणों के अ'तर में अर्थात अ'तस्तल में उत्पन्न हुए प्रेम को दुर्जनों के कपट वाक्यों से प्रभावित होकर दूर न करो।

(१४) हे माधव, तुम्हारा और मेरा प्रेम तो जगत विख्यात है। एक प्राण दुई देह वाली उक्ति हम पर अक्षरशः घटित होती है।

(१६) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माधव निराश न करो। बड़े लोगों के कहने का विश्वास करो और मान को त्याग दो।

१५८.

की हम साँझक एकसरि तारा
भादव चौठिक ससी।
रथि दुहु माझ कओन मोर आनन
जे पहु हेरसि न हँसी ॥ २ ॥
साए साए कहइ कन्हु कपट करइ जनु
कि मोरा भेल अपराधे ॥
न मोयँ कबहु तुअ अनुगति चुकलिहुँ
बचन न बोलल मंदा ॥
सामि समाज प्रेम अनुरंजिए
कुमुदिनि सन्निधि चंदा ॥ ५ ॥
भनइ विद्यापति सुनु बर जौबति
मेदिनि मदन समाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देवि रमाने ॥ ७ ॥

(२) साँझक = साँझ का, संध्याकालीन। एकसरि = अकेली। भादव = भादों, भाद्रपद मास। चौठिक = चौथ, चतुर्थी। इथि = है। (५) साए = सखी। कहहु = कहो। अनुगति = आज्ञा मानना। चुकलिहुँ = चूक हुई है। सामि = स्वामी। अनुरंजिए = अनुरंजन कीजिये, निभाइये। सन्निधि = सान्निध्य, समीप।

(२) हे माधव, क्या मैं संध्याकालीन अकेली तारिका हूँ जिसे कोई भी देखना नहीं चाहता है अथवा मैं भाद्रपदमास की शुक्ल चतुर्थी का चंद्रमा हूँ जिसे देखने मात्र से कलंक लगता है। हे माधव, मेरा मुख इन दोनों में से किस जैसा है कि हे प्रीतम उसे तुम हँस कर देखते तक नहीं हो।

(४) हे सखी, कान्ह से कहो कि मुझ से कपट न करें, मेरा अपराध क्या है। न तो मैंने कभी तुम्हारी आज्ञा मानने में चूक की है और न कभी दुर्वचन ही कहे हैं। अतः मेरा अपराध क्या है। हे स्वामी मेरे साथ प्रेम को उसी प्रकार निभाइए जिस प्रकार चन्द्रमा कुमुदिनी के निकट रह कर अपने प्रेम द्वारा उसे अनुरंजित करता है।

(७) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सर्वश्रेष्ठ सुंदरी सुनो, लखिमा देवि के पति राजा शिवसिंह रूपनारायण इस पृथ्वी पर कामदेव कि स्वरूप अर्थात साक्षात कामदेव के अवतार हैं।

## १५६.

करतल कमल नयन ढर नीर।
न चेतए सभरन कुंतल चीर ॥ २ ॥
तुअ पथ हेरि-हेरि चित नहिं थीर।
सुमिरि पुरुष नेहा दगध सरीर ॥ ४ ॥
कत परि माधव साधब मान।
बिरही जुबति माँग दरसन दान ॥ ६ ॥
जल-मध कमल गगन-मध सूर।
आँतर चान कुमुद कत दूर ॥ ८ ॥
गगन गरज मेघ सिखर मयूर।
कत जन जानसि नेह कत दूर ॥ १० ॥
भनइ बिद्यापति बिपरित मान।
राधा बचन लजाएल कान ॥ १२ ॥

(२) करतल = हथेली पर। कमल = कमल के समान मुख। चेतए = संभालती है, सावधान होती है। सभरन = आभरण, भूषण। कुंतल = केश। चीर = वस्त्र। (६) कतपरि = कब तक। साधब = साधोगे, निबाहोगे। माँग = माँगती है। (८) मध = मध्य। आँतर = तर, दूरी। चान = चंद्रमा। (१०) सिखिर = पर्वत का शिखिर। जन = पुरुष, मनुष्य। (१२) लजाएल = लज्जित हुए।

(२) हे माधव तुम्हारे विरह में राधा अपने कमल के समान मुख को हथेली पर रख कर नेत्रों से झर झर आँसू बहाती है। वह न तो सावधान होती है और न अपने आभूषणों, केशों तथा वस्त्रों ही को सँभालती है।

(४) हे माधव, तुम्हारी राह देख देख कर उसका चित्त अस्थिर हो उठा है और अपने प्रीतम के पूर्व स्नेह को स्मरण कर करके उसका समस्त शरीर विरहाग्नि तथा निराशा से जला जाता है।

(७) हे माधव, अब और कब तक मान साधोगे। विरही युवती तुम्हारे दर्शनों का दान माँगती है अतः मान त्याग कर उसे दर्शन दो।

(८) हे माधव, कमल का वास जल में है और सूर्य का आकाश में परंतु दोनों की प्रीति जगत् विख्यात है। देखो तो कुमुदिनी और चंद्रमा में दूरी का कितना अंतर है परंतु चंद्रमा उदय हो कर उसे दर्शन देता तथा विकसित करता है।

(१०) हे माधव, मेघ आकाश में गरजते हैं परंतु मोर उनका शब्द सुनकर पर्वत शिखर पर ही कूकते हैं। कितने मनुष्य इस बात को नहीं जानते हैं अर्थात सभी जानते हैं कि स्नेह में दूरी का कोई विशेष बंधन नहीं है।

(१२) हे माधव, यह विपरीत मान कैसा, अर्थात मान स्त्रियाँ करती हैं पुरुष नहीं। कवि विद्यापति कहते हैं कि राधा के यह वचन सुन कर श्री कृष्ण बहुत लज्जित हुए।

# मान-भंग

## मान-भंग

### १६०

बड़ई चतुर मोर कान ।
साधन बिनहि भाँगल मझु मान ॥ २ ॥
जोगी बेसधरि आओल आज ।
के इह समुझब अपरुब काज ॥ ४ ॥
सास बचन हम भीख लइ गेल ।
मझु मुख हेरइत गदगद भेल ॥ ६ ॥
कह तब मान-रतन दह मोह ।
समझल तब हम सुकपट सोय ॥ ८ ॥
जे किछु कहल तब कहइत लाज ।
कोई न जानल नागर-राज ॥ १० ॥
विद्यापति कह सुन्दरि राई ।
किए तुहु समुझबि से चतुराई ॥ १२ ॥

(२) बड़ई = बड़े ही, बहुत अधिक । भाँगल = भंग कर दिया । (६) लई = ले (८) दह = दो, प्रदान करो । (१२) किए = कैसे, किस प्रकार ।

(२) हे सखी, हमारे कान्ह बड़े ही चतुर हैं, बिना किसी साधन के ही उन्होंने मेरा मान भंग कर दिया ।

(४) हे सखी, आज माधव योगी का वेष धारण करके हमारे द्वार पर आ-गए । उनकी इस चतुराई तथा छल को कौन समझ सकता है ।

(६) सास की आज्ञानुसार मैं योगी को भिक्षा ले गई परंतु योगी तो मेरा मुख देखते ही प्रसन्न हो उठा ।

(८) तत्पश्चात् योगी ने मुझ से कहा, "मुझे मान रूपी रत्न प्रदान करो" । तब हे सखी मैं माधव के इस अपूर्व कपट जाल को समझी ।

(१०) हे सखी, जो कुछ मुझे कहना था, जो कुछ मुझे शिकायत थी, वह लज्जा वश मैं न कह सकी। वेश परिवर्तन के कारण किसी ने भी रसिक शिरोमणि परम चतुर कृष्ण को न पहचाना।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुंदरी राधे, तुझे माधव की चतुराई कैसे समझाऊँ।

१६१.

जटिला सास फुकरि तहि बोलल
बहुरि बेरि काहे ठाढ़ि।
ललिता कहल अमंगल सूनल
सति पतिमय अवगाढ़ि ॥ २ ॥
सुनि कह जटिला घटल की अकुसल
घर सँय बाहर होय।
बहुरिक पानि धरि हेरह जोगी
किए अकुसल कह मोहि ॥ ४ ॥
जोगेस्वर फेरि बहुरिक पानि धरि
कुसल करव बनदेव।
इहे एक अंक वंक बिसंकओ
बन मधि पसुपति सेव ॥ ६ ॥
पुजनक तंत्र-मंत्र बहु आछए
से हम किछु नहिजान।
जटिला कह आन देव कहाँ पाओव
तुहु बीज कर इह दान ॥ ८ ॥
एत सुनि दुहु जन मंदिर पइसल
दुहु जन भेल एक ठाम।
मनमथ मंत्र पढ़ाओल दुहु जन
पूरल दुहु मन काम ॥ १० ॥
पुनु दुहु जन मंदिर सयँ विकसल
जटिला सयँ कह भाखी।

जब इह गौरि अराधन जाओब
बिधवा जन घर राखी ॥ १२ ॥
एत कहि सबहु चलति निज मंदिर
जोगी चरन प्रनाम ।
बिद्यापति कह नटवर शेखर
आधि चलल मनकाम ॥ १४ ॥

(२) फुकरि = फुंकार कर, चिल्ला कर । ताहि = तभी । बहुरि = बहुरिया, वहू । बेरि = विलंब, देर । सूनल = सुन रही है । अवगाढ़ि = निमग्न, निश्चित । (४) घटल = घटा है । अकुसल = अमंगल । (६) अंक = रेखा । बिसंकओ = आशंका है । सेब = सेवा करो । (८) पुजनक = पूजा के । बीज = बीज मंत्र । इह = इसे, इसको (१२) जाओब = जावे (१४) मनकाम = मनः कामना, इच्छा ।

(२) भिक्षा देने में देर करती देखकर हमारी जटिला सास फुंकार कर बोली, "ऐ बहुरिया इतनी देर से यहाँ क्यों खड़ी हो ।" यह सुनकर ललिता ने बात बनाई, "कदाचित कुछ अमंगल की बात सुनी जा रही है । कदाचित सती अपने पति के प्रति कुछ अमंगल सुनने में निमग्न है ।"

(४) ललिता की बात सुन कर हमारी जटिला सास, "कौन सा अमंगल घटा है" कहती हुई घर के बाहर आई और जोगी रूपी कान्ह से कहा, "हे जोगी, बहू का हाथ देख कर बताओ कि क्या अमंगल होने वाला है ।

(६) तब हे सखी, जोगी का रूप धरे हुए कान्ह ने मेरा हाथ देख कर कहा, "बन देवता कुशल ही करें । बाला के हाथ की यह रेखा कुछ टेढ़ी है जिससे अमंगल की आशंका है । इस अमंगल का निवारण करने के लिए बन में पशुपति की सेवा करो ।"

(८) "और हे बूढ़ी, पूजा के वैसे तो बहुत से तंत्र-मंत्र हैं परंतु हम कुछ भी नहीं जानते हैं ।" हे सखी, यह सुन कर हमारी सास ने जोगी वेषधारी माधव से कहा, "हे महाराज, ऐसा देवता मैं कहाँ पाऊँगी अतः तुम ही इसे बीज मंत्र दे दो अर्थात झाड़-फूँक कर दो ।"

(१०) इतना सुनकर हे सखी, दोनों ने ( मैंने और माधव ने ) भवन में प्रवेश किया और जब हम दोनों एक स्थान पर एकांत में मिले तो दोनों ने

कामदेव का मंत्र पढ़ कर उसकी आराधना करनी शुरू की और इस प्रकार हम दोनों की मनः कामना पूर्ण हुई।

(१२) भवन से बाहर निकलने पर जोगी वेषधारी कृष्ण ने फिर हमारी कर्कशा सास से कहा, "जब यह बाला वन में गौरी पूजन को जाए तब विधवा को घर में ही रख लेना अर्थात् किसी विधवा स्त्री को साथ न भेजना। कितनी सुंदर युक्ति है। बिचारी सास विधवा थी अतः नटनागर ने सोचा कि यदि बहुरिया अकेली ही जाएगी तो मिलने में सुविधा होगी। धन्य है नट नागर आपकी लीला को।

(१४) इतना सुन कर सब सखियाँ योगी वेषधारी कृष्ण को प्रणाम कर अपने अपने घरों को चली गईं। कवि विद्यापति कहते हैं कि इस प्रकार नटवर कान्ह अपनी मन कामना को पूर्ण करके चले गए।

## १६२.

गोकुल देव देयासिनि आओल
नगरहि ऐसे पुकारि
अरुन बसन पेन्हि जटिल बेस धरि
कान्ह द्वार माझ ठारि ॥ २ ॥
सुनि धनि जटिला तुरित चल आओल
हेरइत चमकित भेल ।
हमर वधुक रीति देखि जनि आनमति
कहि मंदिर लइ गेल ॥ ४ ॥
देव देयासिनि कान ।
जटिला वचन सुधामुखि नियरही
एक दीठि हेरइ बयान ॥ ६ ॥
कह तव अतनु देव इथे पाओल
हृदि-मधि पइसल काल ।
निरजन होइ मंत्र जब झाड़िए
तब इह होएव भाल ॥ ८ ॥
एत सुनि जटिला घर दोहे लेअल
निरजन दुहु एक ठाम ।

सब जन निकसल बाहर बइसल
पुरल कान्ह मनकाम ॥ १० ॥
बहु खन अतनु मंत्र पढ़ि झारल
भागल तब सेहो देवा ।
देव देयासिनि घर संप निकसल
चातुरि बूझब केबा ॥ १२ ॥
जटिला बहुत भकति करि हरखित
कतक भीख आनि देल ।
कह कबि सेखर भीख लिए तब
सेहो देयासिनि गेल ॥ १४ ॥

(४) देव देयासिनि = झाड़ फूँक करने वाली स्त्री । पैन्हि = पहिन कर । जटिल = योगनियों जैसा । ठारि = ठाढ़े हुए, खड़े हुए । (४) धनि जटिला = जटिला सास । चकमित = चकित, । बधुक = बधू की । जनि = मानो, जैसे । आन = दूसरी प्रकार । (६) नियरहि = निकट ही, पास ही । (८) अतनु = अनंग, कामदेव । पइसल = पैठा है, प्रवेश किया है । भाल = भली चंगी, ठीक । (१०) दोहे = दोनों को । (१२) भागल = भाग गया । केबा = बहाना, छल—उ० केवा जनि कीजै मोरि सेवा सब भाँति लीजे, मीठ-मीठ मेवा लै कलेवा करवैहौं मैं । (रघुराज) (१४) भकति = भक्ति पूर्वक ।

(२) समस्त गोकुल नगर में यह ख़बर फैल गई कि झाड़ फूँक करने वाली एक स्त्री नगर में आई है । हे सखी, लाल वस्त्र पहिने तथा योगनियों का सा वेष धारण किए हुए कान्ह हमारे द्वार पर आकर खड़े हो गये ।

(४ झाड़ फूँक करने वाली स्त्री का आगमन सुन कर हे सखी, हमारी जटिला सास जल्दी से द्वार पर आई और योगिनी की कांति तथा स्वरूप को देख कर चकित हो गई । "हे योगिनी तनिक हमारी बहू को देखो, इसका स्वभाव जैसे कुछ और ही प्रकार का हो गया है," यह कह कर हमारी सास जोगिनी वेष धारिणी कान्ह को घर के भीतर ले गई ।

(६) देव देयासिनी रूपी कान्ह ने हमारी जटिला सास की आज्ञानुसार बहुत ही निकट से एक तीक्ष्ण दृष्टि मेरे मुख पर डाली ।

(८) मेरे मुख पर तीक्ष्ण दृष्टि डाल कर जोगिनी रूपी कान्ह ने हमारी

सास से कहा, "इस बाला को तो अनंग ने पा लिया है अर्थात यह युवती तो अनंग देव का शिकार हो गई है और इस कारण इसके हृदय में काम ने प्रवेश पा लिया है। यदि एकांत हो जाय तो हम मंत्र पढ़ कर इस देव को झाड़ें। केवल उसी दशा में बाला भली-चंगी हो सकेगी।"

(१०) योगिनी की इस बात को सुन कर हमारी जटिला सास हम दोनों को घर में ले आई और हम दोनों को एकांत स्थान में छोड़ कर सब स्त्रियाँ उस कोठरी से निकल कर बाहर जा बैठीं। इस प्रकार कान्ह की मनः कामना पूर्ण हुई।

(१२) बहुत देर तक हे सखी, कान्ह मंत्र पढ़ कर अनंग देव को झाड़ते रहे और इस प्रकार वह देव भाग गया अर्थात् काम का आवेग शांत हो गया। मनः कामना पूर्ण हो जाने पर योगिनी वेषधारी कान्ह कोठरी से बाहर निकले। कोई भी परम चतुरा स्त्री कान्ह के इस छल को समझ न सकी।

(१४) हे सखी, हमारी जटिला सास ने बड़ी भक्ति पूर्वक आनंदमग्न होकर योगिनी वेषधारी कान्ह को बहुत सी भिक्षा लाकर दी। कवि शेखर कहते हैं कि भिक्षा लेकर तब वह देव देयासिनि वहाँ से चली गई।

## १६३

वर नागर साजइ नागरि बेसा।
मुकुट उतारि सीमंत सवाँरल
बेनी विरचित केसा ॥ २ ॥
चंदन धोइ सिंदुर भाल रंजल
लोचन अंजन अंका।
कुंडल खोलि कर्नफूल पहिरल
भरि तनु केसर-पंका ॥ ४ ॥
बेसर खचित सतेसरि पहिरल
चूरि कनक कर कंजे।
चरन-कमल पास जावक रंजन
तापर मंजिर गंजे ॥ ६ ॥

कंचुकि माँझ कदंब कुसुम भरि
आरंभन कुच आभा ।
अरुनांबर बर सारी पहिरल
वस्त्र बिलोकन सोभा ॥ ८ ॥
धरि परिबादिनि स्याम मिलन हित
शुभ अनुकूल पयाने ।
पहिलहि बाम चरन तुलि मोहन
त्रियागति लच्छन भाने ॥ १० ॥
ऐसन चरित मिलन जहाँ सुंदरि
दूरहि एकलि ठारि ।
कर धरि यंत्र-तंत्र सँवारत
को इह लखइ न पारि ॥ १२ ॥
राइक निकट बजाओल सुंदरि
सुनइत भइ गेल साधा ।
ए नव यौवनि नबिन बिदेसिनि
आओ पुकारइ राधा ॥ १४ ॥
सुनइत स्याम हरखि चित आओल
उठि धनि आदर देल ।
बाँह पकड़ि निज आसन बइसाओल
कत कत हरखित भेल ॥ १६ ॥

× × × × × × ×

जबहि बजाओल बीन सुमाधुरि
रीझि देहल मनि-माल ।
अइसे बजाबए हमर जंतरिया
मोहन जंत्र रसाल ॥ २० ॥
नाम गाम कह कुल अवलंबन
ब्रज आगम किए काजा ।
सुखमइ नाम, मथुरापुर जदुकुल
गुनीजन पीड़इ राजा ॥ २२ ॥

धनि कह तुत्र गुन रीभि प्रसन्न भेल
माँगह मानस जोय ।
मनोरथ कर्म जाँचलि जदि सुंदरि
मान रतन देह मोय ॥ २५ ॥
हँसि मुख मोड़ि पीठि देइ बइसल
कान्ह कएल धनि कोर ।
टूटल मान बढ़ल कत कौतुक
भूपति के करु ओर ॥ २६ ॥

(२) नागरि = स्त्री । सीमंत = माँग । (४) अंका = अंक, रेखा । (६) सतंसरि = तसौसर, सतलड़ा । चूरि = चूड़ी । कँजे = कमल रूपी । मंजिर = मँजीर, नूपुर, घुँघुरू । गंजे = गुँजार करते हैं । (८) आरंभन = आरंभ होते हुए, उभरते हुए । (१०) परिबादिनि = बीणा । पयाने = प्रस्थान किया ।(१२) एकलि = अकेली । यंत्र = वीणा । तंत्र = तार । (१४) राइक = राधा के । साधा = साध, इच्छा । (२०) देहल = दे दी । जंतरिया = वीणा बजाने वाला ।

इस पद में कवि विद्यापति ने नट नागर की एक लीला का वर्णन किया है । राधा का मान भंग करने के लिए मोहन ने वीणा बजाने वाली का वेश धारण किया है और पुरजनों को छल कर राधा का मान भंग किया है । कृष्ण काव्य के रचयिता श्री सूरदास ने ऐसी अनेकों लीलाओं का वर्णन किया है जैसे जोगन लीला, मालिनि लीला इत्यादि । मोहन की इन लीलाओं से सूर सागर के दशम स्कंध का अधिकांश भाग भरा पड़ा है ।

(२) नट नागर कृष्ण स्त्री का वेश धारण कर रहे हैं । अपने मुकुट को उतार कर उन्होंने माँग सँवारी और केशों को गूँथ कर वेणी बनाई ।

(४) अपने मस्तक पर लगी चंदन की खौरि को पानी से धोकर उन्होंने सिंदूर का टीका लगाया और नेत्रों में अंजन की रेखा लगाई । इसके पश्चात् उन्होंने अपने कानों से कुंडल उतार कर कर्ण फूल पहिन लिए और सारे शरीर पर केशर का लेप किया ।

(६) तत्पश्चात माथे पर सतलड़ा बेसर पहिना और कमल नाल के समान दोनों हाथों में सुवर्ण की चूड़ियाँ धारण कीं । चरण कमलों को महावर से रँगा और झन झन गुँजार करने वाले नूपुर धारण किये ।

(८) तत्पश्चात् मोहन ने शरीर पर चोली धारण की और उसमें कदंब पुष्पों को ठूँस कर शोभाशील बनावटी पयोधर बनाये । इसके पश्चात नट नागर ने पीतांबर को उतार कर सुंदर लाल रंग की साड़ी धारण की । साड़ी की शोभा देखने योग्य थी ।

(१०) कंधे पर वीणा धर कर इस वेष में मोहन ने श्यामा (राधा) से मिलने के लिए शुभ मुहूर्त्त में प्रस्थान किया । चलते समय मोहन ने पहले अपना बाँया पैर आगे बढ़ाया क्योंकि स्त्रियों की यही रीति है ।

(१२) इस प्रकार स्त्री का वेष धारण करके मोहन राधा से मिलने के लिए चले । कुछ दूर जा कर ऐकांत स्थान में मोहन ने वीणा के तारों को ठीक किया । मोहन ने स्त्री-वेष ऐसी चतुराई से धारण किया था कि कोई भी व्यक्ति उनके इस छल को न समझ सका ।

(१४) सुंदर स्त्री का वेष धारण किये हुए मोहन ने राधा के निकट पहुँच कर अपनी वीणा बजाई । वीणा की मधुर ध्वनि को सुन कर राधा के हृदय में और अधिक वीणा वादन सुनने की लालसा उत्पन्न हुई । "हे परदेशी सुन्दरी, हे नव युवती, यहाँ आओ, " ऐसा कह कर राधा ने स्त्री वेष धारी मोहन को आवाज़ देकर पुकारा ।

(१६) राधा की आवाज़ सुनते ही मोहन बहुत प्रसन्न होकर वहाँ गये । राधा ने अपने स्थान से खड़े होकर स्त्री वेष धारी मोहन का स्वागत किया । मोहन की बाँह पकड़ कर राधा ने उनको अपने आसन पर बैठाया और उनकी अनुपम कांति तथा मनोमोहक स्वरूप को देख कर मन ही मन अति प्रसन्न हुईं । श्री तुलसी दास ने भी एक ही चौपाई में सागर को गागर में भर दिया है:—रंगमंच जब सिय पग धारी, रूप देखि मोहे नर नारी ।।

(२०) जब मोहन ने मधुर स्वरों में वीणा बजाई तो उनकी कला चातुर्य्य पर मुग्ध होकर राधा ने अपनी मणि-माला स्त्री वेषधारी मोहन को भेंट कर दी । मोहन ने वीणा ऐसे मधुर स्वरों में बजाई कि सब सुनने वाले मोहित हो गये ।

(२२) वीणा वादन के पश्चात राधा ने स्त्री वेष धारी मोहन से पूछा, "हे सुंदरी, तुम्हारा नाम क्या है, घर कहाँ है, तुम किस कुल की लक्ष्मी हो, तथा किस कारण से बृज में आगमन किया है ।" इन प्रश्नों के उत्तर में नट नागर ने कहा, "हे राधे, मेरा नाम सुखमई है, मथुरा मेरा वासस्थान है,

और यदुवंश में जन्मी हूँ। मथुराधिपति कंस गुणीजनों को पीड़ा देता है इस कारण घर को त्याग कर यहाँ आई हूँ।''

(२४) मोहन की बातें सुन कर परम सुंदरी राधा ने कहा, ''हे सुंदरी, तेरे अनुपम गुणों पर मैं मुग्ध हूँ जो तेरे मन में आवे मुझ से माँग ले।'' इस पर मोहन ने उत्तर दिया, ''हे परम चतुरा नागरि, यदि आप मेरे गुणों पर रीझ कर मुँह माँगा इनाम देना चाहती हैं तो कृपा करके मुझे मान रूपी रत्न का दान दीजिये।''

(२६) इस बात को सुन कर राधा मोहन को पहिचान गईं और प्रसन्नता तथा लज्जा से मुख फेर कर बैठ गईं। कृष्ण ने राधा को अपनी गोद में भर लिया। इस प्रकार मान भंग हो जाने से रस रीति का विकास हुआ।

# विदग्ध-विलास

## विदग्ध-विलास

### १६४.

आजुक लाज तोहे कि कहब माई ।
जल देइ धोइ जदि तबहु न जाई ॥ २ ॥
नहाइ उठल हम कलिंदी तीर ।
अंगहिं लागल पातल चीर ॥ ४ ॥
तैं बेकत भेल सकल सरीर ।
तहिं उपनीत समुख जदुकीर ॥ ६ ॥
बिपुल नितंब अति बेकल भेल ।
पालटि तापर कुंतल देल ॥ ८ ॥
उरज उपर जब देहल दीठि ।
उर मोरि बइसल हरि करि पीठि ॥ १० ॥
हँसि मुख मोड़ए ढ़ीठ कन्हाई ।
तनु-तनु झाँपइते झाँपल न जाई ॥ १२ ॥
विद्यापति कह तुहु अगे आनि ।
पुनु काहे पलटि न पैसलि पानि ॥ १४ ॥

(२) आजुक = आज की । देइ = से । (४) पातल = पतला, क्षीण । (६) तैं = इससे । तहिं = वहीं । उपनीत = लाया हुआ, यहाँ अर्थ है बैठा हुआ । (८) पालटि = उलट कर । तापर = उस पर । कुंतल = केश । (१०) देहल = दी, डाली । मोरि = मोड़ कर । बइसल = बैठ गई । (१४) पैसल = पैठ गई ।

(२) अरी दैय्या, आज की लज्जास्पद बात तुझ से कैसे कहूँ । अनेकों बार जल से धोने पर भी अर्थात शक्ति भर प्रयत्न करने पर भी उस लज्जा की कालिमा को मैं छुटा नहीं पाई हूँ ।

(४) आज जब मैं यमुना से स्नान करके निकली तो भीगे होने के कारण मेरी पतली साड़ी मेरे अंगों से चिपक गई ।

(६) इससे हे सखी, मेरे समस्त अंग प्रकट हो गये। लज्जा की बात तो यह है कि वहीं किनारे पर ही मेरे ठीक सम्मुख यदुराय (कृष्ण) बैठे हुए थे।

(८) साड़ी के अंगों से चिपक जाने के कारण हे सखी, मेरे विशाल नितंब विशेष रूप से प्रकट हो गये थे। मैंने लज्जा वश उनको ढकने के लिए अपने केशों को उलट कर उनको छुपा लिया।

(१०) नितंब तो मैंने ढक लिये परंतु हे सखी, जब यदुराय ने मेरे पीन उरोजों की ओर दृष्टिपात किया तो मैं लजावश मुख मोड़ कर तथा कृष्ण की ओर पीठ करके बैठ गई।

(१२) तब हे सखी, ढीठ कृष्ण हँस कर मेरा मुख अपनी ओर मोड़ने लगे। उस समय मैंने बार बार अपने अंगों को छुपाने की चेष्टा की परंतु हे सखी, लज्जा वश तथा घबराहट के कारण उनको ढकने में सफल नहीं हुई।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले, तू तो निपट अजान है। यदि अंगों को ढकने में सफल नहीं हुई तो पुनः लौट कर पानी में क्यों न पैठ गई।

## १६५

हम अबला सखि किये गुन जान।
से रसमय तनु रसिक सुजान ॥ २ ॥
कतहु जतन मोर कोर बइसाई।
बाँधल बेनि से कबरि खसाई ॥ ४ ॥
कंचुक देल हृदय पर मोर।
परसि पयोधर भै गेल भोर ॥ ६ ॥
कंठ पहिराओल मनिमय हार।
अंग बिलेपल कुंकुम भार ॥ ८ ॥
बसन पेन्हाओल कए कत छंद।
किंकिन जालहि नीबि निबंध ॥ १० ॥
निज कर-पल्लव मभु मुख माज।
नयनहि कएल सु काजर साज ॥ १२ ॥
अलक तिलक दए चोलि निहारि।
कह कविसेखर जाँओ बलिहारि ॥ १४ ॥

(२) किये = क्या । (४) मोर = मुझे । बाँधल = बँधी हुई । कबरि = केश । खसाई = खोल दिये । (१०) छंद = छल । निबंध = बाँधा । (१२) माज = माँज कर, पोंछ कर ।

(२) हे सखी, हम तो अबला साधारण स्त्री हैं। हम भला प्रेम क्रीड़ा के गुणों तथा चरित्रों को क्या जानें । परंतु यदुराय तो स्वयं ही रसिक सुजान तथा रसमय हैं ।

(४) हे सखी, न जाने कितने प्रकार से यत्न करके उन्होंने मुझे अपनी गोद में बिठा लिया और मेरी बँधी हुई वेणी को खोल कर कौतुक वश मेरे समस्त केश खोल दिये ।

(६) इसके पश्चात् हे सखी, यदुराय मेरे उरोजों पर से कंचुकी को सरका कर तथा उरोजों को अपने हाथों से स्पर्श करके प्रेम विभोर हो गए ।

(८) इसके पश्चात हे सखी, यदुराय ने मेरे कंठ में मणियों की माला पहिना दी और समस्त शरीर पर केशर का लेप किया ।

(१०) हे सखी, न जाने कितने छल करके उन्होंने मुझे वस्त्र धारण कराये और वस्त्र धारण कराने के पश्चात् बड़े यत्न पूर्वक मेरी करधनी और नीवी को बाँधा ।

(१२) इसके पश्चात हे सखी, अपने कमल के समान कोमल हाथों से मेरे मुख को पोंछ कर मेरे नेत्रों में काजल की रेखा आँज दी ।

(१४) और हे सखी, महावर और तिलक लगाने के पश्चात कंचुकी में छुपे मेरे उन्नत उरोजों को देख ऐसे प्रेम विभोर हुए कि कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी, उनकी इस दशा पर मैं बारंबार बलिहारि होती हूँ ।

प्रियतमा का श्रृंगार करना प्रेम क्रीड़ा का विशिष्ठ अंग है । श्री सूरदास ने तो इस प्रसंग पर अनेकों अनुपम पदों की रचना की है । स्थानाभाव के कारण उनको यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है । इसी प्रसंग पर सेनापति द्वारा रचित एक कवित्त उपस्थित किया जाता है ।

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है ।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रज-भूषन जू,
बीरी निज कर कै खवाई अति हित है ॥
ह्वै कै रस बस जब दीबे कौं महाउर कै,
सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है ।

चूमि के हाथ नाथ के लगाइ आँखिन सौं,
कही प्रान पति यह अति अनुचित है ॥

## १६६

एं धनि रंगिनि कि कहब तोय।
आजुक कौतुक कहल न होय ॥ २ ॥
एकलि सुतल छलि कुसुम सयान।
दोसर मनमथ कर-धनुबान ॥ ४ ॥
नूपुर झुन-झुन आओल कान।
कौतुक मुँदि हम रहल नयान ॥ ६ ॥
आओल कान्हु बइसल मझु पास।
पास मोड़ि हम लुकाओल हास ॥ ८ ॥
कुंतल कुसुम-दाम हरि लेल।
बरिहा माल पुनहि मोहि देल ॥ १० ॥
नासा मोतिम गीमक हार।
जतने उतारल कत परकार ॥ १२ ॥
कंचुकि फुगइत पहु भेल भोर।
जागल मनमथ बाँधल चोर ॥ १४ ॥
कवि विद्यापति एह रस भान।
तुहु रसिका पहु रसिक सुजान ॥ १६ ॥

(२) रंगिनि = सुरसिका। (४) एकलि = अकेली। सुतल = सोई थी। सयान = शय्या। (८) पास = बग़ल, यहाँ अर्थ है मुख। (१०) दाम = माला। लेल = ले ली। बरिहा = बरही, मोर पुच्छ। (१२) गीमक = गले का। (१४) फुगइत = खोलते।

(२) हे बाले, हे सुरसिके, हे सखी, क्या बताऊँ, आज के कौतुक का तो वर्णन किया ही नहीं जा सकता है।

(४) आज मैं अकेली अपनी पुष्प शय्या पर सोई हुई थी कि मोहन वहाँ आये। उनकी छवि इतनी सुंदर थी मानो अपने पुष्प बाणों सहित स्वयं कामदेव वहाँ अवतीर्ण हुये हों।

(६) मोहन के पैरों में पड़ी पैजनियों की मधुर झंकार कान में पड़ते ही मैंने कौतुक वश नेत्र मूँद कर सोये होने का छल किया।

(८) हे सखी, मोहन मेरे पास आकर बैठ गये। उस समय मैंने अपने मुख को मोड़ कर ओठों से फूट निकलने का प्रयास करती हुई हँसी को भरसक रोका।

(१०) मोहन ने मेरे पास बैठ कर मेरे केशों में गुँथी फूलों की माला को तो ले लिया और अपनी मोर पुच्छ की माला मेरे केशों में गूँथ दी।

(१२) इसके पश्चात् हे सखी, मोहन ने मेरी नाक का मोती और गले का हार बड़ी युक्ति से चुपचाप उतार लिया।

(१४) इसके पश्चात् उन्होंने मेरी कंचुकी के बंधन को खोला परंतु बंधन को खोलते समय प्रेमावेश से मोहन विभोर हो उठे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो कामदेव रूपी चौकीदार ने जाग कर छल रूपी चोर को पकड़ लिया हो।

(१६) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले तुम स्वयं सुरसिका हो और मोहन तो रसिक शिरोमणि हैं अतः दोनों रसरीति से परिचित हैं।

## १६७.

हरि धरि हार चओंकि परु राधा।
आध माधव कर गिम रहु आधा ॥ २ ॥
कपट कोप धनि दिठि धरु फेरी।
हरि हँसि रहल बदन-बिधु हेरी ॥ ४ ॥
मधुरिम हास गुपुत नहिं भेला।
तखने सुमुखि-मुख चुंबन देला ॥ ६ ॥
करु धरु कुच, आकुल भेलि नारी।
निरखि अधर-मधु पिबए मुरारी ॥ ८ ॥
चिकुर-चमर झरु कुसुमुक धारा।
पिबि कहु तम जनि बम नव तारा ॥ १० ॥
बिद्यापति कह सुंदरि बानी।
हरि हँसि मिलिलि राधिका रानी ॥ १२ ॥

(२) धरि = धरते ही, पकड़ते ही। परु = पड़ी। (४) धरु फेरी = फेर ली। (६) मधुरिम = मधुर। तखने = ततः क्षण। (१०) पिवि = पी कर, निगल कर। कहु = कहो, मानो। बम = वमन करता हो, उगलता हो।

(२) श्री राधिका सोई हुई थीं कि कृष्ण ने चुपके से निकट जा कर उनका हार पकड़ लिया। कृष्ण के हार पकड़ते ही राधा चौंक पड़ी। चौंकने से हार टूट गया। आधा हार तो कृष्ण के हाथ में आ गया और आधा राधा के गले में पड़ा रह गया।

(४) इस घटना पर झूँठ मूँठ का क्रोध करके राधा ने अपनी आँखें कृष्ण की ओर से फेर ली और कृष्ण राधा की इस कपट क्रोधमयी मुद्रा को देख कर हँसने लगे।

(६) परंतु राधा की मधुर मुस्कान कृष्ण से छुप न सकी अतः उसी समय कृष्ण ने राधा के मुख को चूम लिया।

(८) जब कृष्ण ने राधा के कुचों पर हाथ रखा तो प्रेमावेग से राधा विभोर हो उठी और उनकी इस प्रेम तन्मयता को देख कर कृष्ण ने उनके अधरामृत का पान कर लिया।

(१०) प्रेमावेग के कारण सात्विक कंप होने से राधा की वेणी खुल गई और उसमें गुँथे फूल गिरने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो अंधकार उज्ज्वल तारों को निगल कर उन्हे पुनः उगल रहा हो।

(१२) कवि विद्यापति अपनी मधुर वाणी से कहते हैं कि प्रेम विभोर हो जाने के कारण कृष्ण और राधा दोनों हँस कर परस्पर मिल गये।

## १६८.

सासु सुतल छलि कोर अगोर।
तहि अति ढीठ पीठ रहु चोर ॥ २ ॥
कत कर आखर कहब बुझाई।
आजुक चातुरि कहल कि जाई ॥ ४ ॥
नहि कर आरति ए अबुझ नाह।
अब नहिं होएत बचन निरबाह ॥ ६ ॥
पीठ आलिंगन कत सुख पाब।
पानिक पियास दूध किए जाब ॥ ८ ॥

कत मुख मोरि अधर रस लेल।
कत निसबद कए कुच कर देल ॥ १० ॥
समुख न जाए सघन निसोआस।
किए कारन भेल दसन विकास ॥ १२ ॥
जागल सास चलल तब कान।
न पूरल आस विद्यापति भान ॥ १४ ॥

(२) छलि = थी। सुतल छलि = सोई थी। ताहि = वहाँ भी। (४) कत = कहाँ। आखर = अक्षर, शब्दों में। (६)आरति = आतुरता, शीघ्रता। अबुझ = अज्ञान। (८) पाब = पाया, मिला। पानिक = पानी की। (१०) निसबद कए = निः शब्द हो कर, चुपचाप। (१२) निसोआस = निश्वास, साँस। बिकास = विकसित हो उठे, चमक उठे।

(२) हे सखी, आज मेरी सास मुझे अपनी गोद में लेकर सोई थी कि वहाँ भी मेरी पीठ की ओर ढीठ चोर कृष्ण आ गया।

(४) हे सखी, शब्दों में कहाँ तक समझा कर कहूँ। कृष्ण की आज की चतुराई वर्णन नहीं की जा सकती है।

(६) कृष्ण को प्रेमातुर देख कर हे सखी मैंने उनसे कहा, "हे नासमझ प्रीतम आतुरता न करो। ऐसी विकट परिस्थिति में वचन निर्वाह कैसे हो सकता है अर्थात मिलन प्रतिज्ञा कैसे निभाई जा सकती है।"

(८) तब हे सखी प्रेमातुर कृष्ण ने मेरी पीठ का आलिंगन कर लिया। मेरी पीठ के आलिंगन से भला हे सखी उन्हें क्या सुख मिला क्योंकि हे सखी, पानी की प्यास भी कहीं दूध से बुझती है।

(१०) परँतु हे सखी अनेकों प्रयत्न करके तथा अपने मुख को मोड़ कर कृष्ण ने मेरे अधरामृत का पान किया और बिना किसी प्रकार का शब्द किये अर्थात चुपचाप मेरे कुचों को अपने हाथों से पकड़ लिया।

(१२) हे सखी कृष्ण की स्थिति भी बड़ी हास्यास्पद थी। कृष्ण निश्वास सम्मुख नहीं छोड़ते थे कि कहीं उस साँस के स्पर्श से मेरी सास जाग न जाये परंतु न जाने क्यों उसी समय उनके दाँत चमक उठे।

(१४) हे सखी, उसी समय मेरी सास जाग पड़ी और कृष्ण वहाँ से चले गये। कवि विद्यापति कहते हैं कि आज कृष्ण की मनोकामना पूर्ण नहीं हुई।

१६९.

कि कहब हे सखि आजुक रंग।
सपन हि सूतल कुपुरुष संग ॥ २ ॥
बड़ सुपुरुख बलि आओल धाई।
सूति रहल मुख आँचर भँपाई ॥ ४ ॥
काँचलि खोलि आलिंगन देल।
मोहे जगाए आपु निंद गेल ॥ ६ ॥
हे बिहि हे बिहि बड़ दुख देल।
से दुख रे सखि अबहु न गेल ॥ ८ ॥
भनए विद्यापति इह रस धंद।
भेक कि जान कुसुम-मकरंद ॥ १० ॥

(४) बलि = समभ कर। (१०) धंद = विचित्रता। भेक = मेंढ़क। कि = क्या। जान = जाने, जानता है।

(२) हे सखी, आज की रस रीति का वर्णन मैं क्या कहूँ। आज तो मैं स्वप्न वश अर्थात भ्रम में आकर कुपुरुष के साथ सो गई।

(४) उस कुपुरुष को अत्यंत सुपुरुष (प्रीतम) समभ कर मैं उसके निकट सोने के लिए दौड़ कर आई और अपने मुख को आंचल से ढक कर सो गई।

(६) उस कुपुरुष ने मेरी चोली उतार कर मुझे आलिंगन किया परंतु हे सखी वह कुपुरुष, रस रीति से अनभिज्ञ पुरुष, मुझे जगा कर स्वयं आप सो गया।

(८) हे ब्रह्मा, हे विधाता, उसके रस अनुचित कार्य ने मुझे बहुत दुख दिया। इस अवांछनीय घटना का दुख अभी तक मेरे हृदय से नहीं गया है।

(१०) कवि विद्यापति रस रीत की इस विचित्रता को जानते हैं। वह कहते हैं कि हे राधे पुष्प पराग के रस को मेंढ़क क्या जाने अथवा बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद अर्थात रुचि हीन कुपुरुष रस रीति को क्या समभ सकते हैं।

१७०.

आकुल चिकुर वेढ़लि मुख सोभ।
राहु कएल ससि-मंडल लोभ ॥ २ ॥
बड़ अपरुब दुइ चेतन मेलि।
विपरित रति कामिनि कर केलि ॥ ४ ॥
कुच विपरीत विलंबित हार।
कनक कलस वम दूधक धार ॥ ६ ॥
पिय मुख सुमुखि चूम तजि ओज।
चाँद अधोमुख पिवए सरोज ॥ ८ ॥
किंकिन रटत नितंबिनि छाज।
मदन-महारथ बाजन बाज ॥ १० ॥
फूजल चिकुर माल धरू रंग।
जनि जमुना मिलु गंग-तरंग ॥ १२ ॥
वदन सोह ओन स्रम, जल-बिंदु।
मदन मोति लए पूजल इंदु ॥ १४ ॥
भनइ विद्यापति रस मय वानी।
नागरि रम पिय-अभिमत जानी ॥ १६ ॥

(२) आकुल = व्याकुल, चंचल। वेढ़ल = घेर लिया। (४) दुई = दो। चेतन = चैतन्य व्यक्ति, चतुर व्यक्ति। (६) विलंबित = लटकता हुआ–उ० राजत रोमक की तनी राजिव है रस बींच नदी सुख दैनी। आगे भई प्रतिबिंबित पाई विलंबित जो मृग नैनी कि बेनी। (द्विज) (८) ओज = लज्जा। (१०) रटत = बजती हुई। नितंबनि = सुंदर नितंबों वाली स्त्री। छाज = शोभा देती है, शोभती है। (१२) फूजल = खुले हुए। (१६) रम = रमण करती है। अभिमत = इच्छा।

(२) बाला के चंचल केशों ने उसके मुख-चंद्र को इस प्रकार घेर लिया है मानो समस्त शशि मंडल को निगलने के लोभ से राहु ने उसे घेर रखा हो।

(४) दो चतुर व्यक्तियों का मिलन भी बड़ा अपूर्व होता है। अतः हे सखी, आज बाला केलि क्रीड़ा में विपरीत रति में संलग्न है।

(६) विपरीत रति में संलग्न होने के कारण बाला के गले का हार लटका हुआ है और उसके उत्तुंग कुच नीचे की ओर लटके हुए हैं। बाला के नीचे की ओर लटके हुए कुच ऐसे प्रतीत होते हैं मानो स्वर्ण कलश के उलटने से दूध की धार गिर रही हो।

(८) हे सखी, विपरीत रति के समय चंद्रमुखी बाला ने समस्त लज्जा का त्याग करके प्रीतम के मुख को चूम लिया। उस समय की शोभा ऐसी लगती थी मानो चंद्रमा ने झुक कर कमिलिनि का रस पान किया हो।

(१०) हे सखी, विपरीत रति में संलग्न होने के कारण वामा के कटि प्रदेश में पड़ी किंकिणी मधुर ध्वनि से बजती है और सुन्दर नितम्बों वाली बाला अद्‌भुत शोभा को प्राप्त होती है। किंकिणी की ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानो महारथी कामदेव अपने युद्ध के बाजों को बजा रहा हो।

(१२) विपरीत रति के कारण बाला की वेणी खुल कर केश बिखर गये हैं। बिखरे केशों और उन में गुंथी माला ऐसी प्रतीत होती है मानो कालिंदी यमुना (काले केश) गंगा जी की प्रखर धारा ( श्वेत पुष्प माला ) से मिल रही हो।

(१४) हे सखी, विपरीत रति श्रम जनित पसीने की बूंदों से बाला का मुख और भी अधिक शोभायमान हो रहा है उसके सुन्दर मुख पर पसीने की बूँदें ऐसी प्रतीत होती हैं मानो कामदेव ने मोतियों से मुख चन्द्र रूपी इन्द्र का पूजन किया हो।

(१६) परम चतुरा बाला ने अपने प्रीतम की इच्छा जान कर उनके संग इस प्रकार रमण किया है और इसी कारण कवि विद्यापति अपनी मधुर वाणी से उसका वर्णन करते हैं।

विपरीत रति वर्णन तो रीति-कालीन शृंगारी कवियों का प्रिय विषय रहा है। प्रायः सभी कवियों ने इस प्रसंग पर कवितायें रची हैं। रीति-कालीन कवियों में प्रमुख होने के कारण बिहारी ने भी इस विषय पर मनोहर उक्तियाँ कही हैं। उन की वर्णन शैली अनूठी है, गागर में सागर को भर दिया है। नीचे उनके कुछ दोहे लिखे जाते हैं।

परयो जोर विपरीत, रूपी सुरति रन-धीर।
करत कुलाहल किंकिनी, गह्यौ मौन मंजीर॥
विनती रति बिपरीत की, करी परस पिय पाय।
हंसि अनबोले ही दियो, ऊतर दियो बताय॥

रमन कह्यौ हठि रमनि सों, रति विपरीत विलास।
चितई करि लोचन सतर, सलज सरोप सहास ॥ इत्यादि

१७१.

बिगलित चिकुर मिलित मुखमंडल
चाँद बेढ़ल घनमाला।
मनिमय कुंडल स्रवन दुलित भेल
घाम तिलक बहि गेला ॥ २ ॥
सुंदरि तुअ मुख मङ्गल-दाता
रति-बिपरीत समर जदि राखबि
कि करब हरि हर-धाता ॥ ४ ॥
किंकिन किनिकिनि कंकन कनकन
घनघन नूपुर बाजे ।
रति-रन मदन पराभव मानल
जय-जय डिमडिम बाजे ॥ ६ ॥
तिल एक जघन सघन रव करइत
होअल सैनक भंग ।
विद्यापति कवि इ रस गाबए
जामुन मिलली गंग ॥ ८ ॥

(२) बिगलित = बिखरे हुए। घनमाला = मेघ समूह। दुलित = आँदोलित, हिलता हुआ। (४) समर = युद्ध। राखबि = रक्षा करेगी, विजय करेगी। (६) पराव = पराजय। मानल = मान ली है। (८) तिल = क्षण। जघन = जंघा। सघन = पुष्ट, पीन। रव = रव, शब्द। होअल = हो गए। जामुन = जमुना।

(२) बाला के बिखरे हुए केश उसके मुख-मंडल पर इस प्रकार फैले हुए हैं मानो चंद्रमा मेघ-समूह में घिरा हुआ हो। बाला के कानों में पड़े मणि जटित कुंडल हिल रहे थे और धूप की गर्मी के कारण पसीना निकलने से उसके माथे का तिलक बह गया था।

(४) हे सुंदरी, हे बाले, तेरे मुख-चंद्र का दर्शन बड़ा कल्याण कारी है और हे बाले, यदि विपरीत रति रूपी युद्ध में तुमने विजय प्राप्त की तो ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनों देव भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते।

(६) हे सखी, विपरीत रति में संलग्न होने के कारण बाला के कटि प्रदेश में लिपटी किंकिणी, हाथों के कंकण तथा पावों के नूपुर झन झन तथा घन घन शब्द कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो विपरीत रति युद्ध में कामदेव ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली है और इसी कारण बाला की ओर से जय भेरी बज रही है।

(८) विपरीत रति करते समय बाला की सघन जंघाओं के घर्षण से उत्पन्न होने वाले चणिक शब्द को सुन कर कामदेव की समस्त सेना पराजित होकर श्रेणी हीन हो गई है। अर्थात विपरीत रति क्रीड़ा में बाला को कामदेव पर विजय प्राप्त हुई है। कवि विद्यापति इस रस रीति का वर्णन करते हैं। उनके लेखे राधा माधव का मिलन ऐसा है मानो गङ्गा और यमुना ने एक दूसरे से मिल कर पुण्य त्रिवेणी की सृष्टि की हो।

## १७२.

सखि हे कि कहब किछु नहि फूर।
सपन कि परतेख कहए न पारिए
किए नियरे किए दूर॥ २॥
तड़ित - लता तल जलद समारल
आँतर सुरसरि धारा।
तरल तिमिर ससि सूर गरासल
चौदिस खसि पड़ तारा ॥ ४॥
अंबर खसल धराधर उलटल
धरनी डगमग डोले।
खरतर बेग समीरन संचरु
चंचरिगन करु रोले॥ ६॥
प्रनय - पयोधि - जले तन झाँपल
इ नहि जुग अवसान।
के विपरीत कथा पतिआयत
कबि बिद्यापति भान ॥ ८॥

(२) फ़ुर = स्फूर्ति। किछु नहीं फ़ुर = स्फूर्ति नहीं होती है। परतेख = प्रत्यक्ष। (४) तड़ित-लता = विद्युत, राधा। जलद = मेघ, मेघ वर्ण कृष्ण। आँतर = बीच में। सुरसरि धारा = गंगा जी की धारा, राधा का हार। तरल तिमिर = चंचल अंधकार, चंचल काले केश। ससि = मुख चंद्र। सूर = सूर्य, सिंदूर बिंदु। तारा = तारिकायें, बेणी में गुँथे हुए पुष्प। (६) अंबर = आकाश, वस्त्र। धराधर = पर्वत, कुच। धरनी = धरणी, पृथ्वी, नितंब। खरतर = तीव्र। समीरन, प्रात कालीन वायु, निश्वास। चंचरिगन = भ्रमरों के झुंड, किंकिणी। रोलें = रौला, शोर। (८) प्रनय = प्रणय, प्रेम। जुग = युग। अवसान = अंत।

उपरोक्त पद श्लेष का सुंदर उदाहरण है इस पद का प्रत्येक शब्द दो अर्थ रखता है अतः इस पद का अर्थ दो विभिन्न पक्षों में किया जा सकता है। एक पक्ष है वर्षा ऋतु और दूसरा है विपरीत रति क्रीड़ा। दोनों पक्षों में किंचित मात्र समानता न होने पर भी कवि ने अपने कौशल से वास्तविक चित्र खींच दिया है।

वर्षा ऋतु के पक्ष से अर्थ

(२) हे सखी, मैं तुझ से क्या कहूँ। मुझमें तो समस्त घटनावली को वर्णन करने की स्फूर्ति ही नहीं होती है। मैं तो हे सखी, ऐसा आश्चर्यान्वित हो गई हूँ कि मैं तो यह भी नहीं कह सकती कि यह समस्त घटनायें प्रत्यक्ष रूप से हुई भी थीं या केवल स्वप्न मात्र ही थीं। इसी कारण मुझे उनकी वास्तविकता पर संदेह है।

(४) हे सखी, विद्युतलता के नीचे अर्थात उसे घेरे हुए सघन मेघ छा रहे थे और बीच बीच में गङ्गा की धारा की भाँति वर्षा की झड़ी लगी हुई थी। भयंकर अंधकार ने सूर्य और चंद्र दोनों को ग्रस रखा था और अंधकार के कारण आकाश में एक भी नक्षत्र दृष्टि गोचर नहीं होता था मानो समस्त नक्षत्र-गण टूट टूट कर चारों ओर बिखर गये थे।

(६) विद्युत की चमक तथा मेघों के गर्जन से ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश फट कर गिरा जा रहा हो। गर्जन की प्रतिध्वनि से पृथ्वी काँप रही थी और ऐसा मालूम होता था मानो पर्वत जड़ से उखड़ कर पलट पड़ेंगे। उस समय हे सखी, वायु बड़ी तीव्रता से बह रही थी और भ्रमरों के झुंड के झुंड चारों ओर शोर कर रहे थे।

(८) उस समय हे सखी समस्त पृथ्वी प्रलय कालीन ओघ के समान जल राशि के ढक गई थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो युग के अंत का समय आ पहुँचा था कवि विद्यापति कहते हैं कि उपरोक्त वर्णन वर्षा ऋतु का नहीं है है वरन विपरीत रति का वर्णन है। परंतु इस बात का विश्वास किसे आवेगा।

विपरीत रति-क्रीड़ा पक्ष में अर्थ

(२) हे सखी, राधा कृष्ण की विपरीत रति क्रीड़ा का वर्णन तुझ से कैसे कहूँ। मेरी वाणी में तो उस घटना का वर्णन करने की शक्ति ही नहीं है। मै तो यह भी नहीं कह सकती कि जो कुछ मैंने देखा वह प्रत्यक्ष था अथवा मैं ने उस घटना का स्वप्न मात्र ही देखा था। अतः उसकी वास्तविकता संदिग्ध है।

(४) विपरीत रति के होने के कारण विद्युत-लता के समान चंचल राधा के नीचे मेघ वर्ण श्याम अपने शरीर को संभाले हुए थे और दोनों के वक्ष स्थलों के बीच राधा के गले में पड़ा हार गङ्गा की धारा के समान लटका हुआ था। विपरीत रति जनित श्रम के कारण राधा की वेणी खुल गई थी और चंचल केशों ने उसके मुखचंद्र तथा बाल सूर्य के समान प्रकाशवान् सिंदूर बिंदु को आच्छादित कर लिया था। वेणी खुल जाने से उसमें गुँथे पुष्प चारों ओर बिखर गये थे।

(६) विपरीत रति के कारण राधा के अधोवस्त्र अंग पर से हट गये और नीचे की ओर झुके होने के कारण उसके उत्तुंग कुच नीचे की ओर लटके हुए थे। तथा शक्ति भर प्रयत्न करने से राधा के पुष्ट नितम्ब हिल रहे थे और परिश्रम करने के कारण राधा के कटि प्रदेश में पड़ी किंकिणी घोर शब्द कर रही थी।

(८) हे सखी, उस समय दोनों प्रेम रूपी समुद्र के जल से ओत प्रोत हो रहे थे और दोनों के प्रेम-मिलन का अभी अंत नहीं हो रहा था। कवि विद्यापति कहते हैं कि विपरीत रति-क्रीड़ की इस कहानी का कौन विश्वास करेगा।

१७३.

दुहुक संजुत चिकुर फूजल।
दुहुक दुहू बलावल बूझल ॥२॥
दुहुक अधर दसन लागल।
दुहुक मदन चौगुन जागल ॥४॥

दुअओ अधर करए पान ।
दुहुक कंठ आलिंगन दान ॥ ६ ॥
दुअओ केलि सयँ सयँ भेलि ।
सुरत सुखे विभावरि गेलि ॥ ८ ॥
दुअओ सअन चेत न चीर ।
दुअओ पियासल पीवए नीर ॥१०॥
भन विद्यापति संसय गेल ।
दुहुक मदन लिखन देल ॥ १२ ॥

(२) संजुत = संयुक्त, साथ-साथ। दुहू = दोनों के, परस्पर। बलाबल = बल + अबल, शक्ति और कमज़ोरी। (४) जागल = जाग्रत हो गया है। (८) संय-संय = साथ-साथ। विभावरि = रात्रि। (१०) सअन = शयन।

(२) हे सखी, राधा और कृष्ण (प्रिया प्रीतम) के संयुक्त होने से (रति क्रीड़ा में संलग्न होने से) दोनों के केश खुल कर बिखर गये और दोनों ने परस्पर एक दूसरे की शक्ति तथा अशक्ति का अनुमान कर लिया।

(४) रति क्रीड़ा में संलग्न होने के कारण दोनों के अधरों पर दाँतों के चिन्ह बन गये हैं और दोनों के हृदयों में हे सखी कामदेव चौगुनी शक्ति से जाग्रत हो गया है।

(६) रति क्रीड़ा के समय हे सखी, दोनों एक दूसरे का अधरामृत पान करते थे और दोनों एक दूसरे के गले से लग कर परस्पर आलिंगन करते थे।

(८) हे सखी, इस प्रकार परस्पर केलि क्रीड़ा करते तथा सुरत सुख को लूटते समस्त रात्रि व्यतीत हो गई है।

(१०) हे सखी, शय्या पर साथ-साथ पौढ़े होने के कारण दोनों ऐसे प्रेम विभोर हो रहे हैं कि उन्हें अपने वस्त्रों तक का चेत नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो केलि रस के प्यासे दोनों मन भर कर केलि रस का पान कर रहे हों।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि दोनों ने अपने को कामदेव के हाथों लिख दिया है अर्थात अपने तन मन को कामदेव के अर्पण कर दिया है।

# वसंत

## वसंत

### १७४

माघ मास सिरि पंचमी गँजाइलि
    नवम मास पंचम हरुआई ।
अति घन पीड़ा दुख बड़ पाओल
    वनसपति भेलि धाई हे ॥ २ ॥
सुभ खन बेरा सुकुल पक्ख हे
    दिनकर उदित-समाई ।
सोरह संपुन बतिस लखन सह
    जनम लेल ऋतुराई हे ॥ ४ ॥
नाचए जुवतिजना हरखित मन
    जनमल बाल मधाई हे ।
मधुर महारस मङ्गल गावए
    मानिनि मान उड़ाई हे ॥ ६ ॥
वह मलियानिल ओत उचित हे
    नव घन भओ उजियारा ।
माधवि फूल भेल मुकुता तुल
    ते देल बंदनवारा ॥ ८ ॥
पीअरि पाँड़रि महुअरि गावए
    काहरकार धतूरा ।
नागेसर-क संख धुनि पूर
    तकर ताल समतूरा ॥ १० ॥
मधु लए मधुकर बालक दएहलु
    कमल-पंखरी-लाई ।
पओनार तोरि सूत बाँधल कटि
    केसर कएलि बघनाई ॥ १२ ॥

नव नव पल्लव सेज ओछाओल
 सिर देल कदम्बक माला।
बैसलि भमरी हरउद गाअए
 चक्का चंद निहारा॥ १४॥
कनअ केसुअ सुति-पत्र लिखिए हलु
 रासि नछत कए लोला।
कोकिल गनित-गुनित भल जानए
 रितु वसंत नाम थोला॥ १६॥

× × × × × × ×

बाल वसंत तरुन भए धाओल
 बढ़ए सकल संसारा॥ १८॥
दखिन पवन घन अंग उगारए
 किसलय कुसुम-परागे।
सुललित हार मजोर घन कज्जल
 आखितौं अंजन लागे॥ २०॥
नव बसंत रितु अनुसर जौबति
 विद्यापति कवि गावे।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
 सकल कला मनभावे॥ २२॥

(२) सिरी पंचमी=श्री पंचमी, वसंत पंचमी—उ० दई दई कर सुरति गँवाई—सिरी पंचमी पूजै आई। (जायसी पद्मावत)। गंजाइलि=पूर्ण गर्भा हुई। नवम मास=वैशाख में वसंत का अंत होता है—ज्येष्ठ से माघ मास तक नौ महीने होते हैं। पंचम हरुआई=पाँचवाँ दिन होने पर—वैद्यक के अनुसार पुष्ट बालक पैदा होने के लिए नौ मास और पाँच दिन गर्भ रहना आवश्यक है। (४) खन=क्षण। बेरा=बेला, समय। समाई=समय पर। सोरह=सोलह अंग। सम्पुन=सम्पूर्ण, पूर्ण। बतिस=बत्तीस। लखन=लक्षण। सह=सहित ऋतुराई=ऋतु राज वसंत। (६) जनमल=जन्म लिया है। मधाई=माधव, वसंत ऋतु। (८) ओत=ओट, आड़। तुल=तुल्य, समान। (१०) पीअरि=पीयरी, पीली। पांडरि=कुंद पुष्प। महुअरि=पुत्र जन्म पर गाया जाने वाला राग विशेष। काहरकार=तुरही बजाना। तकर=उसका। समतूरा=समतुल्य,

समान, एक साथ। (१२) दएलहु=ला दिया। पश्रौनार=पौनार, पद्म नाल। कएलि=बनाई, रचना की। बघनाई=बघनखा। (१४) श्रोछाश्रोल=बिछाई। बैसलि=बैठ कर। हरउद=लोरी, पालने का गीत। (१६) कनश्र=कनक, सुवर्ण। केसुश्र=केसू या टेसू के पुष्प, पलाश पुष्प। सुति—पत्र=प्रसूति पत्र, जन्म पत्र। हलु=हल करके, गणना करके। लोला=जीभ। गुनित=गणना। भल=भली प्रकार। थोला=रखा, खोज निकाला। (२०) उगारस=अंगराग लगाता है, उबटन मलता है। मँजरि= 'जरी, पुष्प गुच्छ। श्रखितौं=आँखों में।

इस पद में कवि विद्यापति ने वसंत आगमन को बालक के जन्म के समान मान कर रूपक बाँधा है। कवि ने अपनी प्रतिभा से ज्येष्ठ मास से श्री पंचमी तक गणना करके वही काल निश्चित किया है अर्थात ९ माह ५ दिन जो कि वैद्यक के अनुसार पुष्ट बालक के जन्म के लिए आवश्यक हैं। अतः कवि ने वसंत आगमन को पुत्र जन्म के रूप में चित्रित किया है। बालक के जन्म के समय माता को असह्य दुख होता है तथा जन्म के समय शुभ लग्न तथा शुभ मुहूर्त्त का ध्यान रखा जाता है। कवि ने भी शुभ घड़ी तथा शुभ मुहूर्त्त का वर्णन किया है। जन्म के उपरांत स्त्रियाँ बालक के शुभ-अशुभ लक्षणों की परीक्षा करती हैं और आनंद मंगल होता है। चारों ओर हर्ष गान और नृत्य होता है और सौभाग्यवती ललनायें मंगल गान करती हैं। कवि ने वसंतोत्सव पर होने वाले आनंद-मंगल को पुत्र जन्म पर होने वाले मंगल गान की उपमा देकर समस्त पद में रस भर दिया है। वसंत आगमन पुत्र जन्मोत्सव की भाँति उल्लास युक्त हो उठा है। किसी भी दूसरे कवि ने इस रूपक को बाँधने की चेष्टा नहीं की है। कवि विद्यापति इस रंग में अनूठे हैं, उनकी कल्पना विचित्र है तथा वर्णन शैली चमत्कारिक तथा ओज पूर्ण है।

(२) माघ मास की श्री पंचमी के दिन प्रकृति पूर्ण-गर्भा हुई और नौ मास पाँच दिन व्यतीत हो जाने के कारण प्रसव के लक्षण दृष्टि गोचर होने लगे। पूर्ण-गर्भा हो जाने पर प्रकृति को प्रसव के लिए अति पीड़ा तथा दुख हुआ और तब कहीं नवीन बनस्पति के रूप में वसंत का जन्म हुआ।

(४) ब्राह्म मुहूर्त्त में, शुभ घड़ी तथा शुभ मुहूर्त्त में, सूर्य के उदय होने के समय सोलहों अंगों तथा बत्तीसों लक्षणों से युक्त माघ मास की शुक्ल पक्ष पंचमी को ऋतुराज बसंत ने जन्म लिया।

(६) युवती-गण बाल वसंत के जन्म लेने की खुशी में चारों ओर मंगल-गान करने लगीं, चारों ओर मंगल वाद्य बजने लगे और इस मंगल सूचक अवसर पर माननियों का मान भी नष्ट हो गया और वह भी प्रसन्न मन से मंगल कृत्यों में भाग लेने लगीं।

(८)हे सखी, मलय पवन बह रहा है,शिशु वसंत को हवा लगने का भय है अतः उससे ओट करना उचित है। इसी कारण आकाश में नवीन मेघ छा गये हैं। पुत्र जन्म पर घर में बंदनवार बाँधी जाती है अतः प्रकृति ने वसंत रूपी पुत्र के जन्म उपलक्ष में मुक्ता के समान शुभ माधवी पुष्पों की बंदनवार चारों ओर सजा रखी है।

(१०) पुत्र जन्म पर मंगल गीत गाये जाते हैं और द्वार पर शहनाई बजती है, प्रकृति ने भी पुष्पों के द्वारा इस अभाव की पूर्ति की है। पीले कुंद पुष्प चारों ओर खिल कर मानो पुत्र जन्म पर गाये जाने वाले गीत गा रहे हैं और तुरही के आकार का धतूरे का पुष्प मानो शहनाई बजा रहा है। शहनाई के स्वर में स्वर मिला कर शंख के आकार के नाग के पुष्प भी मानो गीत में ताल लगा रहे हैं।

(१२) ऐसी प्रथा है कि जन्म के पश्चात शिशु को पहले मधु चटाया जाता है, अतः बाल वसंत को चटाने के लिए मधुकर ने पुष्पों से मधु लाकर दिया और कमल ने अपनी कोमल पंखड़ियाँ मधु चटाने के लिए अर्पित कीं। बालकों के शरीर के भीतरी अंगों को अपने नियत स्थान पर जकड़े रखने के लिए बालकों की कमर में सूत बाँधा जाता है तथा उनकी शक्ति बढ़ाने के लिए बघनखा पहिनाया जाता है। अतः प्रकृति ने शिशु वसंत की कमर में पद्मनालों को तोड़ कर निकाले गये सूत्रों की करधनी धारण कराई और केशर की खौरि का बघनखा उसके शरीर पर अंकित किया।

(१४) बालकों को कोमल बिछौनों पर सुलाया जाता है, अतः प्रकृति ने शिशु वसंत को सुलाने के लिए नवीन कोमल किसलयों की शय्या बनाई और सिरहाने कदंब पुष्पों की माला तकिये के रूप में रखी। बालकों को सुलाने के लिए लोरियां गाई जाती हैं और बालकों की चंद्रमा को निहारने की आदत तो जगत प्रसिद्ध है ही। शिशु बसंत को सुलाने के लिए भ्रमरियाँ उसके पास बैठ कर लोरियां सुनाने लगीं और शिशु वसंत अपनी कोमल शय्या पर पड़े पड़े एक टक चंद्रमा को निहारने लगा।

(१६) पंडित-वर कोकिला ने राशि नक्षत्र इत्यादि की ज़बानी गणना करके सुनहले पलाश पुष्पों से शिशु वसंत की जन्मपत्री बनाई और क्योंकि बुद्धिमती कोकिला गणित की गणना करने में पारंगत थी अतः उसी ने बालक का वसंत नाम रखा।

(१८) धीरे धीरे शिशु वसंत तरुण होकर अपने पैरों चलने लगा और समस्त संसार में उसकी सुंदरता का यशोगान होने लगा अर्थात चारों ओर ऋतुराज वसंत का प्रभुत्व फैल गया।

(२०) बालकों के अंगों को पुष्ट करने के लिए मातायें उनका उबटन मलती हैं और आँखों में काजल आंजती हैं। शिशु वसंत के लिए यह कार्य दक्षिण पवन और हलके मेघों ने किया। दक्षिण पवन किसलय और पुष्प पराग लेकर शिशु वसंत के शरीर में उबटन मलता है। शृंगार के लिए माता रूपी प्रकृति ने मंजरियों का हार शिशु वसंत के गले में डाल दिया है और हल्के हल्के मेघों की कालिमा ने मानो स्वच्छ वसंत ऋतु रूपी बालक के नेत्रों में काजल लगा दिया है।

(२२) कवि विद्यापति कहते हैं कि धीरे-धीरे नव वसंत ऋतु यौवन की ओर अग्रसर होने लगा। राजा शिवसिंह रूप नारायण को वसंत की समस्त कलायें प्रिय हैं।

वसंत आगमन का कितना सुंदर तथा विशद चित्रण है। वसंत आगमन के समय पर होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों का कैसा सुंदर विवरण कवि ने इस पद में दिया है। समस्त चित्र एकदम सजीव प्रतीत होता है।

१७५

आएल रितुपति राज वसंत।
धाओल अलि कुल माधवि-पंथ॥ २॥
दिनकर-किरन भेल पौगंड।
केसर कुसुम धएल हेमदंड॥ ४॥
नृप-आसन नव पीठल पात।
काँचन कुसुम छत्र धरु माथ॥ ६॥
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताय।
समुख हि कोकिल पंचम गाय॥ ८॥

सखिकुल नाचत अलि कुल यंत्र ।
द्विज कुल आन पढ़ आसिख मंत्र ॥ १० ॥
चंद्रातप उड़े कुसुम पराग ।
मलय पवन सह भेल अनुराग ॥ १२ ॥
कुंदवल्ली तरु धएल निसान ।
पाटलतून असोक-दल वान ॥ १४ ॥
किंसुक लवँग-लता एक संग ।
हेरि सिसिर रितु आगे दल भंग ॥ १६ ॥
सैन साजल मधु-मखिका कूल ।
सिसिरक सबहु कएल निरमूल ॥ १८ ॥
उधारल सरसिज पाओल प्रान ।
निज नव दल करु आसन दान ॥ २० ॥
नव वृंदावन राज विहार ।
विद्यापति कह समयक सार ॥ २२ ॥

(२) अलिकुल = भ्रमरों के झुंड । पंथ = रास्ता, मार्ग । (४) भेल = हो गई । पोगंड = पाँच से दस तक वर्ष तक की अवस्था, किशोरावस्था, यहाँ अर्थ है कुछ तीव्र । हेम दंड = सुवर्ण डंडा, पराग । (६) पीठल = एक वृक्ष विशेष । काँचन = सुवर्ण, यहाँ अर्थ है चंपा वृक्ष । (८) मौलि = किरीट, मुकुट । मुकुल = कली, मंजरी । ताय = उसका । (१०) यंत्र = वाद्य बजाते हैं । द्विज कुल = ब्राह्मण, पक्षीगण, पक्षियों को द्विज इस कारण कहा जाता है कि उनका जन्म भी दो बार होता है, एक बार अंडे के रूप में और दूसरी बार पक्षी के रूप में । आन = आकर । आसिख = आशीस, आशीर्वादात्मक । (१२) चंद्रातप = चँदोवा । सह = सहित । अनुराग = प्रीति, प्रेम । (१४) कुंदवल्ली = कुंद वल्लरी, एक वृक्ष विशेष । निसान = निशान, झंडा, पताका । पाटल = पांडर वृक्ष । तून = तूणीर, तरकश । दल = पत्ते । वान = बाण, तीर । (१६) किंसुक = केसू के, पलाश के । लवँग-लता = लौंग के पेड़ की शाखा । आगे = पहले ही । (१८) सैन = सैन्य, सेना । कूल = कुल । (२०) उधारल = उद्धार किया । सरसिज = कमल । दल = पत्ता ।

कवि विद्यापति ने इस पद में ऋतुराज वसंत का राजसी वेष में चित्रण किया है । अतः राजाओं के उपयुक्त साज शृंगार, राज्य दरबार, बंदीजन, भाट,

नर्तक, सैन्य, रिपु दल, झंडा, निशान, पताका इत्यादि सभी राजसी उपकरणों का वर्णन इस पद में है। राजस्व वर्णन में युद्ध तथा शत्रुओं की पराजय का वर्णन होना भी आवश्यक था। कवि ने इनका भी पूर्ण रुपेण वर्णन किया है। अपनी अनूठी सूझ तथा मौलिक कल्पना के बल पर कवि ने ऋतुराज वंसत को वास्तविक नृप के रूप में चित्रित किया है। कवि इस प्रयत्न में सर्वथा सफल हुआ हैं। यह प्रसंग कवि की मौलिक तथा एक दम अनूठी सूझ है।

(२) ऋतु राज वसंत का आगमन होते ही भ्रमरों के झुंड माधवी लताओं की ओर दौड़ पड़े।

(४) वसंत ऋतु के आते ही सूर्य की किरणें अधिक तीव्र होने लगीं और केशर के पुष्पों में सुनहले पराग-केसर निकल आये।

(६) ऋतुराज वसंत के राज्य सिंहासन निर्माण के लिए पीठल वृक्ष में कोमल पत्ते निकल आये और चंपा के वृक्षों ने अपने मस्तकों पर पुष्पों का छत्र धारण किया।

(८) आम्र वृक्ष की मंजरियाँ मानो ऋतुराज वसंत का मुकुट हैं और राज्य दरबार में विरदावली गाने वाले भाटों के समान प्रकृति में कोकिला अपने पंचम स्वरों में ऋतुराज वसंत का यशोगान करती हैं।

(१०) राज्य दरबारों में नाचने वालों तथा गायकों की भरमार होती है तथा नाँदी पाठ करने वाले ब्राह्मण होते हैं। क्योंकि इस पद में कवि ने ऋतु-राज वसंत का राजसी वेश में चित्रण किया है अतः नाचने गाने वालों तथा नाँदी पाठ करने वाले ब्राह्मणों का वर्णन करना आवश्यक था। मयूरों के झुंड ऋतुराज के आगमन की खुशी में नाचते हैं और भ्रमरों के झुंड भाँति भाँति की ध्वनियाँ पैदा कर के मानो तरह तरह के वाद्य बजाते हैं। पक्षियों के झुंड चारों ओर से आकर जो शब्द करते हैं वही मानो राज्य दरबारों में पढ़े जाने वाले नाँदी पाठ और आशीर्वादात्मक श्लोक हैं।

(१२) ऋतुराज वसंत के आगमन की खुशी में पुष्पों के उड़े हुए पराग से वायु द्वारा चंदोवे से छा गये हैं और मलयाचल से आने वाली दक्षिण पवन बड़े प्रेम से इस पराग को चारों ओर बिखेर रहा है।

(१४) कुदबल्ली का वृक्ष ऋतुराज वसंत की पताका है, पाटल वृक्ष के पत्ते तरकस हैं और अशोक के नुकीले पत्ते उसके बाण हैं।

(१६) धनुष के समान पलाश के पत्तों पर ताँत के समान लवंगलता

की शाखाओं की प्रत्यंचा चढ़ा कर उसकी सहायता से ऋतुराज वसंत ने रण सज्जा सजाई। परंतु उसकी इस रण सज्जा को देख कर शिशिर ऋतु रूपी राजा का सैन्य दल बिना मुक़ाबिला किये पहिले ही भंग हो गया।

(१८) ऋतुराज वसंत ने मधु मक्खियों के झुंडों की सेना सजा कर शिशिर की समस्त सेना (प्रभाव) को एक ही बारगी निर्मूल कर दिया।

(२०) ऋतुराज वसंत ने शिशिर को पराजित करके कमलिनी का उसके पंजों से उद्धार किया और इस प्रकार कमलिनी ने प्राणदान पाया। इसके बदले में कमलिनी ने अपने नवीन पत्तों को ऋतुराज वसंत का राज्य सिंहासन निर्माण करने के लिए दान कर दिया।

(२२) कवि विद्यापति कहते हैं कि इस समस्त घटना चक्र का सार यह है कि ऋतुराज के आगमन से वृन्दाबन में मानो नव जीवन का संचार हो गया है।

## १७६

नव बृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव विकसित फूल।
नवल वसंत नवल मलयानिल
मातल नव अलि कूल॥ २॥
बिहरइ नवल किसोर।
कालिंदी-पुलिन-कुंज बन सोभन
नव नव प्रेम बिभोर॥ ४॥
नवल रसाल-मुकुल मधु मातल
नव कोकिल कुल गाय।
नव जुवती गन चित उमताअई
नव रस कानन धाय॥ ६॥
नव जुवराज नवल बर नागरि
मीलए नव नव भाँति।
निति निति ऐसन नव नव खेलन
विद्यापति मति माति॥ ८॥

(२)मातल=मस्त। (४) सोभन=सुशोभित। (६) उमताअई=उन्मत्त हो जाता है। (८) ऐसन=इस प्रकार से। खेलन=क्रीड़ा। माति=मस्त।

(२) ऋतुराज के आगमन से वृन्दावन मानो एक दम नया हो उठा है। नये नये वृक्षों में नवीन पुष्प खिले हैं। वसंत ऋतु भी अभी नई है अर्थात अभी प्रारंभ हुई है, नवीन मलयानिल बह रही है और नवीन भ्रमरों के झुंड मस्ती से पागल हो उठे हैं।

(४) नवीन प्रेम में बेसुध होकर नवल किशोर (युवक कृष्ण) यमुना किनारे सुशोभित नवीन कुंजों में विहार कर रहे हैं।

(६) आम की नई मंजरियों के मधु को पीकर मस्त बनी कोकिला कुंजों में कूक रही है। यही नहीं वरन् नव युवतियों का चित्त भी प्रेम रस से उन्मत्त हो उठा है और वह नवीन प्रेम रस की खोज में कुंजों की ओर जा रही हैं।

(८) इस मस्ती के वातावरण में नवल किशोर तथा नागरि किशोरी भाँति भाँति से मिलते तथा क्रीड़ा करते हैं। कवि विद्यापति की मति इस मादक वातावरण से प्रभावित होकर इच्छा करती है कि राधा-माधव दिन प्रति दिन इसी प्रकार नई नई क्रीड़ाएँ करें।

## १७७

लता तरुअर मंडप जीति।
निरमल ससधर धवलिए भीति ॥ २ ॥
पउँअ नाल अइपन भल भेल।
रात परीहन पल्लव देल ॥ ४ ॥
देखह माइ हे मन चित लाय
बसंत-बियाहा कानन-थलि आय ॥ ६ ॥
मधुकरि-रमनी मंगल गाव।
दुजबर कोकिल मंत्र पढ़ाव ॥ ८ ॥
करु मकरंद हथोदक नीर।
विधु बरिआती धीर समीर ॥ १० ॥
कनअ किसुक सुति तोरन तूल।
लाबा बिथरल बेलिक फूल ॥ १२ ॥
केसर कुसुम करु सिंदूर दान।
जओतुक पाओल मानिनि मान ॥ १४ ॥
खेलए कौतुक नव पँचबान।
विद्यापति कवि दृढ़ कए भान ॥ १६ ॥

(२) तरुअर = तरुवर, वृक्ष। ससधर = शशिधर, चंद्रमा। धवलिए = धवल कर दिया है, सफ़ेदी कर दी है। भीति = दीवार। (४) कउँअनाल = पद्म नाल। अइपन = ऐपन, चावल और हल्दी से बना मांगलिक पदार्थ, यहां अभिप्राय है मांगलिक चित्र से। रात = राता, लाल। परीहन = परिधान, वस्त्र। (६) कानन-थलि = कानन स्थल, वन स्थली। (८) मधुकर रमनी = भ्रमरी रूप स्त्री। दुजवर = द्विज वर, द्विजों में श्रेष्ट। (१०) हथोदक = हस्तोदक, वह पानी जिसे हाथ में लेकर विवाह का संकल्प पढ़ा जाता है। बिधु = चंद्रमा। बरिआती = बराती। (१२) तोरन = तोरण, जो विवाह के अवसर पर लगाया जाता है। तूल = तुल्य, समान। लावा = लावा, खील, विवाह के समय मिथिला में धान का लावा छींटा जाता है परंतु संयुक्त प्रांत में धान ही छींटा जाता है। बिथरल = बिखेरता है। (१४) जओतुक = यौतुक, दहेज़।

इस पद में कवि ने नव युवक ऋतुराज वसंत को दूल्हे के रूप में चित्रित किया है। विवाह अवसर पर होने वाली प्रत्येक रीति चाल का प्राकृतिक घटनाओं से सामंजस्य करके कवि ने अनन्य सुंदर वसंत राज का विवाह रचाया है। कैसी अनूठी कल्पना है। विवाह के अवसर पर मंडप बाँधा जाता है, घरों में सफ़ेदी कराई जाती है। ऐपन से चौक पूरे जाते हैं, सुहागिन स्त्रियाँ मंगल गान करती हैं, ब्राह्मण मंत्रोच्चार करते हैं, विवाह का संकल्प होता है और इसके पश्चात वर वधू को सिंदूर दान करता है। वर को यौतुक में धन मिलता है और बरातियों का सत्कार होता है। इस पद में कवि विद्यापति ने एक भी प्रसंग तथा रीति को नहीं छोड़ा है और परम सुंदर ऋतुराज वसंत का विवाह रचाया है। मिथिला की विवाह पद्धति का सुंदर उदाहरण कवि ने उपस्थिति किया है।

(२) लता और वृक्षों ने मानो मंडप को जीत लिया है अर्थात लता और वृक्षों के गुल्म ही मंडप हैं और चंद्रमा की निर्मल चाँदनी ने चारों ओर उज्ज्वल प्रकाश फैला कर मानो दीवारों पर सफेदी कर दी है।

(४) तालाबों में पड़े पद्मनाल के जाल ही मानो विवाह अवसर पर निर्मित किये गये ऐपन के चौक हैं और वृक्षों के नवीन कोमल लाल रंग के पत्ते ही मानो प्रकृति सुंदरी का परिधान हैं। विवाह पर वर-वधू लाल वस्त्र धारण करते हैं, कवि का इसी से अभिप्राय है।

(६) हे माई, तनिक ध्यान पूर्वक देखो तो, विवाह करने की लालसा से ऋतुराज वसंत अपना पूरा शृंगार करके वनस्थली रूपी वेदी पर आया है।

(८) सुहागिन स्त्रियों की भाँति भ्रमरियाँ मंगल गान कर रही हैं और पक्षी ( द्विज ) श्रेष्ठ कोकिला विवाह कार्य सम्पन्न करने वाले ब्राह्मणों की भाँति मंत्रोच्चार कर रही है।

(१०) दूल्हराज वसंत ने पुष्पों के मकरंद को हस्तोदक बनाया है अर्थात मकरंद उस जल का सूचक है जिसे हथेली में लेकर विवाह के अवसर पर वर विवाह संकल्प करता है। अभिन्न मित्र होने के नाते चंद्रमा इस शुभ अवसर पर बराती के रूप में उपस्थित हुआ है। मन को प्रफुल्लित करने वाली मंद समीर चारों ओर चल रही है।

(१२) चंपा तथा पलाश के सुनहले और माधवी लता के श्वेत पुष्प के गुच्छे मानो विवाह अवसर पर लगाये जाने वाले तोरण के समान हैं और बेल वृक्ष से निरंतर झड़ने वाले पुष्प मानो धान का लावा है जिसे विवाह के अवसर पर वर वधू के हाथ से छुआ कर पृथ्वी पर छींटा जाता है ।

(१४) ऋतुराज वसंत ने विवाह अवसर पर अनंत यौवना प्रकृति सुंदरी को सुनहले केशर पुष्पों को मानो सिंदूर दान के रूप में प्रदान किया है और यौतुक रूप में दूल्हराज वसंत को बालाओं का मान मिला है। कैसा अद्‌भुत विवाह है।

(१२) कवि विद्यापति निश्चयात्मक रूपसे कहते हैं कि इन सब कौतुक को कामदेव खेल रहा है अर्थात उसी के इंगित पर यह सब कुछ हो रहा है।

## १७८.

नाचहु रे तरुनी तजहु लाज।
आएल वसंत रितु बनिक-राज ॥ २ ॥
हस्तिनि, चित्रिनि, पदुमिनि नीर ।
गोरी सामरी एक बूढ़ि बारि ॥ ४ ॥
विविध भाँति कएलन्हि सिंगार।
पहिरल पटोर गृम भूल हार ॥ ६ ॥
केओ अगर चंदन घसि भर कटोर।
ककरहु खोइँछा करपुर तमोर ॥ ८ ॥

केओ कुमकुम मरदाव आँग।
ककरहु मोतिअ भल छाज माँग ॥ १० ॥

(२) बनिक राज = व्यौपारी श्रेष्ठ। (४) बूढ़ि = बूढ़ी, वृद्धा। बारि = बाला (६) पटोर = रेशमी वस्त्र। गृम = गला, ग्रीवा। (८) घसि = घिस कर। कटोर = कटोरा, छोटा बर्तन। ककरहु = किसी के। खोँइँछा = खोइचा, शकुन रूप में किसी स्त्री के आँचल में चावल, गुड़ पान आदि देना। करपुर = कपूर। तमोर = तमोल, पान। (१०) मरदाब = मर्दन कराती है, मलवाती है। आँग = अंग। भल = भली प्रकार। छाज = शोभता है।

(२) हे नव युवतियो, हे तरुणियो, लोक लज्जा को त्याग कर नाचो गावो क्योंकि आज व्यापारी श्रेष्ठ वसंत राज वर के रूप में पधारे हैं।

(४) हे सुलक्षणी नारियो, हस्तिनी, चित्रनी, पद्मिनी नारियो हे गोपियो, हे श्यामा, वयः प्राप्त तथा नव बालाओ, सब मिल कर मंगल कार्य करो।

(६) हे नव युवतियो, हे बालाओ सब अपना अपना शृंगार करो, रेशमी सुंदर वस्त्र धारण करो तथा अपनी सुंदर शंख के समान ग्रीवाओं को सुंदर मालाओं से सज्जित करो।

(८) तुम में से कोई चंदन घिस कर कटोरे में रखो और किसी सुहागिन स्त्री के आँचल में कपूर तथा पान भर कर शुभ शकुन मनाओ।

(१०) इस कारण वर राज वसंत को देखने की लालसा से कोई सुंदरी अपने अंगों में केशर मलवाती है और किसी बाला की मोतियों से भरी माँग अपूर्व शोभा को प्राप्त होती है।

## १७६.

अभिनव पल्लव बइसक देल।
धवल कमल फुल पुरहर भेल ॥ २ ॥
करु मकरंद मंदाकिनि पानि।
अरुन असोग दीप दहु आनि ॥ ४ ॥
माई हे आज दिबस पुनमंत।
करिए चुमाओन राय वसंत ॥ ६ ॥
सपुन सुधानिधि दधि भल गेल।
भमि-भमि भमरि हँकारइ देल ॥ ८ ॥

टेसू कुसुम सिंदूर सम भास ।
केतिक-धूलि बिथरहु परवास ॥ १० ॥
भनइ विद्यापति कवि कंठहार ।
रस बुझ सिवसिंघ सिव-अवतार ॥ १२ ॥

(२) अभिनव = नवीन। बइसक = बैठने के लिए । पुरहर = मंगल कलश, विवाह के अवसर पर वेदी की रचना करते समय चूने से पुते श्वेत कलश स्थापित किये जाते हैं, यही मंगल कलश कहलाते हैं । (४) मंदाकिनी = गंगा, सुरसरी। पानि = पानी, जल । असोग = अशोक वृक्ष । दुहु = दिया, प्रदान किया । आनि = आ कर, दे कर, लाकर । दुहु आनि = ला दिया (६) चुमाओन = चुंबन । राम = राव, दूल्हा, वर (८) सपुन = संपूर्ण, पूर्ण । दधि = दही । भमि = भ्रमण करके । हँकारइ = पुकार, बुलावा, न्यौता । (१०) धूलि = पुष्प धूल, पराग । बिथरहु = बिखर गई हैं ।

(२) हे बालाओ, वर श्रेष्ठ ऋतुराज को बैठने के लिए नवीन कोमल पत्तों का आसन दो और श्वेत कमल पुष्पों से मंगल कलश की स्थापना करो ।

(४, पुष्पों से टपकने वाले मकरंद रस को गङ्गा जल की भाँति प्रयोग करो और दीपक के स्थान पर अशोक की कोमल लाल पत्तियों को, जिसे प्रकृति सुंदरी ने ला दिया है, काम में लाओ ।

(६) हे सखियो, आज का दिन बड़ा शुभ है अतः आज दूल्हे के रूप में सज्जित ऋतुराज वसंत का चुंबन करो ।

(८) आज का पूर्ण चंद्र बिम्ब नये जमाये दही के समान है और भ्रमरी रूपी नाइन चारों ओर घूम घूम कर सद्‌पुरुषों को न्यौता भी दे आई है। मिथिला में विवाह के अवसर पर दही चूड़ा परोसा जाता है। इसी प्रथा की ओर कवि का इशारा है।

(१०) टेसू के फूल प्रकृति सुंदरी की माँग में भरे सिंदूर के समान प्रतीत होते हैं और वृक्षों के कोमल किसलय रूपी रेशमी वस्त्रों पर पड़ा केतकी के पुष्प का पराग मानो केशर के मांगलिक छींटों के समान है।

(१२) कवि कंठहार विद्यापति कहते हैं कि साक्षात शिव के अवतार राजा शिवसिंह इस रस को भली प्रकार जानते हैं। विवाह के अवसर पर वस्त्रों पर केशर के छापे तथा छींटे लगाने की रीति है। इस पद के दसवें चरण में इसी प्रथा की ओर कवि का इशारा है।

(१८०)

दखिन पवन वह दस दिस रोल।
से जनि बादी भाषा बोल ॥ २ ॥
मनमथ काँ साधन नहि आन।
निरसाएल से मानिनिमान ॥ ४ ॥
माइ हे सीत - वसंत विवाद।
कओन बिचारब जय- अवसाद ॥ ६ ॥
दुहु दिसि मधथ दिवाकर भेल।
दुजबर कोकिल साखी देल ॥ ८ ॥
नव पल्लव जय पत्रक भाँति।
मधुकर-माला आखर-पाँति ॥ १० ॥
बादी तह प्रतिबादी भीत।
सिसिर-बिंदु हो अंतर सीत ॥ १२ ॥
कुँद-कुसुम अनुपम विकसंत।
सतत जीत बेकताओ वसंत ॥ १४ ॥
बिद्यापति कवि एहो रस-भान।
राजा सिबसिंघ एहो रस-जान ॥ १६ ॥

(२) रोल = रौला करता हुआ, शोर करता हुआ । बादी = विवादी, झगड़े की। (४) काँ = का। निरसाएल = नीरस कर दिया है। (८) मधथ = मध्यस्थ, पंच। (१०) जय-पत्रक = फैसले का काग़ज़, डिग्री। आखर = अक्षर। (१२) तह = से। सतत = निरंतर, लगातार।

(२) शोर करता हुआ मलय-पवन दसों दिशाओं में बह रहा है अतः हे सखी झगड़े की बात न कर। मलय पवन कामोत्तेजक होता है और ऐसे समय में झगड़े की बात से रस भंग होता है अतः ऐसी बात न कर।

(४) मानिनियों के मान को भंग करने अन्य साधन न होने से मन्मथ (कामदेव) ने मानिनियों के मन को नीरस कर दिया है। जब मान में रस ही नहीं होगा तो मान करेगा कौन ? मान होता है अधिकार पर। अत: जब स्वयं मान ही नीरस हो गया तो मान से लाभ क्या।

(६) हे सखी, शीत (शिशिर) और वसंत में विवाद खड़ा हो गया है।

उनकी जय-पराजय का निर्णय कौन कर सकता है।

(८) दोनों ही ने सूर्य ( दिवाकर ) को अपना पंच चुना है और वसंत ने महापडित द्विज श्रेष्ठ कोकिला को अपना गवाह बनाया है और उसने साक्षी दी भी है।

(१०) दिवाकर ने दोनों पक्षों की आलोचना प्रत्यालोचना सुनकर अपना निर्णय दिया। वृक्षों से फूट निकलने वाले नवीन पल्लव ही मानो पंच का फ़ैसला हैं और उन पर बैठी भ्रमरों की पंक्तियाँ मानो वह अक्षर हैं जिनसे दिवाकर का निर्णय लिखा गया है।

(१२) वादी ( मुद्दई ) वसंत के दावे से प्रतिवादी ( मुद्दालह ) शिशिर भयभीत हो गया है और उसके हृदय का समस्त शीत शक्ति) भय के कारण शिशिर कालीन ओस बिंदुओं के रूप में प्रकट हो गया है। डर से पसीना आ जाता है उसी की ओर कवि का इशारा है। ओस बिंदुओं के भय के कारण झलक जाने वाली पसीने की बूँदों से तुलना कवि की अनुपम सूझ है।

(१४) वसंत आगमन के कारण चारों ओर कुंद के सुंदर पुष्प खिले हुए हैं मानो बड़े प्रयत्न से शिशिर के विरुद्ध मुक़दमा जीत कर ऋतु राज वसंत ने अपनी विजय को प्रकट किया हो।

(१६) कवि विद्यापति इस रस को गाते हैं, वर्णन करते हैं, और राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं।

१८१

अभिनव कोमल सुंदर पात।
सबारे बने जनि पहिरल रात ॥ २ ॥
मलय-पवन डोलए बहु भाँति।
अपन कुसुम-रस अपने माति ॥ ४ ॥
देखि देखि माधव मन हुलसंत।
बिरिदावन भेल बेकत वसंत ॥ ६ ॥
कोकिल बोलए साहर भार।
मदन पाओल जग नव अधिकार ॥ ८ ॥
पाइक मधुकर कर मधु-पान।
भमि भमि जोहए मानिनि-मान ॥ १० ॥

दिसि दिसि से भमि, विपिन निहारि।
रास बुझावए मुदित मुरारि ॥ १२ ॥
भनइ विद्यापति ई रस गाव।
राधा-माधव अभिनव भाव ॥ १४ ॥

(२) सबारे = सब, पूर्ण। बने = बन ने। (४) माति = मस्त। (८) साहर = सहकार, आम्र मंजरी। (१०) पाइक = पायक, दूत—उ० है दस सीस मनुज रघुनायक, जाके हैं हनुमान से पायक। (तुलसी) जोहए = जोहता है, खोजता है।

(२) वसंत आगमन होने के कारण सब वृक्षों ने सम्मानार्थ कोमल नवीन वस्त्र (पत्ते) धारण किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो समस्त बन ने लाल वस्त्र धारण कर लिये हैं। नवीन किसलय रूपी लाल वस्त्र पहन कर सब वृक्ष मानो बन संवर (सज) उठे हैं।

(४) चारों ओर मादक मलय पवन बह रही है और पुष्प स्वयं अपने ही मकरंद रस को पान करके मानो मस्त हो गये हैं।

(६) वृंदावन में चारों ओर ऋतुराज वसंत के एक छत्र आधिपत्य के लक्षणों को देख देख कर माधव मन ही मन अति प्रसन्न हो रहे हैं।

(८) आम्र मंजरी पर बैठ कर कोकिला का कूकना ऐसा प्रतीत होता है मानो वह चारों ओर घोषणा करती है कि ऋतुराज वसंत के अभिन्न मित्र कामदेव को इस संसार का समस्त अधिकार मिल गया है।

(१०) अतः कामदेव का दूत भ्रमर मकरंद पान करके चारों ओर घूम घूम कर राज्य विद्रोही व्यक्तियों के अनुरूप मानिनियों के मान को खोजता फिरता है।

(१२) दसों दिशाओं में भ्रमण करने के पश्चात् भ्रमर ने बनस्थली में आ कर देखा कि कृष्ण प्रसन्न चित्त से वहाँ रास लीला कर रहे थे।

(१४) कवि बिद्यापति कहते हैं कि मैं राधा माधव की इस नवीन भावना अर्थात् रस क्रीड़ा के आनंद को गाता हूँ।

१८२.

चल देखए जाऊ रितु बसंत।
जहाँ कुंद-कुसुम केतकि हसंत ॥ २ ॥
जहाँ चंदा निरमल भ्रमर कार।
जहाँ रयनि उजागर दिन अँधार ॥ ४ ॥

जहाँ मुगुधलि मानिनि करए मान।
परिपंथिहि पेखए पंचबान॥ ६॥
भनइ सरस कवि-कंठ-हार।
मधुसूदन राधा बन विहार॥ ८॥

(४) भमर = भ्रमर। कार = काले। (६) मुगुधलि = मुग्धा। परिपंथिहि = पथ पर चलने वाले पथिक, विरोधी। पेखए = देखता है।

(२) आओ सखी चलो, उस स्थान पर चल कर वसंत का तमाशा देखें जहाँ ढेर के ढेर कुंद के पुष्प विकसित हो रहे हैं।

(४) आओ सखी, वहाँ चलें जहाँ निर्मल चंद्रमा अपना प्रकाश फैलाता है तथा काले काले भ्रमर उड़ते फिरते हैं। जहाँ श्वेत पुष्पों तथा चंद्रमा के प्रकाश के कारण रात्रि उज्ज्वल और प्रकाश मय होती है तथा भ्रमरों की टोलियों और लता गुल्मों के कारण दिन के समय अंधकार छाया रहता है।

(६) आओ सखी, उस देश चलें जहाँ प्रिय प्रेम में मुग्ध मानिनियाँ अपने प्रियतमों से मान करती हैं और पथ पर जाने वाले पथिकों अर्थात प्रवासी प्रियतमों को कामदेव मदन ताड़ना देकर त्रस्त करता है।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी, उस स्थान को चल जहाँ राधा माधव निरंतर वन विहार करते हैं।

सरस कवि तथा कवि-कंठहार कवि विद्यापति के उपनाम हैं।

## १८३

मधुरितु मधुकर पाँति। मधुर कुसुम मधुमाति।
मधुर वृंदावन माँझ। मधुर मधुर रससाज॥
मधुर जुबति जन संग। मधुर मधुर रसरंग॥
मधुर मृदंग रसाल। मधुर मधुर करताल॥
मधुर नटन गतिभंग। मधुर नटनी नट संग॥
मधुर मधुर रस गान। मधुर विद्यापति भान॥

मधुरितु = मधुर ऋतु। माँझ = मध्य। नटन-गति = नृत्य की भाव भंगी। नटिनी = नृत्य करने वाली। नट = नृत्य करने वाला।

मधुर ऋतु है और सुंदर पुष्पों के मकरंद को पान करके मस्त बनी हुई भ्रमरों की पक्तियाँ (दल) चारों ओर दृष्टि गोचर होती हैं। मनोमोहक

वृंदावन में बसने वाले व्यक्तियों ने अति ही सुंदर तथा आकर्षक श्रृंगार किया है। वृंदावन विहारी सुंदर बालाओं के साथ मनोमोहक रास रंग में संलग्न हैं। मृदंग और करताल के बजने से बड़ी मधुर ध्वनियाँ वातावरण में गूँज रही हैं। सुंदर भाव भंगी से नृत्य करने वाली सुंदरियाँ अनुपम नर्तकों के साथ अति मधुर नृत्य कर रही हैं। सुकवि विद्यापति कहते हैं कि वृंदावन में चारों ओर मधुर गान की स्वर लहरियाँ सुनाई पड़ती हैं।

वृंदावन के मधुरिता तथा मोहकता पर कवि सिरमौर श्री भट्ट का यह पद भी देखिये।

ब्रज भूमि मोहिनी मैं जानी।
मोहन कुंज, मोहन वृंदावन, मोहन जमुना पानी ॥
मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति अमरत बानी ॥
श्री भट्ट के प्रभु मोहन नागर, मोहनि राधा-रानी ॥

१८४

बाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया।
नटति कलावति माति श्याम संग
कर करताल प्रबंधक ध्वनिया ॥ २ ॥
डम डम डंफ डिमिक डिम मादल
रुनु झुनु मंजीर बोल।
किंकिनि रन रनि वलआ कनकनि
निधुवन रास तुमुल उतरोल ॥ ४ ॥
बीन रबाव, मुरज स्वरमंडल
सा रि ग म प ध नि सा बहु निधि भाव।
घटिता घटिता धुनि मृदंग गरजनि
चंचल स्वर मंडल करु राव ॥ ६ ॥
श्रम भर गलित लुलित कबरीयुत
मालति माल बिथारल मोति।
समय बसंत रास-रस वर्णन
विद्यापति मति छोभित होति ॥ ८ ॥

(२) नटति = नृत्य करती है। माति = मस्त होकर। ध्वनिया = आवाज़। (४) मादल = मंडल, मंदरा, एक बाजा। रनरनि = रुण रुण होती है। वलआ = वलय, चूड़ी। तुमुल = प्रचण्डता से, जोश से। (६) मुरज = मृदंग, पखावजा—उ० (क) कोऊ मंजु मुरज अमोल ढोलन तबल अमल अपार हैं। (रघुराज) (ख) रुञ मुरज डफ ताल बाँसुरी झालर की झंकार। (सूर) राव = शोर। (८) गलित = पसीना बहना। लुलित = लोल, चंचल होकर। छोभित = क्षोभित, चंचल।

(२) वृंदावन में वसंतोत्सव के कारण चारों ओर नाच रंग हो रहे हैं। किट किट धा धा करके पखावजें बज रही हैं और कुशल नर्तकियाँ मस्त होकर श्याम सुंदर के संग रास क्रीड़ा कर रही हैं और नाच के ताल पर करतालें तथा दूसरे वाद्य ध्वनि कर रहे हैं।

(४) डिम डिम करके डफ बज रहा है, डिमिक डिमिक करके मंडल बज रहे हैं और नृत्य करने वालियों के पैरों (पगों) में बँधे हुए घुँघुरु रुन झुन बज रहे हैं। नृत्य करने से किंकिणी बजती हैं और हाथों की चूड़ियाँ खनाखन बोलती हैं। इन ध्वनियों से ज्ञात होता है कि मधुबन में बड़े जोश से रास लीला हो रही है।

(६) बीन, रबाब, सुर मंडल, मुरज इत्यादि वाद्य सा र ग म इत्यादि स्वरों के विभिन्न भावों अर्थात उनके आरोह-अवरोह की ध्वनि चारों ओर गूँज रही है और उसी के स्वर में स्वर मिला कर स्वरमंडल शोर कर रहा है।

(८) परिश्रम के कारण नृत्य करने तथा वाद्य बजाने वालों के पसीना बह रहा है और उनके केश चंचल हो कर (खुल कर) इधर उधर बिखर गये हैं। उनके गलों में पड़ी मालती की मालायें टूट कर मानो मोती बिखेर रही हैं। वसंत ऋतु की शोभा तथा रास लीला का वर्णन करने में कवि की वाणी क्षोभित तथा कुंठित होती है अर्थात् कवि की वाणी अपने आप को इस कार्य के लिए असमर्थ समझती है।

कृष्णकाव्य के अन्यतम रचयिता श्री सूरदास ने रास लीला का बड़ा विशद वर्णन किया है। महारास वर्णन तो सूर सागर का एक विशिष्ठ अंग है। सूरदास के अतिरिक्त अन्य वैष्णव कवियों ने रास लीला के अध्यात्मक रूप को सन्मुख रख कर बड़े मनोयोग से उसका वर्णन किया है। श्री नन्द दास ने

तो इस विषय पर एक ग्रंथ रास पंचाध्यायी की रचना कर डाली है। बृज के कवियों के कुछ उदाहरण देखिये।

सूरदास— उघटत स्याम निरतति नारि।
धरे अधर उपंग उपजैं लेत हैं गिरधारी॥
ताल, मुरज, रबाब, बीना, किन्नरी रस सार।
शब्द संग मृदंग मिलवत सुघर नंद कुमार॥
नागरि सब गुननि आगरि मिलि चलति पिय संग।
कबहुँ गावति, कबहुँ निरतति कबहुँ उघरति रंग॥
मंडली गोपाल गोपी अँग अँग अनुहारि।
सूर प्रभु धनि नवल भामिनी दामिनी-छबि-डारि॥

हित हरि वंश (श्री हित चौरासी):—
आजु बन नीको रास बनायौ।
पुलिन पवित्र सुभग जमुना-तट, मोहन बेनु बजायौ॥
कल कंकन किंकिनि नूपुर-धुनि, सुनि खग मृग सचुपायौ॥
जुवतिन मंडल मध्य स्यामघन, सारँग राग जमायौ॥
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढ़ायौ॥
विविध विसद बृषभानु नंदिनी, अंग सुढंग दिखायौ॥
अभिनय निपुन लटकि लटि लोचन भृकुटि अनंद नचायौ॥
ततथेई ताथेई धरति नवल गति, पति बृजराज रिझायौ॥
बरसत कुसुम मुदित नभ-नायक, इंद्र निसान बजायौ॥
(जै श्री) 'हित हरिवंश' रसिक राधा पति, जस बितान जग छायौ॥

कृष्ण दास— रास रस गोविंद करत बिहार।
सूर सुता के पुलिन रम्य महँ फूले कुंद मँदार॥
अद्भुत सतदल विकसित कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार।
मलय पवन बह, सारदि पूरन चंद्र, मधुप झंकार॥
सुघर राय, संगीत कलानिधि, मोहन नंद कुमार।
बृज भामिनि संग प्रमुदित नाचत, तन चरचित घनसार॥

हरि राम व्यास—
नृत्यतनागर नटवर बपु धारि सुख सागरहिं बढ़ावत।
सरद सुखद निसि ससि गोरँजित बृंदाबन उपजावत॥

ताल लिये गोपाल लाल संग, ललिता मृदंग बजावति।
हरिबंसी हरिदासी गावति सुघर रबाब बजावति॥
मिस्रित धुन सुनि खग मृग मोहित जमुना जल न बहावति।
लेत तिरपि बिगलित माला तित कुसमावलि बरसावति॥
जय जय साधु करत हरि सहचरि 'व्यास' चिराक दिखावति॥

हरि राम व्यास (रास पंचाध्यायी)

पद पटकति लटबाहु, मोहन मटकति हूँ सति उछाहु
अंचल चंचल झूमका।
मनि कुंडल ताटंक बिलोल, मुख सुखरासि,कहै मृदु बोल
मंडल मंडित स्वेद कन।
बिलुलित माला, बिगलित केस, घूमत लटकत मुकुट बिसेस
कुसुम खसें सिर तैं घने। इत्यादि

१८५

रितुपति-राति रसिक रसराज।
रसमय रास रभस रस माँझ॥ २॥
रस मति रमनि-रतन धनि राहि।
रास रसिक सह रस अवगाहि॥ ४॥
रंगिनि गन सब रंगहि नटई।
रनरनि कंकन किंकिनि रटई॥ ६॥
रहि रहि राग रचय रसवंत।
रतिरत रागिनि रमन वसंत॥ ८॥
रटति रबाब महतिक पिनास।
राधा रमन करु मुरलि बिलास॥ १०॥
रसमय बिद्यापति कवि भान।
रूप नारायन भूपति जान॥ १२॥

(४) रस मति = रस में मस्त। (६) नटई = नृत्य करती है। (१०) महतिक = महती, नारदी बीणा। पिनास = एक बाद्य यंत्र।

(२) आज ऋतुराज वसंत-पूर्णिमा की रात्रि है जिसमें रसिक शिरोमणि ने रास रचा है अतः हे रसिक जनो, इसरसमय रास में रमण करो अर्थात् रास में सम्मलित हो।

(४) रमणियों में रत्न समान राधा रस मत्त होकर रसिक शिरोमणि कृष्ण के साथ रास क्रीड़ा में पूर्णतया लीन है।

(६) संग की सहेलियाँ भावयुक्त नृत्य कर रही हैं जिससे उनके कंकण और किंकणियाँ मधुर स्वर से बज रही हैं।

(८) गुणीजन रह रह कर अर्थात् धीरे धीरे मधुर रागिनियाँ उच्चार रहे हैं और इन उत्तेजक रागनियों से पूर्ण वातावरण में ऋतुराज वसंत अपनी पूर्ण शोभा सहित विहार कर रहा है।

(१०) रबाब वीणा तथा पिनास वाद्यों से मधुर स्वर लहरियाँ निकल रही हैं और राधा रमण (कृष्ण) मुरली बजाते हुए रास विलास में संलग्न हैं।

(१२) सुकवि विद्यापति कहते हैं कि राजा रूपनारायन ( राजा शिवसिंह का उपनाम ) इस रस रीति को भली प्रकार जानते हैं।

## १८६

मलय पवन वह। वसंत विजय कह॥
भमर करइ रोर। परिमल नहि ओर॥
रितुपति रँग देला। हृदय रभस भेला॥
अनंग मंगल मेलि। कामिनि करथु केलि॥
तरुन तरुनि संगे। रयनि खेपबि रंगे॥
विहरि बिपदि लागि। केसु उपजल आगि॥
कवि विद्यापति भानि। मानिनी जीवन जान॥
नृप रुद्रसिंह वरु। मेदिनी कलपतरु॥

रोर = रौला, शोर। करथु = करती हैं। खेपबि = व्यतीत करेंगे, गुजारेंगे—उ० कैसे दिन खेपब रे। (कबीर)

मलय पवन चारों ओर शोर करती हुई वसंत की शरद पर विजय का डंका पीटती फिरती है। चारों ओर भ्रमर प्रसन्नता से शोर करते फिरते हैं और पुष्पों में उत्पन्न होने वाले पराग की कोई सीमा नहीं है। ऋतुराज वसंत के आगमन से प्रत्येक व्यक्ति रस मय हो उठा है और समस्त संसार रसमय जान पड़ता है। चारों ओर कामदेव का मंगल गान हो रहा है और रस मत्त कामिनियाँ केलि क्रीड़ा में संलग्न हैं। तरुण और तरुणियाँ साथ साथ मिल कर समस्त रात्रि आनंदोत्सव में व्यतीत करते हैं। कवि विद्यापति कहते हैं

कि इस समय मानिनियों के चित्त की जो दशा होगी उसे वह भली प्रकार जानते हैं। इस पृथ्वी पर कल्प वृक्ष के समान नृप रुद्र सिंह भी इस रस रीति को जानते हैं।

नृप रुद्र सिंह—कवि विद्यापति के आश्रय दाता महाराजा सिवसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई पद्मसिंह मुसलमानों के आधीन रह कर मिथिला की गद्दी पर बैठे। महाराज पद्म सिंह निस्सतान थे। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनकी धर्मपत्नी श्री विश्वास देवी ने बड़ी चतुरता से राज्य किया। विद्यापति ने इनके आदेश से कई ग्रंथों की रचना की। यह भी निस्संतान थीं अतः मिथिला का राज्य मिथिला के संस्थापक कामेश्वर ठाकुर के द्वितीय पुत्र भवसिंह की तीसरी स्त्री के पुत्र हरि सिंह को मिला। हरि सिंह, के पश्चात् महाराज नरसिंह देव (उपनाम दर्प नारायण) गद्दी पर बैठे इनके चार पुत्र थे, धीर सिंह, भैरव सिंह, चंद्र सिंह और दुल्लभ सिंह। सब में ज्येष्ठ होने के कारण राजा नर सिंह के पश्चात् धीरसिंह राज्य सिंहासन पर बैठे। इनके दो पुत्र थे राघव सिंह और जगन्नारायण सिंह। धीरसिंह के पश्चात् उनके छोटे भाई भैरव सिंह राज्य सिंहासन पर बैठे इनके दो पुत्र थे महाराज पुरुषोत्तम और रामभद्र सिंह उपनाम गरुड़ नारायण। इन दोनों ने क्रमिक राज्य किया। महाराज धीरसिंह के दोनो पुत्रों राघव सिंह और जगन्ना-नारायण सिंह ने कब राज्य किया यह तो अभी प्रमाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता है किन्तु इतना निश्चय है कि कवि विद्यापति इनके राज्य काल में भी जीवित थे। कवि ने इनके नाम का अपने कुछ पदों में उल्लेख किया है। जगन्नारायण सिंह के पाँच पुत्र थे। उनमें से एक का नाम रुद्र नारायण था। अनुमान किया जाता है कि उपरोक्त पद में वर्णित नृप रुद्र सिंह यही रुद्रनारायण सिंह थे। मिथिला के किसी भी दूसरे तत्कालीन राजा का नाम रुद्र सिंह नहीं मिलता है अतः अनुमान ठीकही प्रतीत होता है। महाराज रुद्र नारायण सिंह का समय ३४१ लक्ष्मण संवत अर्थात् १४६१ ई० माना जाता है।

## कवि विद्यापति का प्रकृति वर्णन

हिंदी के अधिकांश कवियों का उद्देश मानव जीवन को चित्रित करने का हा है अतः वास्तविक प्रकृति वर्णन बहुत कम कवियों ने किया है। आदि कवि वाल्मीक की कविता प्रकृति वर्णन से ओत प्रोत है इनके बाद के कवियों नेभी इस परिपाटी को अपनाया परंतु धीरे धीरे कविता का लक्ष्य बदलने से

वर्णन-शैली में भी अंतर पड़ने लगा। आदि कवि वाल्मीक के हृदय में जो भावुकता थी वह कुछ काल पीछे मंद पड़ने लगी। जिस तन्मयता के साथ उन्होंने प्रकृति का निरीक्षण किया उसकी परंपरा कालिदास तथा भवभूति तक पाई जाती है। वाल्मीक के हेमंत तथा वर्षा-वर्णन में उनकी सूक्ष्म प्रकृति का परिचय मिलता है। कालिदास के कुमारसंभव का हिमाचल वर्णन तथा मेघ-दूत में यक्ष के बताये हुए मार्ग का वर्णन बार बार पढ़ने योग्य है। भवभूति तो इस क्षेत्र में अद्वितीय है। इन महाकवियों ने कथा प्रसंग के अतिरिक्त जहाँ वर्णन की रोचकता के लिये मनुष्य व्यापार दिखाये हैं वहाँ उन्होंने ऐसे स्थलों के व्यापारों को दिखाया है जहाँ मनुष्य की प्रकृति से सन्निकटता है। सच्चे कवि ऋतु आदि के वर्णन में ऐसे ही व्यापारों को सामने लाये हैं।

मनुष्य के व्यापार परिमित और संकुचित हैं। अतः बाह्य प्रकृति के अनंत और असीम व्यापारों के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंगों को सामने करके मानना और कल्पना को शुद्ध और विस्तृत करना भी कवि का धर्म है। परंतु धीरे धीरे कवि गण इस कर्तव्य को भूल चले। अतः परवर्त्ती कवियों ने अधिकतर मनुष्य की चित्त वृत्तियों के विविध रूपों को कौशल और मार्मिकता के साथ दिखाया और बाह्य प्रकृति की स्वच्छंद क्रीड़ा की ओर कम ध्यान दिया। रीति-काल में तो राजाश्रय लोलुप मँगते कवियों के कारण कविता केवल वाक् पटुता या शब्दों की शतरंज सी बन कर रह गई। कविता केवल विषयी लोगों के काम की वस्तु हो गई।

बन, नदी, पर्वत आदि इन याचक, कवियों को क्या दे देते जो वह उनका वर्णन करने जाते। सूर और तुलसी ने हिंदी कविता को उठा कर खड़ा ही किया था कि रीति काल के शृंगारी कवियों ने उसके पैर छान कर उसे गंदी गलियों में भटकने के लिये छोड़ दिया। फिर क्या था, नायिकाओं के पैरों में मखमल के बिछौने गड़ने लगे और गुलाब के पंखुड़ियों से कोमल गालों पर चिन्ह बनने लगे।

मैं बरजी कै बार तू, इत कत लेति करौंट।
पँखुरी लगे गुलाब की, परिहै गात खरौंट॥

अथवा छलि परिबे के डरनि, सके न हाथ छुवाय।
झिझकति हिये, गुलाब के झँवा झँवावत पाय॥ इत्यादि

और यदि कोई कवि महाशय षटऋतु की लकीर पीटने खड़े हुए भी तो कहीं शरद की चाँदनी से किसी विरहिणी का शरीर जलाया तो कहीं कोयल की कूक से कलेजों के टूक किये।

भौ यह ऐसोई समौ, जहाँ सुखद दुख देत।
चैत-चाँद की चाँदनी, डारत किये अचेत॥

अथवा वन बाटनि पिक बटपरा, तकि विरहिन मत मैन।
कुहो कुहो कहि कहि उठत, करि करि राते नैन॥

अथवा मरिबे को साहस ककै, बढ़े विरह की पीर।
दौरति है समुहें ससी, सरसिज सुरभि-समीर॥ इत्यादि

इन कवियों ने ऋतुओं को उद्दीपन मात्र मानकर संयोग या वियोग की दशा का वर्णन किया है। उन्होंने प्रकृति के प्रति प्रेम नहीं दिखाया है। वह प्रकृति के उपासक नहीं थे। अतः उनकी दृष्टि प्रकृति के सुंदर व्यापारों की ओर न जाकर बार बार नायक या नायिका पर ही दौड़ दौड़ कर जाती थी। अतः वह नायक नायिका की अवस्था विशेष का प्रकृति की इनी गिनी वस्तुओं से संबंध दिखाकर किनारे हो जाते थे। ( चिंतामणि, श्री रामचंद्र शुक्ल )

रीति कालीन कवियों में केवल सेनापति ने ही प्रकृति का वास्तविक चित्रण किया है। यद्यपि प्रचलित परंपरा के अनुसार सेनापति ने भी प्रकृति वर्णन उद्दीपन के रूप में ही अधिकतर किया है। उनकी ऋतु संबंधी रचना को भली प्रकार देखने से यह विदित होता है कि प्रकृति के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त अनुराग था। कई स्थलों पर प्रकृति के रम्य रूपों से प्रभावित होकर सेनापति ने उनके चित्रण करने का उद्योग किया है। अतः उनके प्रकृति वर्णन में वास्तविकता अधिक है बसंत संबंधी उनके कुछ कवित्त नीचे लिखे जाते हैं। इन से उनकी उत्तमता का अनुमान लगाया जा सकता है।

लसत कुटज, घन चंपक, पलास, बन
फूलीं सब साखा जे हरति जन चित्त हैं।
सेत, पीत, लाल, फूल जाल हैं बिसाल तहाँ
आछे आछे अच्छर, जे कारज के मित्त हैं॥
सेनापति माधव महीना भर नेल करि,
बैठे द्विज कोकिल करत घोप नित्त हैं।

कागद रंगीन में प्रवीन हैं वसंत लिखे,
मानौ काम चक्कवै के विक्रम कवित्त हैं ॥

(२) लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग
स्याम रँग भेंटि मानौ मसि में मिलाए हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुंज,
मलय पवन उपबन बन धाए हैं॥
सेनापति माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं,
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौ
विरही दहन काम कैला परचाए हैं॥

धरयौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि,
ऊँचे सब कुल मिले गनत न अंत हैं।
सुचि है अवनि बारी भयौ लाज होम तहाँ,
भौंरी देखि होत अलि आनंद अनंत है॥
नीकी अगवानी होत सुख जनवासौ सब,
सजी तेल ताइ चैन मैन मयमंत है।
सेनापति धुनि द्विज साखा उच्चरत देखौ
बनी दुलहिन बन्यौ दूलह बसंत है॥

श्री सूरदास ने वसंत वर्णन स्वतंत्र रूप से नहीं किया है वरन उनकी कविता में प्रकृति संयोग शृंगार के अवसर पर राधा-माधव की लीला के अनंतर आती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो राधा-माधव की रास क्रीड़ा प्रकृति पर ही आश्रित हो। वसंत ऋतु आने पर लीला इस प्रकार चलती है।

सुंदर संग ललना बिहरी, वसंत सरस ऋतु आयी।
लै लै छरी कुंवरि राधिका, कमल नयन पर धायी।
द्वादस बन रतनारे देखियत, चहुँ दिसि टेंसू फूले।
बौरे अंबुवा और द्रुम बेली, मधुकर परिमल भूले।
सरिता सीतल बहत मंद गति, रवि उत्तर दिसि आयो।
प्रेम उमंगी कोकिला बोली, विरहिन विरह जगाओ।

ताल मृदंग बीन बाँसुरि डफ गावत मधुरी बानी।
देत परस्पर गारि मुदित ह्वै, तरुनी बाल सयानी॥ इत्यादि

सूर साहित्य से दो एक उदाहरण और देखिये :—

शरद-निशि देखि हरि हरषि पायो।
विपिन वृंदावन सुभग फूले सुमन रास रुचि श्याम के मनहिं आयो।
परम उज्ज्वल रैनि छिटकि रही भूमि परसब फल तरुन प्रति लटकि लागे।
तैसोइ परम रमणीक यमुना पुलिन त्रिविधि बहे पवन आनंद जागे।
राधिका रमन बन भवन सुख देखि के अधर धरि बेनु सुललित बजाई।
नाम लै लै सकल गोप कन्यान के सबन के श्रवन वह ध्वनि सुनाई।

इस प्रकार सूरदास जी ने प्रत्येक ऋतु में कृष्ण लीला और प्रकृति में विशेष सामंजस्य उपस्थित किया है। सूरदास के लीला नायक और उनकी लीला को प्रकृति की पृष्ठ भूमि से अलग देखना कठिन है। सूरदास के प्रकृति वर्णन के चित्र अधिकतर कोमल हैं। सूरदास स्वयं कोमलता तथा सुंदरता प्रिय थे और उनके चरित्र नायकों की लीला भी कोमल तथा सुंदर होती थी। परंतु सूरदास ने अनेकों स्थानों पर प्रकृति के कठोर और भयानक चित्र भी उपस्थित किये हैं। परंतु इस प्रकार का चित्रण केवल प्रसंगवश हुआ है और उससे चरित्र नायक की शक्ति और शौर्य की परोक्ष रूप से व्यंजना होती है।

मेघदल प्रबल बृज लोग देखैं।
चकित जहँ तहँ भये निरखि बादर नए ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखैं॥
ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अंध काला।
चकित भये नंद सब महरि चकित नर नारि हरि करत ख्याला।
घटा घनघोर घहरात अररात दररात सररात बृज लोग डरपैं।
तड़ित आघात तररात उतपात सुनि नर नारि सकुचि तन प्राण अरपैं। १।
भहरात झहरात दावानल आयो।
घेरि चहुँ ओर करि शोर अंदोर बन धरणि आकाश चहुँ पास छायो॥
बरत बन बाँस थरहरत कुश काँस फटि चटकि लट लटकि द्रुम नवायो।
अति अगिनि झर भार धुंधकार करि उचटि अंगार झंझार छायो॥
बरत बन पात भहरात झहरात अररात तरु महा धरणी गिरायो॥ २॥

एक चित्र और देखिये :—

ब्रज के लोग उठे अकुलाइ।
ज्वाला देखि अकाश बराबरि दशहुँ दिशा कहुँ पारि न पाइ ॥
झरहरात बन पात गिरत तरु धरणी तरकि तड़ाकि सुनाइ।
जल बर्षत गिरिवर तर वाचे अब कैसे गिरि होत सहाइ ॥
लटकि जात जर जर द्रुम बेलि पटकत बाँस काँस कुश ताल।
उचटत फर अंगार गगन लौं सूर निरखि ब्रज जन बेहाल ॥ इत्यादि

(विद्यापति सब कवियों से भिन्न हैं। प्रकृति वर्णन में तो इन्होंने कमाल ही कर दिया है। इनका वसंत और पावस वर्णन तो इतना सुन्दर है उसे पढ़ कर बरबस मंत्र मुग्ध हो जाना पड़ता है। परंतु इनके प्रकृति वर्णन में स्थानीय छाप ( Lotal colour ) की विशेषता है। विद्यापति का जन्म विहार प्रांत में हुआ था। वसंत में मिथिला की शस्य-श्यामल भूमि नाना प्रकार के पुष्पों से आच्छादित हो कर दर्शनीय हो उठती है। कवि ने उसी का चित्रण किया है। इस प्रकार विद्यापति प्रकृति वर्णन में आदि कवि वाल्मीक तथा भवभूति की श्रेणी में जा पहुँचते हैं। विद्यापति ने प्रकृति वर्णन उद्दीपन के रूप में नहीं वरन स्वतंत्र रूप से किया है और यही उनकी विशेषता है।)

# विरह

## बिरह

१८७

सखि हे बालम जितब बिदेस।
हम कुल कामिनि कहइत अनुचित
तोहहुँ दे हुनि उपदेस ॥ २ ॥
ई न बिदेसक बेलि।
दुरजन हमर दुख न अनुमापब
तें तोहे पिया लग मेलि ॥ ४ ॥
किछु दिन करथु निवास।
हम पूजल जे सेहे पए भुंजब
राखथु पर-उपहास ॥ ६ ॥
होयताह किए बध-भागी।
जेहि खन हुन मन जाएब चिंतब
हमहु मरब धसि आगी ॥ ८ ॥
विद्यापति कवि भान।
राज सिबसिंघ रूप नरायन।
लखिमा देइ रमान ॥ १० ॥

(२) जितब = जीतेंगे, वास्तव में बाला का अभिप्राय है "जायेंगे" से परंतु समझ कर ऐसा नहीं कहती है। तोहहुँ = तुम भी। हुनि = उनको। (४) बिदेसक = विदेश जाने की। बेलि = बेला, समय। अनुमापब = अनुमान कर सकना, समझना। लग = पास, निकट, समीप। उ० यहि भाँति दिगीश चले मग में, इक सोर सुन्यो अति ही लग में। (गुमान)। मेलि = मेलती हूँ, भेजती हूँ। (६) करथु = करें। पूजल = पूजा की होगी। जे = जैसी। सेहे = समान, वैसे ही। भुंजब = फल। राखथु = रख लें, बचा लें। (८) होयताह = होवेंगे। किए = क्यों। बध-भागी = हत्या के भागी। जाएब = जाने की, प्रस्थान करने की। चिंतब = चिंता करेंगे, सोचेंगे। आगी = अग्नि।

(२) हे सखी, प्रीतम विदेश को जीतेंगे अर्थात विदेश को गमन करेंगे। मैं कुल ललना हूँ। इस संबंध में मेरा उन से कुछ निवेदन करना अनुचित होगा अतः हे सखी, तुम ही उनको विदेश गमन न करने का उपदेश दो।

(४) हे सखी, तुम उनसे निवेदन करना कि यह समय विदेश जाने का नहीं है। दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति हमारे दुख का अनुमान नहीं कर सकते हैं, इसी कारण मैं तुझे प्रीतम के पास भेजती हूँ।

(६) हे सखी, उन से निवेदन करना कि कुछ दिन और निवास करें। मैंने कामदेव की जैसी पूजा की होगी वैसा ही फल मैं भोगूँगी। हे सखी, प्रीतम से इतनी प्रार्थना करना कि वह मुझे केवल पराई निन्दा से बचा लें।

(८) हे सखी, प्रीतम के विदेश जाने पर मैं अवश्य प्राण त्याग दूँगी और इस कारण हत्या का पाप उन्हीं पर पड़ेगा। अतः हे सखी, उनसे प्रार्थना करना कि वह व्यर्थ में हत्या के भागी क्यों बनें। जिस क्षण भी प्रीतम अपने मन में जाने की चिंता करेंगे अर्थात गमन करने का विचार करेंगे, उसी क्षण हे सखी, मैं अग्नि में प्रवेश करके जल मरूँगी।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह रूपनारायण इस रस रीति को समझते हैं।

१८८.

माधव, तोहें जनु जाह बिदेस।
हमरी-रंग-रभस लए जएबह
लएबह कौन सँदेस ॥ २ ॥
बनहि गमन करु होएति दोसर मति
बिसरि जाएब पति मोरा।
हीरा मनि मानिक एको नहि माँगब
फेरि माँगन पहु तोरा ॥ ४ ॥
जखन गमन करु नयन नीर भरु
देखहु न भेल पहु ओरा।
एकहि नगर बसि पहु भेल परबस
कइसे पुरत मन मोरा ॥ ६ ॥

पहु सँग कामिनि बहुत सोहागिनि
चन्द्र निकट जइसे तारा।
भनइ विद्यापति सुनु वर जौवति
अपन हृदय धरु सारा ॥ ८ ॥

(२) जाहु = जाओ। रंग-रभस = प्रेम क्रीड़ा, आमोद-प्रमोद। (४) होएति = होती है। तोरा = तुम को। (६) ओरा = ओर, तरफ़। पुरत = शांत होना, पुरना, पूरा होना। (८) सारा = सार, धैर्य।

(२) हे माधव, तुम विदेश मत जाओ। तुम्हारे चले जाने से हमारा समस्त आमोद-प्रमोद तुम्हारे साथ ही चला जायेगा अर्थात नष्ट हो जायेगा। और हे माधव, परदेश से तुम्हारा संदेश कौन लावेगा।

(४) हे प्रीतम, सुना है कि बन की ओर प्रस्थान करते ही पुरुषों की मति पलट जाया करती है। हे प्रीतम, कहीं ऐसा न हो कि आप मुझे भूल जायें। हे विधाता, मैं तो आप से हीरा माणिक्य मोती कुछ भी नहीं माँगती हूँ, मैं तो केवल यही माँगती हूँ कि मेरा प्रीतम मुझे पुनः मिल जाये।

(६) हे सखी, जिस समय प्रीतम ने परदेश के लिए प्रस्थान किया उस समय नेत्रों में आँसू भर जाने के कारण मैं तो प्रीतम की ओर देख भी न सकी। हे सखी, इस नगर में रहते हुए मेरे प्रीतम दूसरी स्त्री के वश में हैं इस बात को सोच सोच कर मुझे किस प्रकार शांति मिलेगी।

(८) जिस प्रकार एक चन्द्रमा के साथ आकाश में अनगिनती तारिकायें होती हैं उसी प्रकार मेरे प्रीतम के प्रेम से हे सखी, अनेकों कामनियाँ सुहागिन बनी हुई हैं। हे सखी, मुझे तो केवल इसी बात का दुख है। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी श्रेष्ठ, अपने मन में धीरज रख।

## १८६

कालि कहल पिया ए सांझहि रे
जाएब मोयँ मारुअ देस।
मोय अभागलि नहि जानलि रे
सँग जइतओं जोगिन बेस ॥ २ ॥
हृदय मोर बड़ दारुन रे
पिया बिनु बिहरि न जाए ॥ ३ ॥

एक सयन सखि सूतल रे
आछल बालम निसि मोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे
बिछुरल चकेवा जोर ॥ ५ ॥
सून सेज हिम सालए रे
पिया बिनु घर मोयँ आजि।
विनती करओं सहलोलिनि रे
मोहि देह अगिहर साजि ॥ ६ ॥
बिद्यापति कवि गाओल रे
आवि मिलव पिय तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे
राय सिवसिंह नहिं भोर ॥ ८ ॥

(२) कालि = कल। कहल = कहलाते थे। जाएव = जाना है। मारुअ = मथुरा। जइतओं = जाती। (३) दारुन = दारुण, कठोर। बिहरि = बिहरना, फटना, विदीर्ण होना—उ० तासु दूत ह्वै हम कुल बोरा, ऐसुहु मति उर बिहरु न तोरा। (तुलसी)। (५) सयन = शय्या। सूतल = सो रहे थे। आछल = था। तजि = तज कर, छोड़ कर। जोर = जोड़ा। (७) सहलोलिन = सहेलियों। अगिहर = अग्नि चिता। (८) आबि = आकर। भोर = धोखा, भ्रम, भूल, संदेह।

(२) हे सखी, कल संध्या को प्रीतम कहते थे कि मुझे मथुरा जाना है। हे सखी, मैं अभागिनी यह नहीं जानती थी कि प्रीतम आज ही गमन करेंगे, अन्यथा योगिनी का वेश धारण करके उनके संग ही प्रस्थान करती।

(३) हे सखी, मेरा हृदय बड़ा कठोर है, प्रीतम के विरह में फट भी नहीं जाता।

(५) हे सखी, रात्रि को मैं और प्रीतम दोनों एक ही शय्या पर शयन कर रहे थे, मुझे तो यह भी मालूम नहीं पड़ा कि किस क्षण प्रीतम मुझे छोड़ कर चले गये और कब चकवा चकई की जोड़ी बिछुड़ गई।

(७) हे सखी, सूनी सेज मेरे हृदय को पीड़ा पहुँचाती है और प्रीतम बिना सूना घर मुझे काटने को दौड़ता है। हे सहेलियो, मैं तुम से बिनती करती हूँ कि मेरे लिए अग्नि-चिता सजा दो जिस में मैं जल मरूँ।

(६) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले क्यों चिंता करती है, तेरे प्रीतम तुझ से फिर आ मिलेंगे। लखिमा देवी के पति श्रेष्ठ राजा शिवसिंह को इस संबंध में किंचित मात्र भी संदेह नहीं है।

(१६०)

मधुपुर मोहन गेल रे
मोरा बिहरत छाती।
गोपी सकल बिसरलनि रे
जत छल अहिबाती ॥ २ ॥
सूतलि छलहुँ अपन गृह रे
निन्दइ गेलउँ सपनाइ।
कर सौं छुटल परसमनि रे
कोन गेल अपनाइ ॥ ४ ॥
कत कहबो कत सुमिरब रे
हम भरिए गरानि।
आनक धन सों धनवंती रे
कुबजा भेल रानि ॥ ६ ॥
गोकुल चान चकोरल रे
चोरी गेल चंदा।
विछुड़ि चललि दुहु जोड़ी रे
जीब दइ गेल धंदा ॥ ८ ॥
काक भाख निज भाखह रे
पहु आओत मोरा।
खीर खाँड भोजन देब रे
भरि कनक कटोरा ॥ १० ॥
भनइ बिद्यापति गाओल रे
धैरज धर नारी।
गोकुल होयत सोहाओन रे
फेरि मिलत मुरारी ॥ १२ ॥

(२) मोरा = मोरी, मेरी। विसरलनि = विस्मरण हो गईं, भूल गई। जत = जितनी। छल = थीं। अहिवाती = सधवा, सौभाग्यवती। (४) निंदइ = नींद में। गेलऊँ = देखने लगी। सपनाइ = स्वप्न। छुटल = छूट गया, गिर गया। परस मनि = पारस मणि। अपनाइ = अपना लिया। (६) गरानि = ग्लानि। आनक = दूसरे का, अन्य के। भेल = हुई। रानि = रानी। (८) चान = चंद्र। चललि = चली गई। धंदा = संदेह। (१०) भाख = भाषा, बोली,। आओत = आयेंगे। देब = दूँगी। सोहाओन = सुहावन, शोभायमान।

(२) मोहन मथुरा को चले गये, इस दुख से हे सखी, मेरी छाती फटी जाती है। हे सखी, यह सोच कर तो मुझे और भी अधिक दुख होता है कि मोहन की कृपा दृष्टि के कारण जितनी भी गोपिकायें सौभाग्यवती बनी हुई थीं मोहन ने उन सबको विस्मरण कर दिया सब को भुला दिया।

(४) हे सखी, मैं अपने घर सो रही थी। सोते सोते (निद्रा में) मैं स्वप्न देखने लगी, स्वप्न में मैंने देखा कि मेरे हाथ से पारस मणि छूट कर गिर पड़ी है उसे कोई दूसरा अपना ले गया है अर्थात वह दूसरे के हाथ पड़ गई है

(६) हे सखी, अपने दुर्भाग्य के संबंध में कितना कहोगी और कितना सोचोगी। मेरा तो समस्त शरीर ग्लानि से भर उठा है। हे सखी, भाग्य की विचित्रता तो देखो कि दूसरों के धन से धनवान बनी कुब्जा आज दासी से रानी बन गई है।

(८) और भी आश्चर्य की तो बात यह है कि मथुरा में जाकर गोकुल का चंद्रमा कन्हैया स्वयं चकोर बन गया है। हे सखी, जो मोहन यहाँ चंद्रमा के समान था और जिसके मुख चंद्र को सहस्रों गोपियाँ चकोरी की भाँति देखती रहती थीं वही कृष्ण आज स्वयं चकोर बन कर कुब्जा के मुख मंडल को देख रहा है। हे सखी, मेरा चंद्र (मोहन) आज चोरी चला गया। हे सखी, मेरी और माधव की युगल जोड़ी के बिछुड़ जाने और उनके अन्यत्र चले जाने से मुझे तो अपने जीवन में भी सन्देह हो गया है।

(१०) हे सगुनिया कागा, अपनी भाषा में बोल कर यह तो तनिक बताओ कि प्रीतम कब आवेंगे। हे काग, यदि तेरी भविष्य वाणी पूरी हुई तो मैं तुझे स्वर्ण के कटोरे में भर कर खीर खाँड़ का भोजन दूँगी।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले, धीरज रख, गोकुल फिर शोभायमान होगा और मुरारी तुझसे फिर आ मिलेंगे।

१९१.

सरसिज विनु सर, सर विनु सरसिज
की सरसिज विनु सूरे।
जौवन विनु तन, तन विनु जौवन
की जौवन पिय दूरे ॥ २ ॥
सखि हे मोर बड़ दैव बिरोधी।
मदन बेदन बड़, पिया मोर बोलछड़
अबहु देहे परबोधी ॥ ४ ॥
चौदिस भमर भम, कुसुम-कुसुम रम
नीरसि माँजरि पीबइ।
मंद पवन चल, पिक कुहु-कुहु कह
सुनि बिरहिनि कइसे जीबइ ॥ ६ ॥
सिनेह अछल जत हम भेव न टूटत
बड़ बोल जत सब थीर।
अइसन के बोल दहु निज सिम तेजि कहु
उछल पयोनिध नीर ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति अरेरे कमलमुखि
गुन गाहक पिया तोरा।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
सहजे एको नहि भोरा ॥ १० ॥

(२) सरसिज = कमल । सर = सरोवर । सूरे = सूर, सूर्य । (४) बेदन = वेदना । बोल छड़ = बोल + छड़, प्रतिज्ञा को छोड़ने वाला, प्रतिज्ञा भंग करने वाला । देहे = देती हो । परबोधी = प्रबोध, सांत्वना, आश्वासन (८) सिनेह = स्नेह । जत = जिसे । भेव = समझना । न टूटत = अटूट । बड़ = बड़े व्यक्ति । थीर = स्थिर, पक्का । के = कौन । सिम = सीमा, हद ।

(२) हे सखी, जिस प्रकार कमल के बिना सरोवर सूना लगता है और सरोवर के जल बिना कमल सूख जाते हैं तथा जिस प्रकार कमल की शोभा सूर्य के उदय होने पर ही होती है उसी प्रकार हे सखी, मेरा मन-कमल मोहन के दर्शन बिना कुम्हलाया हुआ है। हे सखी, इस संसार में जिस प्रकार यौवन

विहीन तन तथा प्रीतम विना यौवन निरर्थक है उसी प्रकार मोहन बिना मेरा जीवन भी व्यर्थ है।

(४) हे सखी, विधाता मेरा घोर दारुण शत्रु है। प्रीतम के अन्यत्र चले जाने से कामदेव दारुण पीड़ा दे रहा है परंतु इस से भी अधिक दुखदाई बात हे सखी, यह है कि प्रीतम प्रतिज्ञा भंग करने वाले हो गए हैं। ऐसी विकट परिस्थिति में भी हे सखी, तुम मुझे सांत्वना देने की चेष्टा करती हो।

(६) चारों ओर भ्रमर भ्रमण कर रहे हैं, गुंजार कर रहे हैं, तथा एक पुष्प से दूसरे पर जाकर मन भर उनका रस पान कर रहे हैं। हे सखी, शीतल मंद पवन बह रहा है, कोयल चारों ओर कुहू कुहू की ध्वनि कर रही है, ऐसे विषैले वातावरण में हे सखी कोई भी विरहिनी किस प्रकार जीवित रह सकती है।

(८) हे सखी, जिस स्नेह बंधन को मैं अटूट समझती थी वह बंधन टूट गया! हे सखी बड़े लोग जो कुछ कहते हैं वह वास्तव में सत्य होता है, इसे मैं भली प्रकार जान गई हूँ हे बाले, ऐसा कह कर प्रचंड तूफ़ान द्वारा आन्दोलित होते हुए समुद्र की जल-राशि के समान अपने धैर्य की सीमा का उल्लंघन न करो।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि कमल मुखी बाले सुन, तेरा प्रीतम निष्ठुर नहीं वरन गुण ग्राहक है। अतः राजा शिवसिंह रुपनारायण को उनकी निष्ठुरता की बात पर सहसा विश्वास नहीं होता है।

## १६२.

सखि हे कतहु न देखि मधाई।
काँप सरीर थीर नहिं मानस
अवधि नियर भेल आई॥ २॥
माधव मास तीथि भयो माधव
अवधि कइए पिआ गेला।
कुच-जुग संभु परसि कर बोललन्हि
तें परतिति मोहि भेला॥ ४॥
मृगमद चानन परिमल कुंकुम
के बोल सीतल चंदा।

पिया विसलेख अनल जों बसिए
बिपति चिन्हिए भल मंदा ॥ ६ ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
चित जनु झंखह आजे।
पिय - बिसलेख - कलेस मेटाएत
बालम बिलसि समाजे ॥ ८ ॥

(२) कतहु = कहीं भी । मधाई = माधव । थीर = स्थिरता । मानस = मानता है। नियर = निकट । (४) माधव-मास = वैशाख मास । तीथि = तिथि । माधव तीथि = माधव तिथि, एकादशी । परसि = स्पर्श करके । तें = उस से । परतिति = परतीत, विश्वास (६) चानन = चन्दन । के = कौन । बोल = बोलता है, कहता है । बिसलेख = विश्लेष, विच्छेद, वियोग । अनल = अग्नि । (८) झंखह = झंकना, पश्चात्ताप करना । आजे = आज । कलेस = क्लेश, दुख ।

.(२) हे सखी, कहीं भी तूने माधव को देखा है ! हे सखी मिलन बेला के समीप आते जाने से प्रेमोत्तेजना के कारण मेरा समस्त शरीर काँप रहा है और भावों की प्रचुरता के कारण मेरा मन स्थिर नहीं होता है।

(४) हे सखी, आज वैशाख मास की एकादशी है और आज की अवधि ही अर्थात आज के दिवस ही प्रीतम आने को कह गये थे। हे सखी, चलते समय प्रीतम ने मेरे कनक शंभुओं के समान कुचों को स्पर्श करके आज के दिवस आने की प्रतिज्ञा की थी। क्योंकि देवता के सन्मुख तथा उसको स्पर्श करके की गई प्रतिज्ञा विश्वास पूर्ण होती है इसी कारण हे सखी मुझे उनकी प्रतिज्ञा पर ऐकान्त विश्वास हो गया।

(६) हे सखी, कस्तूरी, चन्दन परिमल, कुंकुम तथा चन्द्रमा इन सब को शीतल तथा शीतलता प्रदान करने वाला कौन बताता है। हे सखी प्रीतम के वियोग में यह सब वस्तुएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो इनमें अग्नि बसी हुई हो अर्थात मानो यह अग्नि पुंज के समान हों। हे सखी विपत्ति के समय भाग्य भी मंद हो जाता है अर्थात जैसे लोकोक्ति है कि कंगाली में आटा भी गीला होता है।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी, श्रेष्ठ सुन्दरी सुन, व्यर्थ पश्चात्ताप करके आज अपने चित्त को उदास न कर। हे युवती श्रेष्ठ प्रीतम के संग रास विलास करने पर प्रीतम वियोग जनित क्लेश दुख मिट जायेगा।

विषय अलंकार का सहारा लेकर कविकर बिहारी ने भी विरह का सुंदर चित्र खींचा है।

अरी, परै न करै, हियो खरै जरै पर जार
लावति घोरि गुलाब सों, मिलै मलै घनसार ॥

भेदकातिशयोक्ति अलंकार का भी उदाहरण देखिये।

औरै भाँति भयेडब ये, चौसर चंदन चंद।
पति बिन अति पारत बिपति,मारत मारुत चंद ॥

दो उदाहरण और देखिये।

बिगसत नव बल्ली कुसुम, निकसत परिमल पाय।
परसि प्रजारति बिरहि-हिय, बरसिरहे, की बाय ॥
मार सुमार करी खरी, मरी मरीहि न मारि।
सींचि गुलाब घरी-घरी, अरी बरीहि न बारि ॥

१६३.

लोचन धाए फेधाएल
हरि नहिं आयल रे।
सिव-सिव जिवओ न जाए
आस अरुभाएल रे ॥ २ ॥
मन करे तहाँ उड़ि जाइअ
जहाँ हरि पाइअ रे।
प्रेम-परसमनि जानि
आनि उर लाइअ रे ॥ ४ ॥
सपनहु संगम पाओल
रंग बढ़ाओल रे।
से मोरा बिहि बिघटाओल
निंदओ हेराएल रे ॥ ६ ॥
भनइ बिद्यापति गाओल
धनि धइरज धर रे।
अचिरे मिलत तोहि बालम
पुरत मनोरथ रे ॥ ८ ॥

(२) धाए = दौड़े। फेधाएल = फेन सहित हो गये, फूल गये। जिबओ = जीव भी, प्राण भी। (६) विघटाओल = नष्ट किया। निंदओ = निद्रा भी। हेराएल = जाती रही, भूल गई। (८) धइरज = धीरज, धैर्य। अचिरे = शीघ्र ही।

(२) हे सखी, हरि की प्रतीक्षा में चारों ओर दौड़ दौड़ कर भटकते भटकते मेरे नेत्र फेन युक्त हो गये परंतु इतनी प्रतीक्षा करने पर भी माधव नहीं आये। हे शिव, हरि की प्रतीक्षा में प्राण भी तो नहीं निकलते, मिलन आस में अब तक शरीर में प्राण अटके हुए हैं।

(४) हे सखी, मेरी इच्छा होती है कि जिस स्थान पर हरि से मिलन हो सके वहीं उड़ जाऊँ और उनको पारस-मणि समझ कर वक्ष से लगा लूँ।

(६) हे सखी, स्वप्न में मेरा हरि से मिलन हुआ और रस क्रीड़ा में बड़ा आनंद आया परंतु निष्ठुर विधाता से हे सखी मेरा यह सुख भी नहीं देखा गया। अतः विधाता ने मेरे इस सुख स्वप्न को नष्ट कर दिया और परिणाम स्वरूप अब तो मुझे नींद भी भूल गई है अर्थात अब तो मुझे निद्रा भी नहीं आती है।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले धीरज रख, तेरे प्रीतम तुझे शीघ्र ही मिलेंगे तेरे समस्त मनोरथ अवश्य पूर्ण होंगे।

## १६४.

सखि मोर पिया।
अबहु न आओल कुलिस-हिया॥ २॥
नखर खोआओलुँ दिवस लिखि लिखि।
नयन अँधाओलुँ पिया पथ देखि॥ ४॥
जब हम बाला परिहरि गेला।
किए दोस किए गुन बुझइ न भेला॥ ६॥
अब हम तरुनि बुझब रस-भास।
हेन जन नहि मोर काहे पिआ पास॥ ८॥
आएब हेन करि पिआ मोरा गेला।
पुरबक जत गुन बिसरित भेला॥ १०॥
भनइ बिद्यापति सुन अब राइ।
कानु समुझाइत अब चलि जाइ॥ १२॥

(२) कुलिस = वज्र, कठोर। (४) नखर = नख, नाखून। खीआओलु = नष्ट हो गये, घिस गये। (६) परिहरि = छोड़ कर। गेला = चले गये। बुझब = जानना। (८) भास = बातें। हेन = इस क्षण। (१०) पुरबक = पूर्व का, पहला। जत = जितना। (१२) कानु = कान्ह, कृष्ण।

(२) हे सखी, प्रीतम अब तक पलट कर नहीं आये। मेरा हृदय भी कैसा वज्र कठोर है जो अब तक दुख से विदीर्ण भी नहीं हुआ।

(४) प्रीतम के आने का दिवस लिखते लिखते मेरे नख घिस गये हैं और प्रीतम की राह ताकते ताकते मेरे नेत्रों की ज्योति नष्ट हो गई है।

(६) हे सखी, जिस समय प्रीतम मुझे छोड़ कर चले गये थे उस समय मैं भोली भाली किशोरी थी अतः उस समय प्रीतम मेरे गुण दोषों को भली भाँति नहीं जान सके थे।

(८) परंतु अब तो हे सखी मैं पूर्ण व्यस्यका तरुणी हो गई हूँ और रास विलास की बातों को समझने लगी हूँ। अब इस समय मेरे प्रीतम मेरे पास क्यों नहीं आते।

(१०) हे सखी, मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि जब रास विलास का समय आया तो मेरे प्रीतम मुझे छोड़ कर चले गये। इस कारण पहले के मेरे जितने भी गुण थे वह उन्हें सब बिसर गये।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे राधे सुनो, हम प्रयत्न करके कृष्ण को समझावेंगे कि वह तुम्हारे पास लौट कर चले आवें।

## १६५.

आसक लता लगाओल सजनी
नयनक नीर पटाय।
से फल अब तरुनत भेल सजनी
आँचर तर न समाय॥ २॥
काँच साँच पहु देखि गेल सजनी
तसु मन भेल कुह भान।
दिन-दिन फल तरुनत भेल सजनी
अहु खन न करु गेआन॥ ४॥

सब कर पहु परदेस बसि सजनी
आयल सुमिरि सिनेह ।
हमर एहन पति निरदय सजनी
नहि मन बाढ़य नेह ॥ ६ ॥
भनइ विद्यापति गाओल सजनी
उचित आओत गुनसाह ।
उठि बधाव करु मन भरि सजनी
अब आओत घर नाह ॥ ८ ॥

(२) आसक = आशा की। पटाय = पटा कर, सींच कर। फल = यहाँ अर्थ है कुच। तरुनत = तरुण हो गया है, पक गया है, पुष्ट हो गया है। तर = तले, नीचे। (४) काँच = कच्चा। साँच = सचमुच, वास्तव में। तसु = उन के। कुह = कुहेशा, निराशा। अहु = उस। गेआन = ज्ञान, सोच विचार। (८) ऐहन = ऐसे। (१०) आओत = आयेगा। बधाब = बधावा।

(२) हे सखी, नेत्रों के जल से सींच कर आशा की जिस बेल को मैंने लगाया था अब उस लता (शरीर) का फल (कुच) पूर्ण यौवन प्राप्त करके पुष्ट हो चला है और अब तो वह आँचल के नीचे भी नहीं समाता है। अर्थात् हे सखी अब तो मैं पूर्ण यौवन प्राप्त युवती हो चुकी हूं।

(४) हे सखी, प्रीतम के चले जाने का रहस्य तो यह है कि शरीर रूपी लता के फलों (कुचों) को अपरिपक्व देख कर उनके मन में निराशा का भाव उत्पन्न हुआ होगा और इसी कारण वह मुझे तज कर चले गये होंगे। परंतु उस समय हे सखी, उन्होंने इस बात पर तनिक भी विचार नहीं किया कि जैसे जैसे दिवस व्यतीत होते जाते हैं फल (कुच) स्वतः ही परिपक्व होते जाते हैं और शीघ्र ही पूर्ण यौवन को प्राप्त कर लेते हैं।

(६) हे सखी, अनेकों स्त्रियों के पति परदेश में बसते हैं परंतु अपनी स्त्रियों के प्रेम को स्मरण कर के स्नेह वश उन को दर्शन देने की कृपा करते हैं परंतु हमारे पति हे सखी, ऐसे निर्दय तथा कठोर हैं कि उनके मन में हमारे प्रति प्रेम उदय होता ही नहीं है।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सजनी प्रसन्न मन रह, तुम्हारा गुण-शील पति अवश्य तुझ से आ मिलेगा। अतः हे सजनी, उठ और मन भर मंगल साज सजा तथा बधावा कर तेरे पति अब अवश्य वापिस आयेंगे।

शरीर को बेल मान कर रूपक बाँधना परवर्ती कवियों ने भी अपनाया है। मीरा का भजन देखिये :—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
× × × × × × × × × × × × × × × × ×
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेल बोई।
अब तो बेल फैल गई आणँद फल होई।। इत्यादि

१६६.

कोन गुन पहु परवस भेल सजनी
बुझल तनिक भल मंद।
मनमथ मन मथ तनि बिनु सजनी
देह दहए निसि चंद।। २।।
कहओ पिसुन सत अवगुन सजनी
तनि सम मोहि नहि आन।
कतेक जतन सौं मेटिए सजनी
मेटए न रेख पखान।। ४।।
जे दुरजन कटु भाखए सजनी
मोर मन न होए बिराम।
अनुभव राहु पराभव सजनी
हरिन न तज हिमधाम।। ६।।
जतओ तरनि जल सोखए सजनी
कमल न तेजए पाँक।
जे जन रतल जाहि सौं सजनी
कि करत बिहि भए बाँक।। ८।।
विद्यापति कवि गाओल सजनी
रस बूझए रसमंत।
राजा सिवसिंघ मन दए सजनी
मोदवती देइ कंत।। १०।।

(२) तनिक = उन के । तनि = उन । (४) पिसुन = दुष्ट जन । कतेक = कितने । रेख = रेखा, चिन्ह । पखान = पाषाण, पत्थर । (६) बिराम = बिरान, पराया, उदासीन । पराभव = हराये जाने पर, ग्रसे जाने पर । हिमधाम = चंद्रमा । (८) जतग्रो = जितना । तरनि = सूर्य । रतल = अनुरक्त । बाँक = बँक, तिरछा, विमुख ।

(२) हे सखी, किन गुणों पर रीझ कर मेरे प्रीतम पराई स्त्री (दूसरी स्त्री) के वश हो गये हैं । मुझे तो अपने इस दुर्भाग्य का कारण भी ज्ञात नहीं है । हे सखी, कामदेव मेरे मन का मंथन कर रहा है और प्रीतम के वियोग में रात्रि का शीतल चन्द्रमा अग्नि के समान मेरे तन को जलाता है ।

(४) हे सखी, दुष्ट जन भले ही उनके सैंकड़ों अवगुण मुझ से वर्णन करें परंतु मेरे लिये तो उनके समान और कोई दूसरा नहीं है । उनके प्रेम की छाप हे सखी, मेरे मनो-मंदिर में पत्थर की लकीर के समान अंकित हो गई है । जिस प्रकार अनेकों यत्न करने पर भी हे सखी, पत्थर पर अंकित रेखा नहीं मिटती है उसी प्रकार मेरे हृदय में अंकित उनका प्रेम अमिट है ।

(६) हे सजनी, दुष्ट जन प्रीतम के प्रति चाहे कितने ही कटु वाक्य मुझ से कहें परंतु मेरा मन कृष्ण के प्रति उदासीन नहीं होगा । जिस प्रकार राहु द्वारा ग्रस लिये जाने पर भी चंद्रमा के अंक में स्थित हरिण चंद्रमा को त्याग कर अन्यत्र नहीं जाता है वरन् वहीं रहता है उसी प्रकार अनेकों कष्ट सहने पर भी हे सखी, मेरा मन प्रीतम के चरणों को त्याग करने का नहीं होता है ।

(८) हे सखी, सरोवर का कितना ही जल सूर्य क्यों न सोख ले परंतु कमल जल का त्याग नहीं करता है उसी प्रकार मैं भी प्रीतम को हे सखी, नहीं छोड़ सकती । हे सखी, यदि कोई व्यक्ति किसी के प्रति अनुरुक्त हो तो यदि विधाता भी उससे विमुख हो जाये तो भी उसका क्या कर सकता है ।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सजनी, रस रीति की बातें केवल रसिक जन ही समझ सकते हैं । मोदवती देवी के पति राजा शिवसिंह इस रीति को मन भर कर अर्थात् भली प्रकार जानते हैं ।

इस पद के प्रथम चरण में वर्णित भाव के अनुकूल ही सूरदास ने एक बहुत ही सुंदर पद रचा है :—

बिन गोपाल बैरिन भईं कुंजैं ।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुँजैं ॥

वृथा वहति जमुना, खग बोलत वृथा कमल फूलैं, अति गुंजैं।
पवन पानि घनसार सँजीवनि दधि सुत किरन भानु भईं भुंजैं॥
ऐ ऊधो, कहियो माधव सौं विरह कदन करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

परस्पर की प्रीति के संबंध में भी सूरदास ने अनेकों पद रचे हैं तनिक रसास्वादन कीजिये।

सब जग तजे प्रेम के नाते।
चातक स्वाति बूँद नहीं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते॥
समुझत मीन नीर की बातैं, तजत प्रान हठि हारत।
जानि कुरंग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि व्याधि सर मारत॥
निमिष चकोर नैन नहिं लावत, ससि जोवत जुग बीते।
ज्योति पतंग देखि वपु जारत, भये न प्रेम घट रीते॥
कहि अलि, क्यों बिसरति वै बातै, सँग जो करी ब्रजराजैं।
कैसे 'सूरस्याम' हम छाँड़ैं, एक देह के काजैं॥

एक चित्र प्रेम अनन्यता का और देखियेः—

ऊधो, मन माने की बात।
दाख, छोहारा, छाँड़ि अमृत फल, विष कीरा विष खात॥
जो चकोर को देइ कपूर कोइ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरे काठ म, बँधत कमल के पात॥
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपक सों लपटात।
'सूरदास' जाको मन जासों, सोई ताहि सुहात॥

मोदवती—महाराज शिवसिंह की कई रानियाँ थीं। लखिमा देवी सब से ज्येष्ठ होने के कारण प्रधान महिषी थीं और कविवर विद्यापति ने भी अधिकतर उन्हीं को संबोधित करके कवितायें लिखी हैं। राजा शिवसिंह की अन्य रानियों में मोदवती तथा हासिनी देवी मुख्य थीं। कवि विद्यापति ने इन दोनों को भी संबोधित करके कवितायें रची हैं।

१९७.

माधव हमर रटल दुर देस ।
केओ न कहइ साख कुसल-सनेस ॥ २ ॥
जुग जुग जीबथु वसथु लाख कोस
हमर अभाग हुनम नहिं दोस ॥ ४ ॥
हमर करम भेल विहि विपरीत ।
तेजलनि माधव पुरुविल पिरीत ॥ ६ ॥
हृदयक बेदन बान समान ।
आनक दुःख आन नहिं जान ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति कवि जयराम ।
दैव लिखल परिवत फल वाम ॥ १० ॥

(२) रटल = चल गया । केओ = कोई भी । सनेस = संदेश । (४) जीबथु = जीवित रहें । वसथु = बसे, निवास करें । हुनक = उनका । (६) पुरुविल = पुरवली, पूर्व की । (१०) वाम = विपरीत ।

(२) हे सखी, हमारे प्राणाधार माधव हम को छोड़ कर दूर देश को चले गए । अब तो उनकी कुशल-क्षेम का संदेशा भी कोई नहीं कहता ।

(४) हे सखी, हमारे प्रीतम माधव हमसे विलग हो कर चाहे लाख कोस दूर जा बसें परंतु हमारी तो भगवान से यही प्रार्थना है कि वह प्रसन्नता पूर्वक युग युग जीवित रहें । हे सखी, हमारे प्रीतम हमारे दुर्भाग्य से ही हमें छोड़ कर चले गये हैं, इसमें इनका कोई दोष नहीं है ।

(६) हे सखी, हमारे बुरे कर्मों के फल स्वरूप ही विधाता हमारी ओर से विमुख हो गया है और इसी कारण माधव ने हमारी पुरातन प्रीति को बिसार दिया है ।

(८) हे सखी, उनके वियोग की वेदना हमारे हृदय में बाण के समान जा कर लगी है । किसी के दुःख का अनुमान कोई दूसरा नहीं कर सकता है ।

(१०) कवि जयराम (उपनाम) विद्यापति कहते हैं कि हे सखी, विधाता के लेख का फल आज पूर्ण रूप से हमारे विपरीत हुआ है ।

१६८.

जौवन रुप अछल दिन चारि ।
से देखि आदर कएल मुरारि ॥ २ ॥
अब भेल झाल कुसुम रस छूछ ।
बारि-बिहुन सर केओ नहि पूछ ॥ ४ ॥
हमरि ए विनती कहब सखि रोय ।
सुपुरुष वचन अफल नहि होय ॥ ६ ॥
जावे रहइ धन अपना हाथ ।
तावे से आदर कर संग साथ ॥ ८ ॥
धनिकक आदर सब तहँ होय ।
निरधन बापुर पुछए न कोय ॥ १० ॥
भनइ विद्यापति राखब सील ।
जो जग जीविए नवओ निधि मील ॥ १२ ॥

(२) से = उसे । कएल = किया । (४) झाल = कटु, गंध हीन । छूँछ = छूँछ, हीन, रिक्त, खाली । बिहुन = विहीन । (६) असफल = व्यर्थ । (८) जावे = जब तक । रहइ = रहता है । संग साथ = संगी साथी, मित्र कुटुंबी । (१०) धनिकक = धनिकों का । बापुर = बापुरा, बेचारा । (१२) सील = शील, मर्यादा । जीविए = जीवित रहता है । नवओ = नवों । मील = मिल जाती है ।

(२) हे सखी, यह रूप और यौवन चार दिनों की चाँदनी है । दुःख तो केवल इस बात का है कि मुरारी ने इसी अस्थाई वस्तु का विचार करके हमारा आदर मान किया था ।

(४) और हे सखी, कदाचित इसी कारण अब कटु गंध हीन हो जाने पर हमें बिसार दिया । पुष्प के मुरझा जाने तथा रसहीन हो जाने पर उसे त्याग दिया, इसी बात का हे सखी मुझे अति दुःख है । यह तो सत्य है सखी कि जल विहीन सरोवर को कोई भी नहीं पूँछता है और सभी उसकी उपेक्षा करते हैं ।

(६) हे सखी,मुरारी के पास जा कर बड़ी दीनता से हमारी प्रार्थना उनसे निवेदन करो । हे सखी,तुझे उनके पास भेजने का अभिप्राय यह है कि यह सत्य

है कि सुपुरुषों का वचन कभी व्यर्थ नहीं जाता है अतः हे सखी, तुम उनके पास जाकर हमारी प्रार्थना उनसे निवेदन करो।

(८) हे सखी, यह सत्य है कि जब तक धन अपने पास रहता है तभी तक सब मित्र तथा कुटुंबी आदर करते हैं। धन-विहीन निर्धन हो जाने पर कोई भी आदर नहीं करता है। यही दशा मेरी है सखी। जब तक मोहन मेरे थे मैं राजेश्वरी थी, मेरा मान था, आदर था, अब मोहन के चले जाने से निर्धन हो जाने पर कोई आदर नहीं करता है।

(१०) धनिकों का सर्वत्र ही आदर होता है सखी, और बेचारे निर्धनों को कोई भी नहीं पूँछता है। उनको कोई भी नहीं पतियाता है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे राधे, धैर्य धारण करो और अपनी मर्यादा का पालन करो। जो इस संसार में जीवित रहता है और प्रयत्न करता है उसी को इस संसार की आठों सिद्धियाँ और नवों निधियाँ प्राप्त होती हैं।

१६६. ✓

सखि हे हमर दुखक नहि ओर।
इ भर बादर माह भादर
सून मंदिर मोर ॥ २ ॥
झँपि घन गरजंति संतत
भुवन भरि बरसँतिया।
कंत पाहुन काम दारुन
सघन खर सर हँतिया ॥ ४ ॥
कुलिस कत सत पात मुदित
मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक
फाटि जायत छातिया ॥ ६ ॥
तिमिर दिग भरि घोर यामिनि
अथिर बिजुरिक पाँतिया।
विद्यापति कह कइसे गमाओब
हरि बिना दिन-रातिया ॥ ८ ॥

(२) दुखक = दुखः के। भर = भरा हुआ, पूर्ण। बादर = बादल, मेघ। भादर = भाद्रपद, भादों। (४) झँपि = उछलते हुए–उ० करि अपनो कुल नास वहिन सो अगिन झँप है आई। (सूर) संतत = सदा, निरंतर। पाहुन = प्रवासी। खर = प्रखर, तेज। सर = शर, बाण। हंतिया = हनता है, मारता है। (६) कत सत = कई सौ, सहस्रों। पात = पतन होता है, गिरता है। मातिया = मस्त हो कर। डाक = डाँकता है, पुकारता है। डाहुक = टिटिहरी के आकार का एक पक्षी जो जलाशयों के पास रहता है। (८) दिग = दिशा। अथिर = अस्थिर, चंचल। गमाओब = गवाऊँगी, बिताऊँगी।

(२) हे सखी, मेरे दुख की सीमा नहीं है। भाद्रपद के जल भरे मेघ चारों ओर उड़ते फिरते हैं, कैसी सुहावनी ऋतु है परन्तु हे सखी प्रीतम बिना मेरा मन तथा भवन सब सूना सूना सा है।

(४) चारों ओर उछलते हुए अर्थात चारों ओर से घिर कर आते हुए मेघ निरंतर गरज रहे हैं और उनसे बरसे हुए जल से समस्त पृथ्वी भर उठी है। परंतु ऐसे समय में हे सखी मेरा प्रीतम प्रवासी हो गया है और इस कारण निष्ठुर कामदेव अपने तेज़ बाणों से मुझे मारता है।

(६) मेघ इस समय हे सखी, विद्युत-लता के द्वारा सहस्रों वज्र कण गिरा रहा है और प्रसन्नता से मस्त मयूर चारों ओर नाच रहे हैं। मस्त दादुर और डाहुक चारों ओर पुकार रहे हैं और उनकी बोली से मेरी छाती दुख के कारण फटी जा रही है।

(८) अंधकार पूर्ण रात्रि का आधिपत्य चारों ओर फैला हुआ है और विद्युत का अस्थिर प्रकाश चारों ओर फैल फैल कर अन्धकार को और भी प्रगाढ़ बना रहा है। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी, माधव बिना मैं अपने दिन कैसे व्यतीत करूँ।

## २००.

मोर बन बन सोर सुनइत
बढ़त मनमथ पीर।
प्रथम छार असाढ़ आओल
अबहु गगन गँभीर ॥ २ ॥

दिवस रयना अरे सखी
कइसे मोहन बिनु जाए ॥ ३ ॥
आवए साओन बरिख भाओन
घन सोहाओन वारि ।
पंच सर-सर छुटत रे, कइसे
जीअए विरहिन नारि ॥ ५ ॥
आवए भादो बेगर माधो
काँसो कहि एहि दूख ।
निडर डर डर डाक डाहुक
भुटत मदन बनूक ॥ ७ ॥
अछूह आसिन गगन भासि न
घनन घनघन रोल ।
सिंह भूपति भनइ ऐसन
चतुर मास कि बोल ॥ ६ ॥

(४) बरिख = बरखा, वर्षा । भाओन = मन को भाने वाली । (७) बेगर = बगैर, बिना । काँसो = किस से । एहि = यह । दूख = दुख । बनूक = बंदूक । (६) अछूह = अस्ति, आया । भासि = भासना, दीखना ।

(२) हे सखी, बन बन में चारों ओर मोर की कूक सुनाई पड़ती है इस से मेरे हृदय में काम पीड़ा उत्तेजित होती जाती है । हे सखी, चातुर्मास का प्रथम मास आषाढ़ आ गया है और आकाश घने मेघों से ढकता जाता है ।

(३) ऐसे समय में मोहन बिना हे सखो, किस प्रकार दिन रात्रि व्यतीत करूँ ।

(५) मन को भाने वाली वर्षा करता हुआ श्रावण मास आ गया । जल से भरे मेघ आकाश में चारों ओर शोभायमान हो रहे हैं । ऐसे समय में हे सखी कामदेव अपने पुष्प बाणों को ताक ताक कर मार रहा है, ऐसी परिस्थिति में हे सखी, विरहिन स्त्री किस प्रकार जीवित रह सकती है ।

(७) माधव विहीन भाद्रपद मास आ गया है। हे सखी मैं अपना दुख किस से कहूँ । डाहुक पक्षी डर डर ध्वनि से निरंतर पुकार रहा है । उसका शब्द ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव विरही जनों की हत्या करने के लिए बंदूक दाग रहा हो ।

(६) घड़घड़ाता शोर मचाता मेघ आकाश पर ऐसा छाया है कि नीलाकाश तो कहीं दिखाई ही नहीं देता है। कवि भूपति सिंह ( विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि हे बाले, इन चारों महीनों को चातुर्मास कहते हैं।

२०१.

फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर बन
कोकिल पंचम गावे रे।
मलयानिल हिम सिखर सिधारल
पिया निज देश न आवे रे॥ २॥
चानन चान तन अधिक उतापए
उपवन अलि उतरोले रे।
समय वसंत कंत रहु दुर देस
जानल विधि प्रतिकूले रे॥ ४॥
अनमिख नयन नाह मुख निरखइत
तिरपित न भेल नयाने रे।
ई सुख समय सहए एत संकट
अबला कठिन पराने रे ॥ ६॥
दिन-दिन खिन तनु हिम कमलिनि जनु
न जानि कि जिव परजंत रे।
विद्यापति कह धिक धिक जीवन
माधव निकरुन कंत रे॥ ८॥

(२) फुटल = फूटे, खिले, प्रस्फुटित हुए। सिधारल = सिधार गया। (४) चानन = चंदन। चान = चंद्रमा। उतापए = उत्तप्त करता है, जलाता है। उतरोले = उत्तरोत्तर रौल अर्थात गुंजार कर रहे हैं।(६)अनमिख = अनिमेष,स्थिर दृष्टि से, बिना पलक गिराये देखना, टकटकी लगा कर देखना। तिरपित = तृप्त। नयाने = नयन। (८) खिन = क्षीण। जिव = जीव, प्राण। परजंत = पर्यंत, शेष, अंतिम सीमा। निकरुन = करुणा रहित, कठोर।

**(२) हे सखी चारों ओर पुष्प प्रस्फुटित हो गये हैं और प्रत्येक बन कुंज कुटीर में कोकिला अपना पंचम राग सुना रही है। मलयानिल हिमालय की**

ओर चला गया है अर्थात मलयानिल का बहना बंद हो गया है और उसके स्थान पर दक्षिण पवन बहने लगा है। प्रकृति में इतने परिवर्तन हो जाने पर भी हमारे प्रीतम हे सखी अब तक घर नहीं आये।

(४) प्रीतम के वियोग में चंद्रमा और चंदन दोनों हे सखी शीतलता प्रदान करने के स्थान पर और भी जलाते तथा उत्तप्त करते हैं। बनों उपवनों में हे सखी, भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। ऐसी मनोमोहक बसंत ऋतु में भी प्रीतम परदेश में वास कर रहे हैं इसी से हे सखी, यह स्पष्ट है कि विधाता मेरे प्रतिकूल हैं।

(६) अपलक नेत्रों से प्रीतम के मुख को निरंतर देखते रहने पर भी हे सखी मेरे नयनों को तृप्ति नहीं हुई है। ऐसे सुखदायक समय में ऐसा घोर संकट, रस में भंग, केवल कठोर जीवी बाला ही सहन कर सकती है।

(८) जिस प्रकार तुषारापात से कमलिनी जल जाती है उसी प्रकार हे सखी, विरह ज्वाला के कारण मेरा तन भी दिनों दिन क्षीण होता जाता है। अब तो मुझे हे सखी इस बात की भी प्रतीत (विश्वास) नहीं है कि मेरे प्राणों की अंतिम सीमा कहाँ तक है अर्थात मैं कब तक अपने प्राणों को धारण कर सकूँगी। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी मेरे जीवन को धिक्कार है, मेरा प्राण धारण करना व्यर्थ है। करुणा रहित, कठोर हृदय प्रीतम माधव के बिना जीवन धारण करना व्यर्थ है।

रीति कालीन सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारी ने विरह वर्णन सर्वोत्तम किया है। यद्यपि उनका विरह वर्णन ऊहात्मक अधिक है और अधिकांश स्थानों पर उन्हों ने अत्युक्ति से अधिक काम लिया है परंतु तो भी उनकी उक्तियाँ विशेष रूप से अनूठी और चमत्कार-युक्त हैं। उपरोक्त पद के भावों से समानता रखने वाली कुछ उक्तियाँ नीचे लिखी जाती हैं। इनसे पाठकों को बिहारी के भावों की उच्चता तथा गागर में सागर भर देने की क्षमता का पूर्ण रूप से आभास मिलेगा।

मरिबे को साहस ककै, बढ़े विरह की पीर।
दौरत है समुहैं ससी, सरसिज सुरभि समीर॥
अरी, परै न करै, हियो खरे खरे पर जार।
लावति घोरि गुलाब सों, मिलैं मलै घनसार॥

माके उर औरै कछू, लगी विरह की लाय।
प्रजरै नीर गुलाब के, पिय की बात बुझाय॥
विगसत नव वल्ली कुसुम, निकसत परिमल पाय।
परसि प्रजारति विरहि-हिय, बरसि रहे की बाय॥
वन बाटनि पिक बटपरा, ताकि विरहिन मत मैन।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठत, करि करि राते नैन॥
दिसि दिसि कुसुमित देखियत, उपवन विपिन समाज।
मनो वियोगिनि कौ किये सर पंजर रति राज॥
भो यह ऐसोई समय जहाँ सुखद दुख देत।
चैत चाँद की चांदनी डारत किये अचेत॥

देखा आपने, विषमता का कैसा सुंदर चित्रण बिहारी ने किया है परंतु कवि-कुल-गुरु सूरदास भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं हैं। उन्होंने भी गोपियों की विरह अवस्था का ऐसा ही सजीव और वास्तविक चित्रण किया है। तनिक दो चार उदाहरण देखिये।

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजै
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुँजै॥
बृथा बहति जमुना खग बोलत बृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार सँजीवनि दधि सुत किरन भानु भई भुंजै॥
ए ऊधो, कहियो माधव सौं विरह कदन करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु का मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरि-स्रम जल अंतर-तनु भीजे ता लालच न धुआवति सारी॥
अधोमुख रहति उरध नहि चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर वदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि सँदेस सुनि सहज मृतक भईं इक बिरहिन दूजे अलि जारी।
सूर स्याम बिनु यों जीवति हैं ब्रज वनिता सब स्याम दुलारी॥

एक चित्र और देखिये ऊधो इतनी जाय कहो।
सब बल्लभी कहति हरि सों ये दिन मधुपुरी रहो।

आज काल तुमहूँ देखत हौ तपत तरनि सम चंद ।
सुन्दर स्याम परम कोमल तनु क्यों सहिहैं नँद नँद ॥
मधुर मोर पिक परुष प्रबल अति बन उपवन चढ़ि बोलत ।
सिंह वृकन सम गाय बच्छ वृज बीथिन बीथिन डोलत ॥
आसन असन बसन विष अहि सम भूषन भवन भंडार ।
जित तित फिरत दुसह द्रुम द्रुम प्रति धनुष लए सत मार ॥
तुम तौ परम साधु कोमल मन जानत हौ सब रीति ।
सूर स्याम को क्यों बोलैं वृज बिन टारे यह इति ॥

इस संबंध में एक कवित्त सेनापति का भी देखिये। विरहिनी का कितना सुंदर चित्रण है।

केतिक, असोक, नव चंपक, बकुल कुल
कौन धौं वियोगिनी कौं ऐसौ विकराल है।
सेनापति साँवरे सूरति की सुरति की
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है ॥
दच्छिन पवन एती ताहू की दवन जऊ
सूनौ है भवन परदेस प्यारौ लाल है।
लाल हैं प्रवाल, फूले देखत बिसाल, जऊ
फूले और साल पै रसाल उर साल है ॥

२०२

सजनी कानुक कहबि बुझाई।
रोपि पेमक बिज अंकुर मूड़लि
बाँचब कौन उपाई ॥ २
तेल-बिंदु जैसे पानि पसारिए
ऐसन मोर अनुराग।
सिकता जल जैसे छनहि सूखए
तैसन मोर सुहाग ॥ ४ ॥
कुल-कामिनि छलौं कुलटा भए गेलौं
तिनकर बचन लोभाई।
अपने कर हम मूँड मुड़ाएल
कानु से प्रेम बढ़ाई ॥ ६ ॥

चोर-रमनि जनि मन मन रोअई
अंबर बदन छिपाई ।
दीपक लोभ सलभ जनि धाएल
से फल भुजइत चाई ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति इह कलजुग रित
चिंता करह न कोई।
अपन करम-दोष आपहि भुँजइ
जे जन पर-बस होई ॥१०॥

(२) कानुक = कान्ह को, कृष्ण को। रोपि = रोप कर, बो कर। पेमक = प्रेम का मूड़लि = मूँड दिया, तोड़ दिया। बाँचव = बचने का । उपाई = उपाय । (४) पानि = पानी, जल। पसारिए = प्रसर जाता है, फैल जाता है । सिकता = सिक्त, बालू। तैसन = उसी प्रकार। (६) छलौं = थी। भए गेलौं = हो गई। तिनकर = उनके। मूँड़ मुड़ाएल = मूँड़ मुड़ाया, बदनाम हुई (८) चोर रमनि = चोर की स्त्री। सलभ = शलभ, पतिंगा। भुजइत = भोगना । चाई = चाहिये । (१०) रित = रीति! भुँजइ = भोगना होता है।

(२) हे सखी, कृष्ण से भली प्रकार समझा कर कहना कि जिस प्रेम को रोप कर उन्होंने अंकुरित किया था उसी प्रेमांकुर को उन्होंने प्रवास गमन करके तोड़ दिया है। हे सखी, माधव से पूछना कि अंकुर के टूट जाने से प्रेम बेल के जीवित बचने का अब कौन सा उपाय है।

(४) जिस प्रकार तेल की बूँद हे सखी पानी के धरातल पर गिर कर समस्त सतह पर छा जाती है उसी प्रकार मेरा अनुराग मेरी समस्त चित्त-वृत्तियों को आच्छादित करके सर्वत्र प्रसर गया है। परंतु हे सखी, जैसे बालू में जल की बूँद पड़ते ही विलीन हो जाती है उसी बूँद के अनुरूप मेरा सुहाग है जो माधव के सिक्त हृदय पर गिरते ही विलीन हो गया है।

(६) हे सखी, माधव मिलन से पूर्व मैं कुल ललना थी परंतु उनके मीठे बचनों से लुभा कर व्यभिचारिणी के समान हो गई हूँ। हे सखी, कृष्ण से नेह लगा कर मैं तो मैं स्वयँ अपनी करनी से ही बदनाम हो गई हूँ।

(८) जिस प्रकार चोर की स्त्री पति के लिये प्रगट रूप से मिलाप करने का साहस नहीं करती है वरन् लुक छिप कर तथा वस्त्रों से मुख छुपा कर रोती

है वही दशा इस समय हे सखी, मेरी हो रही है। चोर की स्त्री पति की करनी पर एकाँत में विलाप करती है परंतु लोक लाज के कारण प्रकट रूप से चोर की स्त्री कहलाने का साहस नहीं रखती है वही दशा इस समय हे सखी, मेरी है। मै अपने और माधव के संबंध का आभास तक देना नहीं चाहती और माधव की निष्ठुरता मुझे बरबस पीड़ित करती है। अतः लोक लज्जा के कारण चोर की स्त्री की भांति मैं भी एकांत में अपने भाग्य को दोष देती हूँ। जिस प्रकार प्रकाश के लोभ में पतिंगा दीपक की ओर जाता है और लौ से पंखों के झुलस जाने के कारण अपने कर्मों का फल भोगता है उसी प्रकार हे सखी मैं भी अपने कर्मों का फल भोग रही हूँ। माधव की ओर लोभ वश बरबस आकर्षित हो कर मैंने अपनी जीवन बेल को भस्म कर डाला है। इसी दुर्मति का फल तो मैं भोग रही हूँ।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे राधे, कलियुग की यही रीति है कि कोई दूसरे की चिंता नहीं करता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों का भोग स्वयं ही भोगना होता है चाहे वह व्यक्ति किसी दूसरे के वश में ही क्यों न हो। इसी प्रकार हे राधे, तुम्हें अपने कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ रहा है।

कविवर विद्यापति तथा बंग कोकिल श्री जयदेव ने परकीया प्रेम की प्रतिष्ठा की है। इन दोनों कवियों ने राधा कृष्ण का धार्मिक स्वरूप उपस्थित नहीं किया है केवल उनके चरित्र के काव्यात्मक अंग को ही विकसित किया है। इनके लिए राधा का स्वरूप भक्ति और उपासना का विषय नहीं था। श्री जयदेव ने तो कृष्ण को चौर जार शिखामणि तक कह डाला है। बंगाल में प्रचलित सहाजिया वैष्णव सम्प्रदाय की धारणाओं से इस कथन की पुष्टि होती है। बंगाल में परकीया रूप से राधा की उपासना प्रचलित भी है। विद्यापति ने भी राधा का चित्रण परकीया रूप में किया है। इसी पदावली के १६१, १६२, १६३ इत्यादि पदों में इसी भावना की झलक मिलती है। इसी कारण इस पद में राधा स्वयँ को व्यभिचारिणी बताती हैं। शरीर से पति वरण कर रखा है और मन माधव की ओर अनुरक्त है। इसी कारण शरीर और मन के प्रेम केन्द्र पृथक-पृथक होने के कारण कवि ने राधा को मनसा व्यभिचारिणी चित्रित किया है। श्री सूरदास की राधा संबंधी कल्पना विद्यापति से एकदम

विपरीत है। उन्होंने राधा का चित्रण स्वकीया, परिणीता स्त्री, के रूप में किया है। इस विषय पर पृथक अध्याय में प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है अतः यह विवाद यहीं समाप्त किया जाता है।

## २०३.

के पतिआ लए जाएत रे
मोरा पियतम पास।
हिए नहि सहए असह दुख रे
भेल साओन मास॥ २॥
एकसरि भवन पिया बिनु रे
मोरा रहलो न जाय।
सखि अनकर दुख दारुन रे
जग के पतिआय ॥ ४॥
मोर मन हरिहरि लय गेल रे
अपनो मन गेल।
गोकुल तजि मधुपुर बस रे
कत अपजस लेल॥ ६॥
विद्यापति कवि गाओल रे
धनि धरु पिय आस
आओत तोर मनभावन रे
एहि कातिक मास॥ ८ ॥

(२) पतिआ = पत्री। भेल = हुआ, आया (४) एकसरि = अकेली। अनकर = अन्य कर अर्थात अन्य के, दूसरे के (६) लय गेल = ले गये।

(२, हे सखी, कौन मेरी पत्री प्रीतम के पास ले जाये। श्रावण मास होने के कारण विरह का असहनीय दुख मुझ से सहन नहीं होता है।

(४) हे सखी, प्रीतम विहीन सूने घर में मुझ से अकेले नहीं रहा जाता है। संसार के मनुष्य किसी दूसरे व्यक्ति के दारुण दुख को देख कर भी हे सखी उसके दुखित होने का विश्वास नहीं करते हैं। अतः मैं पत्र द्वारा प्रीतम को अपने दुखका विश्वास दिलाना चाहती हूँ।

(६) हे सखी, मोहन अपने प्रेम की अस्पष्ट झलक दिखा कर मेरे मन को मोहित करके अपने साथ ले गये। कदाचित इसी अपयश से त्राण पाने के लिए ही हरि गोकुल को छोड़ कर मथुरा जा बसे हैं।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले पिया मिलन की आशा अपने मन में रख, इसी कार्तिक मास में तेरा प्रीतम तुझ से अवश्य आ मिलेगा।

## २०४

सजनी, के कह आओब मधाई।
बिरह-पयोधि पार किए पाओब
मझु मन नहि पतिआई ॥ २ ॥
एखन-तखन करि दिवस गमाओल
दिवस-दिवस करि मासा।
मास-मास करि बरस गमाओल
छोड़लूँ जीवन आसा ॥ ४ ॥
बरस-बरस करि समय गमाओल
खोयलूँ कानुक आसे।
हिमकर किरन नलिनि जदि जारब
कि करब माधव मासे ॥ ६ ॥
अंकुर तपन-ताप जदि जारब
कि करब बारिद मेहे।
इह नव जौबन बिरह गमाओब
कि करब से पिया गेहे ॥ ८ ॥
भनइ बिद्यापति सुन बर जौबति
अब नहि होइ निरासे।
से ब्रजनंदन हृदय अनंदन
झटित मिलब तुम पासे ॥ १० ॥

(२) आओब = आवेंगे। पाओब = पाऊँगी। मझु = मेरे। पतिआई = विश्वास। (४) एखन तखन = यह क्षण, वह क्षण, अर्थात एक एक क्षण करके, (६) खोयलूँ = भुला दिया। जारब = जलायेगा। माधव मासे = वैशाख मास। (८) तपन = सूर्य।

(२) हे सखी, यह कौन बता सकता है कि माधव कब आवेंगे। इस बिरह रूपी समुद्र को मैं जीते जी पार कर सकूँगी इस का मेरे मन को विश्वास नहीं रहा है। हे सखी इस बिरह रूपी समुद्र को मैं जीते जी पार न कर सकूँगी। मेरे विरह का अंत नहीं होगा, मेरे मन को कुछ ऐसा विश्वास हो चला है सखी।

(४) एक एक क्षण गिन करके तो मैंने विरह के दिवस व्यतीत किये हैं, और एक एक दिन गिन कर महीने व्यतीत किये हैं और एक एक मास गिन कर वर्ष व्यतीत किये हैं। हे सखी अब तो मैंने अपने जीवन की आशा ही त्याग दी है।

(६) वर्ष वर्ष करके समय व्यतीत करते करते मैंने तो कान्ह से मिलने तथा साक्षात करने की आशा तक को भुला दिया है। हे सखी, जब रक्षक ही भक्षक बन जाये तो फिर बचने का क्या उपाय। कमलिनी का प्रीतम चंद्रमा ही जब अपनी किरणों से उसे जलायेगा तो फिर माधव मास ( वसंत ) के वश की क्या है। इसी प्रकार हे सखी जब मेरे प्रीतम स्वयं ही मुझे भुला कर त्याग चुके हैं तो केवल मेरी आशा मात्र से क्या बनेगा।

(८) यदि किसी अंकुर को सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से जला डाले तो बादलों तथा वर्षा के किये क्या होता है। मेरा तो समस्त यौवन है सखी विरहाग्नि की भेंट चढ़ गया है। अब यदि प्रीतम घर लौट भी आवें तो वह भी इस दशा में क्या कर सकेंगे।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सर्व श्रेष्ठ सुंदरी राधे सुनो, अब निराश न हो। तुम्हारे हृदय को आनंद देने वाले तुम्हारे प्रीतम बृज नंदन शीघ्र ही तुमसे आ मिलेंगे।

## २०५

अंकुर तपन-ताप जदि जारब
कि करब बारिद मेह।
ई नव जौबन बिरह गमाओब
कि करब से पिया गेह॥ २॥
हरि हरि के इह दैव-दुरासा।
सिंधु निकट जदि कंठ सुखाएब
के दुर करब पियासा॥ ४॥

चंदन-तरु जब सौरभ छोड़ब
ससधर बरखिब आगि ।
चिंतामनि जब निज गुन छोड़ब
की मोर करम अभागी ॥ ६ ॥
साओन माह घन- बिंदु न बरखिब
सुरतरु बाँझ कि छाँदे ।
गिरधर सेबि ठाम नहि पाएब
विद्यापति रहु धाँदे ॥ ८ ॥

(४) के=कौन। दुर करब=दूर करेगा। (६) बरखिब=वर्षा करेगा। चिन्तामनि=वह मणि जो माँगने पर मनमानी वस्तु प्रदान करती है (८) कि छाँदे=किस प्रकार। सेबि=सेवा करके। ठाम=ठाँव, स्थान, यहाँ अभिप्राय है स्वर्ग से। धाँदे=संदेह।

(२) किसी अंकुर को हे सखी, यदि सूर्य अपनी प्रचंड किरणों से जला डाले तो बादलों तथा वर्षा के किये क्या होगा। मेरा तो समस्त जीवन तथा यौवन विरहाग्नि की भेंट चढ़ गया है अब यदि प्रीतम लौट भी आवें सखी तो वह भी इस दशा में क्या कर सकेंगे।

(४) हे सखी, माधव के बिना इस दुराशा का निवारण कौन कर सकता है। विपुल जल राशि के किनारे बैठे होने पर भी यदि प्यास से कँठ सूख जाय तो इस प्यास को कौन दूर कर सकता है सखी। पानी में भी मीन प्यासी। कृष्ण मथुरा में हैं, गोकुल से दूर नहीं । यदि उनके दर्शन पिपासा से प्राणों पर संकट आ बने तो इस परिस्थिति का हे सखी निवारण कौन कर सकता है।

(६) हे सखी, मेरे दुर्भाग्य के कारण ही चंदन के वृक्षों ने अपनी सुगंधि छोड़ दी है और चंद्रमा शीतलता प्रदान करने के स्थान पर अग्नि कणों की वर्षा कर रहा है। हे सखी,यही नहीं वरन् समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली चिन्तामणि मणि ने भी अपने गुणों का त्याग कर दिया है। अर्थात मेरे दुर्भाग्य के कारण ही संसार की समस्त सुख-दायक वस्तुएँ दुख-दायक हो उठी हैं।

(८) श्रावण मास के मेघों से जल वर्षा नहीं होती है और मनोवांछित फल देने वाला कल्पवृक्ष बंध्या हो गया है, इच्छित फल नहीं देता है, इसका

क्या कारण है सखी ! हरि की सेवा करके भी उनके चरणों में निवास करने वाले स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती है । इस कारण कवि विद्यापति के हृदय में विश्व नियंता की सर्वशक्तिशाली प्रतिभा के संबंध में संदेह होने लगा है।

## २०६.

चानन भेल विषम सर रे
भूषन भेल भारी ।
सपनहुँ हरि नहि आएल रे
गोकुल गिरिधारी ॥ २ ॥
एकसरि ठाढ़ि कदम-तर रे
पथ हेरथि मुरारी ।
हरि बिनु हृदय दगध भेल रे
झामर भेल सारी ॥ ४ ॥
जाह जाह तोंहे ऊधो हे
तोंहे मधुपुर जाहे ।
चंद्रवदनि नहि जीवति रे
वध लागत काह ॥ ६ ॥
भनइ विद्यापति तन मन रे
सुनु गुनमति नारी ।
आजु आओत हरि गोकुल रे
पथ चलु झट झारी ॥ ८ ॥

(२) विषम = तीक्ष्ण, कठोर । सर = शर, बाण । भारी = भार स्वरूप । (४) झामर = मलिन । सारी = साड़ी, वस्त्र । (६) जाह = जाओ । (८) झट झारी = झटपट, शीघ्रता से ।

(२) हे सखी, माधव के विरह में मुझे चंदन तीक्ष्ण बाण के समान और भूषन भार स्वरूप लगते हैं। प्रत्यक्ष मिलन की तो क्या चलाई हे सखी जब से गोकुल के गिरधारी यहाँ से गये हैं मेरा तो उनसे स्वप्न में भी मिलन नहीं हो सका है।

(४) कदंब के तले अकेली खड़ी मैं माधव की राह को तका करती हूँ सखी । माधव के विरह में मेरा समस्त हृदय दग्ध हो गया है और मन की

अनिश्चित दशा के कारण मेरे सब वस्त्र मलीन हो गए हैं। अर्थात् माधव के विरह में मेरी सब सुधि-बुधि जाती रही है और मुझे अपने वस्त्रों को परिवर्तन करने तक की सुधि नहीं रही है।

(६) हे उद्धव जाओ, तुम मथुरा को सिधारो। माधव के वियोग के फल स्वरूप यह चंद्रमुखी बाला अब जीवित नहीं रहेगी अतः तुम क्यों हत्या के भागी बनते हो।

(८) कवि विद्यापति अपने मनसा, वाचा, कर्मणा की साक्षी देकर कहते हैं कि हे गुणवती बाले सुनो, आज हरि अवश्य गोकुल पधारेंगे अतः झटपट उनके आने के पथ पर चली चलो।

## २०७

विपत अपत तरु पाओल रे
पुन नव नव पात।
बिरहिन-नयन बिहल बिहि रे
अबिरल बरिसात॥ २॥
सखि अंतर बिरहानल रे
नित बाढ़ल जाय।
बिनु हरि लख उपचारहु रे
हिय दुख न मिटाय॥ ४॥
पिय पिय रटए पपिहरा रे
हिय दुख उपजाब।
कुदिना हित जनअनहित रे
थिक जगत सोभाव॥ ६॥
भनइ बिद्यापति गाओल रे
दुख मेटत तोर।
हरखित चित तोहि भेटत रे
पिय नंदकिसोर॥ ८॥

(२) अपत = अपत्र, पत्रहीन वृक्ष। बिहल = विधान किया, बनाया। (४) लख = लखों, लाखों। ६) कुदिना = दुर्दिन में। अनहित = बुरा, शत्रु। थिक = है। सोभाव = स्वभाव। (८) मेटत = मिटेगा।

(२) विपत्ति रूपी पत्रहीन वृक्ष ने हे सखी पुन: वर्षा ऋतु आने पर नये नये पत्ते प्राप्त किये अर्थात् वर्षा ऋतु आ जाने से मेरी विपत्तियाँ कम होने के स्थान पर और भी अधिक विकसित तथा प्रस्फुटित हो उठी हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने विरहिन बालाओं की आँखों में अनंत वर्षा ऋतु की सृष्टि की है। उनके नेत्रों से निरंतर अश्रु वर्षा होने का यह कारण प्रतीत होता है मानो विधाता ने उनके नेत्रों में अनंत वर्षा ऋतु की स्थापना की हो।

(४) हे सखी, विरह के कारण मेरे हृदय में धधकती विरहाग्नि प्रतिदिन और भी अधिक प्रज्वलित होती जाती है। लाखों उपचार करने पर भी बिना माधव मिलन के मेरे हृदय का दुख नहीं मिट सकता है सखी। हे सखी, विरहाग्नि को शांत करने का केवल एक ही उपाय है और वह है माधव मिलन।

(६) स्वाति बिंदु को पान करने वाला पपीहरा पीऊ पीऊ की रट लगा कर मेरे हृदय को और भी अधिक दुखित करता है। हे सखी, इस संसार का यही स्वभाव है कि बुरे दिन आने पर मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। बुरा समय आने पर मित्र सहायता करने के स्थान पर शत्रुता साध लेते हैं।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले तेरा दुःख अवश्य मिटेगा। हे सुंदरी, अपने चित्त को दृढ़ रख तथा प्रसन्न रह, तुझे तेरे प्रीतम नंदकिशोर अवश्य मिलेंगे।

कविकुल-गुरु श्री सूरदास ने विरहिन के नेत्रों से होने वाले निरंतर अश्रु-पात के संबंध में अति उत्तम पदों की रचना की है। सूर के यह पद हिंदी साहित्य की अमर रचनायें है। नीचे उनके कुछ पद लिखे जाते हैं। सहृदय पाठक इन पदों की उत्तमता का अनुमान स्वयं लगा सकते हैं।

(१) ब्रज तें द्वै ऋतु पै न गई।
पावस अरु ग्रीषम प्रचण्ड, सखि हरि बिनु अधिक भई ॥
ऊरध स्वास समीर, नयन घन, सब जलजोग जुरे।
बरषि जो प्रगट किए दुख दादुर हुते जो दूरि दुरे ॥
विषम वियोग दुसह दिनकर सम दिन प्रति उदय करे।
हरि बिधु बिमुख भए कहिं सूरज को तन ताप हरे ॥

(२) देखौ भाई नयनन्ह सौं घन हारे ।
बिन ही ऋतु बरसत निसिबासर सदा सजल दोऊ तारे ॥
ऊरध स्वास समीर तेज अति दुख अनेक द्रुम डारे ।
बदन सदन करि बसे बचन-खग ऋतु पावस के मारे ॥
ढरि ढरि बूँद परत कँचुकि पर मिलि अंजन सौं कारे ।
मानहुँ सिव की पर्न कुटी बिच धारा स्याम निनारे ॥
सुमिरि सुमिरि गरजत निसि बासर अस्रु सलिल के धारे।
बूड़त ब्रजहि सूर को राखै बिनु गिरवर धर प्यारे ॥

(३) निस दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहति पावस ऋतु हम पैं जब तें स्याम सिधारे ॥
दृग अँजन लागत नहिं कबहूँ, उर कपोल भए कारे ।
कँचुकि पट सूखत नहिं सजनी, उर बिच बहत पनारे ॥
सूरदास प्रभू अँबु बढ्यो है गोकुल लेहु उबारे ।
कहँ लौं कहौं स्याम घन सुंदर विकल होत अति भारे ॥ इत्यादि

२०८

मोर पिया सखि गेल दुर देस ।
जौबन दए गेल साल सनेस ॥ १ ॥
मास अषाढ़ उनत नव मेघ ।
पिया बिसलेख रहओं निरथेघ ॥
कोन पुरुष सखि कोन से देस ।
करब मोयँ तहाँ जोगिनी भेस ॥ २ ॥
साओन मास बरसि घन बारि ।
पंथ न सूझै निसि अँधिआरि ॥
चौदिसि देखिए बिजुरी रेह ।
से सखि कामिनि जीवन सँदेह ॥ ३ ॥
भादव मास बरसि घन घोर ।
सभदिसि कुहुकए दादुल मोर ॥
चेहुँकि चेहुँकि पिया कोर समाय ।
गुनमति सूतलि अंक लगाय ॥ ४ ॥

आसिन मास आस धर चीत।
नाह निकारुन न भेलाह हीत॥
सर-चर खेलए चकवा हास।
बिरहिन वैरि भेल आसिन मास॥ ५॥

कातिक कंत दिगन्तर बास ।
पिय-पथ हेरि-हेरि भेलहुँ निरास॥
सुख सुखराति सबहु का भेल।
हमें दुख साल सोआमि दय गेल ॥ ६॥

अगहन मास जीब के अंत।
अबहु न आएल निरदए कंत॥
एकसरि हम धनि सूतओं जागि ।
नाहक आओत खाएत मोहि आगि॥ ७॥

पूस खीन दिन दीघरि राति।
पिआ परदेस मलिन भेल काँति॥
हेरओं चौदिस झँखओ रोय।
नाह बिछोह काहु जन होय॥ ८॥

माघ-मास घन पड़ए तुसार।
झिलमिल केचुआँ उनत थन हार॥
पुममति सूतलि पियतम कोर।
बिधि बस दैव बाम भेल मोर॥ ९॥

फागुन मास धनि जीव उचार।
बिरह-बिखिन भेल हेरओं बाट॥
आयल मत्त पिक पंचम गाव।
से सुनि कामिनि जीबहु सताव॥ १०॥

चैत चतुरपन पिय परबास ।
माली जाने कुसुम बिकास॥
भमि-भमि भमरा करु मधुपान।
नागर भइ पहु भेल असयान ॥ ११॥

बैसाख तबे खर मरन समान।
कामिनि कंत हनय पंचबान॥
नहि जुड़ि छाहरि न बरसि बारि।
हम जे अभागिनि पापिनि नारि॥ १२॥
जेठ मास, ऊजर नव रंग।
कंत चहए खलु कामिनि संग॥
रूपनरायन पूरथु आस।
भनइ बिद्यापति बारह मास॥ १३॥

(१) साल = काँटा। सनेस = संदेश भेंट। (२) उनत = उन्नत, चढ़ते हुए। बिसलेख = विश्लेष। रहओं = रहती हूँ। निरथेघ = निरवलंब। (३) रेह = रेखा। (४) सभदिसि = सब दिशि, चारों ओर। कोर = गोद। (५) चीत = चित्त। निकारुन = निष्करुण, निष्ठुर, निर्दय। भेलाह = हुआ। हीत = हितू, मित्र। (६) दिगंतर = दूर देश। सुखराति = दीपावली की रात्रि। सोआमि = स्वामी, प्रीतम। (७) सूतओं जागि = जाग कर सोती हूँ। नाहक = नाहक, व्यर्थ। आओत = आवेंगे। आगि = अग्नि, विरहाग्नि। (८) झँखओं = झींकती हूँ। (९) तुसार = तुषार, पाला। झिलमिल = बारीक बढ़िया मलमल या तनज़ेब की तरह का एक कपड़ा—उ० चंदनोता जो खर दुख भारी, बाँस पूर झिलमिल की सारी। (जायसी) केचुआ = कंचुकी, चोली। उनत = उन्नत, उभरे हुऐ। धन = स्तन। पुनमति = पुण्यवती। (१०) बिखिन = विचक्षण = अत्यंत क्षीण। सताब = सताता है, त्रस्त करता है। (११) परबास = प्रवास। असयान = मूर्ख। (१२) तबे = तपता है। खर = तीक्ष्ण। जुड़ि = जुड़ाना, ठंडा होना, शीतल होना। छाहरि = छाया। बरसि = बरसता है। (१३) ऊजर = उजड़ गये। खलु = निश्चय उ० तब प्रभाव बड़वानलहिं जारि सकै खलु तूल। (तुलसी)। पूरथु = पूर्ण करें।

(१) हे सखी, मेरे प्रीतम स्वयं तो दूर देश को सिधार गये हैं और मुझे यौवन रूपी काँटा भेंट स्वरूप प्रदान कर गये हैं।

(२) आषाढ़ मास में जब कि नवीन मेघ चारों ओर छा आते हैं मैं विरहिन प्रीतम के वियोग के कारण उस समय निरवलंब रहती हूँ। मुझे जोगिन का वेष धारण करा कर हे सखी, मेरे प्रियतम किस देश को सिधार गये हैं।

(३) श्रावण मास में जब कि हे सखी, घनघोर मेघों से मूसलाधार वर्षा होती है और निविड़ अंधकार के कारण मार्ग भी दिखाई नहीं पड़ता है तथा विद्युत लता (रेखा) चारों ओर चमकती है उस समय हे सखी, विरहिणी कामनियों के जीवन संकट में पड़ जाते हैं तथा उनके जीवित रहने में संदेह होने लगता है।

(४) भादों मास में हे सखी, घनघोर घटाओं से धारा प्रवाह वर्षा होती है तथा चारों ओर दादुर और मोर शोर करने लगते हैं। ऐसे समय में पुण्यवती स्त्रियाँ हे सखी, अपने पतियों के संग शयन करती हैं और मेघ के गरजने तथा विद्युत के चमकने से चौंक चौंक कर अपने प्रीतमों की गोद में छुप जाती हैं। इस समय गुणवती स्तियाँ पतियों के हृदय से लग कर सोती हैं। परंतु विरहिनों के भाग्य में हे सखी, यह सुख कहाँ।

(५) हे सखी, आश्विन मास तक तो मुझ विरहिन ने अपने हृदय में धैर्य रखा परंतु निष्ठुर प्रीतम मेरे अनुकूल न हुए। आश्विन में भी हे सखी प्रीतम ने दर्शन नहीं दिए। सरोवरों के किनारे चकवा चकई प्रसन्न मन से किलोल कर रहे हैं परंतु हे सखी विरहिणी स्त्रियों के लिए तो आश्विन मास शत्रु समान हो रहा है।

(६) कार्तिक के महीने में विदेश में वास करने वाले प्रीतम के आने की राह तकते तकते मुझे तो हे सखी निराशा हो गई है। दीपावली की सुख दायनी रात्रि में दीर्घ काल से विरहिन स्त्रियों के पति का मिलन-सुख प्राप्त होता है परंतु हे सखी मेरे प्रीतम तो दर्शन देने के स्थान पर मुझे और भी अधिक दुखः देते हैं। इस समय उनके न आने से मुझे घोर दुख हो रहा है।

(७) अगहन मास के आने से तो मानो मेरे जीवन का अंत ही आ गया है। परंतु मेरे निर्दय प्रीतम ने अब भी आकर दर्शन देने की कृपा नहीं की है। प्रीतम के विरह में मुझ जैसी अकेली बाला का कार्यक्रम सो कर जागना और जाग कर सो जाना है। अर्थात मेरे जीवन का कोई उद्देश्य ही नहीं है, निरपेक्ष रीति से मैं जागती और जाग कर सो जाती हूँ। मेरे जीवन में कोई रस नहीं है। हे सखी, जब अग्नि मुझे भस्म कर डालेगी अर्थात जब मैं विरहाग्नि से जल कर मर जाऊँगी उस समय प्रीतम का आना व्यर्थ ही होगा।

(८) पूस मास के छोटे छोटे दिनों और लंबी लंबी रात्रियों में प्रीतम के प्रवास से न लौटने के कारण मन के दुखः से हे सखी मेरे शरीर की समस्त

काँति मलिन हो गई है। प्रीतम के आने की आशा में चारों ओर आशा पूर्ण दृष्टि डालती हूँ और उनके आगमन का कोई लक्षण न देख कर अपने भाग्य पर रोती झींकती तथा दुखः मनाती हूँ। हे सखी मैं तो रो रो कर भगवान से यही प्रार्थना करती हूँ कि किसी बाला का उसके पति से वियोग न हो।

(९) माघ मास में जब कि पृथ्वी पर ढेर की ढेर बर्फ पड़ जाती है उस समय भाग्यशाली स्त्रियाँ बारीक झिलमिल की कंचुकी पहिन कर तथा अपने उन्नत उरोजों पर मणिमय हार धारण करके अपने पतियों की गोदी में सुख से शयन करती हैं। परंतु दैववश मेरे विधाता तो सखी मुझ अभागिनी से विमुख हो गये हैं, इस कारण मुझे यह सुख स्वप्न है।

(१०) फाल्गुन मास में चारों ओर रंग तथा होली का आमोद प्रमोद देख कर बाला का जी उचट गया और विरह के कारण अर्थात् क्षीण हुई वह बाला बड़ी उत्सुकता से प्रीतम के मिलन की बाट तकने लगी। कुसुम सौरभ से मस्त बनी कोकिलों को पंचम स्वर में कूकते सुन कर बाला के प्राण और भी त्रस्त होते हैं अर्थात् कोकिल के कूकने से बाला को और भी अधिक दुख पहुँचाता है।

(११) चैत्र मास में चतुर प्रीतम बड़ी चतुराई से प्रवास गमन करते हैं। जिस प्रकार एक चतुर माली हे सखी पुष्पों के विकास का समय जानता है उसी प्रकार चतुर प्रीतम प्रियतमा के पूर्ण यौवन विकास को पहिचानता है। ऐसे समय में भ्रमर पुष्पों पर गुंजार करते हुए उनके मधुर रस का पान करते हैं। परंतु दुर्भाग्य से हे सखी हमारा परम चतुर प्रीतम मूर्खों के समान कार्य कर रहा है। अर्थात् ऐसे सुहावने चैत्र मास में भी प्रीतम ने दर्शन नहीं दिये, इससे उनकी मूर्खता तथा अज्ञानता का परिचय मिलता है।

(१२) वैशाख के महीने में प्रकृति उग्र रूप से तप जाती है और विरहाग्नि से तपती हुई बाला के लिए समस्त वातावरण और भी अधिक तप्त हो उठता है परंतु ऐसे समय में भी हे सखी कामदेव विरहिन बालाओं को अपने तीक्ष्ण बाणों का निशाना बना कर उनके प्राणों को संकट में डाल देता है। इस समय में न तो किसी स्थान पर ठंडक ही मिलती है और न वर्षा ही होती है जिस से तपन कुछ कम हो। विरहिन बालाओं को यह मास इस कारण और भी अधिक दुखदाई होता है क्योंकि न तो उनको प्रीतम की छत्र छाया ही प्राप्त

होती है और न स्नेह बिन्दु वर्षा से उनके हृदय ही शीतल होते हैं। इस कारण हे सखी, मेरी जैसी अभागिन स्त्रियों को प्रीतम का विरह और भी अधिक कष्टदायक होता है।

(१२) ज्येष्ठ मास में जब कि समस्त नव रंग इत्यादि उजड़ जाते हैं उस समय तो हे सखी प्रीतम को अपनी कामिनी के संग निश्चयात्मक रूप से रहना चाहिये। नव रंग, नवीन रंग-रेलियों के अंत हो जाने पर उनके अभाव की पूर्ति के लिए प्रीतम का प्रेयसी के पास रहना आवश्यक है। अतः कवि विद्यापति बारह मासा गाते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि विरहिन बालाओं की आशा पूर्ण हो।

## २०६.

माधव देखलि वियोगिनि बामे।
अधर न हास बिलास सखी संग
अहोनिस जप तुअ नामे ॥ २ ॥
आनन सरद सुधाकर सम तसु
बोलइ मधुर धुनि बानी।
कोमल अरुन कमल कुम्हिलायल
देखि मन अइलहुँ जानी ॥ ४ ॥
हृदयक हार भार भेल सुबदनि
नयन न होय निरोधे।
सखि सब आए खेलाओल रँगि करि
तसु मन किछुओ न बोधे ॥ ६ ॥
रगड़ल चानन मृगमद कंकुम
सभ तेजलि तुअ लागी।
जनि जलहीन मीन जक फिरइछ
अहोनिस रहइछ जागी ॥ ८ ॥
दूति उपदेस सुनि सुनि सुमिरल
तइखन चलला धाई
मोदवतीपति राघवसिंह गति
कवि विद्यापति गाई ॥ १० ॥

(२) देखलि = देखी। (४) आनन = मुख। तसु = उसकी। अइलहुं = आई हूँ।(६)भार = भार स्वरूप। निरोधे = अवरुद्ध होना, बंद होना। किछुओं = कुछ भी। बोधे = बोध, चेत। (८)रगड़ल = घिसा हुआ। तेजल = तज कर, छोड़ कर। जक = जस, जैसी। फिरइछ = फिरती है, तड़पती है। रहइछ = रहती है। जागी = जाग्रत, जागती हुई। (१०) तइखन = तत्क्षण, उसी समय।

(२) हे माधव, आज मैंने उस वियोगिनी बाला को देखा। उसकी दशा तो बड़ी विचित्र है। न तो उसके अधरों पर हास्य की रेखा है और न वह सखी सहेलियों के संग विलास करती है। वह तो माधव, रात दिन तुम्हारे नाम की माला जपती रहती है।

(४) हे माधव, जिस बाला का मुख शरद पूर्णिमा के चंद्र के समान सुंदर था तथा जिसकी बोली कोकिला के समान थी उस बाला के अरुण कमल से कोमल गात तुम्हारे विरह में कुम्हला गये हैं। हे माधव, मेरी बात का विश्वास करो, मैं स्वयं उस बाला की दशा देख आई हूँ।

(६) हे माधव, तुम्हारे विरह में वह बाला इतनी क्षीण हो गई है कि उस सुंदर वदनी को अपने गले में पड़ा हार भी भार स्वरूप प्रतीत होता है। यही नहीं एक टक तुम्हारे मार्ग को तकते तकते हे माधव, उस बाला की आँखें झपकती तक नहीं हैं, निर्बाध रूप से वह बाला तुम्हारी राह तकती रहती है। सब सखियाँ उस बाला से रंग रेलियाँ मनाने आई थीं परन्तु वह तो हे माधव, तुम्हारे ध्यान में ऐसी मग्न थी कि उसे तो हमारी रँग रेलियों का तनिक भी बोध नहीं हुआ। वह तो निरंतर अचेतन तथा संज्ञाशून्य बनी रही। यह हाल है माधव उस की तन्मयता का।

(८) हे माधव, तुम्हारे वियोग में उस बाला ने अपने दैनिक कर्मों तथा श्रृंगार को एक दम त्याग दिया है। चंदन घिस कर लेप करना, कस्तूरी का अंगराग लगाना तथा केशर का तिलक लगाना इत्यादि श्रृंगार के सब साधनों को बाला ने तुम्हारे वियोग में त्याग दिया है। उसकी लगन तो एक मात्र तुमसे लगी हुई है। जिस प्रकार जल से निकाली जाने पर मछली तड़पती है उसी प्रकार तुम्हारे वियोग में हे माधव वह बाला जल विहीन मछली की भाँति तड़पती रहती है। तुम्हारे वियोग में हे माधव, उस बाला के नैत्तिक, कर्मों में भी बाधा पड़ गई, वह तो मानो जड़ हो गई है। दिन रात्रि में किसी समय

भी वह बाला सोती नहीं है, दिन रात निरंतर जागती हुई तुम्हारी राह ताकती रहती है ।

(१०) दूती के मुख से तुम्हारे संदेश को सुन कर तथा तुम्हारे गुणों को मन ही मन स्मरण करके मैं सीधी तुम्हारे पास आई हूँ । कवि विद्यापति कहते हैं कि महारानी मोदवती के पति पुरुषसिंह राघव सिंह इस कार्य-कलाप को भली प्रकार जानते हैं ।

## २१०

लोचन नीर तटनि निरमाने ।
करए कलामुखि तथिहि सनाने ॥ २ ॥
सरस मृनाल करइ जपमाली ।
अहोनिस जप हरिनाम तोहारी ॥ ४॥
बृन्दाबन कान्हु धनि तप करई ।
हृदय-बेदि मदनानल बरई ॥ ६ ॥
जिव कर समधि समर कर आगी।
करति होम बध होएबल भागी ॥ ८॥
चिकुर बरहि रे समरि कर लेअई।
फल उपहार पयोधर देअई ॥ १० ॥
भनई विद्यापति सुनह मुरारी।
तुअ पथ हेरइत अधिवर नारी ॥ १२॥

(२) तटनि = नदी । निरमाने = निर्माण करके । कलामुखि = चंद्र मुखी । तिथिहि = उसी में । सनाने = स्नान । (४) सरस = सुंदर, मनोहर । करइ = करती है, बनाती है । जपमाली = जयमाला, सुमरनी । (६) बेदि = वेदी । मद-नाबल = कामाग्नि । बरई = बल रही है, जल र ी है । (८) जिव = जीव प्राण । समि.ध = समिधा, अग्निहोत्र की लकड़ी । समर = स्मर मरण । आगी = अरणी, लकड़ी का बना एक यंत्र जिसके घिसने से हमारे पूर्वज अग्नि उत्पन्न करते थे । यह अग्नि यज्ञ इत्यादि के समय उत्पन्न की जाती थी । (१०) बरहि = बर्हि, कुश । समरि = सँभाल कर । (१२) अछ = है ।

(२) हे माधव, तुम्हारे विरह में वह चंद्रमुखी रमणी अपने नेत्रों से निकलने वाले आँसुओं से नदी का निर्माण करके उसी में स्नान करती है ।

अर्थात तुम्हारे विरह में वह बाला निरंतर अश्रु वर्षा करती रहती है और इन अश्रुओं से उसका अंचल तथा वस्त्र सदैव भीगे रहते हैं।

(४) हे माधव, तुम्हारे विरह में वह बाला विरहाग्नि रूपी पंचाग्नि जला कर तुम्हारा निरंतर ध्यान करती हुई तप कर रही है। मनोहर कमल नाल की सुमरनी बना कर वह बाला दिन रात हर समय हे माधव तुम्हारे नाम की माला जपती है।

(६) हे कृष्ण, तुम्हारे विरह में व्याकुल वह बाला वृंदावन में तुम्हारे मिलन हेतु तपस्या कर रही है। उक्त बाला ने हृदय रूपी यज्ञ वेदी पर कामाग्नि रूपी अग्नि होत्र की ज्वाला धधकाई है।

(८) हे माधव, अपने प्राणों को समाधि बनाकर तथा स्मरण की अग्नि उत्पन्न करने वाली अरणी बना कर वह बाला तुम्हारे मिलन हेतु यज्ञ रचा रही है। यदि उस बाला का प्रयास सफल न हुआ और उसका प्राणांत हो गया तो हे मोहन तुम उस बाला की हत्या के भागी होगे।

(१०) अपने केशों को भली प्रकार सँभाल कर वह बाला उनसे कुशा का कार्य ले रही है और यज्ञ की समाप्ति पर नवीन परिपक्व फल के समान अपने कुचों को उपहार तथा दान के रूप में देने का उस बाला ने निश्चय किया है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे मुरारी ! सुनो वह सर्वश्रेष्ठ सुंदरी बाला एक टक तुम्हारी बाट तक रही है।

२११.

अकामिक मंदिर भेलि बहार।
चहुँदिस सुनलक भमर-झंकार॥ २ ॥
मुरुछि खसल महि न रहलि थीर।
न चेतए चिकुर न चेतए चीर॥ ४ ॥
केओ सखि बेनि धुन केओ धुरिझार।
केओ चानन अरगजओं सँभार॥ ६ ॥
केओ योल यँत्र कान तर जोलि।
केओ कोकिल खेद डाकिनि बोलि॥ ८ ॥

अरे-अरे अरे कान्हु की रभसि बोरि।
मदन-भुजंग डसु बालहि तोरि॥ १०॥
भनइ विद्यापति एहो रस भान।
एहि विष गारूड़ि एक पए कान॥ १२॥

(२) अकामिक = अकस्मात्। बहार = बाहर। भेलि बहार = बाहर हुई। सुनलक = सुन कर। (४) मुरुछि = मूर्छित हो कर। खसल = खस पड़ी, गिर पड़ी। चेतए = चेत करती है, संभालती है। (६) केओ = कोई। बेनि = वेणी। धुन = ख्याल। धुरि = धूरि, धूल। झार = झाड़ती है। (८) तर = तले, नीचे, निकट। जोलि = ज़ोर से। खेद = खदेड़ती है। डाकिनि = राक्षसी, भयानक स्त्री। (१०) की = क्या। रभसि = रभस, प्रेमोत्साह, उत्सुकता। बोरि = बोलि, बोल रहे हो, कह रहे हो। (१२) एहि = इस। गारुड़ि = गारुड़ी, विष उतारने वाला। कान = कान्ह।

(२)+(४) हे माधव, आज अकस्मात् ही वह बाला अपने भवन से बाहर आई। चारों ओर पुष्पों पर मंडराते तथा गुंजार करते हुऐ भ्रमरों के दलों को देख कर तथा उनकी गुंजार सुन कर बाला को अपनी दयनीय दशा पर इतना दुख हुआ कि वह मूर्छित होकर वहीं पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस समय बाला को न तो अपने वस्त्रों का ध्यान रहा और न अपने केशों को संभालने की सुधि ही।

(६) बाला को मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरते देख कोई सखी तो उनके केशों को सँभालने लगी और कोई उसके शरीर पर लगी धूल को झाड़ने लगी तथा कोई सखी बाला को चेत कराने के लिए उसको चंदन सुँघाने लगी और सरगजा लेप करके शीतोपचार का प्रबंध करने लगी।

(८)कोई सखी बाला के कानों के निकट ज़ोर से मंत्रजाप करने लगी और कोई सखी कोकिलों के कूकने को बाला की मूर्च्छा का कारण समझ कर अपने मुख से भयानक बोली बोल कर उन्हे वहाँ से खदेड़ने लगी।

(१०) हे कृष्ण, तुम यहाँ बैठे बैठे कैसी उत्सुकता से बातें कर रहे हो। बाला की दशा को जा कर देखते क्यों नहीं। हे कृष्ण तुम्हारी प्रेमिका को कामदेव रूपी सर्प ने डस लिया है और तुम कोई उपचार नहीं करते हो।

(१२) इस रसरीति के अनन्य ज्ञाता कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सखी

कामदेव रूपी सर्प के विष का उतार केवल कृष्ण ही कर सकते हैं अर्थात कामदेव रूपी सर्प के दंशन का विष कोई साधारण गारुड़ी नहीं उतार सकता है उसके उतार का मंत्र तो केवल कृष्ण को ही ज्ञात है।

२१२.

माधव, कठिन हृदय परवासी।
तुभे पेअसि मोयँ देखल वियोगिनि
अबहु पलटि घर जासी ॥ २ ॥
हिमकर हेरि अवनत कर आनन
करू करूना पथ हेरी।
नयन काजर लए लिखए बिधुन्तुद
भय रह ताहेरि सेरी ॥ ४ ॥
दखिन पवन बह से कइसे जुबति सह
कर कवलित तनु अंगे।
गेल परान आस दए राखए
दस नख लिखए भुजंगे ॥ ६ ॥
मीनकेतन भय सिव सिव सिव कए
धरनि लोटाबए देहा।
कर रे कमल लए कुच सिरिफल दए
सिव पूजए निज गेहा ॥ ८ ॥
परभृत के डर पायस लए कर
बायस निकट पुकारे।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
करथु बिरह उपचारे ॥ १० ॥

(२) परवासी = प्रवासी, परदेश वासी। पेअसि = प्रेयसी, प्रेमिका। जासी = जाओ। (४) अवनत = नीचे। बिधु तुद = चंद्रमा को दुख देने वाला, राहु—उ० ज्ञान राकेस ग्रासन विधुंतुद दलन काम करि मंत हरि दूषनारी। (तुलसी) ताहेर = उसी की। सेरी—शरण में। (६) बह = बहती है। से = उसे। कवलित = ग्रस्त, भक्षित। गेल = गए हुए। (८) मीन केतन = कामदेव। रे =

पी, समान। सिरीफल = श्रीफल—उ० हिया थार कुच कनक 'कचूरा जानहुँ दोऊ श्रीफल जूरा। (जायसी)। (१०) परभृत = कोकिल, कोयल। पायस = खीर। वायस = कौवा। करथु = करती है।

(२) हे माधव, प्रवास में रहने वाले का मन प्रेमी जनों की ओर से कठोर हो जाता है ऐसा जगत् प्रसिद्ध है। आँखों से दूर मन से दूर। कदाचित इसी कारण हे माधव, तुमने वियोगिनी बाला को भुला रखा है। हे माधव, तुम्हारे वियोग में रो रो कर दिन व्यतीत करने वाली तुम्हारी प्रेयसी की करुण दशा को मैंने देखा है। मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम अपने घर को वापिस लौट जाओ और विरहिन नारी का दुखः दूर करो।

(४) तुम्हारे संयोग के समय जो वस्तुएँ बाला को सुखकर प्रतीत होती थीं, तुम्हारे वियोग में वही वस्तुएँ उसे सब से अधिक दुखदाई प्रतीत होती हैं। हिम के समान शीतल चंद्रमा उसकी विरहाग्नि को शान्त करने के स्थान पर और भी अधिक दग्ध करता है। समय पलटि पलटि प्रकृति को न तजे निज चाल। अतः वह बाला चंद्रमा की ओर देख कर फिर अपने मुख को नीचा कर लेती है और उसके प्रभाव से बचने के लिए बड़ी लालसा भरी दृष्टि से तुम्हारे आने की राह तकती है। चंद्रमा को भयभीत करने के लिए अपने नेत्रों में लगे काजल से वह बाला चन्द्रमा को दुख देने वाले राहु का चित्र अंकित करती है और चन्द्रमा के भय से उसी स्वनिर्मित राहु की शरण में रहने की कल्पना करती है।

(६) हे माधव, जो दक्षिण पवन जो तुम्हारे संग रहने के समय सुख कर प्रतीत होती थी वही पवन विरहावस्था में उस बाला के समस्त अंगों को भक्षण किये डालती है। अतः वह विरहिन बाला हे माधव, इस दुखदायी पवन को किस प्रकार सहन कर सकती है। दक्षिण पवन द्वारा निरंतर दग्ध होने वाले प्राणों को बाला ने केवल तुम्हारी मिलन आशा से ही सुरक्षित कर रखा है। यही नहीं हे माधव यह समझ कर कि सर्प वायु का भक्षण करते हैं ऐसा साधारण विश्वास है। इसी कारण दक्षिण पवन को भगाने के लिए बाला सर्प की आकृति निर्माण करती है।

(८) कामदेव के भय के कारण वह बाला निरंतर त्रिपुरारि मदन संहारक शिव के नाम का जाप करती है और बार बार पृथ्वी पर लेट कर तथा साष्टांग दण्डवत करके त्रिपुरारि शिव से कामदेव के संहार करने तथा अपनी रक्षा

करने की प्रार्थना करती है। पूजा के निमित्त अपने कर रूपी कमलों में कुच रूपी श्री फलों को लेकर वह बाला अपने मनोमंदिर में ही शिव की आराधना करती है तथा फल पुष्प ( कमल और श्री फल—हाथ और कुच ) से उनका पूजन करती है।

(१०) बाला को हे माधव, तुम्हारे विरह में कोकिलों की कूक भी दारुण दुख देती है। अत: इन कोकिलों को खदेड़ने के निमित्त तथा उनकी उपहास युक्त बोली से क्रोधित होकर यह बाला अपने कर कमलों में खीर भरे बर्तन को लेकर कौवों की टोली को अपने निकट बुलाती है। राजा शिवसिंह रुपनरायन कहते हैं कि इस प्रकार यह बाला अपने विरह-दुख की चिकित्सा करती है।

## २१३.

कुसुमित कानन हेरि कमलमुखि
मूदि रहए दु नयन।
कोकिल कलरव मधुकर धुनि सुनि
कर देइ झाँपर कान॥ २॥
माधव, सुन सुन बचन हमारा।
तुअ गुन सुन्दरि अति भेल दूबरि
गुनि गुनि प्रेम तोहारा॥ ४॥
धरनी धरि धनि कत बेरि बइसइ
पुनि तहि उटइ न पारा।
कातर दिठि करि चौदिस हेरि हेरि
नयन गरए जलधारा॥ ६॥
तोहर बिरह दिन छन छन तनु छिन
चौदसि चाँद समान।
भनइ विद्यापति सिवसिंह नर पति
लखिमा देइ रमान॥ ८॥

(२) कुसुमित = पुष्पित, खिले हुए। (६) धरि = धर कर पकड़कर। बइसइ = बैठ जाती है। उठइ न पारा = उठ नहीं पाती है। (८) दिन = दीन, असहाय। चौदिस = चौदस, चतुर्दशी।

(२) अपने प्रीतम वसंत के आगमन से प्रफुल्लित होकर पुष्पित हुये बन उपवनों को देख कर वह बाला हे माधव दुःख से विकल होकर अपने नेत्रों को मूँद नीचे की ओर देखने लगती है। ऋतुराज के आगमन की सूचना देने वाली कोकिला की कूक तथा भ्रमरों की मनोहारिणी गुंजार को सुन कर वह बाला अपने हाथों से कानों को मूँद लेती है। विरहावस्था में प्रकृति की यह रंग-रेलियाँ उसे दुख से व्याकुल कर देती हैं।

(४ हे माधव, हमारी बात सुनो, तुम्हारी सर्वगुण सम्पन्न प्रेयसी तुम्हारे प्रेम का स्मरणतथा तुम्हारे गुणों का ध्यान करते करते अति क्षीण तथा कृशगात हो गई है।

(६) हे माधव, तुम्हारे विरह में बाला इतनी कृश हो गई है कि उठनें की चेष्टा करने पर भी कमज़ोरी के कारण बार बार पृथ्वी को पकड़ कर बैठ जाती है और पुनः चेष्टा करने पर भी उठ नहीं पाती है। कातर दृष्टि से घिरी हुई हिरणी की भाँति चारों ओर देख कर वह बाला मुख से तो कुछ कहती नहीं है परंतु उसके नेत्रों से निरंतर अश्रु वर्षा होती रहती है।

(८) हे माधव, तुम्हारे विरह में वह दीन असहाय अबला प्रति क्षण क्षीण होती जा रही है। जिस प्रकार चतुर्दशी का चंद्रमा एकबार अपनी पूर्ण उज्ज्वलता से चमक कर फिर दिनों दिन क्षीण और कलाहीन होता जाता है और अंत में विलीन हो जाता है उसी प्रकार तुम्हारी प्रेयसी हे माधव, दिनों दिन क्षीण तथा कला हीन होती जा रही है। कवि विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिंह मनुष्यश्रेष्ठ तथा लखिमा देवी के पति इस को भली प्रकार जानते हैं।

रीति कालीन कवियों ने विरह वर्णन करने में अपनी ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा का विलक्षण प्रयोग किया है। इन रीति कालीन कवियों में अग्रणीय हैं बिहारी। बिहारी का विरह वर्णन अत्युक्ति पूर्ण अवश्य है परंतु उसमें वास्तविक निरीक्षण तथा कवि कल्पना का अद्वितीय सामंजस्य है। उपरोक्त लिखित पद्य में आए भावों से टक्कर लेने वाले भावों को लेकर बिहारी ने भी अपनी प्रतिभा से दोहे रचे हैं। नीचे बिहारी के कुछ दोहे लिखे जाते हैं।

कर के मीड़े कुसुम लौं गई विरह कुम्हिलाय।
सदा समीपनि सखिन हूँ नीठि पिछानी जाय॥
विगसित नव बल्ली कुसुम निकसत परिमल पाय।
परसि प्रजारति विरहिं हिय बरसि रहे की बाय॥

हिये और सी ह्वै गई टरी अवधि के नाम।
दूजे करि डारी खरी बौरी बौरे आम॥
गनती गनिबे तें रहे छत्त हू अछत समान।
अब अलि यह तिथि औम लौं परे रहौं तन प्रान॥
औरै भाँति भयेब ये, चौसर चंदन चंद।
पति बिन अति पारत बिपति मारत मारुत चंद॥

अब तनिक कृशता के कुछ उदाहरण देखिये :—

करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाड़त नीचु।
दीने हू चसमा चखनि चाहे लखै न मीचु॥
इत आवति चलि जाति उत चली छ-सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरै सैं रहै लगी उसासुन साथ॥
नेकु न जानी परत यों, पर्‌यो बिरह तन छाम।
उठति दिया लौं नादि हरि लिये तिहारो नाम॥

एक उदाहरण उर्दू का भी देखिये :- -

इंतहाए लाग़री से जब नज़र आया न मैं।
हँस के यों कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिए॥

२१४

सरदक ससधर मुखरुचि सोंपलक
हरिन के लोचन लीला।
केस पास लए चमरि के सोंपलक
पाए मनोभव पीला॥ २॥
माधव, जानल न जीवति राही।
जतबा जकर ले ले छलि सुन्दरि
से सब सोंपलक ताही॥ ४॥
दसन-दसा दालिम के सोंपलक
बन्धु अधर रुचि देली।
देह-दसा सौदामिनि सोंपलक
काजर सनि सखि भेली॥ ६॥

भौंहक-भंग अनंग-चाप दीहु
कोकिल के दिहु बानी।
केवल देह नेह अछ लओले
एतवा अएलहुं जानी ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
चित भँखह जनु आने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने ॥ १० ॥

(२) सरदक=शरद ऋतु के। सोंपलक=सौंप दिया, समर्पण किया। लीला=चंचलता। मनोभव=कामदेव। पीला=पीड़ा। (४) जतवा=जितना। जकर=जिसका। ले ले छलि=लिये हुए थी। (६) दालिम=दाड़िम,अनार। बंधु=बंधूक का पुष्प। देली=दे दिया। सौदामिनि=विद्युत। सनि=शनि, शनैश्चर। (८) भंग=वक्रता, टेढ़ापन। अछ=है। एतवा=इतना। अए-लहुँ=मैंने भी।

(२) हे माधव, तुम्हारे विरह में मानो उस बाला ने अपने प्राणों को त्याग कर देने का मानो निश्चय कर लिया है। परंतु मृत्यु के पश्चात वह बाला अपने को दूसरों का ऋणी घोषित कराना नहीं चाहती है। अतः उसकी देह निर्माण में जिन-जिन वस्तुओं का योग हुआ था वह बाला उन वस्तुओं को उनके वास्तविक अधिकारियों को वापिस दे जाना चाहती है। अपने मुख की कांति को शरद पूर्णिमा के चंद्रमा को समर्पण कर देना चाहती है और अपने नेत्रों की चंचलता हरिणी के नेत्रों को प्रदान करना चाहती है। काम पीड़ा से त्रासित हो कर बाला ने अपने सुंदर केश पाशों को चँवर वाली गौ को समर्पण कर देने का निश्चय किया है।

(४) हे माधव, इसे तुम निश्चय रूप से समझ लो कि राधा तुम्हारे वियोग में जीवित नहीं रहेगी। कदाचित इसी कारण जिन जिन वस्तुओं को विधाता ने राधा को सौंपा था राधा उन सब वस्तुओं को उनके वास्तविक अधिकारियों को वापिस कर रही है। राधा जैसी अनन्य सुंदरी जिसका जितना भी लिये हुए थी अर्थात जिसकी जो वस्तु भी लिये हुए थी उन सबको वास्तविक अधिकारियों को सौंप रही है। उसके इस कार्य से मुझे विश्वास होता है कि राधा तुम्हारे वियोग को न सह सकने के कारण अवश्य अपने प्राणों को त्याग देगी।

(६) इसी कारण हे माधव, राधा ने अपने सुंदर दाँतों की अद्वतीय शोभा को दाड़िम के प्रति तथा अपने अधरों की ललाई को बंधूक पुष्प के प्रति समर्पित कर दिया है। अपनी सुंदर देह की शुचिता तथा चंचलता विद्युत को तथा नेत्रों के काजल की कालिमा को शनि देव को समर्पण कर देने का राधा ने निश्चय किया है।

(८) अपने कटाक्ष की वक्रता को राधा ने कामदेव के पुष्प धनुष को सौंप दिया है और अपनी मधुर बोली को कोकिला को प्रदान कर देने का निश्चय किया है। हे माधव, इतना तो मैं भी समझती हूँ कि तुम्हारे प्रेम के कारण ही राधा ने अभी तक अपनी सुन्दर देह को अक्षत रखा है। इसी शरीर से राधा ने तुमसे प्रेम किया है अतः इस पर उसका मोह अधिक है और इसी कारण उसने अभी तक देह धारण कर रखी है।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे ब्रज सुंदरी अपने चित्त को परेशान न कर, अपने भाग्य पर आँसू न बहा, तुझे तेरे प्रीतम अवश्य प्राप्त होंगे। लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह रुपनारायण को इस बात का एकांत विश्वास है।

२१५.

आएल उनमद समय बसंत।
दारुन मदन निदारुन कंत॥ टेक॥
ऋतुराज आज विराज हे सखि।
नागरी जन वंदिते।
नव रंग नव दल देखि उपवन
सहज सोभित कुसुमिसे।
आरे कुसुमित कानन कोकिल साद।
मुनिहुक मानस उपजु बिसाद॥ १॥
अति मत्त मधुकर मधुर रव कर
मालती मधु - संचिते।
समय कंत उदंत नहिं किछु
हमहि विधि - बस - बंचिते॥
बंचित नागर सेह संसार।
एहि रितुपति सौं न करए बिहार॥ २॥

अति हार भार मनोज मारए
चंद रवि सन भानए
पुरुष पाप संताप जत हो
मन मनोभव जानए ॥
जारए मनसिज मार सर साधि
चानन देह चौगुन हो धाधि ॥ ३ ॥
सब धाधि आधि बेआधि जाइति
करिए धैरज कामिनी।
सुपहु मन्दिर तुरित आओत
सुफल जाइति जामिनी ॥
जामिनि सुफल जाइत अवसान।
धैरज धरु बिद्यापति भान ॥ ४ ॥

(१) उनमद = उन्मत्त, पागल। निदारुन = करुणाहीन। वंदिते = वंदना करते हैं, पूजते हैं। दल = पत्ते। कुसुमिते = कुसुमित, खिले हुए। साद = शब्द। बिसाद = विषाद, दुख। (२) रव = ध्वनि। उदंत = वार्ता, वृत्तांत। सेह = वही। रितुपति सौं = वसंतमें। (३) सन = समान। जत = जितना। मार = मारता है। धाधि = ज्वाला। (४) आधि = शोक। बेआधि = व्यधि, पीड़ा। सुपहु = सुप्रभु, प्यारे प्रीतम। अवसान = अंत।

(१) हे सखी, उन्मत्त कर देने वाली वसंत ऋतु आ गई है। एक ओर निष्ठुर कामदेव अपने तीक्ष्ण बाणों से विरहिनों को संतप्त कर रहा है और दूसरी ओर हमारे करुणा हीन प्रीतम प्रवास को सिधार गये हैं। हे सखी ऋतु-राज वसन्त का पूर्ण प्रभुत्व चारों ओर फैल रहा है और समस्त नगर की परम चतुरा बालायें वसंत की वंदना करती हैं। वन उपवनों में चारों नवीन किसलय तथा नवीन खिले रंग बिरंगे पुष्प दृष्टि गोचर होते हैं और कुसुमित पुष्पों के कारण बन स्वाभाविक रूप से शोभायमान हो रहा है। अरी सखी, पुष्पों से लदे हुए बनों तथा कोकिला की मधुर काकली से मुनियों तक के मन में विषाद उत्पन्न हो जाता है साधारण स्त्रियों अबलाओं की तो चलाई ही क्या है।

(२) मधु पान करके मत्त बना भ्रमर मालती पुष्प का रस पान करता हुआ मधुर ध्वनि से गुंजार करता है। हे सखी यह समय तो प्रीतम के साथ

प्रेम क्रीड़ा करने तथा मधुर आलाप, वार्तालाप करने का है। परंतु विधाता के विधान के सन्मुख हे सखी हम विवश हैं, हमारा कुछ भी वश नहीं चलता। हे सखी केवल वही स्त्री इस वसंत ऋतु में प्रीतम के संग विहार नहीं करती है जिसका प्रीतम उसे छोड़ गया हो अर्थात पति वंचिता स्त्रियों के अतिरिक्त सभी बालायें वसंत ऋतु में अपने प्रीतमों के संग विहार करती हैं।

हे सखी, प्रीतम की अनुपस्थिति में गलेमें हार भार समान प्रतीत होता है। इतने पर भी हे सखी कामदेव मुझे त्रस्त करता है तथा चंद्रमा सूर्य के समान अग्नि वर्षा करता प्रतीत होता है। जिस व्यक्ति ने हे सखी पूर्व जन्मों में जितना पाप अर्जन किया होता है उतनी ही इस जीवन में उसे कामदेव की पीड़ा सहन करनी पड़ती है। मैंने पूर्व जन्म में अवश्य पाप किया होगा सखी जिसका फल काम पीड़ा के रूप में मैं इस जन्म में भुगत रही हूँ। ऐसी अभागिन बालाओं पर कामदेव भी दया नहीं करता है सखी वरन् वह तो इसके विपरीत अपने तीक्ष्ण पुष्प बाणों से उनको और भी अधिक त्रस्त करता है। हे सखी, विरहावस्था में निर्जीव वस्तुएँ भी दुख देती हैं। देह पर लगा चंदन मेरी विरहाग्नि की ज्वाला को और भी अधिक-चौगुना-प्रज्वलित कर देता है।

(४) हे राधे, समय आने पर समस्त शोक व्याधि तथा विरह ज्वालाएँ स्वयं शांत हो जाती हैं अतः हे राधे, मन में धीरज रखो धैर्य करो। हे राधे, तुम्हारे प्यारे प्रीतम शीघ्र ही आवेंगे और तुम्हारी विरह रात्रि सुख दायक बन जायेगी कवि विद्यापति कहते हैं कि हे राधे, हे सुंदरी धैर्य धारण करो। तुम्हारी इस अंधकार पूर्ण विरह रात्रि का अंत अवश्य ही सुखकारी होगा।

## २१६

माधव, कत परबोधब राधा।
हा हरि हा हरि कहतहि बेरि बेरि
अब जिउ करब समाधा॥ २॥
धरनि धरिये धनि जतनहि बइसइ
पुनहि उठए नहि पारा।
सहजहि बिरहिन जग महँ तापिनि
बौरि मदन-सर-धारा॥ ४॥

अरुन - नयन - नोर तीतल कलेवर
बिलुलित दीघल केसा ।
मन्दिर बाहिर करइत संसय
सहचरि गनतहि सेषा ॥ ६ ॥
आनि नलिनि केओ रमनि सुताओलि
केओ देइ मुख पर नीरे ।
निसबद पेखि केओ साँस निहारए
केओ देइ मंद समीरे ॥ ८ ॥
कि कहब खेद भेद जनि अन तर
घन घन उपएत साँस ।
भनइ बिद्यापति सेहो कलावति
जीब बँधल आस-पास ॥ १० ॥

(२) समाधा = समाधान, निराकरण । (४) धरिये = धर कर, पकड़ कर । (६) नोर = आँसू । तीतल = तित्तल, भीगा हुआ, गीला । बिलुलित = अस्त, व्यस्त । दीघल = दीर्घ, लम्बे । सेषा = शेष, अंत समय । (८) केओ = कोई । नलिनि = जल, पानी । निसबद = निःशब्द । (१०) उतपत = उत्तप्त, गर्म । पास = पाश, बंधन ।

(२) हे माधव, किस प्रकार तथा कैसे राधा को सांत्वना दूँ । वह तो बार बार हे हरि, हे माधव, कह कह कर अपने जीवन को समाप्त किये देती है ।

(४) हे माधव, तुम्हारे वियोग में राधा इतनी क्षीण हो गई है कि बड़ी कठिनाई से बहुत प्रयत्न करने के पश्चात वह पृथ्वी को पकड़ कर बैठ पाती है और एक बार बैठ जाने के पश्चात फिर उठ नहीं पाती है । एक तो विरहाग्नि के कारण स्वभाविक रूप से ही राधा की देह फुँकी जा रही है और दूसरी ओर कामदेव के तीक्ष्ण पुष्प बाणों की चोट से वह विक्षिप्त सी होती जाती है, उसे अपने तन बदन की सुधि तक नहीं है ।

(६) रोने के कारण लाल हुए नेत्रों से निरंतर अश्रु वर्षा होने के फल स्वरूप उसका शरीर बराबर गीला रहता है और उसके अजानु लंबे केश अस्त व्यस्त हो गये हैं । उसके संबंधी तथा सखी सहेलियों को उसके जीवित रहने में संदेह हो चला है और उसकी नित्य की सहचरियों कोतो उसके

जीवन से ऐसी निराशा हो चली हैं कि वह तो अब उसके मृत्यु की घड़ियाँ गिनती है।

(८) अत्यंत कृश हो जाने के कारण कोई सखी तो शपथ दिला कर राधा को सुलाती है और कोई उसके मुख पर जल छिड़क कर उसे होश में लाने की चेष्टा करती हैं। कोई सखी तनिक भी आहट किये बिना बारबार उसकी श्वास प्रश्वास की क्रिया को देखती है और कोई सखी उसे धीरेधीरे वायु झलती है।

(१०) हे माधव, और अधिक क्या वर्णन करूँ ! ऐसा प्रतीत होता है मानो राधा के मन में तुम्हारे विरह के कारण इतना दुख है जिससे उसकी श्वास एकदम उत्तप्त निकलती है। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माधव ऐसा प्रतीत होता है मानो उस गुणवती बाला के प्राण केवल तुम्हारे मिलन की आशा में, मिलन के आशा बंधनों में, जकड़े हुए हैं अन्यथा उसके अब जीवित रहने की कोई आशा नहीं है।

कविवर बिहारी ने भी इन इन अनुपम भावों को लेकर उत्तम उक्तियाँ लिखी हैं। नीचे कुछ उद्धृत की जाती हैं, सहृदय पाठक इनकी उत्तमता को परख सकते हैं।

निस संसौ हँसौ बचत म..हुँ सु यह अनुमान।
बिरह लपटनि सकत झपटि न मीँच सिचान॥
सोवत जागत सपन बस रस रिस चैन कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति बिसराये बिसरै न॥
दिसि दिसि कुसुमित देखियत उपबन बिपिन समाज।
मनौ बियोगिनि कौ किये सर पंजर रति राज॥
गनती गनबे तें रहे छत हू अछत समान।
अब अलि ये तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान॥ इत्यादि

छटवें चरण में वर्णित भावों के अनुकूल सूरदास का निम्नलिखित पद कितना सामंजस्य रखता है :—

निस दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे।
दृग अँजन लागत नहिं कबहूँ उर कहोल भए कारे।
कंचुकि पट सूखत नहिं सजनी, उर बिच बपत पनारे॥

सूरदास प्रभु अँबु बढ़्यो है गोकुल लेहु उबारे ।
कहँ लौं कहौं स्याम घन सुंदर बिकल होत अति भारे ॥

(२१७)

अनुखन माधव माधव सुमरत
सुन्दरि भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल
अपने गुन लुबुधाई ॥ २ ॥
माधुव, अपरुब तोहर सिनेह ।
अपने बिरह अपन तनु जरजर
जिबइत भेलि संदेह ॥ ४ ॥
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि
छल छल लोचन पानि ।
अनुखन राधा राधा रटइत
आधा आधा बानि ॥ ६ ॥
राधा सयं जब पुनतहि माधव
माधव सयँ जब राधा ।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत
बाढ़त बिरहक बाधा ॥ ८ ॥
दुहु दिसि दारु-दहन जैसे दगधई
आकुल कीट परान ।
ऐसन वल्लभ हेरि सुधामुखि
कवि बिद्यापति भान ॥ १० ॥

इस पद में कवि विद्यापति ने प्रेम की पराकाष्ठा तथा तन्मयता का ऐसा अद्वतीय चित्रण किया है जो संसार की किसी भी भाषा के साहित्य में मिलना कठिन है । विरह में राधा माधव का स्मरण करते करते प्रेम में ऐसी तल्लीन हो जाती हैं कि अपने को ही कृष्ण समझ लेती हैं और "माधव" "माधव" कहने के स्थान पर "राधा" "राधा" "हे श्री राधे" चिल्लाने लगती हैं । परंतु जब उनको चेत होता है तब अपनी विरहावस्था को स्मरण करके कृष्ण मिलन के लिए व्याकुल हो जाती हैं और पुनः "माधव" "माधव" कहने लगती हैं ।

अपनी प्रेम तन्मयता के कारण राधा दोनों अवस्थाओं,चेतन तथा अचेतन,में मर्म व्यथा सहती हैं। अपने अस्तित्व को भूल कर प्रीतम के अस्तित्व में लीन हो जाना ही प्रेमी की ऐकांत कामना होती है। कवि विद्यापति ने राधा की इस प्रेमावस्था का चित्रण कर के इस आदर्श की पूर्णतया रक्षा की है।

(२) प्रत्येक क्षण तुमको स्मरण करते करते हे माधव ! राधा इतनी प्रेम तन्मय हो उठी हैं कि वह स्वयं को ही माधव समझने लगी हैं। यही नहीं वरन् राधोचित स्वभाव तथा गुणों को विस्मरण करके तथा अपने को साक्षात माधव समझ कर स्वयं अपने गुणों पर ही मुग्ध हो उठी हैं।

(४) हे माधव, राधा का तुम्हारे प्रति प्रेम बड़ा ही विचित्र तथा अद्भुत है। स्वयं को माधव समझ कर तथा स्वयं अपने ही काल्पनिक विरह में राधा क्षीण तथा जर्जर होती जा रही है। उसको दुगनी विरह यंत्रणा सहनी पड़ती है। राधा रूप माधव की यंत्रणा और माधव रूप में राधाका विरह। इस दुहरे विरह प्रपंच से हे माधव, राधा इतनी कृश तथा क्षीण हो गई है कि मुझे तो उसके जीवित रहने में संदेह हो चला है।

(६) हे माधव,आज प्रातःकाल से ही राधा की तन्मयता तथा प्रेम विभोर अवस्था को देख कर संग की सब सखी सहेलियों के नेत्रों से करुणा वश झरझर आँसू बहने लगे। राधा की इस अवस्था को देख कर सब सखियाँ कातर दृष्टि से बार बार उसे निहार कर अपने नेत्रों से जल-धार वर्षाती हैं। परंतु हे माधव राधा प्रेम तन्मयता के कारण स्वयं को माधव समझ कर बार बार "राधा" नाम का स्मरण कर रही हैं। धारा प्रवाह रूप से उनके मुख से निरंतर 'राधा' "राधा" निकल रहा है मानो वह स्वयं माधव हों और राधा के विरह से व्याकुल हों।

(८) परंतु हे माधव, राधा की यह प्रेम विभोर अवस्था स्थाई नहीं है। चेत होने पर वह फिर अपना राधा रूप धारण कर लेती हैं और माधव के विरह से व्याकुल होती हैं और अचेतन अवस्था में स्वयं को माधव समझकर राधा के विरह का ध्यान उनको जर्जरित करता है। इस प्रकार हे माधव जब राधा से माधव रूप धारण करती हैं तथा पुनः माधव से राधा रूप में आती है, दोनों अवस्थाओं में उनका असीम प्रेम तथा लगन तुमसे ही लगी रहती है। उनकी प्रेम तन्मयता भंग नहीं होती है। इस प्रकार हे माधव,

राधा की विरह पीड़ा में किसी भी रीति से बाधा नहीं पड़ती है। उनकी विरह पीड़ा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

(१०) दोनों अवस्थाओं की दारुण विरह पीड़ा राधा के तन मन को दग्ध किये डालती है। इस समय हे माधव, राधा की दशा दोनों ओर से जलती हुई लकड़ी के ऊपर बैठे कीट के समान है। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माधव, प्राण बल्लभ चंद्रमुखी राधा को अपने दर्शन दे कर उसकी विरहावस्था का अंत करो।

# कृष्ण का विरह

## कृष्ण का विरह

### २१८

रामा हे, से किए बिसरल जाई।
कर धरि माथुर अनुमति मंगइत
ततहि परल मुरुझाई ॥ २ ॥
किछु गदगद सरे लहु-लहु आखरे
जे किछु कहल बर रामा।
कठिन कलेवर तेईं चलि आओल
चित्त रहलि सोइ ठामा ॥ ४ ॥
से बिनु राति दिवस नहिं भावए
ताहि रहल मन लागी।
आन रमनि सयँ राज संपद मोयँ
आछिए जइसे बिरागी ॥ ६ ॥
दुइ एक दिवस निचय हम जाओब
तुहु परबोधबि राई।
बिद्यापति कह चित्त रहल तहिं
प्रेम मिलाएब जाई ॥ ८ ॥

(२) माथुर = मथुरा पति, कृष्ण। (४) सरे = स्वर से। लहु लहु = धीरे धीरे, मधुर। आखरे = शब्द, अक्षर। जे किछु = जो कुछ। तेईं = उसी से। (६) से = उस। (८) निचय = निश्चय रूप से। रहल = रहेगा।

(२) हे राधे, वह दृश्य मैं किस प्रकार विस्मरण करूँ। हाथ जोड़ कर माधव, मथुराधिपति कृष्ण तुम्हारे दर्शनों की भिक्षा माँग रहे थे और भावावेश में इतने विह्वल हो गये थे कि उसी क्षण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

(४) मूर्छितावस्था में गद्‌गद् स्वर से मधुर शब्दों में हे राधे, जो कुछ माधव ने कहा उसे मैं किस प्रकार विस्मरण कर सकती हूँ। हे राधे, मेरा प्राण बड़ा ही कठोर है तभी तो माधव को ऐसी दशा में वहाँ पड़ा छोड़ कर मैं यहाँ चली आई हूँ। मैं यहाँ चली तो अवश्य आई हूँ परंतु मेरा मन वहीं है।

(६) हे राधे, तेरे बिना माधव को कुछ भी नहीं सुहाता है, दिन रात सदैव अनमने से रहते हैं। उनकी समस्त मनः शक्ति तुम्हारी ओर लगी हुई है। हे राधे, माधव का कहना है कि अन्य रमणी के संग क्रीड़ा तथा राज्य संपत्ति का उपभोग मुझे ऐसे ही त्याज्य हैं जैसे किसी विरागी को इनके उपभोग से वंचित कर दिया गया हो। अर्थात हे राधे, अन्य बालाओं के संग केलि तथा राज्य संपत्ति का उपभोग मुझे तुम्हारे वियोग में त्याज्य हैं।

(८) हे राधे, इसके पश्चात माधव ने मुझ से कहा कि दो एक दिवस पश्चात मुझे निश्चय ही मथुरा गमन करना पड़ेगा अतः तुम राधा को धैर्य बँधाती रहना। कवि विद्यापति कहते हैं कि जिस की जिस से प्रीति हो जाती है उसका मन संपूर्ण रूप से उसी ओर लगा रहता है, इसी प्रकार हे राधे, माधव का मन तुम्हारी ओर अनन्य रूप से लगा हुआ है।

## २१६.

तिल एक सयन ओत जिउ न सहए
न रहए दुहु तनु भीन।
माँझे पुलक गिरि अंतर मानिए
अइसन रहु निसि-दीन ॥ २ ॥
सजनी कोन परि जीबए कान।
राहि रहल दुर हम मथुरा पुर
एतहु सहए परान ॥ ४ ॥
अइसन नगर अइसन नव नागरि
अइसन सपद मोर।
राधा बिनु सब बाधा मानिए
नयनन तेजिए नोर ॥ ६ ॥
सोइ जमुना जल सोइ रमनीगन
सुनइत चमकित चीत।

कह कवि सेखर अनुभवि जनलौं
बड़क बड़ई रीत ॥ ८ ॥

(२) तिल = क्षण । ओत = ओट । भीन = भिन्न । माँझे = मध्य । गिरि = पर्वत समान । अंतर = व्याघात । अइसन = इस प्रकार । दीन = दिन, दिवस । (४) कोन परि = किस प्रकार । कान = कान्ह, कृष्ण । (६) नोर = आँसू, अश्रु । (८) चमकित = चमत्कृत । चीत = चित्त, मन । अनुभवि = अनुभव करके । जनलौं = जान लिया । बड़क = बड़ों की । बड़ई = बड़ी, विशाल ।

(२) हे सखी, मैं और राधे शयन के समय एक क्षण का भी वियोग सहन नहीं कर सकते थे, शयन समय हमारे प्राण एक क्षण भी एक दूसरे से ओट में रहना सहन नहीं कर सकते थे और न हमारे शरीर क्षण भर के लिए एक दूसरे से पृथक ही रह सकते थे । हे सखी यही नहीं वरन् मिलन के समय रोमांच होने से मिलने में जो किंचित नाम मात्र का व्याघात हो जाता था वही हम को पहाड़ के समान प्रतीत होता था । इस प्रकार हे सखी, हम दोनों एक दूसरे से दिन रात इसी भाँति अभिन्न रहते थे ।

(४) हे सखी मैं किस प्रकार अपने प्राणों को धारण करूँ । राधा मुझ से दूर, बहुत दूर गोकुल में हैं और मैं मथुरा में राज्य कर रहा हूँ । मेरा प्राण इस चिर वियोग को किस प्रकार सहन कर सकता है ।

(६) हे सखी, ऐसी सुंदर मथुरा नगरी, उसके ऐसे सुंदर निवासी, मेरी इतनी विशाल राज संपदा, मेरा समस्त राज्य वैभव राधा की अनुपस्थिति में धूल समान है । मेरा चित्त इन वस्तुओं से प्रबोधित नहीं होता है और इसी कारण मेरे नेत्रों से निरंतर अश्रुपात होता रहता है । राधा बिना मेरी यह संसार दुर्लभ संपदा मेरे मन को प्रसन्न करने में असमर्थ है ।

(८) हे सखी, मेरा चित्त तो उन्हीं रमणियों, उन्हीं सखी सहेलियों तथा यमुना की उसी सुंदर कगरी की ओर लगा हुआ है । उन्हीं की स्मृति से मेरे मन को शान्ति मिलती है । कवि शेखर (विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि मैंने अनुभव करके यह जान लिया है कि बड़े व्यक्तियों की प्रीति भी उच्च कोटि की होती है । उनकी प्रीति असाधारण होती है ।

कवि कुल गुरु श्री सूरदास ने कृष्ण के अलौकिक प्रेम तथा उनके असाधारण तथा दैव दुर्लभ त्याग का जो चित्र अपने पदों में खींचा है वह संसार के साहित्य में अद्वितीय है । पुरुष प्रेम के वैसे पुरुषोचित तथा सुंदर चित्रण

का उदाहरण मिलना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। नीचे लिखे पदों से पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुंदरि कगरी अरु कुंजन की छाहीं॥
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै यह कहि कहि पछिताहीं॥

(२) सखा! सुनो मेरी इक बात।
वह लता-गन संग गोपिन सुधि करत पछितात॥
कहाँ वह वृषभानु तनया परम सुंदर गात।
सुरति आए रास रस की अधिक जिय अकुलात॥
सदा हित रह रहत नाहीं सकल मिथ्या जात।
सूर प्रभु यह सुनौ मोसों एक ही सों बात॥

(३ कहाँ सुख ब्रज को सो संसार।
कहाँ सुखद बंसीबट जमुना, यह मन सदा बिचार॥
कहँ बनधाम, कहाँ राधा सँग, कहाँ संग ब्रज बाम।
कहँ रस रास बीच अंतर सुख, कहाँ नारि तनु दाम॥
कहाँ लता, तरु तरु प्रति झूलनि, कुंज कुंज बनधाम।
कहाँ बिरह-सुख बिनु गोपिन सँग, सूर स्याम मम काम॥

(४) रुकमिनि, चलहु जनम-भूमि जाँही।
जदपि सब सुख निधान द्वारिका मथुरा के सम नाँहीं॥
जमुना के तट गाय चरावत मृत जल अचवाहीं।
कुंज-केलि अरु भुजा कंध धरि सीतल द्रुम की छाँही॥
सरस सुगंध मंद मलयागिरि बिहरत कुंजन माँहीं।
जो क्रीड़ा श्री वृन्दावन में तिहूँ लोक में नांही॥
सुरभी ग्वाल नंद अरु जसुमति मम चित तेन टराहीं।
सूरदास प्रभु चतुर-सिरोमनि सेवा तिन की कराहीं॥ इत्यादि

# भावोल्लास

## भावोल्लास

### २२०.

सरस वसंत समय भल पाओलि
दछिन पवन बहु धीरे ।
सपनहुँ रूप वचन एक भाखिए
मुख सों दुरि करु चीरे ॥ २ ॥
तोहर वदन सम चान होअथि नहि
जइओ जतन विहि देला ।
कए बेरि काटि बनाओल नव काय
तइओ तुलित नहि भेला ॥ ४ ॥
लोचन-तूल कमल नहि भए सक
से जग के नहि जाने ।
से फेरि जाए लुकाएल जल भए
पंकज निज अपमाने ॥ ६ ॥
भनहि बिद्यापति सुनु वर जौवति
ई सभ लछमी समाने ।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ पति भाने ॥ ८ ॥

(२) पाओल = पाया है । (४) चान = चंद्रमा । जइओ = यद्यपि । काय = काया, कलेवर, शरीर । तुलित = तुल्य, समान । (६) तूल = तुल्य, समान । भय सक = हो सकता है । के = कौन । (८) ई = यह । सभ = सब ।

(२) हे सखी, कैसी सुहावनी वसंत ऋतु आई है चारों ओर मलयानिल मंद गति से चल रहा है । सखी, ऐसे सुहावने समय में मुझे निद्रा आ गई । स्वप्न में एक स्वरूप वान् पुरुष ने आ कर मुझ से कहा कि हे राधे अपने मुख पर से तनिक अँचल हटाओ तो ।

(४) हे सखी, उस पुरुष ने यह भी कहा कि विधाता चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करें परंतु तेरे सुंदर मुख के समान सुंदर वस्तु तो वह अपनी अद्वतीय कृति चंद्रमा को भी निर्माण नहीं कर सके। तेरे मुख की सुंदरता के सन्मुख चंद्रमा की सुन्दरता भी मंद है। तेरे मुख की सुंदरता पूर्ण चन्द्र की सुंदरता से भी अधिक है। तेरे मुख की सुंदरता को देख विधाता ने अपने निर्मित चंद्रमा को बार बार निर्मित करके दूसरे अधिक मनोमोहक रूप में रचने के चेष्टा की परंतु अनेकों बार प्रयत्न करने पर भी वह उसे तेरे मुख के समान सुन्दर नहीं बना सका है।

(६) हे सखी! उस पुरुष ने स्वप्न में भी कहा कि हे राधे संसार का ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो यह नहीं जानता कि तेरे नेत्र कमल से भी अधिक सुंदर हैं और इसी अपमान की लज्जा के कारण हे राधे कमल ने अपना बास जल में किया है।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे ब्रज सुंदरी सुन, तेरा रूप तो साक्षात लक्ष्मी के समान शुभ्र तथा सुंदर है। लखिमा देवी के पति राजा शिवसिंह रुपनरायण इस को स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं।

## २२२.

सुतलि छलहुँ हम घरवा रे
गरवा मोतिहार।
राति जखनि भिनुसरवा रे
पिया आएल हमार ॥ २ ॥
कर कौसल कर कपँइत रे
हरवा उर टार।
कर-पंकज उर थपइत रे
मुख-चंद निहार ॥ ४ ॥
केहुनि अभागलि बैरिनि रे
भागलि मोर निंद।
भल कए नहि देखि पाओल रे
गुनमय गोबिन्द ॥ ६ ॥

विद्यापति कबि गाओल रे
धनि मन धरु धीर।
समय पाए तरुबर फर रे
कतबो सिचु नीर ॥ ८ ॥

(२) गरबा = गले में। जखनि = जिस क्षण। भिनुसरबा = भिनसार, भोर, उषःकाल। (४) कर = करते हुए। कँपइत = काँपते हुए। टार = हटाया, टाला। थपइत = स्थापित करके, रख के। (६) केहनि = कैसी। अभागलि = अभागिन। निन्द = नींद, निद्रा। भल कए = भली प्रकार। (८) कतबो = कितना ही। सिचु = सींचो।

(२) हे सखी, मैं अपने भवन में गले में मुक्ता हार पहिने सो रही थी। हे सखी, जिस समय रात्रि का अवसान हुआ और उषःकाल निकट आया तो उस समय हमारे प्रीतम स्वप्न में मेरे पास पधारे।

(४) हे सखी, बड़ी चतुराई से अपने काँपते हुए हाथों से प्रीतम ने मेरे गले में पड़े हार को हटाया और अपने कमल के समान हाथों को मेरे कुचों पर स्थापित करके मेरे मुख को देखने लगे।

(६) हे सखी, मैं कैसी अभागिन हूँ कि उसी समय मेरी निद्रा भी मुझ से रूठ गई अर्थात इस सुख स्वप्न के आते ही मेरी चिर शत्रु निद्रा भाग गई। इस कारण हे सखी, मैं प्रीतम का भली भाँति दर्शन भी न कर सकी। मैं सर्व गुण सम्पन्न गोविंद को भली प्रकार देख भी न सकी।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले, अपने मन में धैर्य धारण कर, तुझे गोविंद अवश्य प्राप्त होंगे। हे बाले, सब कार्य अपने नियत तथा निश्चित समय पर ही होते हैं, जल्दी करने से कुछ लाभ नहीं होता है। उसी प्रकार जैसे वृक्ष को चाहे कितना भी जल क्यों न दिया जाय, उसकी कितनी भी सिंचाई क्यों न की जाये परंतु फल उस में सदैव समय आने पर ही लगता है।

(१९२)

मोरा रे अँगनमा चनन केरि गछिआ
ताहि चढ़ि कुररय काग रे
सोने चोंच बाँधि देव तोयँ बायस
जओं पिया आओत आज रे ॥ २ ॥

गावह सखि सब झूमर लोरी
मयन-अराधन जाऊँ रे।
चओदिसि चंपा मओली फूललि
चान इजोरिया राति रे॥ ४॥
कइसे कए मोयँ मयन अराधब
होइति बड़ि रति साति रे॥ ५॥
बिद्यापति कवि गावए तोहर
पहु अछ गुनक निधान रे।
राओ भोगीसर सब गुन आगर
पद्मा देइ रमान रे॥ ६॥

(२) मोरा = मेरे। अँगनमा = आँगन में। चनन = चंदन। केरि = का। गछिआ = गाछ, छोटा पौधा, बिरवा। कुररय = बोल रहा है। (४) मयन = कामदेव। मओली = मल्लिका। फूललि = फूली हुई है। चान = चंद्रमा। इजो-रिया = इँजोर कर रहा है, चाँदनी फैला रहा है। होइति = हो जायेगी। रति साति = रति शास्ति, रति जनित पीड़ा। (६) अछ = है। राओ = राव, राजा। भोगीसर = भोगेश्वर।

(२) मेरे आँगन में हे सखी, चंदन का बिरवा है जिस पर कौवा बैठा बोल रहा है। हे काग, आज यदि मेरे प्रीतम घर आ जायें तो मैं सुवर्ण से तेरी चोंच मढ़वा दूँगी। जब किसी की प्रतीक्षा होती है तो कौवे का बोलना शुभ समझा जाता है।

(४) हे मेरी सखियो, तुम सब मिल कर झूमर और लोरी गाओ क्योंकि आज मैं कामदेव की आराधना करने अर्थात पति की अंक शायिनि होने जाऊँगी। कैसा सुहावना समय है। चारों ओर चंपा तथा मल्लिका फूली हुई है और चन्द्रमा ने अपनी निर्मल चाँदनी से रात्रि को प्रकाशमान बना रखा है। परंतु हे सखी, मुझ से कामदेव की आराधना किस प्रकार हो सकेगी, मैं प्रीतम के साथ रति क्रीड़ा किस प्रकार कर सकूँगी क्योंकि मैंने सुना है कि रति कार्य से अर्थात् रति जनित पीड़ा बड़ी कठिन होती है।

(६) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले, तुम बड़ी भाग्य शाली हो क्यों कि तुम्हारा प्रीतम सर्व-गुण-सम्पन्न तथा समस्त गुणों की खान है। पद्मा देवी के पति राजा भोगेश्वर भी सर्व गुण निधान हैं।

राय भोगेश्वर—सर्व प्रथम मिथिला का राजा नान्य देव तथा उनके वंशजों के पास था। उनकी राजधानी सीतामढ़ी रेलवे स्टेशन से कुछ आगे कोइली ग्राम के समीप सिमराँव गढ़ थी। नान्य देव और उनके वंशजों ने लगभग २२६ वर्ष राज्य किया। इसके पश्चात मिथिला का राज्य मैथिल ब्राह्मणों के आधिपत्य में आया। यह मैथिल ब्राह्मण ओइनी ग्राम के उपार्जक थे इसी कारण इनका वंश "ओइनिवार" कहलाया। उस समय दिल्ली के राज्य सिंहासन पर सुल्तान फीरोज़ शाह था। उसने मिथिला का राज्य ओइनी ग्रामोपार्जक नाह ठाकुर के अति वृद्ध प्रपौत्र राज्य पंडित कामेश्वर सिद्ध को प्रदान किया। परंतु कामेश्वर ठाकुर ने राज्य को ब्राह्मणत्व के विरुद्ध समझ कर स्वीकार नहीं किया। अत: उनके ज्येष्ठ पुत्र भोगेश्वर ठाकुर को राज्य मिला। इन्होंने बड़े गौरव के साथ ३३ वर्ष मिथिला पर राज्य किया। सन् १३६० ई० में भोगेश्वर ठाकुर पंच तत्व को प्राप्त हुए और राज्य इनके पुत्र महाराज गणेश्वर को मिला। महाराज भोगेश्वर ठाकुर की स्त्री नाम पद्मा देवी था। कवि विद्यापति ने भोगेश्वर ठाकुर को समर्पण करके अनेकों पद रचे हैं। कवि की दूसरी पुस्तक "कीर्ति लता" में राजा भोगेश्वर से संबंध रखने वाले अनेकों पद हैं।

ओइनी-ओइनिवार—कामेश्वर ठाकुर सिमराँव गढ़ के क्षत्रिय राजा हरि सिंह देव के राज्य पंडित थे। उनके पूर्व पुरुष ओयन ठाकुर को राजा नान्य देव थे; जो कि मिथिला के राज्य के संस्थापक थे, "ओइनी" ग्राम उपहार में मिला था। इस कारण यह वंश "ओइनिवार" कहलाया। ओइनी ग्राम आज भी वर्तमान है और दरभंगा जिले में पूसा रोड स्टेशन के निकट बसा हुआ है।

## २२३

अँगने आओब जब रसिया।
पलटि चलब हम इषत हँसिया॥ २॥
रस नागरि रमनी।
कत कत जुगति मनहि अनुमानी॥ ४॥
आबेसे आँचर पिया धरबे
जाएब हम न जतन बहु करबे॥ ६॥
कँचुआ धरब जब हठिया।
करे कर बाँधब कुटिल आध दिठिया॥ ८॥

रभस माँगव पिया जबही ।
मुख मोड़ि बिहँसि बोलब नहि नहि ।। १० ।।
सहजहि सुपुरुख भमरा ।
मुख कमलक मधु पीअब हमरा ॥ १२ ॥
तखन हरब मोर गेआने ।
बिद्यापति कह धनि तुअ धेआने ॥ १४ ॥

(२) अँगने = आँगन में । आओव = आवेंगे । इषत = ईषत, थोड़ा, मंद । हँसिया = हँस कर । (४) रस-नागरि = रस प्रवीण, सुरसिका । (६) आबेसे = आवेश में, कामोत्तेजित हो कर । धरबे = धरेंगे, पकड़ेंगे (८) कँचुआ = कँचुकी, चोली । हठिया = हठ पूर्वक । करे = कड़े, सख्त । बाँधब = बाधा दूँगी । दिठिया = देखूँगी (१०) रभस = रति क्रीड़ा । बिहँसि = हंस कर । (१२) सहजि = स्वभाव वश । (१४) तखन = उस समय, रति क्रीड़ा के समय । गेआने = ज्ञान । धनि = धन्य हैं । धेआने = ध्यान, विचार ।

(२) हे सखी, जिस समय मेरे रसिया प्रीतम मेरे आँगन में आवेंगे उस मैं उनको देख कर मंद मंद हँसती हुई वहाँ से पलट आऊँगी ।

(४) हे सखी, मैं इस रस रीति में बड़ी प्रवीण तथा सुरसिका हूँ । न जाने कितनी ही युक्तियों से अर्थात अनेकों युक्तियों से मनाये जाने पर मैं मान को त्यागूँगी और तब कहीं प्रीतम की बात मानूँगी ।

(६) हे सखी, कामोत्तेजित होकर जिस समय प्रीतम मेरा आँचल पकड़ेंगे तो उस समय वह मुझे अपने पास बुलाने का भरसक प्रयत्न करेंगे परंतु मैं उनके पास नहीं जाऊँगी ।

(८) हे सखी, जब बहुत हठ करके प्रीतम मेरी चोली को उतारने की चेष्टा करेंगे उस समय अपने हाथों को कड़ा करके उनके इस कार्य में बाधा दूँगी और कठोर चितवन से उनकी ओर देखूँगी ।

(१०) हे सखी, प्रीतम जिस समय मुझ से रति क्रीड़ा करने का प्रस्ताव करेंगे उस समय मैं मुख मोड़ कर मन ही मन हँस कर तथा प्रसन्न हो कर मुख से बारबार "नहीं" "नहीं" ही कहूँगी ।

(१२) परंतु हे सखी, क्या हमारे प्रीतम इन बातों से विचलित हो जायँगे ? नहीं । जिस प्रकार भ्रमर स्वभाव वश ही पुष्पों का मकरंद पान करता

है उसी प्रकार मेरे मुख कमल पर मोहित भ्रमर रूपी प्रीतम स्वभाव वश तथा सहज रीति से ही मेरे मुख कमल के मधु को पान करेंगे।

(१४) हे सखी, जिस समय प्रीतम रति क्रीड़ा करेंगे उस समय (रति क्रीड़ा के समय) वह मेरे समस्त ज्ञान तथा बुद्धि को हर लेंगे अर्थात रति क्रीड़ा जनित सुख से मेरी समस्त चेतना जाती रहेगी। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले, तेरा ऐसा विचार वास्तव में अनुपम तथा धन्य है।

## २२४

पिआ जब आओब इ मभु गेहे।
मंगल जतहु करब निज देहे ॥ २ ॥
कनअ कुम्भ करि कुच जुग राखि।
दरपन धरब काजर देइ आँखि ॥ ४ ॥
बेदि बनाओब हम अपन अंकमे।
झाड़ करब ताहे चिकुर बिछीने ॥ ६ ॥
कदलि रोपब हम गरुअ नितम्ब।
आम पल्लव ताहे किंकन सुझम्प ॥ ८ ॥
दिसि दिसि आनब कामिनि ठाट।
चौदसि पसारब चाँदक हाट ॥ १० ॥
विद्यापति कह पूरब आस।
दुइ एक पलक मिलब तुअ पास ॥ १२ ॥

(२) मभु = मेरे। गेहे = गेह, घर। करब = करूँगी। (४) करि = समान। राखि = रखूँगी। (६) बेदि = वेदि। अँकमे = अँक में, गोद में। झाड़ करब = झाड़ू दूँगी। बिछीने = विच्छिन्न करके, खोल कर। (८) सुझम्प = आँदोलित, शब्द करता हुआ। (१०) आनब = लाऊँगी, बुलाऊँगी। ठाट = ठट्ठ, समूह। पसारब = प्रसार करूँगी। चाँदक = चँद्रमा के। हाट = बाज़ार। (१२) पलक = क्षण।

(२) हे सखी जिस समय मेरे प्रीतम मेरे घर आयेंगे उस समय मुझे जितना भी आनंद मंगल करना होगा उस सब को मैं अपने शरीर ही में करूँगी अर्थात मैं मन ही मन आनंद मंगल मनाऊँगी।

(४) सुवर्ण के समान मैं अपने दोनों कुचों की स्थापना करूँगी और दर्पण को सम्मुख रख कर अपने नेत्रों में काजल आँजूँगी।

(६) रति क्रीड़ा रूपी महा यज्ञ को रचाने के लिये हे सखी मैं अपनी गोदी को ही यज्ञ स्थल की बेदी बनाऊँगी और इस पवित्र स्थल को साफ करने के लिये अपने केशों को खोल कर उनसे उस यज्ञ स्थल में झाड़ू लगाऊँगी।

(८) यज्ञ स्थल में स्थापित किये जाने वाले कदली खम्भ के स्थान पर मैं अपने पुष्ट नितंबों को स्थापित करूँगी और मरमर शब्द करने वाली आम्र-पत्तियो की बनी बंदनवार के स्थान पर मधुर ध्वनि उत्पन्न करने वाली अपनी किंकणी को लगाऊंगी।

(१०) इतना ही नहीं सखी वरन चारों ओर से सुंदर कामिनियों के समूह बुलाऊंगी। इन चंद्र मुखी ललनाओं के मुखों की छबि से चारों ओर अनगिनती चंद्रमा ही चन्द्रमा दीख पड़ेंगे। इस प्रकार हे सखी मैं रति रूपी महान यज्ञ का आयोजन करूँगी।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे बाले तेरी अभिलाषा तथा आशा पूर्ण हो। केवल दो चार क्षण के पश्चात ही तेरे प्रीतम तेरे पास आयेंगे।

शरीर को यज्ञ स्थल की वेदी बना कर प्रीतम से मिलने की अभिलाषा कबीर के हृदय में भी थी। उनका निम्न लिखित पद अखिल अविनाशी से मिलन की कैसी उत्कृष्ट अभिलाषा को प्रकट करता है।

दुलहिंनी गावहु मंगलाचार।
हम घर आये हो राजा राम भरतार॥
तन रति करि मैं मन रति करिहों पांचों तत्त बाराती॥
राम देव मोरे पाहुने आये, मैं जोवन मदमाती।
सरीर सरोवर वेदी करिहों, ब्रह्मा बेद उचारा॥
राम देव संग भाँवर लेहूं धन धन भाग हमारा॥
सुर तेतीसूँ कौतिक आये मुनिवर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरुष एक अविनासी॥

२२५.

दुहुक दुलह दुहु दरसन भेल।
बिरह जनित दुख सब दुर गेल॥ २॥
कर धरि बइसाओल बिचित्र आसन।
रसन-रतन-स्याम रमनी रतन॥ ४॥
बहु बिधि बिलसए बहु बिधि रंग।
कमल मधुप जनि पाओल संग॥ ६॥
नयन नयन दुहु बयन बयान।
दुहु गुन दुहु गुन दुहुजन गान॥ ८॥
भनइ विद्यापति नागरि भोर।
त्रिभुवन विजयी नागर चोर॥ १०॥

(२) दुलह = दुर्लभ। दुहु = दोनों को, परस्पर। (८) बयन = बैन बोली। (१०) भोर = विभोर, बेसुध।

(२) दोनों को एक दूसरे का दर्शन जो कि अति दुर्लभ था हो गया तथा दोनों को विरह के कारण जो दुख हो रहा था उस का भी अंत हो गया।

(४) बाला ने माधव को हाथ पकड़ कर विचित्र आसन पर बैठाया। हे सखी श्याम पुष्पों में श्रेष्ठ हैं तथा राधा रमणियों में रत्न के समान हैं।

(६) इसके पश्चात दोनों ने अनेकों ढंग तथा युक्तियों से हास विलास किया। राधा श्याम को पाकर तथा श्याम राधा को पाकर ऐसे प्रसन्न थे जिस प्रकार भ्रमर कमल के मकरंद को पान करके प्रसन्न होता है।

(८) दोनों ही हे सखी उस समय प्रेम में ऐसे विभोर हो रहे थे कि मुख से बात तक न निकलती थी इस कारण नेत्रों की भाषा में ही दोनों ने वार्तालाप किया और दोनों ने एक दूसरे के गुणों का बखान किया।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि उस समय त्रिभुवन विजयी चतुर-कान्ह तथा परम चातुरी राधा आत्म विस्मृत हो कर प्रेम विभोर हो रहे थे।

## २२६

चिर दिन से बिहि भेल अनुकूल रे।
दुहु मुख हेरइत दुहु से आकुल रे ॥२॥
बाहु पसारिए दुहु दुहु धरु रे।
दुहु अधरामृत दुहु मुख भरु रे ॥४॥
दुहु तन काँपइ मदन उछल रे।
किन किन किन खरि किंकिनि रुचल रे ॥६॥
जाइतेहि स्मित नव बदन मिलल रे।
दुहु पुलकावलि ते लहु लहु रे ॥८॥
रस-मातल दुहु बसन खसल रे।
विद्यापति रस-सिन्धु उछल रे ॥१०॥

(२) चिर = चार । (८) स्मित = हास्य युक्त । (१०) मातल = मस्त । खसल = खिसक गया, गिर पड़ा ।

(२) चिर वियोगिनी राधा की आर्त पुकार को सुन कर चार दिन से अर्थात थोड़े समय से ही विधाता उसके अनुकूल हुआ है और उसके चिर वियोग का अन्त हुआ है और राधा-माधव का मिलन हुआ है । इस कारण वह दोनों बड़ी व्याकुलता से एक दूसरे के मुख-चन्द्रों को जी भर कर निहार रहे हैं ।

(४) अधिक काल के पश्चात मिलन होने के कारण दोनों ने अपनी भुजाओं में एक दूसरे को जकड़ रखा है और दोनों एक दूसरे के अधरामृत का पान कर रहे हैं ।

(६) कामोत्तजेना के कारण हे सखी, दोनों का शरीर पुलकित हो रहा है और रति क्रीड़ा में संलग्न होने के कारण राधा के कटि प्रदेश में पड़ी किंकिणी मधुर स्वर से बज रही है ।

(८) मिलन होते ही सखी दोनों प्रसन्न मन तथा सहास्य अधरों से एक दूसरे से लिपट गये और दोनों के शरीर में कामोत्तेजना से रोमाँच होने लगा ।

(१०) दोनों प्रेम में ऐसे विभोर हो गये, ऐसे मस्त हो गये, कि उनके वस्त्र शरीर से खिसक कर गिर पड़े । कवि विद्यापति कहते हैं कि इस समय रस का सागर हिलोर लेने लगा अर्थात राधा-माधव का मिलन होने से रस का समुद्र उमड़ पड़ा ।

७२७

सुनु रसिया,
अब न बजाऊ बिपिन बँसिया ॥ २ ॥
बार बार चरनारबिंद गहि ।
सदा रहबि बनि दसिया ।
कि छलहुँ कि होएब से के जाने
बृथा होएत कुल हँसिया ॥४॥
अनुभव ऐसन मदन-भुजंगम
हृदय मोर गेल डसिया ।
नंद-नन्दन तुग्र सरन न त्यागब
बलु जग होए दुरजसिआ ॥ ६ ॥
बिद्यापति कह सुनु बनितामनि
तोर मुख जीतल ससिआ
धन्य धन्य तोर भाग गोआरिनि
हरि भजु हृदय हुलसिआ ॥८॥

(२) बजाऊ = बजाओ । (४) दसिआ = दासी । की = क्या । छलहुँ = थी । होएब = होऊंगी, बनूँगी । से = उसे । के = कौन । हँसिया = हँसी, निन्दा । (६) ऐसन = इस प्रकार । बलु = बरु, भले ही—उ० सूरदास बरु उपहास सहोई सुर मेरे नंद सुवन मिलैं तो पैं कहा चाहिये । (सूर) । दुरजसिजा = दुर्यश, अप-यश, अपकीर्ति, कलंक । (८) बनिता—मनि = स्त्रियों में मणि के समान । जीतल = जीत लिया है । ससिआ = शशि, चंद्रमा । गोआरिनि = ग्वालिन । हुलसिया = हुलस कर, प्रसन्नता पूर्वक ।

(२) हे रसिया, हे रसिक कृष्ण सुनो । अब इन ब्रज की वीथिकाओं में वंशी न बजाओ ।

(४) हे कृष्ण, तुम्हारे चरणों की शरण रह कर मैं सदैव ही तुम्हारी दासी बनी रहूँगी । तुम्हारे मिलन से पूर्व मैं क्या थी तथा तुम्हारे चरणों की शरण गह लेने पर क्या बन जाऊंगी यह बात कौन जा सकता है । अतः बार बार बीथिकाओं में बंशी में मेरा नाम ले कर पुकारने से व्यर्थ ही मेरे कुल की निन्दा लगेगी ।

(६) हे कृष्ण, मुझे तो कुछ इस प्रकार का अनुभव हो रहा है मानो मेरे हृदय को कामदेव रूपी भुजंग ने डस लिया है जिसके विष के परिणाम स्वरूप प्रेम विभोर हो कर मैं आत्म समर्पण कर रही हूँ। हे नंद नन्दन एक बार तुम्हारे चरणों को गह लेने के पश्चात मैं तुम्हारे चरणों की शरण को कभी नहीं तजूँगी, भले ही समस्त संसार मुझे कलंक लगावे मैं तुम्हारी शरण नहीं त्यागूँगी।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि स्त्रियों में मणि के समान हे राधे, तेरे मुख चंद्र की शोभा ने निशापति चंद्रमा की शोभा तक को जीत लिया है। हे ग्वालिन (राधे) तेरे सौभाग्य को धन्य है जिसने व्रज पति की शरण गही है। अतः हे व्रज नागरी तू प्रसन्न मन से निशंकः कृष्ण का स्मरण कर, तेरे भाग्य को धन्य है।

राधा, तू बड़ भागिनी सु कौन तपस्या कीन।
तीन लोक तारन तरन सो तेरे आधीन॥

(२२८)

सखि, कि पुछसि अनुभव मोय।
से हो पिरित अनुराग बखानिए
तिल तिल नूतन होय॥ २॥
जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधु बोल स्रवनहि सूनल
स्रुति पथ परस न भेल॥ ४॥
कत मधु-जामिनि रभस गमाओल
न बूझल कइसन केल।
लाख लाख जुग हिय हिय राखल
तइओ हिय जुड़ल न गेल॥ ६॥
कत विदगध जन रस अनुमोदई
अनुभव काहु न पेख।
बिद्यापति कह प्रान जुड़ाएत
लाखे न मिलल एक॥ ८॥

(२) कि = क्या। पुछसि = पूछती हो। सेहो = वही। (४) सूनल = सुना है। स्रु ति पथ = कानों की राह से। परस = स्पर्श। (६) मधु जामिनि = मधु यामिनी, वसन्त ऋतु की रात्रि। कइसन = किस के संग। केल = केलि क्रीड़ा। तइओ = तौ भी। जुड़ल = जुड़ा, ठण्डा हु आ, शीतल हुआ। (८) विदगध, विदग्ध, रसिक। अनुमोदई = अनुमोदन करते हैं, उपभोग करते हैं। लाखे = लाखों में।

(२) हे सखी, प्रेम क्षेत्र में मेरे अनुभवों को मुझ से क्या पूँछती हो। प्रीति तथा अनुराग की बातें वही वर्णन कर सकता है जिसने क्षण क्षण पर प्रेम के नये-नये अनुभवों को ग्रहण किया हो। जिसने स्वयं प्रेम किया है वही प्रेम के विचित्र अनुभवों को बता भी सकता हैं और ऐसे ही व्यक्ति उन वर्णनों से प्रभावित भी हो सकते हैं। प्रेमी हृदय ही प्रेम की बातों को समझ सकता हैं। घायल की गति घायल जाने कै जिन लागी होय। (मीरा)

(४) हे सखी, माधव का स्वरूप ऐसा मनोमोहक है कि समस्त जीवन भर निरन्तर उनकी मुख श्री को पान करते रहने पर भी मेरे नेत्र तृप्त नहीं हुए हैं। हे सखी, ऐसा मनोमोहक तथा अद्भुत रूप हैं माधव का। हे सखी, यद्यपि माधव की मधुर वाणी को सुनते सुनते समस्त जीवन व्यतीत हो गया है परन्तु तो भी तृप्ति नहीं हुई हैं। उनकी वाणी को अपने कानों से सुनने तथा उनके शब्दामृत को कानों के रास्ते पान करने की अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई है।

(६) हे माधव, तुमने मादक ऋतु राज बसंत की सुहावनी रात्रि कहाँ काम क्रीड़ा करते व्यतीत कर दी तथा किस सौभाग्यवती के साथ सारी रात रति क्रीड़ा में संलग्न रहे इसे मैं नहीं पूँछती हूँ। मैं तो केवल यही जानती हूँ कि अनन्त काल (लाख लाख युग) तक तुम्हारी प्रीति को हृदय में धारण करने पर भी मेरा हृदय शीतल नहीं हुआ हैं। अर्थात अ नन्तकाल से प्रीति करते रहने पर भी मेरे हृदय की अभी तृप्ति नहीं हुई है।

(८) हे सखी, केवल रसिक जन ही रस का उपभोग कर सकते हैं। जिसका हृदय रस मय होता है वही रस रीति की बातें समझ सकता है अन्य नहीं।

घायल की गति घायल जाने कै जिन लागी होय।
जौहरि की गति जौहरि जाने कै जिन जौहर होय॥ (मीरा)

किसी भावना का अनुभव कोई देख कर नहीं कर सकता है। जल के किनारे खड़े खड़े जिस प्रकार कोई तैरना नहीं सीख सकता जब तक वह जल में न कूदे उसी प्रकार प्रेम की पीड़ा का अनुभव कोई व्यक्ति केवल प्रेमी जनों को देख कर ही नहीं कर सकता है। प्रेमानन्द का अनुभव करने के लिए प्रेम के अगाध समुद्र में डुबकी लगानी होती है और जो डुबकी लगाता है वही प्रेम के आनन्द का अनुभव कर सकता है।

एक कवि कहता है :— साईं का घर दूर है जैसे लम्बी खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस गिरे तो चकनाचूर॥

दूसरा कहता है :— सीस काट भुईं पर धरे ता पर राखे पांव।
ऐसा हो तो आइयो प्रेम गली के ठांव॥

बिहारी क्या कहते हैं तनिक सुनिये :—

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूढ़ै श्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्ज्वल होय॥

नागरी दास भी कुछ ऐसा ही कहते हैं :—

इश्क चमन महबूब का सँभल पाँउ धरि आव।
बीच राह के बूड़ना ऊबट माँहि बचाव॥

कवि विद्यापति कहते हैं कि माधव के अतिरिक्त प्राणों को शीतल करने वाला व्यक्ति बहुत ढूंढने पर भी लाखों में से एक भी नहीं मिला है। माधव के अतिरिक्त इस प्रेमाग्नि को शीतल करने वाला व्यक्ति दूसरा कोई भी नहीं है।

# प्रार्थना और नचारी

## २२६

## प्रार्थना और नचारी

विदिता देवी विदता हो
　　अविरल-केश सोहन्ती ।
ऐकानेक सहस को धारिनि
　　जरि रंगा पुरनन्ती ॥ २ ॥
कजल रूप तुअ काली कहिए
　　उजल रूप तुअ बानी ।
रविमंडल परचंडा कहिए
　　गंगा कहिए पानी ॥ ४ ॥
ब्रह्मा—घर ब्रह्मानी कहिए
　　हर-घर कहिए गौरी ।
नारायण-घर कमला कहिए
　　के जान उतपत तोरी ॥ ६ ॥
विद्यापति कविवर एहो गाओल
　　जाचक जन के गति ।
हासिनि देइ पति गरुड़ नरायन
　　देवसिंघ नरपति ॥ ८ ॥

(२) अविरल = अ + बिरल, सघन, घने = उ०(क) रति होइ अविरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई । (तुलसी) (ख) अविरल प्रेम भगति मुनि पाई, प्रभु देखहिं तरु ओर लुकाई । (तुलसी) धारिनि = धारण करने वाली ।सहसु = सहस्र रंगा = रंग क्षेत्र, युद्ध स्थल । (४) कजल = काजल, श्याम । बानी = वाणी, सरस्वती । (६) उतपत = उत्पत्ति, जीवन । (८) गति = सहारा, अवलम्ब, शरण उ० तुमहिं छोड़ि दूसरि गति नाहीं, बसहु राम तिनके उर माहीं ॥ (तुलसी)

(२) हे विदिता देवी, हे सुहावने सघन केशों वाली विदिता देवी तुमको बा बार नमस्कार है । अनेकों यथा सहस्रों स्वरूपों को धारण करने वाली

तथा युद्धस्थल में प्रचण्ड पराक्रम दिखाने वाली हे विदिता देवी तुमको बार बार नमस्कार है ।

(४) हे देवी माँ आप के अनेकों रूप हैं । घोर श्याम वर्ण रूप में भक्त आप को काली (चंडिका) के रूप में पूजते हैं और गौर वर्णन स्वरूप में स्वयं आप ही साक्षात सरस्वती हैं । प्रचण्डता तथा तेज में आप सूर्य मण्डल के समान तेजस्वी है और शीतलता में, जल स्वरूप में, आप शान्ति दायिनी माता गंगा के समान हैं ।

(६) माँ आप ही विचित्र तथा अनेकानेक रूपों में इस संसार का परिचालन कर रही है। आप के अनेकों स्वरूप हैं । विधाता ब्रह्मा के साथ में आप ब्रह्मानी के रूप में उपस्थित रहती हैं और शिव के साहचर्य में आप साक्षात गौरी हैं । जगत्पिता विष्णु के सम्पर्क में आप ही का नाम कमला हो जाता है । हे त्रिभुवन विजयिनी देवी आपका स्वरूप इतना विशाल तथा रहस्य पूर्ण है कि आपके जन्म तथा उद्‌भव के रहस्य को कौन जान सकता है । मनुष्य की गति वहाँ तक नहीं है । आपका ही तेज समस्त विश्व में फैला हुआ है ।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सर्व विजयिनी देवी याचकों की तो आप ही एक मात्र सहारा तथा अवलम्ब हैं । हासिनी देवी के पति महाराजा देवीसिंह उपनाम गरुड़ नारायण आपको बारम्बार नमन करते हैं ।

महाराज देवीसिंह तथा हासिनी देवी-इनके सम्बन्ध में पद २१ के नीचे विस्तृत नोट दिया गया है ।

२३०

कनक-भूधर-शिखर वासिनी
चन्द्रिका चय चारु हासिनि
दशन कोटि विकास, वंकिम
तुलित चन्द्रकले ।
क्रुद्ध सुररिपु बल निपातिनि
महिष-शुम्भ-निशुम्भ घातिनि
भीत-भक्त भयापनोदन—
पाटल प्रबले ॥ २ ॥

जय देवि दुर्गे दुरित तारिणी
दुर्ग मारि विमर्द हारिणि
भक्ति नम्र सुरासुराधिप—
मंगलायतरे ॥ २ ॥
गगन मंडल गर्भ गाहिनि
समर भूमिषु सिंह वाहिनि
परसु—पाश—कृपाण—शायक
शंख चक्र-धरे ॥ ४ ॥
अष्ट भैरवि संग शालिनि
सुकर कृत्त कपाल कदम्ब मालिनि
दनुज शोणित पिशित वर्द्धित—
पारणा रभसे ।
संसारबंध निदान मोचिनि
चन्द्र - भानु - कृशानु - लोचन
योगिनी गण गीत शोभित
नृत्य भूमि रसे ॥ ६ ॥
जगति पालन - जनन - मारण
रूप कार्य सहस्र कारण
हरि विरंचि महेश शेखर
चुम्ब्यमान पदे ।
सकल पाप कला परिच्युति
सुकवि विद्यापति कृत स्तुति
तोषिते शिवसिंह भूपति
कामना फलदे ॥ ८ ॥

(२) भूधर = पर्वत। चारु = सुंदर चारु हासिनि = मनोहर मुस्कान वाली। तुलित = तुल्य समान। निपातिनि = विनाश करने वाली-उ० बनमाला पहिरावत श्यामहिं बार बार अँकवारि भरी धरि, केस निपात करहुगे तुम ही हम जानी यह बात सही परि। (सूर)। पाटल = पटल, आश्रय, अवलम्ब। प्रबले = प्रबल, प्रचण्ड। (४) दुरति = पापी, पातकी। दुर्ग = एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा। विमर्द = विमर्दन, पीड़ित करने वाला। हारिणि = हरण

करने वाली, संघार करने वाली, विनाश करने वाली। गाहिनि = अवगाह करने वाली। शायक = खड्ग, तलवार। (६) शालिनि = शालीन, शोभायमान, दक्ष, चतुर, लज्जा शील। अष्ट भैरवि = आठ भैरव यह हैं:—महा भैरव, संहार भैरव, भैरव, असितॉंग भैरव, रुरु भैरव, काल भैरव, ताम्रचूड़ और चंद्र चूड़। ताँत्रिक मत के मानने वालों के अनुसार इनके नाम हैं:—असितॉंग, रुरु, चंड क्रोध, उन्मत्त, कपाल, भीषण और संहार। सु कर = अपने सुन्दर हाथों में विशित = माँस, गोश्त। वच्छित = छिन्न, कटा हुआ। पारणा = तृप्त होने वाली। रभसे = उत्सुकता से, हर्ष पूर्वक। निदान = आदि कारण। मोचिनि = मुक्त करने वाली। कृशानु = अग्नि के समान, लाल। (८) चुम्ब्यमान = चुम्बन करते हैं। पदे = पद, चरण। परिच्युति = स्खलन करने वाली। तोषिते = तुष्ट करने वाली, तृप्ति करने वाली। फलदे = फल देने वाली।

(२) हे के पर्वत शिखर पर वास करने वाली चन्द्रमा की मनोहर चाँदनी के समान मनोहर मुस्कान वाली, अपने दाँतों को प्रकट रूप से दिखाने वाली, तथा चन्द्रमा की अपूर्ण तथा वक्र कला के समान शोभायमान हे देवी दुर्गा आपको बारम्बार प्रणाम है।

क्रोधित होने पर देवताओं के शत्रुओं का अपने बल से विनाश करने वाली, महिषासुर, शम्भु निशम्भु इत्यादि दानवों तथा राक्षसों को संहार करने वाली तथा भयभीत भक्तों को प्रबल रूप से आश्रय देने वाली तथा उनकी रक्षा करने वाली हे माँ दुर्गे आपको बारबार प्रणाम है।

(४) पापी दुर्ग दानव का संहार करने वाली हे देवी आपको नमस्कार है। राक्षस राज दुर्ग को संहार करके अत्याचारी तथा पीड़ित करने वालों का विनाश करने वाली तथा भक्तों की रक्षा करने वाली, देवताओं तथा दानवों की अधिपति, सकल मंगल कारिणी हे माँ दुर्गे आपको बार बार प्रणाम है।

समस्त ब्रह्माण्ड को अवगाहन करने वाली, समर भूमि में सिंह पर आसीन होने वाली, अपने करों में फरसा, पाश, कृपाण, खड्ग तथा शंख चक्र धारण करने वाली हे माँ दुर्गे आपको बार बार प्रणाम है।

(६) आठों भैरवों के मध्य शोभायमान होने वाली, अपने सुन्दर कर में नर मुण्ड धारण करने वाली, गले में कदम्ब की माला पहिरे, शत्रुओं के रक्त, माँस तथा उनके अंगों को छिन्न भिन्न करके प्रसन्न हो कर तृप्त होने वाली हे माँ दुर्गे आपकी जय होवे।

इस संसार के आदि करण बन्धन से प्राणियों को मुक्त करने वाली, सूर्य तथा चन्द्र के सदृश्य उज्ज्वल तथा अग्नि के समान लाल नेत्रों वाली, योगिनियों के मध्य नृत्य गीत आदि में शोभायमान होने वाली हे माँ दुर्गे आपको बार बार प्रणाम है।

(८) इस समस्त संसार को उत्पन्न करने, पालन करने तथा नाश करने वाली, अवसर पड़ने पर सहस्त्रों रूपों में स्वयँ को अवतारित करने वाली हे माँ दुर्गे, जिसकी ब्रह्मा विष्णु महेश सभी चरण चन्दना करते हैं उस माँ दुर्गे को बार बार नमस्कार है।

प्राणी मात्र के समस्त पापों को स्खलित करने वाली हे माँ दुर्गे कवि विद्यापति आपकी स्तुति गाता है। हे माँ दुर्गे महाराजा शिवसिंह पर अपनी असीम कृपा दृष्टि करके तुष्टि करने वाली तथा मनोवाँछित फल प्रदान करने वाली माँ दुर्गे आपको विद्यापति बार बार नमस्कार करता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी प्रकार देवी की स्तुति गाई है।

जय-जय जगजननि देवि, सुर-नर-मुनि असुर सेवि,
भुक्ति - मुक्ति - दायिनि भय हरणि कालिका।
मंगल-मुद - सिद्धि - सदनि, पर्वशर्वरीश - वदनि,
ताप-तिमिर तरुण तरणि-किरण मालिका ॥१॥
वर्म - चर्म कर कृपाण, शूल-शेल-धनुष बाण,
धरणि, दलनि दानव - दल, रण करालिका।
पूतना - पिसाच - प्रेत - डाकिनि - शाकिनि, समेत,
भूत-ग्रह बेताल- खग-मृगालि - जलिका ॥ २ ॥
जय महेश - भामिनी, अनेक - रूप - नासिनी,
समस्त - लोक - स्वामिनी, हिम शैल-बालिका।
रघुपति - पद परम - प्रेम, तुलसी यह अचल नेम,
देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणत - पालिका ॥३॥

२३१.

जय जय संकर जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरुष जयति अध नारि॥ २॥
आध धवल तनु आधा गोरा।
आध सहज कुच आध कटोरा॥ ४॥
आध हड़माल, आध गजमोती।
आध चानन सोहे आध बिभूती॥ ६॥
आध चेतन मति आधा भोरा।
आधा पटोर आध मुँज डोरा॥ ८॥
आध जोग आध भोग विलासा।
आध पिधान आध नग बासा॥ १०॥
आध चान आध सिंदुर सोभा।
आध बिरूप आध जग लोभा॥ १२॥
भने कबिरतन विधाता जाने।
दुइ कए बाँटल एक पराने॥ १४॥

(२) अध = अर्द्ध। जयति = जय हो। (६) हड़माल = हड्डियों की माला, मुण्ड माला। चानन = चन्दन। बिभूती = विभूति, भस्म। (८) भोरा = विभोर। पटोर = पटोल, रेशमी वस्त्र। मुँज = मूंज, एक प्रकार का तृण, यह बहुत पवित्र माना जाता है, मुँज मेखला (मूँज की करधनी) पहनने का शास्त्रों में विधान है। डोरा = वस्त्र, कमर में बंधा सूत्र। (१०) पिधान = परिधान, वस्त्र। नग = नग्न। (१२) बिरूप = कुरूप, भद्दा। (१४) बाँटल = बाँट दिया है। पराने = प्राण।

इस पद में कवि विद्यापति ने देवाधिदेव भगवान शंकर के अर्द्ध नारीश्वर स्वरूप का वर्णन किया है। वामाँग में पार्वती के विराजने के कारण भगवान शंकर का बड़ा ही विचित्र रूप हो गया है। भगवान शंकर योगी और भोगी एक साथ हैं। इसी कारण शास्त्रकारों ने उनके आधे अँग में योगेश्वर स्वरूप की कल्पना की है और आधे में भोगेश्वर की। इस पद में इसी रूप का वर्णन है।

(२) हे देवाधिदेव भगवान शंकर, हे त्रिपुरारी, हे अर्द्ध नारीश्वर महादेव आप की जय हो।

(४) वे देवाधिदेव वामाँग में गौरी के विराजने से आपका आधा तन गौर वर्ण है और आधा स्वभावतः ही कर्पूर गौर है। अर्द्ध नारीश्वर रूप में हे देव आपके आधे शरीर में पीन कुच शोभायमान हैं तथा आधे भाग में पुरुषों जैसा विशाल तथा चौड़ा वक्षस्थल है।

(६) आपके आधे भाग में हे भगवान मुण्ड माल शोभती है और दूसरे अर्द्ध भाग में गज मुक्ताओं की सुन्दर माला शोभायमान है। आपके आधे शरीर में चन्दन का लेप है और आधे में भस्म लगी हुई है।

(८) हे देवाधिदेव महादेव आपके मस्तिष्क का आधा भाग सदैव सतर्क तथा चैतन्य रहता है और दूसरा आधा सर्वदा प्रेम विभोर। आधे भाग में आपने सुन्दर वस्त्र धारण कर रखे हैं और आधे को मूँज की मेखला से ढ़क रखा है।

(१०) हे कैलाशपति आप अपने शरीर के आधे भाग से योग साधना करते हैं और आधे से भोग विलास, अर्थात आप योगी हैं और विलासी भी। आप अपने शरीर के आधे भाग को सुन्दर परिधानों तथा रेशमी वस्त्रों से अलंकृत करते हैं और आप के शरीर का आधा भाग योग साधन के लिए नग्न रहता है।

(१२) हे कैलाशपति आप के मस्तक के आधे भाग में चन्दन का तिलक होता है और दूसरे भाग में सिंदूर की रेखा शोभा देती है। आप का आधा भाग तो भयंकर प्रतीत होता है परन्तु दूसरे आधे भाग की अनुपम तथा अलौकिक शोभा को देख कर समस्त प्राणी तथा भक्त जन मोहित हो जाते हैं।

(१४) कवि रत्न (विद्यापति का उपनाम) कहते हैं कि देवाधिदेव भगवान शंकर आपके अर्द्ध नारीश्वर स्वरूप को देख कर ऐसी भावना होती है मानो विधाता ने एक प्राण को दो भागों में बाँट कर तथा फिर से उनको जोड़ कर इस विचित्र स्वरूप का निर्माण किया है।

सेनापति ने भी भगवान शंकर के अर्द्ध नारीश्वर स्वरूप की स्तुति की है :—

साहति उतंग, उत्तमंग, ससि संग गंग,
गौरि अरधंग, जो अनंग प्रतिकूल है।

देवन कौं मूल, सेनापति अनुकूल, कटि
चाम सारदूल कौ, सदा कर त्रिसूल है ॥
कहा भटकत ! अटकत क्यौं न तासौं मन ?
जातैं आठ सिद्ध नव निद्ध रिद्ध तू लहै ।
लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेल पात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल-फूल है ॥

२३२. and 252

भल हर भल हरि भल तुअ कला ।
खन पित बसन खनहि बघछला ॥ २ ॥
खन पंचानन खन भुजचारि ।
खन संकर खन देव मुरारि ॥ ४ ॥
खन गोकुल भए चराइअ गाय ।
खन भिखि माँगिए डमरु बजाय ॥ ६ ॥
खन गोविंद भए लिअ महादान ।
खनहि भसम भरु काँख बोकान ॥ ८ ॥
एक सरीर लेल दुइ बास ।
खन बैकुंठ खनहि कैलास ॥ १० ॥
भनइ विद्यापति विपरित बानि ।
ओ नारायण ओ सूलपानि ॥ १२ ॥

(२) तुअ = तुम्हारी । कला = कौतुक, लीला । पित = पीत, पीला । (४) पंचानन = शिव । (६) भिखि = भीख, भिक्षा ।(८) बोकान = बोकणाण, पच्छिम दिशा का एक पर्वत । (१२) सूलपानि = शूलपाणि, शिव ।

कवि विद्यापति ने यह स्तुति अनन्त शक्ति के हरि-शंकरी रूप की स्थापना के निमित्त रची है । आदि वैष्णव काल में इसी रूप की प्रतिष्ठा थी परन्तु मत मतान्तरों के बढ़ने के कारण शिव और विष्णु रूप को प्रथक समझा जाने लगा और शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय अलग अलग चल पड़े । कवि ने इस पद में मत मतान्तरों से परे अनन्त शक्ति के वास्तविक स्वरूप का परिचय दिया है ।

(२) हे विष्णु, हे शिव, आप की लीला बड़ी विचित्र है । कभी तो आप

विष्णु रूप को धारण कर के पीताम्बर धारण कर लेते हैं और क्षण भर पश्चात ही शिव रूप में बाघम्बर धारण कर लेते हैं।

(४) हे सर्व शक्तिमान परमेश्वर कभी आप पंचमुखी शिव का रूप धारण कर लेते हैं और क्षण भर पश्चात ही चतुर्भुजी विष्णु का। क्षण मात्र में ही आप देवाधिदेव शंकर का रूप धारण कर लेते हैं और क्षण भर में मुर दैत्य का संहार करने वाले मुरली वाले कृष्ण के रूप में प्रगट होते हैं। आप की लीला विचित्र है।

(६) हे सर्व शक्तिमान कभी तो आप गोपाल रूप से गोकुल में गौ चराते हैं और कभी डमरू बजाते हुए शिव रूप में द्वार द्वार भिक्षा माँगते फिरते हैं। आप की लीला बड़ी विचित्र है।

(८) हे भगवान कभी तो आप गोकुल में बाल गोविन्द के रूप में गोपियों से गोरस का दान लेते दिखाई पड़ते हैं तो कभी समस्त शरीर पर भस्म लपेटे कैलाश ( बोकाण ) पर्वत पर योग साधना करते दृष्टिगोचर होते हैं। आपकी लीला बड़ी विचित्र है।

(१०) हे अनन्त शक्तिशाली आप अपने एक शरीर से एक ही समय में दो प्रथक स्थानों पर वास करते प्रतीत होते हैं। कभी आप के दर्शन वैकुण्ठ में होते हैं और क्षण भर पश्चात ही शिव रूप में आप कैलाश पर भक्तों को दर्शन देते हैं।

(१२) कवि विद्यापति अपनी अपट्ठ भाषा में हे नारायण हे शूलपाणि आप की स्तुति करता है आपकी लीला बड़ी विचित्र है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी विनय पत्रिका में भगवान के हरि-शंकरी रूप की प्रतिष्ठा कर के वंदना की है :—

दनुज-वन-दहन, गुन गहन, गोविंद नंदादि-आनंद-दाताऽविनाशी।
शंभु, शिव, रुद्र, शंकर भयंकर, भीम, घोर, तेजायतन, क्रोध राशी॥१॥
अनँत, भगवंत, जगदंत-अंतक-त्रास-शमन, श्री रमन, भुवनाभिरामं।
भूधरा धीश जगदीश ईशान, विज्ञान-घन, ज्ञान कल्याण धामं ॥ २ ॥
वामनाव्यक्त, पावन, परावर, विभो, प्रकट परमातमा, प्रकृति-स्वामी।
चंद्र शेखर,शूलपाणि,हर,अनघ,अज,अमित, अविछिन्न,वृप-मेश गामी।३।
नील जलदाभतनु श्याम, बहु काम छवि राम राजीवलोचन कृपाला।
कंबु,कर्पूर-वपु, धवल,निर्मल,मौलि-जटा,सुर तटिनि,सित-सुमन-माला।४।

वसन किंजल्कधर, चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति विशाला।
मार-करि मत्त मृगराज, त्रैनैन, हर, नौमि अपहरण संसार-जाला ॥ ५ ॥
कृष्ण, करुणाभवन, दवन कालीय खल, बिपुल कंसादि निर्वंश कारी।
त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्त गज-चर्मधर, अन्धकोरग-ग्रसन पन्नगारी ॥ ६ ॥
ब्रह्म,व्यापक, अकल, सकल, पर,परमहित, ग्यान गोतीत गुण-वृत्ति-हर्त्ता।
सिंधुसुत,गर्व-गिरि-वज्र,गौरीश,भव,दक्ष मख अखिल विध्वंस कर्त्ता ॥७॥
भक्ति-प्रिय,भक्त-जन-कामधुक-धेनु,हरि,हरण,दुर्घट विकट विपति भारी।
सुखद,नर्मद,वरद विरज,अनवद्यऽखिल,विपिन-आनंद-वीथिन-बिहारी ।८।
रुचिर हरि शंकरी नाम-मंत्रावली द्वन्द्व-दुख हरनि, आनंद खानी।
विष्णु-शिव-लोक-सोपान-सम सर्वदा वदति तुलसीदास विशद बानी ।६।

इस भजन के प्रत्येक पद में आधे में भगवान श्री विष्णु की और आधे में भगवान शिव की स्तुति की गई है। इसी से इसका नाम हरि-शंकरी है। गोस्वामी तुलसीदास ने विष्णु और शिव की एक साथ स्तुति करके हरि-हर में अभेद सिद्ध किया है।

गोस्वामी जी ने तो स्वयं विष्णु-अवतार भगवान राम के मुख से शिव द्रोही भक्त को नरक वास का विधान किया है। स्वयं भगवान राम ने श्री रामेश्वर की स्थापना करके इस हरि-शंकरी रूप की अनन्त प्रतिष्ठा की है।

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥
संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महँ बास ॥

होइ अकाम जो छो तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि ॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही ॥

## २३३.

आगे माई एहन उमत बर लैल हिमगिरि
देखि देखि लगइछ रंग।
एहन उमत बर घोड़बो न चढ़इक
जो घोड़ रँग रँग जंग ॥ २ ॥

बाघक छाल जे बसहा पलानल
साँपक भीरल तंग।
डिमिक डिमिक जे डमरू बजाइन
खटर खटर करु अंग ॥ ४ ॥
भकर भकर जे भाँग भकोसथि
छटर पटर करु गाल।
चानन सों अनुराग न थिकइन
भसम चढ़ावथि भाल ॥ ६ ॥
भूत पिसाच अनेक दल साजल
सिर सों बहि गेल गंग।
भनइ विद्यापति सुन ए मनाइनि
थिकाह दिगम्बर अंग ॥ ८ ॥

(२) हे सखी, आगे आगे वर के रूप में साक्षात देवाधिदेव भगवान शंकर हिमगिरि के समान शोभायमान हैं, उनको देख देख कर मन में रंग उत्पन्न होता है, ऐसा सुन्दर वर घोड़े पर सवार नहीं है।

(४) उसने बाघाम्बर के वस्त्र धारण कर रखे हैं और गले में सर्पों की माला आभूषण के रूप में विराजमान, बहौजे के स्थान पर डिमिक डिमिक करके डमरू बज रहा है और गले में पड़ी मुण्डमाला वर के हिलने डोलने से खटर खटर कर रही है।

(६) वर महाशय भकर भकर करके भांग भकोस रहे हैं और अपने गालों को बजा रहे हैं। उनके मुख पर प्रेम अथवा अनुराग का कोई चिन्ह नहीं है, किसी प्रकार की उत्सुकता अथवा प्रतीक्षा का भाव नहीं है और समस्त मस्तक पर चंदन तथा अंगराज के स्थान पर भस्म लपेटी हुई है।

(८) वर का वेश भी जैसा विचित्र है उसी प्रकार उनके साथियों का वेश है, वह भी चित्र विचित्र हैं, वर महाशय अपने साथ भूत पिशाचों के दल के दल सजा कर लाये हैं और उनके स्वयँ के सिर पर गंगा की पुनीत धारा विराजमान है। कवि विद्यापति कहते हैं हे मानवती सुन्दरी सुन, उसका समस्त वेश दिगम्बर वेश है।

(२३४)

बेरि बेरि अरे सिव मों तोय बोलों
फिरसि करिअ मन माय।
बिन संक रहह भीख माँगिए पए
गुन गौरव दुर जाय ॥ २ ॥
निरधन जन बोलि सब उपहासए
नहि आदर अनुकम्पा।
तोहें सिव आक धतुर फुल पाओल
हरि पाओल फुलचम्पा ॥ ४ ॥
खटँग काटि हर हर जे बनाबिअ
त्रिसुल तोड़िय करु फार।
बसहा धुरन्धर हर लए जोतिअ
पाटए सुरसरि धार ॥ ६ ॥
भन बिद्यापति सुनहु महेसर
इ लागि कएलि तुअ सेबा।
एतए जे बर से बर होअल
ओतए जाएब जनि देबा ॥ ८ ॥

(२) बोलों = कहता हूँ, प्रार्थना करता हूँ। फिरसि = फेरिये, तत्पश्चात। संक = शंका उ०—जलधि पार मानस अगम रावण पालित लंका। सोच विकल कपि भालु सब दुहु दिसि संकट संक। (तुलसी) (६) खटँग = खटवांग, शिव द्वारा प्रयोग किये जाने वाले एक अस्त्र का नाम। हर हर = हरहार, शेषनाग–उ० हठि हित करि प्रीतम हियो कियो जु सौत सिंगार, अपने कर मोतिन गुह्यो भयो हरा हरहार। (बिहारी) बनाबिअ = बनाओ। फार = फाल, हल की अँकड़ी, हल का नुकीला भाग। बसहा = बसह, बैल—उ० कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा, चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा। (तुलसी)। धुरन्धर = बोझ ढोने वाला। हर = हल, पृथ्वी जोतने का। जोतिअ = जोत, जीतना, जोतने बोने योग्य भूमि—उ०—एपै तजि देयो किया दोख जग बुरो होत जोति बहु दई राम राम मति सानिये। (प्रियादास)। पाटए = पाटिये, तृप्ति कीजिये, सींचिये। (८)

महेसर = महेश्वर। इ लागि = अब तक। कएलि = की है । एतए = इस ओर। वर = वर, वरदान। ओतए = उस ओर। जाएब = जाऊंगा।

(३) हे देवाधिप, हे महादेव शिव मैं तुम से बारम्बार प्रार्थना करता हूँ कि मेरी ओर अपनी कृपा दृष्टि फेरिये। हे महादेव, मैं बिना किसी संकोच तथा शंका के जन्म पर्यन्त भिक्षा माँग कर जीवन यापन कर सकता हूँ, मेरी मर्यादा को इस कार्य से तनिक भी बट्टा नहीं लगेगा परन्तु हे देवाधिदेव तुम्हारा कहा कर फिर भिक्षा माँगने से तुम्हारे ही गुण गौरव की हानि होगी, तुम्हारी ही प्रतिष्ठा में बट्टा लगेगा प्रभु।

(४) हे सखी, हे देव, इस संसार में निर्धनों का सब ही उपहास करते हैं। उनका न कहीं आदर होता है और न कोई उनकी ओर कृपा दृष्टि ही करता है। हे देव, इस संसार में वेश से ही आदर होता है। आप स्वयं अपने तथा विष्णु के स्वरूप की तुलना करके देख लें। आपका वेश योगियों जैसा है और उनका राजसी वेश है। इसी कारण इस संसार के प्राणियों ने आप दोनों को दी जाने वाली पूजा में भी अन्तर कर रखा है। आपको पूजा में केवल आक और धतूरे के रंग हीन, गंध हीन तथा विषैले पुष्प दिये जाते हैं और विष्णु को चम्पा के रंगीन तथा मस्त सुगन्धि वाले पुष्प भेंट किये जाते हैं। जब स्वयं आपकी यह दशा है तो मुझे, आपके निर्धन भक्त को कौन पूछेगा।

(६) अतः हे देव, आप भी इस संसार में भूमिपति बन कर तथा निर्धनता को त्याग कर धनवान तथा ऐश्वर्यवान बन जाइये जिससे आपकी प्रतिष्ठा बढ़ जाये और आपके भक्तों का मान भी बढ़ जाये। इस कारण हे महादेव शिव आप अपने रूप में परिवर्तन कर डालिये। हे देव, आप अपने खट्वांग को तोड़ कर उसे शेषनाग के समान कार्य योग्य बना लीजिये। अपने त्रिशूल को तोड़ कर उसे धरती जोतने वाले हल की फाल बना डालिये। हे देव, आप अपने नान्दी को बोझ ढोने वाला बैल बना कर त्रिशूल द्वारा निर्मित हल में जोत दीजिये और अपनी जटाओं से निकलने वाली गंगा की निर्मल धारा से अपनी भूमि को सींचिये। इस प्रकार कृषक के रूप में आपकी मर्यादा उन्नत हो जायेगी। विष्णु ने गोपाल बन कर मर्यादा पाई है आप भूपाल बन कर मान पाइये। उत्तम खेती मध्यम बंज।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे महेश्वर अब तक तो मैंने तन, मन,

धन से आपकी सेवा पूजा की है अतएव आपकी सेवा पूजा करने से जिन वर-दानों की प्राप्ति करने का मैं अधिकारी हो गया हूँ उनको मुझे प्रदान करने की कृपा करें और मुझे अपनी सेवा अर्चना से पृथक न होने दें।

विरद नाश होने की बात केवल अधिकारी भक्त ही कह सकते हैं। इस दीनता से भी एक अनोखी शान है। तनिक देखिये तो अन्ध कवि श्री सूरदास मन मोहन से कैसी अधिकार पूर्ण याचना कर रहे हैं।

(१) मोहिं प्रभु तुम सो होड़ पड़ी।
ना जानौ करिहौ जु कहा तुम नागर नवल हरी॥
होती जिती रही पतित ताहू मैं तै सबै गरी।
पतित समूहन उद्धरिबे को तुम जिय जकर पकरी॥
मो को मुक्त विचारत हो प्रभु पूछत पहर घरी।
श्रम ते तुम्हें पसीनो ऐहैं कत यह जकनि करी॥
सूरदास विनती कह विनवै दोषन देह भरी।
अपनो विरद सँभारौगे तब यामें सब निबरी॥

(२) हरि मैं बड़ी बेर को ठाढ़ौ।
जैसैं और पतित तुम तारे तिन ही में लिख काढ़ौ॥
जुग जुग विरद यही चलि आई टेरि कहत हौं ता तैं।
मरियतु लाज पंच-पतितन मैं हौं घटि कहौ कहाँ तैं॥
कै अब हरि मान कै बैठो कै करौ विरद सही।
सूर पतित जो झूँठ कहत होइ देखौ खोल वही॥

(३) आजु हौं ! एकु एकु करि टरिहौं।
कै हमहीं कै तुमहीं माधव अपुन भरोसैं लरिहौं॥
हौं तौ पतित अहो पीढ़िन को पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
नहिं तौ उघरि नँचन चाँहत हौं तुम्हैं विरद बिनु करिहौं॥
कत अपनी परतीत नसावत मैं पायो हरि हीरा।
सूर पतित तब ही लौं उठिहै जब हँसि दैहौ बीरा॥

चंद्र टरै सूरज टरै वाली प्रतिज्ञा वाले श्री हरिश्चंद्र भी इसी सुर में सुर मिला कर कहते हैं :—

(१) जानिते जो हम तुम्हारी बाँनि ।
परम अचार करन की जन पै है करुना की खाँनि ॥
तौ हम द्वार देखि ते दूजौ होते जहाँ दयाल ।
करते नहीं बिस्वास बेद पै जिन तुम कह्यौ कृपाल ॥
अब तौ आइ फँसे सरनन मैं भयौ तिहारौ नाम ।
हरीचन्द तासौं मोहि बारौ बाँनि छाँड़ि घनस्याम ॥

(२) फैलि है अपजस तुम्हरौ भारी ।
फिर तुमकौं कोऊ नहिं कहिहै मोहन पतित उधारी ॥
बेदादिक सब झूँठ होहिंगे ह्वै जैहै अति ख्वारी ।
तासौं कोउ बिधि धाइ लीजिये हरीचन्द कौं तारी ॥

(३) नाहीं तो हँसी तिहारी ह्वै है ।
तुमहीं पै जग दोष धरैगौ मो कौं दोष न दैहै ॥
बेद पुरान प्रमान कह्यौ को मो तारे बिनु लैहौ ।
तसौं तारौं हरीचन्द कौं नाहीं जग-जस जैहै ॥

(४) कै तौ निज परितिग्या टारौ ।
गीतादिक में जौन कही है ताको तुरत बिसारौ ॥
दीन बन्धु पुन-तरति नासन अपनौं बिरद बिगारौ ।
कै झट धाइ उठाइ भुजा भरि हरीचंद कौं तारौ ॥

रीति कालीन सर्व श्रेष्ठ कवि बिहारी ने भी होड़ बदी है कि कौन जीतता है :—

मोहि तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज ।
अपने अपने बिरद की दुहुँन निबाहन लाज ॥

सेव्य भक्त गोस्वामी तुलसीदास भी जहाँ अपनी विनय पत्रिका में महा-राजाधिराज श्री राम से अपनाये जाने की प्रार्थना करते हैं वहाँ चतुर वकील की भाँति इस बात का इशारा भी कर देते हैं कि विरद के अनुसार भक्तों को न तारने का परिणाम क्या होगा। तनिक उनकी विनय पत्रिका भी देखिये, कैसी पुष्ट और हृदय पर प्रभाव डालने वाली उक्तियाँ हैं।

(१) आपनो कबहुँ करि जानिहौ ।
राम गरीब निवाज राज मनि बिरद लाज उर आनिहौ ॥

वेद पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दीन-दानि हौ।
कहि आवत बलि जाऊँ मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हौ॥
आरत-दीन-अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हौ।
है परिनाम भलौ तुलसी को सरनागत भय भानि हौ॥

(२) अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक,औचट उलटि न हेरो॥
भगति हीन, वेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो।
देवनिहू देव! परिहरयो अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो॥
नाम की ओट पेट भरत हौं पै कहावत चेरो।
जगत-बिदित बात ह्वै परी समुझिये धौं अपने लोक कि बेद बड़ेरो॥
ह्वै है जब-तब तुम्हहिं ते तुलसी को भलेरो।
दिन हू दिन देव बिगरि है, बलि जाँउ बिलंब किये अपनाइये सबेरो॥

(३) कबहुँ रघुबंस मनि! सो कृपा करहुगे।
जेहि कृपा ब्याध, गज, बिप्र, खल नर तरे,
तिन्हहिं सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे॥
जोनि बहु जनमि किये करम खल बिबिध बिधि,
अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे॥
दीन हित अजित सरबग्य समरथ प्रनतपाल
चित मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे॥
मंदजन - मौलिमनि सकल साधन-हीन,
कुटिल मन मलिन जिय जानि जो डरहुगे।
दास तुलसी बेद-बिदित बिरुदावली
बिमल जस नाथ! केहि भाँति बिसरहुगे॥ इत्यादि

## २३५

हम नहिं आज रहब यहि आँगन
जो बुढ़ होएत जमाई, गे माई।
एक त बइरि भेला बीध बिधाता
दोसरे धिया कर बाप।

तेसरे बहिरि भेल नारद बाभन
जे बुढ़ आनल जमाई, गे माई ॥
पहिलुक बाजन डामरु तोरब
दोसरे तोरब रुँडमाल ।
बरद हाँकि बरिआत बेलाएब
धिआले जाएब पराई, गे माई ॥
धोती लोटा पतरा पोथी
एहो सभ लेबन्हि छिनाई ।
जौं किछु बजता नारद बाभन
दाढ़ी धए घिसिआएब, गे माई ॥
भन बिद्यापति सुनु हे मनाइन
दृढ़ करु अपन गेआन ।
सुभ सुभ कए सिरी गौरी बिआहू
गौरी हर एक समान, गे माई ॥

बुढ़ = बूढ़ा, बुड्ढा । बहिरे = बधिर,बहरा । भेल = हो गया । दोसरे = दूसरे । धीया = धी, कन्या । तेसरे = तीसरे । आनल = लाया । पहिलुक = पहले, प्रथम । बाजन = बजने वाला, वाद्य । डामरु = डमरू । तोरब = तोड़ डालूंगी । बरद = बर्द, बैल, नान्दी । हाँकि = हँका कर, भगा कर । बरिआत = बारात । पतरा = पत्रा । लेबन्हि = लूँगी । छिनाई = छीन । धए = धर कर, पकड़ कर । घिसिआएब = घिस दूँगी । मनाइन = मान करने वाली । अपन = अपना । गेआन = ज्ञान । सुभ = शुभ ।

हे सखी, यदि तुम बूढ़े को तुम जामाता के रूप में स्वीकार करोगी तो हम यहाँ इस आँगन में नहीं रहेंगी, हे सखी, ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता भी बधिर बहरा हो गया है, और न केवल विधाता ही वरन कन्या का पिता भी कदाचित बधिर अन्ध हो गया है जो उसे कुछ भी न दिखाई देता है और न सुनाई देता है । इसके अतिरिक्त इस विवाह का ब्राह्मण की भाँति आयोजन कराने वाले नारद भी कदाचित बधिर अन्ध हो गये हैं, इसी से तो बूढ़े को वर के रूप में स्वीकार किया है ।

हे माई इस से पूर्व कि तेरी कन्या परायी हो, मैं पहले तो डमरू को तोड़ डालूंगी फिर रुंडमाला को तोड़ फोड़ कर फेंक दूँगी, फिर तेरे

बधी अर्थात नान्दी को यहाँ से हाँक कर भगा दूँगी, और बरात को यहाँ से टार दूँगी।

नारद रूपी ब्राह्मण का पत्रा पोथी, लोटा धोती सभी कुछ छिनवा लूँगी और जिसे सभी नारद ब्राह्मण कहते हैं उसकी डाढ़ी पकड़ कर मुँह मीड दूँगी।

कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माई अपने ज्ञान को दृढ़ कर अर्थात सुचित हो, तनिक भी शंका तथा संशय न कर, शुभ घड़ी शुभ मुहूर्त में गौरी का विवाह देवाधिदेव शंकर से कर दे, क्योंकि गौरी और हरि दोनों एक ही हैं, दोनों को एक दूसरे के लिये ही विधाता ने रचा है, अतः हे माई दोनों का विवाह सम्पन्न करा दे।

## २३६

नाहि करब वर हर निरमोहिया।
बित्ता भरि तन बसन न तिन्हका
वघछल काँख तर रहिया॥ २॥
बन बन फिरथि मसान जगावथि
घर आँगन ऊ बनौलनि कहिआ।
सासु ससुर नहिं ननद जेठौनी
जाए बैसति धिया केकरा ठहिया॥ ४॥
बूढ़ बड़द ढकपोल गोल एक
सम्पति भाँगक झोरिया।
भनइ विद्यापति सुनु हे मनाइन
सिव सन दानी जगत के कहिया॥ ६॥

करब बर = बरना, विवाह करना। बित्ता = बालिश्त, छोटा सा। (४) फिरथि = फिरते हो। बनौलनि = बन इत्यादि। जेठौनी = जिठानी, बड़े भाई की स्त्री। बैसति = बैठती है। धिया = धीय, कन्या। केकरा = कहाँ। ठहिया = ठहिया, स्थान। (६) बड़द = बरध, बैल। ढकपोल = ढोल, डमरू। झोरिया = झोली।

(२) हर तो बड़े ही निर्मोही हैं, उसको किसी का तनिक भी मोह नहीं है। चाहे कुछ भी हो मैं हर को अपना जामाता नहीं बनाऊँगी। इस शिव

को अपने स्वयं के छोटे से शरीर के लिए वस्त्र नहीं जुड़ता है तो यह हमारी पुत्री को क्या पहिनावेंगे। वस्त्रों के अभाव में तो वह अपनी काँख में बाघ चर्म दबाये फिरते हैं।

(४) मैं अपनी कन्या का विवाह क्या देख कर शिव से कर दूँ। हर स्वयं गृह हीन हैं। जंगल-जंगल की धूल छानते फिरते हैं और श्मशानों में वास करते हैं। न तो उसके घर है, न आँगन। जंगल ही उसका घर है। विवाह के पश्चात मेरी लाड़िली कन्या को कहाँ ले जाकर बैठावेगा। न तो मेरी कन्या के सास ससुर हैं, और न कोई जिठानी ही है। हर इस संसार में सर्वदा एकाकी है। इस कारण विवाह के पश्चात यह शिव मेरी कन्या को कहाँ ठहरावेगा, किस स्थान पर बैठावेगा। मैं अपनी कन्या का विवाह इससे नहीं करूंगी।

(६ यही नहीं, शिव के पल्ले कुछ धन सम्पत्ति भी तो नहीं है। धन सम्पत्ति के स्थान पर केवल एक बूढ़ा बैल, एक डमरू तथा भाँग की झोली ही इस शिव की सम्पदा है। मैं ऐसे से अपनी कन्या का विवाह नहीं करूंगी। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे मनाइन यही निर्धन तथा गृह हीन शिव संसार का सर्वोच्च तथा औढ़र दानी है। इस शिव के समान दानी इस संसार में कोई नहीं है।

शिव विवाह के प्रसंग पर गोस्वामी तुलसीदास ने जगज्जननी पार्वती की माता मैना के मुख से कुछ ऐसे ही भाव कहलाये हैं:—

जेहि विधि तुम्हहिं रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥
कस कीन्ह बरु बौराह विधि जेहिं तुम्हहिं सुन्दरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥
भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि॥
नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहिं जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥

## २३७

कत्तए गेला मोर बुढ़वा जती ।
पीसल भाँग रहल सेह गती ॥ २ ॥
आन दिन निकहि रहथि मोर पती ।
आज लगाइ देल कौन उदगती ॥ ४ ॥
एकसर जोहए जाएब कौन गती ।
ठेसि खसब मोरि होत दुरगती ॥ ६ ॥
नंदनवन बिच मिलल महेस ।
गौरी हरखित भेल छुटल कलेस ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति सुनु हे सती ।
इहो जोगिया थिका त्रिभुवन पती ॥ १० ॥

(२) गेला = चला गया । बुढ़वा = बुड्ढ़ा, वृद्ध । (४) आन = अन्य । निकहि = नीके, ठीक, भली प्रकार । रहथि = रहते थे । पती = पति, स्वामी । देल = देर, अवकाश । उदगती = प्रगट, ज़ाहिर । (६) एकसर = अकेली । जोहए = जोहती हूँ, राह देखती हूँ । ठेसि = आघात, धक्का, ठोकर । (८) छुटल = दूर हो गये ।

(२) हे सखियो, मेरा बूढ़ा पति (शिव) कहाँ चला गया । मैं तो उनके लिये भंग पीस कर उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ ।

(४) हे सखियो, अन्य दिनों तो मेरे पति भली प्रकार रहते थे आज उनके आने में न जाने क्यों विलम्ब हो रहा है । इस रहस्य को कौन प्रगट कर सकता है ।

(६) मैं अकेली बैठी उनकी राह देखती हूँ, किस प्रकार उनको ढूँढ़ने जाऊँ । यदि उन्होंने मेरा परित्याग कर दिया तो इस आघात से मेरी कैसी दुर्गति होगी, मुझे कैसा क्लेश होगा ।

(८) बहुत तलाश करने पर शिवजी नन्दन बन में मिले, उनको पा कर गौरी इतनी प्रसन्न हुईं कि उनके समस्त दुख चिंता तथा क्लेश दूर हो गये ।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सती यही योगी रूपधारी तुम्हारा पति त्रिभुवन नाथ तथा तीनों लोकों का स्वामी है ।

२३८.

जोगिया एक हम देखलौं गे माई।
अनहद रूप कहलो नहि जाई ॥ २ ॥
पंच वदन तिन नयन बिसाला।
बसन बिहुन ओढ़न बघछाला ॥ ४ ॥
सिर बहे गंग तिलक सोहे चंदा।
देखि सरूप मेटल दुख दंदा ॥ ६ ॥
जाहि जोगिया लै रहलि भवानी।
मन आनलि वर कोन गुन जानी ॥ ८ ॥
कुल नहि सिल नहि तात महतारी।
बएस हिनक थिक लछ जुग चारी ॥ १० ॥
भन विद्यापति सुनु ए मनाईनि।
एहो जोगिया थिका त्रिभुवन दानि ॥ १२ ॥

(२) देखलौं = मैंने देखा। अनहद = देव स्वरूप। (४) तिन = तीन। विहुन = विहीन। ओढ़न = ओढ़े हुए। (६) दंदा = द्वन्द, क्लेश, दुख। (८) जाहि = जिसे। (१०) सिल = शील। बएस, वयस = आयु। हिनक = हीन, कम। थिक = है। लछु = लच्छ, लाख। चारी = चार (१२) थिका = है।

(२) हे माई आज मैंने एक बड़ा ही विचित्र योगी देखा। उसका स्वरूप ऐसा दिव्य तथा अद्‌भुत था कि जिसका मैं वर्णन भी नहीं कर सकती हूँ।

(४) हे माई उस विचित्र योगी के पांच मुख थे और तीन विशाल नेत्र थे। शिव को पंच मुख कहा जाता है उसकी ओर इंगित है। हे माई उसका शरीर वस्त्रों से विहीन था अर्थात वह वस्त्र नहीं पहिरे हुए था वरन् वस्त्रों के स्थान पर बाघ चर्म लपेटे था।

(६) हे सखी, उस विचित्र योगी के शीश से परम शीतल गंगा की धारा प्रवाहित हो रही थी और मस्तक पर तिलक के स्थान पर द्वितिया का चन्द्रमा विराजमान था। हे माता उस योगी का स्वरूप ऐसा शान्तिदायक तथा कल्याण कारी था कि केवल दर्शन मात्र से ही मेरे समस्त दुख तथा क्लेश मिट गये।

(८) हे माई, यदि भवानी इस योगी को पति रूप में वरदान करे तो कैसा शुभ हो। और किन गुणों पर दृष्टि रखते हुए भवानी अन्य वर की कामना करने की इच्छुक है।

(१०) परन्तु हे माई, इस योगी में भी त्रुटियां हैं। न तो उस योगेश्वर के कुल का पता है, न उसमें संसारोचित शील ही है और न उस के माता पिता ही हैं। यही नहीं वरन् हे मई उस योगेश्वर की आयु भी अधिक है। उस योगेश्वर की आयु एक लक्ष चतुर्युगों से तनिक ही कम है।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माई सुनो यह योगी कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। यह योगेश्वर संसार का सबसे बड़ा दानी है। इसकी समता का दानी त्रिभुवन भर में नहीं है।

(२३६)

सिव हो, उतरब पार कओन बिधि।
लोढ़ब कुसुम तोरब बेलपात।
पुजब सदासिव गौरिक सात॥
बसहा चढ़ल सिव फिरहू मसान।
भँगिया जरठ दरदो नहि जान॥
जप तप नहिं कैलहु नित दान।
बित गेला तिन पन करइत आन॥
भन विद्यापति सुनु हे महेस।
निरधन जानि के हरहु कलेस॥

लोढ़ब = लोढ़ना, लोढ़ कर, चुन कर, तोड़ कर। तोरब = तोड़ कर। गौरिक = गौरी की। बसहा = बसह, बैल। जरठ = वृद्ध, बुड्ढा। भँगिया = भंगड़, भंग पीने वाला। कैलहु = करता है। बित = व्यतीत हो गई। तिन = तीन। पन = आयु का भाग—उ०—सत्य कहहिं अस नीति दशानन। चौथे पन जाइहि नृप कानन॥ (तुलसी)। आन = दुहाई—उ०—बार बार यों कहत सकत नहिं ते हति लैहैं प्रान। मेरे जान जनकपुर फिरिहैं राम चंद्र की आन॥ (सूर)

हे महादेव, हे देवाधिदेव शिव, मैं किस प्रकार भवसागर से तरूँगा। पुष्पों को चुन कर तथा बेल पत्र तोड़ कर हे महादेव, हे सदाशिव मैंने आपकी तथा सप्त गौरियों की भली प्रकार पूजा अर्चना की है। परन्तु हे देवाधिदेव शिव, आप तो अपने नान्दी पर सवार हो कर सदैव ही श्मशानों में भ्रमण करते रहते हैं आपको किसी की प्रार्थना वन्दना सुनने का अवसर ही कहाँ है। इसके अतिरिक्त भंग पी कर भंगड़ बने रहने से आपका स्वभाव भी कर्कश ही

गया है इस कारण आप पराये दुख दर्द को समझने में भी असमर्थ हैं। दूसरा कारण है महादेव मुझे शंका है कि मैं भवसागर से तर सकूँगा अथवा नहीं। हे देव, न तो मैं ने जप तप ही किया है और न मैंने दान दक्षिणा ही दी है। हे शिव आपकी दुहाई दे कर मैं कहता हूँ कि मेरी आयु का तीन चौथाई भाग इसी भांति खाते तथा सोते ही व्यतीत हो गया है अतः हे भगवन मुझे चिन्ता है कि मैं किस प्रकार भवसागर से तर सकूँगा। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे देवाधिदेव महेश्वर सुनिये,नितान्त निर्धन जान कर मेरे ऊपर कृपा कीजिये और मेरे समस्त दुख द्वन्दों को हर कर के मुझे मुक्त कीजिये।

श्री सूरदास ने भी इसी भाँति गिड़गिड़ा गिड़गिड़ा कर भगवान से तारे जाने की प्रार्थना की है। उनके रचे विनय के पदों से यह स्पष्ट है। विद्यापति और सूरदास में केवल यही अन्तर है कि विद्यापति शिव के भक्त और गंगाजी के उपासक थे और सूरदास ने भगवान के कृष्ण रूप तथा श्री यमुना जी की महिमा गाई है। भाव तथा भावना दोनों की समान है अन्तर है केवल शाब्दिक माया जाल का। राम कहो या रहीम कहो मतलब तो उसी की ज़ात से है। कबीर भी इसी मत के मानने वाले हैं। अतः शब्दों तथा नामों के अन्तर को यदि छोड़ दिया जाये तो विद्यापति की भक्ति भावना श्री सूर के समान ही ठहरती है।

(१) दीना नाथ अब वार तुम्हारो।
पतित उधारन विरद जानि कै बिगरी लेहु संवारी ॥
वाला पन खेलत ही खोयो युवा विषय रस माते।
वृद्ध भये सुधि प्रकटी मो को दुखित पुकारत ताते ॥
सुतनि तज्यो, तिय तज्यो,भ्रात तजि,तन त्वच भई जो न्यारी।
श्रवण न सुनत, चरण गति थाकी नैन भये जलधारी ॥
पलित केश, कफ कंठ विरोध्यौ कल न परी दिन राती।
माया मोह न छाँडै तृष्णा ए दोऊ दुखदाती ॥
अब या व्यथा दूरि करिबे को और न समरथ कोई।
सूरदास प्रभु करुणा सागर तुम ते होय सु होई ॥

(२) सबै दिन गए विषय के हेत।
तीनों पन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत ॥

आँखिन अन्ध, श्रवण नहीं सुनियत थाके चरण समेत।
गंगा जल तजि पियत कूप जल हरि तजि पूजत प्रेत ॥
राम नाम बिन क्यों छूटोगे चंद गहे ज्यों केत।
सूरदास कछु खर्च न लागत रामनाम मुख लेत ॥

श्री गोस्वामी तुलसी की "विनय पत्रिका" तो इस प्रकार की आर्त तथा दीन प्रार्थनाओं का सर्वोत्तम संग्रह है। उसका एक एक पद दैन्य तथा भक्ति भाव से सराबोर है। किसी एक पद को दूसरे से उत्तम मान कर उदाहरण स्वरूप उपस्थित करना यदि असम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य है। इसी कारण मैंने एक भी पद उद्धृत करने की अनाधिकार चेष्टा नही की है।

## २४०

जखन देखल हर हो गुननिधी।
पुरल सकल मनोरथ सब विधी ॥ २ ॥
असहा चढ़ल हर हो बुढ़ जती।
कानें कुंडल सोभे गले गजमोती ॥ ४ ॥
बइसल महादेव चौका चढ़ी।
जटा छिरिआओल भाओल भरी ॥ ६ ॥
बिधिकरु बिधिकरु बिधिकरु करू।
बिधि न करइ से हर हो हठ धरू ॥ ८ ॥
बिधिए करइत हर हो घुमि खँसु।
संसरि खसल फनि सिर गौरी हँसु ॥ १० ॥
केओ नहि किछु कहइन्हि हिनकहूँ।
पुरबिल लिखल छला मोर पहूँ ॥ १२ ॥
कवि विद्यापति गाओल।
गौरी उचित बर पाओल ॥ १४ ॥

(२) जखन = जिस क्षण। देखल = देखा है। गुननिधि = गुण निधान। विधि = प्रकार, विधि। (४) बुढ़ = वृद्ध। (६) छिरिआओल = छितरा कर, उन्मुक्त की हुई। भाओल = मैल। (८) बिधिकरु = बिधाता का। करई = किया है। से = उसे। हठ = हठी बन कर। धरू = धरना, अँगीकार करना। (१०) घुमि = घुमनी से। खँसु = गिर पड़े। सँसरि = ससरना = सरक कर, खिसक कर।

फनि = फणि, मस्तक । सिरी = श्री । (१२) कहइन्हि = कहे । हिनकहुँ = इन को। पुरविल = पूर्व जन्म का । लिखल = लेख । छल = है । पहुँ = प्रभु, पति ।

(२) हे सखी, जिस क्षण से मैंने सकल गुण निधान शिव के दर्शन किये हैं उसी क्षण मेरे समस्त मनोरथ, मेरी सब प्रकार की आकाँक्षाएँ पूर्ण हो गई हैं ।

(४) हे सखी, उस समय देवाधिदेव महादेव का स्वरूप बड़ा विचित्र था । उस समय महादेव ( वृद्ध योगी ) कानों में कुण्डल पहिने तथा गले में गज मुक्ताओं की माला धारण किये हुए अपने नान्दी पर सवार थे ।

(६) अपनी इस विचित्र वेष भूषा से महादेव विवाह मंडप में आसन पर विराजमान हुए । उन्होंने अपनी मैल भरी धूल धूसिरत जटाओं को बाँधा तक नहीं था वरन् वह छितरा कर उन्मुक्त हो रही थीं ।

(८) हे सखी, वर के ऐसे विचित्र वेश को देख कर चारों ओर यही भावना फैल रही थी कि विधाता का ऐसा ही विधान है, यह सब विधाता की करनी है इत्यादि । परन्तु उस समय कुछ का विचार था कि यह कार्य विधाता का किसी प्रकार नहीं था वरन स्वयँ महादेव ने बड़े हठ पूर्वक गौरी को अंगीकार करना स्वीकार किया था ।

(१०) हे सखी, उस समय विधाता की कुछ ऐसी करनी हुई कि देवाधिदेव शिव चक्कर खा कर गिर पड़े । उनको चक्कर खा कर गिरते तथा उनके मस्तक को धूल धूसिरत होते देख कर श्री गौरी हँस पड़ीं ।

(१२) श्री गौरी ने सब उपस्थित व्यक्तियों से प्रार्थना की कि कोई भी महादेव शिव से कुछ भी न कहें और न उनके सम्बन्ध में कुछ टीका टिप्पणी करें । श्री गौरी ने बताया कि महादेव तो मेरे पूर्व जन्म के ही नहीं वरन् जन्म जन्मान्तर के पति हैं अतः अब इस सम्बन्ध में कुछ कहा न जाये ।

(१४) कवि विद्यापति कहते हैं कि श्री गौरी को सर्व गुण सम्पन्न तथा उपयुक्त पति प्राप्त हुआ है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी मानस में शिव के विचित्र स्वरूप का वर्णन किया है और गौरी तथा शिव की जोड़ी को गङ्गा और मदार जैसी जोड़ी बता कर स्त्रियों से परिहास भी कराया है । अन्त में इस विचित्र पारावार को विधाता का अटल विधान बता कर गौरी का विवाह शिव से रचाया है ।

शिव के स्वरूप की ज़रा झाँकी देखियेः —

कहिअ काह कहि जाइ न बाता । जम कर धार किधौं बरिआता ॥
बह बौराह बसहँ असवारा । ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥
तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा ।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनी चरा ॥
जो जियत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही ।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही ॥

वर का विचित्र तथा पागलों सा वेश देख कर स्त्रियाँ शोक करने लगीं तब गौरी ने यह कह कर उनका समाधान किया कि यह सब विधाता के विधान के अनुसार ही हुआ हैः—

भईं बिकल अबला सकल दुखित देख गिरिनारि ।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि ॥

परन्तु इसके पश्चातः—

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी । बोली जुत बिबेक मृदु बानी ॥
अस बिचारि सोचहि मति माता । सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू । तौ कत दोसु लगाइअ काहू ॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका । मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥
जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं ।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं ॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं ॥
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं ॥ इत्यादि

## २४१.

हर जनि बिसरब मो ममिता ,
हम नर अधम परम पतिता ॥
तुअ सन अधम उधर न दोसर
हम सन जग नहि पतिता ॥ २ ॥
जम के द्वार जबाब कओन देब
जखन बुझत,निजगुन कर बतिया ।
जब जम किंकर कोपि पठाएत
तखन के होत धरहरिया ॥ ४ ॥

भन विद्यापति सुकवि पुनीत मति
संकर विपरीत आनी ।
असरन सरन चरन सिर नाओल
दया करु दिअ सुलपानी ॥ ६ ॥

(२) जनि = नहीं। ममिता = ममता, ममत्व। तुअ = तुम। उधार = उद्धार कर्त्ता। दोसर = दूसरा, अन्य। (४) कओन = कौन, क्या। देब = दूँगा। गुन = गुण। बतिया = बता कर, कह कर। किंकर = दास, दूत। के = कौन। धरहरिया = रक्षक—उ० जनहु दीन्ह ठग लाड़ू देख आय तस मीच। रहा न कोउ धरहरिया करै जो दोउ मंह बीच ॥ (जायसी) (६) पुनीत = पवित्र। नाओल = नवाता हूँ। सुलपानी = शूलपाणि।

(२) हे महादेव, हे देवाधिदेव शिव, मेरे प्रति अपने ममत्व को विस्मरण नहीं करना। मैं अधम, पापी तथा परम पतित हूँ। हे देव मैं पतित शिरोमणि हूं और आप अधमों तथा पापियों के उद्धारक हैं।

शिव समान दाता नहीं अधम उधारन हार।
मेरी तुम रक्षा करो बरधा के असवार ॥

(४) हे देव, यमपुरी पहुँचने के पश्चात जिस समय यमराज मेरे कुकर्मों का बखान करके मुझसे उसका उत्तर पूछेंगे तो हे देव, उस समय में उनको क्या उत्तर दूँगा मुझे यही चिन्ता है। हे देव, जिस समय यमराज मेरे किये पापों से क्रोधित होकर अपने दूतों को मेरे प्राण हरण करने को पठावेगा उस समय हे देव मेरा कौन रक्षक होगा, कौन मेरी रक्षा करेगा।

(६) पुनीत कवि (उपनाम) विद्यापति कहते हैं कि हे देव, आप मुझसे विपरीत न हो जाना। आप अशरण-शरण हैं। जिनको कहीं शरण नहीं मिलती उनको आप शरण देते हैं अतः मैं आपके चरणों में मस्तक नवाता हूँ। हे शूलपाणि, हे देव, मेरे ऊपर कृपा कीजिये।

श्री सूरदास ने तो अपने विनय के पदों में स्वयं के पतित शिरोमणि होने तथा हरि के पतित पावन होने का एक सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। श्री सूर के दैन्य में भी एक विचित्रता है। उनको अपने पतित होने पर क्षोभ नहीं है वरन् अपनी दशा का उन्होंने बड़े गर्व से वर्णन किया है। उन्होंने तो स्थान स्थान पर हरि को चैलेंज-चुनौती तक दिया है कि यदि आप मुझ जैसे पापी

का उद्धार कर सकें तभी आपका पतित पावन नाम सार्थक हो सकेगा। श्री गोस्वामी तुलसीदास ने विनय पत्रिका में महाराजाधिराज राम के सम्मुख अपनी दैन्यावस्था का करुण चित्र उपस्थित किया है। उनका दैन्य वर्णन संयत तथा शिष्ठ है। उनकी पुकार राजा राम से है अतः राज्य दरबारों के योग्य भाषा में उन्होंने अपनी प्रार्थना पेश की है। परन्तु वह भी व्यंग करने तथा पतित पावन नाम का उपहास करने से नहीं चूके हैं और इस नाम की आड़ में महाराजाधिराज राम को मीठी शिष्ठ तथा संयत उपहास युक्त बातें सुनाई हैं। नीचे दोनों महाकवियों के कुछ पद उद्धत किये जाते हैं। इनसे पाठकों को उपयुक्त कथन की सत्यता का आभास मिलेगा।

सूरदास (१) प्रभु हौं सब पतितन की टीको।
और पतित सब दिवस चारि के हौं तो जन्मत ही को॥
बधिक अजामिल गणिका तारी और पूतना ही को।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे मिटै सूल क्यों जी को॥
कोऊ न समरथ अघ करिबे को खैंचि कहत हौं लीको।
मरियत लाज सूर पतितनि में हमहूँ ते को नीको॥

(२) हौं तो पतित शिरोमणि माधो।
अजामील बातन ही तारयो सुन्यो जो मो ते आधो॥
कै प्रभु हार मानि के बैठहु कै अबहीं निस्तारौ।
सूर पतित का और ठौर नहिं है हरि नाम सहारौ॥

(३) कब तुम मो सो पतित उधारयो।
पतितनि में बिख्यात पतित हौं पावन नाम तिहारो॥
बड़े पतित पासंगहु नाहीं अजामिल कौन बिचारो।
भाजे नरक नाम सुनि मेरो यमनि दियो हठि तारो॥
छुद्र पतित तुम तारि रमापति जिय जु करौ जनि गारो।
सूर पतित को ठौर कहूँ नहिं, है हरि नाम सहारो॥

(४) मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमक हरामी॥
भरि भरि उदर विषय को धायो जैसे सूकर-ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरी-बिमुखन की निसि दिन करत गुलामी॥

पापी कौन बड़ो जग मो तें सब पतितन में नामी।
सूर पतित को ठौर कहाँ है तुम बिनु श्री पति स्वामी॥

(५) हरि हौं सब पतितन को राव।
को करि सकै बराबरि मेरी, सो तौं मोहि बताव॥
व्याध गीध अरु पतित पूतना तिन महँ बढ़ि जो और।
तिन में अजामील गनिका पति उनमें मैं सिरमौर॥
जहँ तहँ सुनियत यहै बड़ाई मो समान नहिं आन।
अब रहे आजु कालि के राजा मैं तिन में सुलतान॥
अबलौं तो तुम बिरद बुलायो भई न मो सों भेंट।
तजौ बिरद कै मोहिं उधारो सूर गही कसि फेंट॥

(६) प्रभु हौं सब पतितन को राजा।
पर निंदा मुख पूरि रह्यो, जग यह निसान नित बाजा॥
तृसना देसह सुभट मनोरथ इंद्रिय खड़ग हमारे।
मंत्री काम कुमत देवै को क्रोध रहत प्रतिहारे॥
गज अहँकार चढ़यो दिग-बिजयी लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत-संगति की मेरी ऐसो हौं मैं ईस॥
मोह मदै बन्दी गुन गावत मागध दोष अपार।
सूर पाप को गढ़ दृढ़ कीनो मुहकम लाइ किवार॥

(७) हैं प्रभु! मोहू तें बढ़ि पापी।
घातक कुटिल चबाई कपटी मोह क्रोध संतापी॥
लंपट भूत पूत दमरी को बिषय जाय नित जापी।
काम बिबस कामिनिही के रस हठ करि मनसा थापी॥
जेते अधम उधारे प्रभु तुम मैं तिन्ह की गति मापी।
सागर सूर बिकार जल भरो बधिक अजामिल बापी॥ इत्यादि

तुलसीदास—(१) तू दयालु, दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं आरति हर तोसो॥
ब्रह्म तू हौं जीव, तू है ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो।

मोहिं तोहिं नाते अनेक मानियै जो भावै।
ज्यौं त्यौं तुलसी कृपाल चरन सरन पावै॥

(२) माधव मो समान जग माहीं।
सब बिधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं॥
तुम सम हेतु रहित कृपालु आरति हित ईस न त्यागी।
मैं दुख सोक बिकल कृपालु केहि कारण दया न लागी॥
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ विचार जिय मोरे।
तुलसीदास प्रभु मोह सृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे॥

(३) तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जौ जमराजि काज सब परिहरि इहै ख्याल उर आनिहैं॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं।
देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरी भूरि भलाई भनिहैं॥
हंसि करिहैं परतीति भगत की भगत सिरोमनि मनिहैं।
ज्यौं त्यौं तुलसी दास कोसल पति अपनायेहिं बनिहैं॥

(४) रघुबर तुमको मेरी लाज।
सदा सदा मैं सरन तिहारी तुमहि गरीब निवाज॥
पतित-उधारन बिरद तुम्हारो स्रवनन सुनी आवाज॥
हौं तो पतित पुरातन कहिये पार उतारो जहाज।
अघ-खण्डन दुख भंजन जन के यही तिहारो काज।
तुलसिदास पर किरपा कीजै भगति दान देहु आज॥

(५) मैं हरि पतित-पावन सुने।
मैं पतित, तुम पतित पावन, दोऊ बानक बने॥
ब्यास गनिका गज अजामिल, साखि निगमन भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने॥
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो राखिये अपने॥ इत्यादि

**मीरा बाई**—(१) मैं तो तेरी सरन परी री रामा ज्यूँ जाने त्यूँ तार।
अड़सठ तीरथ भ्रम भ्रम आयो मन नहिं मानी हार॥

जा जग में कोई नहिं अपनां सुनिये श्रवण मुरार।
मीरा दासी राम भरोसे जम का फंद निवार॥

(२) अब मैं सरन तिहारी जी मोहिं राखौ कृपानिधान।
अजामील अपराधी तारे तारे नीच सदान॥
जल डूबत गजराज उबारे गनिका चढ़ी बिमान।
और अधम तारे बहुतेरे भाखत संत सुजान॥
कुबजा नीच भीलनी तारी जाने सकल जहान।
कहँ लग कहूँ गिनत नहिं आवै थकि रहे बेद पुरान॥
मीरा दासी सरन तिहारी सुनिये दोनों कान॥

**सहजो बाई—** अब तुम अपनी ओर निहारो।
हमरे औगुन पै नहिं जाओ, तुमहीं अपना बिरद सम्हारो॥
जुग जुग साख तुम्हारी ऐसी बेद पुरानन गाई।
पतित उधारन नाम तुम्हारो यह सुन के मन दृढ़ता आई॥
हाथ जोरि कै अरज करत हौं अपनाओ गहि बाहीं।
द्वार तिहारे आय परी हौं पौरुष गुन मो में कछु नाहीं॥

**रानी रूप कुँवरि—** करहु प्रभु भवसागर से पार।
कृपा करहु तो पार होत हौं नहिं बूड़ति मंझधार॥
मैं हौं अधम अनेक जन्म की तुम प्रभु अधम उधार।
रूप कुँवरि बिन नाम श्याम के नहिं जगमें निस्तार॥

(२) बिहारी जू है तुम लौं मेरी दौर।
दीनन को प्रभु राखत आये हौ त्रिभुवन सिरमौर॥
जो जन सरन भये तव स्वामी तिनहिं दियो शुभ ठौर।
रानी रूप कुँवरि सरना गति करिये प्रभु अब गौर॥

२४२.

एत जप-तप हम किअ लागि कैलहु
कथिला कएलि नित दान।
हमरि धिया के एहो बर होयता
अब नहि रहत परान॥ २॥

हर के माय बाप नहिं थिकइन
नहि छइन सोदर भाय ।
मोर धिया जों सासुर जैती
बइसति ककर लग जाय ।। ४ ।।
घास काटि लौती बसहा चरौती
कुटती भाँग धतूर ।
एको पल गौरा बैसहु न पौती
रहती ठाढ़ि हजूर ।। ६ ।।
भन विद्यापति सुनु ए मनाइनि
दृढ़ करु अपन गेआन ।
तीन लोक के एहो छथि ठाकुर
गौरा देवी जान ।। ८ ।।

(२) एत = इतना । किअ = क्यों, किस । लागि = वास्ते, कारण । कैलहु = किया है । कथिला = किस कारण । धिया = कन्या । होयता = होना था । (४) छइन = है । सोदर = सहोदर । भाअ = भाई, भ्राता । सासुर = ससुराल । जैती = जाती है । ककर = किस के । लग = पास । जाय = जावे । (६) लौती = लावेगी । चरौती = चरावेगी । पौती = पावेगी । (८) छथि = है ।

(२) हे विधाता, इतना जप तप मैंने क्या इसी हेतु किया था । क्या यही फल प्राप्त करने के हेतु मैंने नित्य मुक्त हस्त से दान दिये थे । हे विधाता मेरे पुण्य कर्मों का क्या यही परिणाम होना था । हे विधाता, हमारी कन्या के भाग्य में क्या यही अवधूत वर पाना लिखा था । हे विधाता ऐसी असमान जोड़ी को देख कर तथा अपनी कन्या के अन्धकार पूर्ण भविष्य का विचार कर के मारे दुख के मुझे और अधिक प्राण धारण करने की इच्छा नहीं होती है ।

(४) हे विधाता, वर जैसा था वैसा तो था ही परंतु अधिक दुखः तो इस बात का है कि महादेव शिव के न तो माता पिता ही हैं और न कोई उनका सहोदर भ्राता ही है । हे विधाता, हमारी कन्या जब ससुराल जायेगी तो उस सूने ग्रह में किस के पास जा कर बैठेगी ।

(७) हे विधाता हमारी कन्या को वहाँ नाना प्रकार के दुख उठाने पड़ेंगे। शिव के बूढ़े नान्दी के लिए उसे घास काट कर लानी पड़ेगी और उस पशु को चराना पड़ेगा। यही नहीं वरन् अपने पति के लिए उसे भांग धतूरा भी कूटना पीसना पड़ेगा। हे भगवन इतने कामों में लगे रहने के कारण हमारी कन्या गौरी एक क्षण को भी न बैठ पायेगी अर्थात उसे एक क्षण का भी अवकाश नहीं मिलेगा। उसे आठों पहर चौबीसों घण्टे अपने पति तथा उसके नान्दी की सेवा में एक टांग से नाचते हुऐ संलग्न रहना पड़ेगा।

(८) कवि विद्यापति कहते हैं कि हे राजमहिषी धैर्य धारण करो और अपने चित्त को सावधान करो। हे महिषी यही अवधूत, यही योगेश्वर तीनों लोकों के नाथ तथा त्रिभुवन पति हैं। श्री गौरी को इनसे सुन्दर तथा उपयुक्त वर मिलना असम्भव है। अतः इन्हीं के साथ गौरी का विवाह रचाओ।

राजमहिषी मैना ( गौरी की माता ) का वर को देख कर दुख करने तथा क्षोभ सहित विलाप का चित्र गोस्वामी तुलसीदास ने बड़ी चतुराई से अंकित किया है।

भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीस कुमारी॥
अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेंहिं विधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥
कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहिं सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥
भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि॥
नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥
साचेहुँ उन्ह के मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥

अब गौरी का उत्तर सुनिये :—

जननिहिं विकल विलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी ॥
अस विचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू ॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥
जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब तहँ पाबउ तहीं ॥
सुनि उमा बचन विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति विधिहिं लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं।

अब नारद का उपदेश सुनिये :

तब नारद सबही समुझावा। पूरब कथा प्रसंगु सुनावा ॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी ॥
अजा अनादि सक्ति अबनासिनी। सदा संभु अरधंग निवासिनी !
जग संभव पालन लय कारिनी। निज इच्छा लीला बपुधारिनी ॥
सिय बेपु सतीं जा कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरीं ॥
अब जनमि तुम्हारे भवन निज पति लागि दारुन तप किया।
अस जानि संसय तजहु गिरजा सर्वदा संकर प्रिया ॥

और परिणाम इसका यह हुआ :

सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ व्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद ॥ इत्यादि

## २४३.

कखन हरब दुख मोर
हे भोलानाथ।
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब
सुख सपनहु नहीं भेल, हे भोलानाथ।
आछत चानन अवर गंगाजल
बेलपात तोहि देब, हे भोलानाथ।

यहि भवसागर थाह कतहु नहि
भैरव धरु कर आए, हे भोलानाथ ।
भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति
देहु अभय वर मोहि, हे भोलानाथ ।

कखन = किस क्षण । हरब = हरोगे, हरण करोगे । आछत = अक्षत । चानन = चन्दन । अबर = अम्बर, मुश्क, सुगंधित वस्तु । धरु = धारण करके ।

हे भोलानाथ, हे देवाधिदेव शंकर किस क्षण मुझ पर कृपावंत हो कर मेरे दुखों को हरण करोगे । हे देव किस क्षण मेरे पापों को नष्ट करके मुझे अभय प्रदान करोगे । देवाधिदेव इस संसार के क्लेशों ही में मेरा जन्म हुआ है और मेरा समस्त जीवन असहनीय दुखों ही में व्यतीत हुआ है । हे भोलानाथ सुख से तो मेरी भेंट तक नहीं हुई है । मुझे तो कभी स्वप्न में भी सुख नहीं मिला । हे भोलानाथ मैं अक्षत चंदन अम्बर तथा गंगा जल से आपका पूजन करता हूँ और बिल्व पत्र भेंट करता हूँ । हे भोलानाथ मेरी इस क्षुद्र पूजा को स्वीकार कीजिये । हे देवाधिदेव मुझे इस भवसागर से उबारिये । हे देव, यह भवसागर अगम तथा अथाह है, इसकी थाह किसी ने भी नहीं पाई है । हे भोलानाथ स्वयँ काल भैरव इस भवसागर की अगमता की थाह पाने की चेष्टा में असफल हो चुके हैं । उनको भी इसकी थाह नहीं मिली है तो फिर इस भवसागर में मेरी क्या हस्ती है । अतः कवि विद्यापति कहते हैं कि हे भोलानाथ, मुझे तो केवल आपका ही भरोसा है । आप की कृपा से ही मैं इस अगम अथाह भवसागर से तर सकूंगा । हे भोलानाथ, मुझे अभय पद प्राप्त होने का वरदान प्रदान कीजिये ।

उपर्युक्त भावों से मिलती जुलती आर्त्त भक्त की यह प्रार्थना भी सुनिये :

जनम जनम का दुखिया प्रानी
आया, मैं आया सरन तिहारी भगवान आया, मैं आया ॥

इस संसार की तुलना एक महासागर से कर के भगवान से रक्षा करने की प्रार्थना का रूपक श्री सूरदास ने भी बांधा है । उनका रूपक अधिक सजीव है क्योंकि उन्होंने इन्द्रियों तथा काम, क्रोध, लोभ इत्यादि को जल-जन्तुओं के रूप में चित्रित करके रूपक की वास्तविकता को और भी बढ़ा दिया है । नीचे उनका पद दिया जाता है :—

अब कै नाथ मोहिं उधारि ।
मगन हौं भव अंबु निधि में कृपासिंधु मुरार ॥
नीर अति गंभीर माया लोभ लहरित रंग ।
लये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटति मोट अघ सिर भार ।
पग न इत उत धरन पावत उरभि मोह-सिवार ॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर ।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर ॥
थक्यो बीच बिहाल विह्वल सुनो करुणामूल ।
श्याम भुज गहि गाढ़ि लीजै सूर बृज के कूल ॥

२४४.

यहि बिधि ब्याहन आयो
एहन बाउर जोगी ।
टपर टपर कए बसहा आयल खटर खटर रुँडमाल ॥
भकर भकर सिब भांग भकोसथि डमरू लेल कर लाय ॥
ऐपन मेंटल पुरहर फोरल बर किमि चौमुख दीप ॥
धिया ले मनाइनि मंडप बइसलि गाबिए जनु सखि गीत ॥
भन बिद्यापति सुनु ए मनाइनि ई थिका त्रिभुवन ईस ॥

बिधि = विधि, प्रकार । टपर टपर = खट पट करता । भकोसथि = भकोसते थे, खाते थे । मेंटल = मेंट कर, मिटा कर । बर = बले, जले । किमि = किस, प्रकार, किस कारण ! गाबिए = गाती है ।

हे सखी इस प्रकार से अर्थात इस वेषभूषा से वह अर्ध विक्षिप्त बावला योगी शिव गौरी को ब्याहने आया है । खट पट करता उस बावले का नान्दी आया है और स्वयं शिव के गले में पड़ी मुण्ड माला खटर खटर बज रही है । हे सखी, अपने हाथ में डमरू लिये हुए शिव भकर भकर (निरन्तर) भंग चबा रहे हैं । हे सखी बावले शिव ने आते ही ऐपन से लिखे चौक को मिटा दिया और मंगल घटों को फोड़ डाला । मंगल घट के फूट जाने से यह समस्या उत्पन्न हो गई है कि चौमुखी दीप किस प्रकार तथा कहाँ जलाया जावे । ऐसे वातावरण में सखियों ने कन्या को मंडप तले ला कर

बिठाया और समस्त स्त्रियों तथा सखी सहेलियों ने मंगल गीत गाने प्रारम्भ किये। चारों ओर वर के विचित्र स्वरूप तथा अवस्था पर टीका टिप्पणी होने लगी। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे मनाइनि वर के विचित्र वेष की निन्दा न करो, यह तो साक्षात त्रिभुवन नाथ तथा तीनों लोकों के स्वामी है।

## २४५.

आजु नाथ एक व्रत मोहि सुख लागत हे।
तोहें सिव धरि नट वेष कि डमरू बजाएब हे॥
भल न कहल गउरा रउरा आजु सु नाचब हे।
सदा सोच मोहि होत कवन विधि बाँचब हे॥
जे जे सोच मोहि होत कहा समझाएब हे।
रउरा जगत के नाथ कवन सोच लागए हे॥
नाग ससरि भुमि खसत पुहुमि लोटायत हे।
कार्त्तिक पोसल मजूर सेहो धरि खायत हे॥
अमिय चूइ भुमि खसत बघम्बर जागत हे।
होत बघम्बर बाघ बसह धरि खायत हे॥
टूटि खसत रुदराछ मसान जगावत हे।
गौरी कहँ दुख होत विद्यापति गावत हे॥

व्रत = वृत, संकल्प। गउरा = गौरा, गौरी। रउरा = रौरा, रावरी, आपकी। जे जे = जो जो। कवन = कौन। ससरि = ससर कर, सरक कर। खसत = गिर कर। पुहुमि = पृथ्वी। पोसल = पाला हुआ। मजूर = मयूर, मोर। सेहो = उसे। धरि = धर कर, पकड़ कर। अमिय = अमृत। चूइ = चू कर, टपक कर। रुदराछ = रुद्राक्ष।

हे नाथ, हे देव आज मेरा संकल्प है, मेरी यह उत्कट अभिलाषा है कि मैं आप को डमरू बजाते हुए नृत्य करते देखूँ। हे देवाधिदेव शिव नृत्य करने वाले का स्वरूप धारण करके तथा डमरू बजाते हुए ताण्डव नृत्य करते हुए देखने की आज मेरी ऐकान्त इच्छा है। अतः हे प्रभो आज एक व्रत का समारोह हो, महोत्सव हो। आप नर्तक वेष धारण करें और डमरू बजे। इस में बड़ा ही आनन्द रहेगा। देवाधिदेव शिव कहते हैं कि हे देवी आप का यह

प्रस्ताव शुभ नहीं है। मैं नृत्य करूँ तो करूँ किस प्रकार। हे गौरी आप को ज्ञात है कि अमृत विष, शत्रु मित्र, भले बुरे सब का निवास मेरे साथ है। मेरे नृत्य करने से बड़ी विपत्ति उपस्थित हो जायगी। मुझे चिन्ता होती है कि जो चार वस्तुएँ मेरे शरीर से सम्बंध रखती हैं उनका कैसे कुशलपूर्वक निर्वाह होगा। शिव के इस कथन पर गौरी प्रश्न करती हैं कि हे त्रिलोकी नाथ आप के नृत्य करने से कौन सी विपत्ति उपस्थित हो जायगी और उसके लिए आप चिंतित क्यों हैं। शिव उत्तर देते हैं कि हे गौरी नृत्य करने से मेरे शिर पर विश्राम करने वाला सर्प पृथ्वी पर गिर कर लोटने लगेगा और उसे देख कर कार्त्तिक का पोसा हुआ मयूर उसे पकड़ कर खा जायेगा। नाचते समय चंद्रमा का अमृत चू कर पृथ्वी पर गिरेगा। बाघम्बर से उसका स्पर्श होने के कारण वह जीवित बाघ बन जायेगा और मेरे वाहन नान्दी को पकड़ कर खा जायेगा। हे गौरी नाचने से मुण्ड माला टूट जायगी और मुण्डों के बिखरने से सारा श्मशान जाग उठेगा और भूत प्रेत इत्यादि उपद्रव करना आरम्भ कर देंगे। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे गौरी यह भयंकर दृश्य आप से न देखा जायगा और आप को अति दुख होगा।

## २४६.

आगे माई, जोगिया मोर जगत सुखदायक
दुख ककरो नहि देल।
दुख ककरो नहि देल महादेव
दुख ककरो नहि देल।
यहि जोगिया के भाँग भुलैलक
धतुर खोआइ धन लेल॥
आगे माइ, कातिक गनपति दुइ जन बालक
जग भरि के नहि जान।
तिनका अभरन किछुओ न थिकइन
रति यक सोन नहि कान॥
आगे माइ, सोना रूपा अनका सुत अभरन
आपन रुद्रक माल।

अपना सुत ला किछुओ न जुरइनि
अनका ला जंजाल ॥
आगे माइ, छन में हेरथि कोटि धन बकसथि
ताहि देवा नहि थोर।
भन विद्यापति सुनहु मनाइनि
थिका दिगम्बर भोर ॥

ककरो = किसी को भी। भुलैलक = भुला देने वाली, भ्रांति पैदा करने वाली। धतुर = धतूरा। खोआइ = खिला कर। लेल = ले लिया। कातिक = कार्त्तिक, कार्त्तिकेय। के = कौन। रति = रत्ती भर। यक = एक। सोन = सोना, सुवर्ण। अनका = अन्य का। ला = लिये। किछुओ = कुछ भी। जुरइनि = जुड़ता है। हेरथि = देख कर, दृष्टि मात्र से। बकसथि = बकसीस देते हैं, प्रदान करते हैं। ताहि = जिसे। भोर = विभोर, भोला, भोलानाथ।

हे माई सुनो यह योगेश्वर शिव समस्त संसार का कल्याण करने वाले हैं। यद्यपि इनका वेष भयोत्पादक तथा भयंकर है परन्तु देवाधिदेव शिव किसी का अकल्याण नहीं करते हैं किसी को दुख या संताप नहीं देते हैं वरन् इनका स्वरूप परम कल्याण कारी है। परन्तु संसर्ग से दोष आ ही जाता है और इस संसार के दुष्ट व्यक्ति शिव के परम प्रिय भोजन भांग धतूरे को दूसरे व्यक्तियों को खिला कर उनकी मति भ्रांति करके उनके धन का अपहरण कर लेते हैं। हे माई योगीराज शिव के दो बालक स्वामी कार्त्तिक और गणपति हैं इस समस्त संसार में ऐसा कौन है जो इसे नहीं जानता है। परन्तु हे माई त्रिभुवन के पति तथा त्रिलोकी नाथ होने पर भी, संसार की समस्त शक्ति तथा धन प्राप्त होने पर भी इन बालकों के शरीर पर तृण मात्र आभूषण नहीं हैं, उनके सुन्दर कानों में रत्ती भर सुवर्ण नहीं है, यह है त्रिभुवन पति की निस्प्रहता। हे माई, यही नहीं वरन सुवर्ण तथा चाँदी के आभूषण उन्होंने और व्यक्तियों के पुत्रों को प्रदान कर रखे हैं और स्वयं के लिए केवल रुद्राक्ष की माला ही पसंद की है। हे माई, तनिक देखो तो योगेश्वर शिव कैसे विचित्र हैं कि अपने पुत्रों के लिये तो उनको वस्त्राभूषण तक नहीं जुड़ता है परन्तु अन्य के लिये सर्व प्रकार का साधन तथा माया जाल प्रस्तुत कर दिया है। हे माई, यही नहीं वरन् आर्त्त जनों को क्षण मात्र में ही कोटानुकोट धन, सम्पत्ति प्रदान कर देते हैं और

जिसे देते हैं, जिस पर कृपावंत हो कर प्रसन्न हो जाते हैं उसे समस्त संसार की विभूति प्रदान कर डालते हैं। ऐसे औढ़र दानी हैं यह योगेश्वर शिव। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे मनाइनि सुनो यह दिगम्बर वेष धारी भोलानाथ शिव इस संसार में अपूर्व दानी है। शिव समान दाता नहीं विपद विदारन हार। ऐसे विचित्र हैं योगेश्वर शिव।

२४७

जोगिया भँगवा खाइत भेला रँगिया
भोला बौड़लबा॥
सबके ओढ़ाबे भोला साल दुसलबा
आप ओढ़य मृगछलबा।
सब के खिलाबे भोला पाँच पकवनमा
आप खाए भाँग धतुरबा॥
कोई चढ़ाबे भोला अच्छत चानन
कोई चढ़ाबे बेलपतवा॥
जोगिन भूतिन सिव के सँघतिया
भैरी बजाव मिरंदगिया॥
भन विद्यापति जै जै संकर
पारबती रौरि सँगिया॥

भँगवा = भँग। भेला = हो गया। रँगिया = रँगीला। बौड़लबा = बौरहा, विक्षिप्त। पकवनमा = पकवान, स्वादिष्ट भोजन। सिव = शिव। सँघतिया = सँघाती, साथी, मित्र। भैरी = भैरव। रौरि = आपकी, रावरी—उ०—भलऊ कहत दुख रौरेहि लागा। (तुलसी)

हे सखी, योगेश्वर शिव भंग खा कर उसके नशे में रंगीले हो रहे हैं। सखी भोलानाथ तो भंग के नशे में बौरहा गये हैं। हे सखी, उनके बौरहेपन का सर्वोत्तम उदाहरण तो यही है कि भोलानाथ दूसरों को तो शाल दुशाले तथा मूल्यवान वस्त्राभूषण दान कर देते हैं परन्तु आप स्वयं केवल मृगछाला ही धारण करते हैं। हे सखी, यही नहीं वरन् शंकर भोलानाथ अपने भक्तों को तो नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन कराते हैं और आप स्वयं केवल भंग और धतूरा खा कर ही प्रसन्न रहते हैं। भोलानाथ के उपासक तो साधारण

वस्तुओं से उनकी पूजा करते हैं। भोलानाथ के भक्तों में से कोई तो अक्षत से उनकी पूजा करता है, कोई चंदन अर्पण करता है और कोई बिल्व पत्र ही चढ़ा कर उनका पूजन करते हैं। देवाधिदेव शिव के साथी तथा मित्र भी बड़े ही विचित्र हैं। योगिनियाँ, भूत, पिशाच प्रेत इत्यादिक आपके मित्र हैं और जिस समय शिव तांडव नृत्य करते हैं उस समय काल भैरव लय के साथ मृदंग बजाते हैं। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे श्री गौरा पार्वती के जीवन संगी भगवान शंकर आपकी सदा जय हो।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी विनय पत्रिका में भगवान शंकर की कुछ इन्हीं शब्दों में प्रार्थना की है :—

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनि के जिन्ह जिन्ह कर जोरे॥
सेवा, सुमिरन, पूजिबौ, पात आखत थोरे।
दिये जगत जहँ लगि सबै, सुख, गज, रथ घोरे॥
गाँव बसत बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे।
तुलसी दलि; रुँध्यौं चहैं सठ साखि सिहोरे॥

२४८

जौं हम जनितहुँ भोला भेला ठगना
होइतहुँ राम गुलाम गे माई।
भाई बिभीखन बड़ तप कैलन्हि
जपलन्हि रामक नाम, गे माई॥
पुरुब पछिम एको नहि गेला
अचल भेला यहि ठाम, गे माई।
बीस भुजा दस माथ चढ़ाओलि
भाँग दिहल भर गाल, गे माई।
नीच ऊँच सिव किछु नहि गुनलन्हि
हरषि देलन्हि रुँडमाल, गे माई।

एक लाख पूत सवा लाख नाती
कोटि सौबरनक दान, गे माई ।
गुन अवगुन सिव एको नहि बुझलन्हि
रखलन्हि रावनक नाम, गे माई ।
भन विद्यापति सुकबि पुनित मति
कर जोरि बिनओं महेस, गे माई ।
गुन अवगुन हर मन नहि आनथि
सेवकक हरथि कलेस, गे माई ॥

जौं = जो, यदि । जनितहुँ = जानता, समझता । भेला = हो गया । ठगना = ठग, धूर्त, छली । होइतहुँ = हो जाता । कैलन्हि = किया था । गुनलन्हि = गनते थे । सौबरनक = सुवर्ण के । बिनओं = विनती करता हूँ । आनथि = आनद्ध, बंधा हुआ । हरथि = हरण करो । कलेस = क्लेश, दुख ।

हे भोलानाथ यदि मैं यह जानता होता कि औढ़र दानी शंकर छलिया अर्थात धूर्त हो गये हैं और अपने भक्तों के क्लेशों तथा दुखों को दूर करने में आनाकानी करने लगे हैं तो मैं भी आपकी भक्ति को त्याग कर श्री रामचंद्र जी का अनन्य सेवक गुलाम हो जाता ।

भक्त विभीषण ने कौन सा महान तप किया था केवल श्री राम नाम का जप करके ही इसी पृथ्वी पर अपने जन्म स्थान में ही अचल राज्य पद की प्राप्ति की । केवल राम नाम के बल पर ही उसने अचल राज सत्ता को प्राप्त किया ।

अब तनिक अपने भक्त का परिणाम भी सुनिये । बीस भुजा तथा दश शीश वाले राजा रावण ने अपनी बीसों भुजाओं और दसों सिरों को आपके चरणों में अर्पण करके आपका पूजन किया था । यही नहीं उसने आपकी परम प्रिय वस्तु भाँग भी आपको भरपूर चढ़ाई थी परन्तु हे शिव, उसका परिणाम क्या हुआ ।

हे शिव, जिसने बिना आगा पीछा सोचे तथा परिणाम का विचार न करके अपने दसों शीश आपके चरणों में अर्पण कर दिये थे उस रावण का हे भोलानाथ, क्या परिणाम हुआ ।

हे शिव, जिस रावण के एक लक्ष पुत्र तथा सवा लक्ष नाती पोते थे तथा जिसने सुवर्ण के अनेकों दान दिये थे उसका क्या अन्त हुआ। जगत विदित है कि उसके कुटुम्ब में दिया जलाने वाला भी न रहा। हे शंकर, यह है आपकी सेवा पूजा का परिणाम।

हे शिव, जिस राजा रावण के गुणों अवगुणों की ओर दृष्टिपात न करके आप स्वयं ने उसका नाम रावण रखा था हे शंकर, आपके उस अनन्य भक्त का क्या परिणाम हुआ।

पुण्यमति सुकवि विद्यापति कहते हैं कि हे महादेव, हे महेश्वर मैं दोनों हाथ जोड़ कर आपसे विनती करता हूँ कि हे देव, आप मेरे गुणों अवगुणों से अपना मन आनद्ध न करके अर्थात् मेरे गुणों अवगुणों को विचार में न ला कर अपने अनन्य सेवक विद्यापति के समस्त दुखों तथा क्लेशों को हरण करो और उसे अभय पद प्रदान करो।

२४६

## गंगा-स्तुति

बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे ।
छोड़इत निकट नयन बह नीरे ॥ २ ॥
　　कर जोरि बिनमओं बिमल तरंगे ।
　　पुन दरसन होए पुनमति गंगे ॥ ४ ॥
एक अपराध छेमब मोर जानी ।
परसल माय पाए तुअ पानी ॥ ६ ॥
　　कि करब जप-तप जोग धेआने ।
　　जनम कृतारथ एकहि सनाने ॥ ८ ॥
भनइ विद्यापति समदओं तोही ।
अन्त काल जनु बिसरह मोही ॥ १० ॥

(२) पाओल = पाया है । (४) बिनमओं = विनती करता हूँ । पुन = पुनः । (६) छेमब = क्षमा करो । जानी = जननी । परसल = स्पर्श करके । माय = माथा, मस्तक । (१०) समदओं = समादृत करता हूँ, विनती करता हूँ ।

(२) हे माता गंगा, तुम्हारे तीर बस कर मैंने अति सुख पाया है । आपके तट को छोड़ कर आपके सामीप्य को त्याग कर जाने से मेरे नेत्रों से जलधारा गिरने लगती है ।

(४) हे विमल तरंगिणी गंगे मैं दोनों हाथ जोड़ कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि हे पापों को क्षय करने वाली पुण्यतोया मां गंगे मुझे ऐसा वरदान प्रदान कीजिये कि जिस के द्वारा मुझे फिर आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो ।

(६) हे मातामयी, हे मातेश्वरी गंगे, आपके अमृत के समान जल को मस्तक पर चढ़ा कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये ।

(८) जप तप योग तथा ध्यान करने का क्या लाभ है । हे मातेश्वरी, आपके निर्मल जल में एक बार ही स्नान कर लेने से जन्म जन्मान्तर के पाप

दूर हो जाते हैं और मनुष्य योनि में जन्म होना सुफल तथा कृतार्थ हो जाता है।

(१०) कवि विद्यापति कहते हैं कि मातेश्वरी मैं आपसे दीनता से प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके अन्त काल तक आप मुझ जैसे अधम को विस्मरण न करना।

कवि श्रेष्ठ सेनापति गंगा जी के परम भक्त थे और उन्होंने इस सम्बन्ध में अनेकों अनुपम कवित्तों की रचना की है। उन्होंने बड़ी भक्ति तथा सहृदयता से अपने उद्‌गारों को प्रकट किया है। नीचे उनके दो कवित्त लिखे जाते हैं :—

(१) यह सुरसरि, कौन करे सुर सरि याकी,
भू पर जो ऊपर है तीरथ समाज के।
धरम अधार धार याकी निरधार दाता,
याही कै तरैंगे सेनापति सुभ काज के॥
को कहै बखानि, अवलोकन करत जाके,
सोक न रहत, ओक होत सुख साज के।
थोक नसैं पापन के, दोक जल-कन चखैं,
ओक भरि पियैं लोक जीतैं जमराज के॥

(२) जाकी नीर-धार, निरधार निरधार हूं कौं,
परम अधार आदि अंत और अबहूँ।
सुख कौं निधान, सेनापति सन्निधान जो है
मुकति निदान भगवान मानो भव हूँ॥
ऐसी गंगा रानी बेद बानी में बखानी, जग
जानी सनमानी, दीप सात खंड नव हूँ।
कामधेनु हीन, सुरतरु वारि दीन, जाकौं
देखैं वारि दीन दारिदी न होत कबहूं॥

२५०.

## कृष्ण-कीर्तन

माधब, कत तोर करब बड़ाई।
उपमा तोहर कहब ककरा हम
कहितहुँ अधिक लजाई॥
जौं श्रीखंड सौरभ अति दुरलभ
तौं पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीस निसाकर तौं पुन
एकहि पच्छ उजोर॥
मनि समान औरौ नहि दोसर
तनिकर पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित भए रह
की कहु ठामहि ठामे॥
तोहर सरिस एक तोहँ माधब
मन होइछ अनुमान।
सज्जन जन सों नेह कठिन थिक
कवि बिद्यापति भान॥

कत = किस प्रकार। ककरा = किस प्रकार। श्रीखण्ड = मलयागिरि चन्दन, हरि चंदन। निसाकर = चंद्रमा। उजोर = उज्ज्वल, प्रकाश वान्। मनि = मणि। दोसर = दूसरा। तनिकर = उनका। सरिस = समान, तुल्य—उ०—उठि कै निज मस्तक भयो चालत असुर महान। बात वेग ते फल सरिस महि मँह गिरं विमान॥ (गिरधर दास)

हे माधव मैं किस प्रकार आपके गुणों का बखान करूँ, किस प्रकार आप के गुण गौरव का गान करूँ। हे माधव, मैं किस प्रकार आपकी तुलना दूसरी वस्तुओं से करूँ किस प्रकार आपकी उपमा दूँ। मुझे तो अपनी असमर्थता पर लज्जा आती है।

हे माधव, आपकी लीला बड़ी विचित्र है। जिस मलयागिरि चन्दन को प्राप्त करना तो क्या उसकी सुगन्ध तक को पाना दुर्लभ तथा कठिन है वही मलयागिरि चन्दन काठ की भाँति कठोर है।

चन्द्रमा जो कि निशापति है उसको आपने ऐसा रचा है कि उसका केवल एक भाग ही उज्ज्वल है और वह केवल एक पक्ष अर्थात आधे महीने ही प्रकाश युक्त हो कर रात्रि को चमकता है। इस प्रकार हे माधव, आपकी लीला बड़ी विचित्र है।

मणियाँ जिनके समान सुन्दर तथा मूल्यवान वस्तु इस संसार में दूसरी नहीं है उनका उद्गम् भी कठोर पाषाण हैं। धन्य है आपकी लीला को।

हे माधव तुम्हारी इस अद्भुत लीला तथा विचित्र व्यापार के कारण कनक कदली लज्जा वश छोटी रह गई है। हे माधव, इस विश्व में तुम्हारे समान एक तुम ही हो अर्थात तुम्हारी उपमा केवल तुम से ही दी जा सकती है। तुम ऐसे विचित्र तथा अद्भुत हो। इस बात पर तो मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है। कवि विद्यापति कहते हैं कि सज्जनों के साथ स्नेह सम्बन्ध स्थापित कर के उसे बनाये रखना अति ही कठिन है।

## २५१.

माधव, बहुत मिनति कर तोय।
दए तुलसी तिल देह समर्पिनु
दय जनि छाड़िब मोय।
गनइत दोसर गुन लेस न पाओबि
जब तुहुँ करबि बिचार।
तुहू जगत जगनाथ कहाओसि
जग बाहिर नइ छार॥
किए मानुस पसु पखि भए जनमिए
अथवा कीट पतंग।
करम बिपाक गतागत पुनु पुनु
मति रहु तुअ परसंग॥
भनइ बिद्यापति अतिसय कातर
तरइत इह भव-सिंधु।

तुअ पद पल्लव करि अवलम्बन
तिल एक देह दिनबंधु ॥

मिनति = मिन्नत करता हूँ, विनती करता हूँ। तोय = तुझ से। दए = दे कर। दय = दया करके। गनइत = गणना करना। लेस = लेश मात्र, आभास मात्र, चिन्ह। जगनाथ = जगन्नाथ, जगत के स्वामी। छार = छार, धूल, भस्म। इ = है। किए = चाहे। पखि = पक्षी। बिपाक = फल, परिणाम, कर्मफल। गतागत = आवागमन, जन्म मरण। मति = ध्यान। परसंग = प्रसंग, बात, वार्त्ता, विषय—उ० अधम सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥ (तुलसी) अतिसय = अतिशय। तरइत = तर जाता है।

हे माधव मैं बारम्बार बहुत विनय पूर्वक आपसे प्रार्थना करता हूँ तथा आपकी मिन्नत करता हूँ कि कहीं आप मुझे अपने चरणों से पृथक न कर देना। हे माधव, मैं तुलसी दल तथा तिल चामरी से पूजन करके अपनी देह आपके प्रति समर्पित करता हूँ आप मुझे अपने चरणों से पृथक न कर देना।

हे माधव यदि आप मेरे पाप पुण्यों के लेखे का विचार करेंगे तो आपको मुझ में कोटानुकोटि दोष तथा छिद्र दिखाई पड़ेंगे और गुणों का तो आभास मात्र अथवा चिन्ह भी न मिलेगा। परन्तु हे माधव आप जगन्नाथ अथवा जगत के स्वामी कहलाते हो और इस जगत के परे तो शून्य ही शून्य है अर्थात् यही जगत वास्तविक और सत्य है। अतः जगत्पति होने के कारण हे माधव आप मुझे अपने चरणों से पृथक न कीजिये। मैं अधम पापी हूँ।

हे माधव यदि अपने कर्मों के वश मुझे दूसरे जन्म में मनुष्य शरीर प्राप्त हो अथवा मैं पशु पक्षी हो कर जन्म लूँ अथवा मुझे कीट पतंगों की ही योनि मिले अथवा अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप मुझे इस संसार में बार बार जन्म ग्रहण करना पड़े तो भी हे माधव मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप मुझे ऐसा वरदान दीजिये जिससे मेरी मति सदैव आपके चरणों में लीन रहे और आपकी ही वार्त्ता के श्रवण करने में मुझे आनन्द प्राप्त हो।

अपने कर्म फल से अत्यंत कातर तथा भयभीत कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माधव कृपा करके मुझे इस भवसागर से पार कर दीजिये। हे माधव आपके चरण कमलों का आसरा लेकर हे दीन बन्धु दीनानाथ मैं इस भवसागर से तर जाना चाहता हूँ। हे माधव मेरे ऊपर कृपा करके मुझे इस भवसागर से पार कर दो।

इस पद की आठवीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं पंक्तियां बड़े मार्के की हैं। भक्त की एकान्त अभिलाषा का कितना सजीव तथा प्रभावोत्पादक चित्रण कवि ने किया है। अनन्य भक्त रसखान ने भी इसी भावना को अपनी सरस मधुर बृजभाषा में वर्णन किया है। उनका निम्नलिखित सवैया तो भक्तों के जाप तथा आदर की वस्तु बन गया है। इस सवैये में दीनता तथा आत्म गौरव का कैसा सुन्दर सामंजस्य है। धन्य हैं वह व्यक्ति जिनके मुख से ऐसी अनुपम भावनायें निकली हैं।

मानुष हौं तौ वही "रसखानि" बसौं बृज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तौ कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं, तौ वही गिरि कौ, जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं, तो बसेरो करौं, मिलि कालिंदी कूल कंदब की डारन॥ १॥
या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर कौं तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवौं निधि कौ सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं॥
इन आँखिन सौं "रसखानि" कबौं बृज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम करील की कुँजन ऊपर वारौं॥ २॥

२५२.

तातल सैकत बारि-बिन्दु सम
सुत-मित-रमनि समाज।
तोहे बिसारि मन ताहे समरपितु
अब मझु हब कोन काज॥
माधब, हम परिनाम निरासा।
तुहुँ जगतारन दीन दयामय
अतय तोहर बिसवासा।
आध जनम हम नींद गमायनु
जरा सिसु कत दिन गेला।
निधुबन रमनि-रभस रंग मातनु
तोहे भजब कोन बेला॥

कत चतुरानन मरि मरि जाओत
न तुअ आदि अवसाना।
तोहे जनमि पुन तोहे समाओत
सागर लहरि समाना॥
भनइ विद्यापति सेष समन भय
तुअ बिनु गति नहिं आरा।
आदि अनादिक नाथ कहाओसि अब
तारन भार तोहारा॥

तातल = तप्त, गर्म। सैकत = बालू, बलुआ मिट्टी। बारि = वारि, जल, पानी। मित = मित्र। मभु = मेरा। हब = होगा। अतय = अतएव। तोहर = तुम्हारा। गमायनु = गंवाई है, व्यतीत की है। जरा = बुढ़ापा, वृद्धावस्था। सिसु = शिशुता। मातनु = मस्त। जाओत = जाते हैं। अवसाना = अवसान, अन्त। समाओत = समा जाते हैं, लीन हो जाते हैं। सेष = शेष नाग। आरा = अन्य।

हे माधव, जिस प्रकार तप्त बालू पर जल की बूँद पड़ते ही विलीन हो जाती है उसी प्रकार इस संसार में पुत्र मित्र तथा स्त्री की स्थिति है। नियति के तनिक से इशारे मात्र से ही जल की बूँद की नाईं यह भी क्षण भर में विलीन हो जाने वाली वस्तुएँ हैं। हे माधव मैं कैसा अधम हूँ कि आपको विस्मरण कर के मैंने स्वयं को इन क्षण भंगुर तथा नियति के खिलौनों को अपना मन समर्पित कर दिया है। हे माधव अब मुझ से क्या कार्य सध सकेगा।

हे माधव मैं समस्त जीवन भर आपको विस्मरण कर के माया के मोह के घोर जाल में पड़ा रहा हूँ अतः मुझे आपकी कृपा दृष्टि पाने की आशा केवल दुराशा मात्र ही प्रतीत होती है। इस कारण हे माधव मुझे तो अपने अन्तिम परिणाम की ओर से घोर निराश ही है। हे माधव आप जगत के पापियों को भव सागर से तारने वाले हो, दीना नाथ तथा दयामय हो अतएव मुझे विश्वास है कि आप मेरी काली करनी पर ध्यान न दे कर मुझ जैसे पापी पर दया करेंगे।

हे माधव मैंने अपना आधा जीवन तो यौवन की मस्ती में व्यतीत कर दिया और शेष आयु का अधिकतर भाग बचपन तथा बुढ़ापे की अवस्था में व्यतीत हो गया। हे माधव जीवन का सुवर्ण युग यौवनावस्था तो मैंने रमणियों

के संग रास रंग तथा केलि क्रीड़ा में व्यतीत कर दिया इस कारण हे माधव आपके भजन पूजन के लिए मुझे समय ही न मिला, मैं आपका भजन करता किस समय।

इसके अतिरिक्त हे माधव आपकी लीला भी ऐसी अगम है कि न जाने कितने विद्वान तथा ज्ञानी उसका रहस्य ज्ञात करने में पच पच मरे हैं परन्तु तो भी न आपके आदि का रहस्य ज्ञात कर सके हैं और न अन्त का। जब विद्वानों का यह हाल है तो मेरी गति कहाँ है।

हे माधव दार्शनिकों का विश्वास है कि आपकी माया आपसे ही उत्पन्न होती है और अन्त में आप ही में लीन हो जाती है। जिस प्रकार वायु के वेग से सागर के जल में उत्ताल तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं और पुनः सागर के जल में लीन हो जाती हैं उसी प्रकार आपकी माया हे माधव आप से ही उत्पन्न होती है और स्वयं आप में ही लीन हो जाती है। जिस प्रकार जल और तरंग एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं केवल आन्दोलित होने पर प्रथक दिखाई पड़ती हैं उसी प्रकार हे माधव आपकी माया का आपसे पृथक अस्तित्व नहीं है।

कवि विद्यापति कहते हैं कि हे शेष शायी माधव तुम्हारी कृपा के अतिरिक्त मुझे किसी और दूसरे का सहारा नहीं है, मेरी गति तो हे माधव केवल आप ही तक है। हे माधव आप अनादि तथा अनन्त कहलाते हैं अतः सर्व शक्ति मान होने के कारण मेरे भवसागर से तारने का समस्त भार आप पर ही है। सर्व शक्तिमान् होने के कारण केवल आप ही मुझ जैसे पापी अधम को तारने में समर्थ हो सकते हैं।

कवि कुल गुरु सूरदास ने भी इस प्रसंग तथा युवावस्था में विषय रत रहने और हीरा सा मानुष जन्म गँवाने के सम्बन्ध में अनेकों अति सुन्दर पदों की रचना की है। नीचे उनके कुछ पद दिये जाते हैं जिनसे उनकी भाव लहरी का अनुमान लगाया जा सकता है।

(१) अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल

काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल॥
महा मोह को नूपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
भरम भरयो मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल॥
तृष्णा नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दियो भाल॥

कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
सूर दास की सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल ॥

(२) किलक दिन हरि सुमिरन बिनु खोए।
पर निंदा रसना के रस में अपने पर तर बोए ॥
तेल लगाय कियो रुचि मर्दन वस्त्रहिं मल मल धोए।
तिलक बनाय चले स्वामी ह्वै विषयन के मुख जोए ॥
काल बली से सब जग कंपत ब्रह्मादिक हूँ रोए।
सूर अधम की कहौं कौन गति उदर भरे परि सोए।

(३) सबै दिन गए विषय के हेत।
तीनों पन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत ॥
आँखिन अंध श्रवण नहिं सुनियत थाके चरण समेत।
गंगा जल तजि पियत कूप जल हरि तजि पूजत प्रेत ॥
राम नाम बिनु क्यों छूटोगे चंद गहे ज्यों केत।
सूरदास कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत ॥

इसी प्रसंग पर कुछ अन्य कवियों की रचनाओं का भी अवलोकन कीजिये।

तुलसीदास— ताहि ते आयो सरन सबेरे।
ग्यान विराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरे।
लोभ मोह मद काम क्रोध रिपु फिरत रैनि दिन घेरे ॥
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरे ॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे।
तुलसिदास यह बिपति बाँगुरो तुमहिं सों बनै निबेरे ॥

कबीर—(१) जनम तेरा बातों ही बीत गयो। तूने कबहुँ न कृष्ण कहो।
पाँच बरस का भोला भाला अब तो बीस भयो।
मकर पचीसी माया कारन देस बिदेस गयो ॥
तीस बरस की अब मति उपजी लोभ बढ़े नित नयो।
माया जोरी लाख करोरी अजहुँ न तृप्त भयो ॥
वृद्ध भयो तब आलस उपजी कफ नित कंठ रह्यो।
संगति कबहुँ न कीनी बिरथा जन्म गयो ॥

यह संसार मतलब का लोभी झूंठा ठाट रच्यो।
कहत कबीर समझ मन मूरख तू क्यों भूल गयो ॥

(२) बीत गये दिन बिना भजन रे।
बाल अवस्था खेल गंवायो, जब जवानि तब मान घना रे ॥
लाहे कारन मूल गँवायो, अजहुँ न गइ मन की तृसना रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! पार उतर गये संत जना रे ॥

स्वामी हरिदास—

जौं लौं जीवै तौं लौं हरि भजु रे मन और बात सब बादि।
दिवस चार को हला भला तू कहा लेइगो लादि ॥
माया मद गुन मद जोबन मद भूल्यो नगर बिबादि।
कहि हरिदास लोभ चटपट भयो काहे की लागै फिरादि ॥

ललित किशोरी—

लाभ कहा कंचन-तन पाये।
भजे न मृदुल कमल दल लोचन, दुख मोचन हरि हरिख न ध्याये ॥
तन मन धन अरपन ना कीन्हें, प्रान - प्रानपति - गुननि न गाये।
जोबन, धन, कलधौत-धाम सब, मिथ्या आयु गँवाय गँवाये ॥
गुरु जन गर्व बिमुख रँग राते, डोलत सुख-सम्पति बिसराये।
ललित किसोरी मिटै ताप ना बिन दृढ़-चितामनि उर लाये ॥

नानक—

या जग में मीत न देख्यो कोई।
सकल जगत अपने सुख लाग्यो, दुख में संग न होई ॥
दारा-मीत पूत-संबंधी, सगरे धन सों लागे।
जब हीं निरधन देख्यो नर कों सँग छाड़ि सब भागे ॥
कहा कहूँ या मन बौरे कौं इन सों नेह लगाया।
दीनानाथ सकल भय-भंजन जस ताको बिसराया ॥
स्वान पूँछ ज्यों भयो न सूधो बहुत जतन मैं कीन्हौ।
नानक लाज बिरद की राखौ नाम तिहारो लीन्हौ ॥

सहजोबाई—

जग में कहा कियो तुम आय।
स्वान जैसो पेट भरि कै सोयो जन्म गँवाय॥
पहर पछिले नहिं जागो कियो न सुभ कर्म।
आन मारग जाय लागो, लियो न गुरु धर्म॥
जप न कीयो तप न साधो दियो न तैं दान।
बहुत उरझे मोह मद में आपु काया मान॥
देह वर है मौत का रे आन काढ़ै तोहि।
एक दिन नहिं रहन पावै कहा कैसो होय॥
रैन दिन आराम ना काटै जो तेरी आव।
चरनदास कहैं सुन सहजिया करी भजन उपाव॥

रानी रूपकुँवरि—

भजन बिन चोला है बे काम।
मल अरु मूत्र भरो नर सब तन है निष्फल यह चाम॥
बिन हरि भजन पवित्र न ह्वै है धोवौ आठो याम।
काया छोड़ हंसि उड़ि जैहै पड़ो रहै धन धाम॥
अपनो सुत मुख लू धर दैहै सोच लेहु परिणाम।
रूप कुँवरि सब छोड़ बसहु ब्रज भजिये श्यामा श्याम॥ इत्यादि

२५३.

जतने जतेक धन पापे बटोरल
मिलि मिल परिजन खाय।
मरनक बेरि हरि कोई न पूछए
करम संग चलि जाय॥
ए हरि, बन्दौं तुअ पद नाय।
तुअ पद परिहरि पाप-पयोनिधि
पारक कओन उपाय॥
जाग्रत जनम नहिं तुअ पद सेविनु
जुवती मति मयँ मेलि।

अमृत तजि हलाहल किए पीअल
सम्पद अपदहि भेलि ॥
भनइ बिद्यापति नेह मने गनि
कहल कि आढ़व काजे ।
साँझक बेरि सेवकाई मँगइत
हेरइत तुअ पद लाजे ॥

जतेक = जितना भी । जतने = यत्न पूर्वक । पापे = पाप से । मरनक = मरण के । बेरि = समय । पारक = पार करने का । कओन = कौन । जाअत = जाता है, व्यतीत होता है । सेविनु = सेवन किये । पीअल = पीया है । सम्पद = सम्पदा, ऐश्वर्य, गौरव । अपदहिं = आपद् , विपत्ति, नाश । मने = मन में । गनि = गणना कर के, विचार कर के । साँझक = संध्या की बेर, अंत समय ।

हे माधव मैं ने जितनी भी सम्पत्ति नाना प्रकार के पाप कर के बटोरी थी उस सब को मेरे कुटुम्बियों, सगे संबंधियों ने मिल कर खा डाला है । अतः जिस सम्पत्ति के लिए मैंने नाना प्रकार के पाप किये थे वह धन सम्पत्ति भी अब मेरे पास नहीं रही । इस कारण मेरा अब तक का समस्त प्रयत्न अकारथ ही गया है । अब मेरी मृत्यु बेला है । हे माधव, जो परिजन मेरी समस्त सम्पत्ति को उड़ा गये उनमें से कोई भी अब अन्त समय मेरी बात तक नहीं पूँछता है । हे माधव मुझे विश्वास हो गया है कि मृत्यु के उपरान्त जीव के संग केवल उसके कर्म फल ही जाते हैं और समस्त धन वैभव यहीं पड़ा रह जाता है ।

हे हरि, हे माधव, मैं आपके चरण कमलों में मस्तक झुका कर वन्दना करता हूँ । हे माधव आपके चरणों के सहारे आश्रय को त्याग कर के इस पाप-मय भवसागर को पार करने का और कौन उपाय है । हे माधव आपके चरणों के आश्रय बिना इस पापपूर्ण भवसागर से तर जाना असम्भव है ।

हे माधव मेरा तो समस्त जीवन बिना तुम्हारी चरण सेवा के व्यतीत हुआ है । मैं तो समस्त जीवन भर रमणियों के संग केलि क्रीड़ा में ही लीन रहा हूँ । आपके भजन का तो मुझे अवकाश ही नहीं मिला । अतः हे भगवान मैं किस प्रकार भवसागर से तर सकूँगा ।

हे माधव मैं ऐसा वज्र मूर्ख हूँ कि मैं ने अमृत समान आपके चरणों को त्याग कर काल कूट के समान भयंकर रमणी रूपी हलाहल को मन भर कर

पिया है और इसी कारण हे माधव, मेरा समस्त ऐश्वर्य तथा गौरव नष्ट हो गया है और मैं कर्म फल भय से कतार हो रहा हूँ।

कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माधव, अपने मन में मेरी प्रीति विचार कर मेरी समस्त बिगड़ी को संवरने का आदेश दीजिये। हे माधव अब अंत काल में मैं आपसे आपकी भक्ति तथा दासता की याचना करता हूँ परन्तु अपने पूर्व कर्मों का विचार कर के आपके चरणों की ओर ताकने के विचार मात्र से ही मुझे लज्जा आती है। हे माधव, मुझ पर कृपा कर के अपने चरणों में शरण दीजिये। पतित उद्धारन विरद आपको जान कर मुझे जैसे पापी की रक्षा कीजिये।

# विविधि

## २५४

### व्यथा

माधव, कि कहब तोहर गेआन।
सुपहु कहलि जब रोष कयल तब
कर मूनल दुहु कान ॥ २ ॥
आयल गमनक बेरि न नीन टरू
तइ किछु पुछिओ न भेला।
एहन करमहीनि हम सनि के धनि
कर से परसमनि गेला ॥ ४ ॥
जओं हम जनितहुँ एहन निठुर पहु
कुच-कंचन-गिरि-साँधि।
कौसल करतल बाहु-लता लए
दृढ़ करि रखितहुँ बाँधि ॥ ६ ॥
इ सुमिरिए जब जाओं मरिए तब
बूझि पड़ हृदय पषाने।
हिमगिरि-कुमरी चरन हृदय धरि
कवि विद्यापति भाने ॥ ८ ॥

(२) गेआन = ज्ञान, बोध, प्रतीत। सुपहु = राजा। मूनल = मूँद लो। (४) गमनक = गमन की, मरण की। बेरि = बेला, समय। नीन = क्षण भर। टरु = टाल सकती है। एहन = ऐसे। सनि = शनि, अभाग्य। धनि = बाला, युवती (६) जओं = यदि। जनितहुँ = जानती। कौसल = कौशल से, चतुरता से। लए = ले कर। (८) इ = यह। जाओं = जाती हूं। पषाने = पाषाण समान। कुमरी = कुमारी, कन्या। हिमगिरि कुमरी = पार्वती।

(२) हे माधव आपके बोध तथा प्रतीत के सम्बन्ध में क्या कहूँ। हे माधव जब मेरे पति (राजा) क्रोधित हो कर आप के विरुद्ध कुछ कहने लगते हैं तो मैं अपनी हथेलियों से अपने दोनों कानों को मूँद लेती हूँ ताकि आपकी निन्दा मेरे कर्ण कुहरों में प्रवेश न कर सके।

(४) हे माधव, गमन की आई हुई (निश्चित) बेला क्षण भी नहीं टल सकती है। इसकी अनिवार्यता कोई पूछने की बात ही नहीं है, अर्थात यह तो एकान्त सत्य है कि निश्चित बेला का टलना असम्भव है। हे माधव मैं ऐसी कर्महीन अभागी बाला हूँ जिसके कि हाथ से पारस मणि गिर गई हो। अर्थात आपसे सम्बन्ध का टूटना हे माधव, ऐसी ही भयंकर हानि है जैसे हाथ में आई पारस मणि हाथ से गिर कर खो जाये। अतः मैं अति कर्महीन तथा अभागी हूँ।

(६) परन्तु हे माधव यदि मैं यह जानती होती कि प्रीतम सुवर्ण पर्वतों के समान उत्तुंग कुचों के मध्य की संधि को लाँघ कर मेरे हृदय में प्रवेश कर जायेंगे अर्थात स्वयं मुझे उनसे प्रेम हो जायेगा तो मैं बड़ी चतुरता से अपने कमल नाल के समान सुन्दर हाथों से कुच संधि को दृढ़ कर के बांध लेती और उनको हृदय में प्रवेश न करने देती। अर्थात यदि मुझे स्वयँ प्रीतम से प्रेम न हो जाता तो मैं बरबस उनको अपने हृदय में प्रवेश न करने देती।

(८) अब मैं हे माधव, इस घटना की कल्पना करती हूँ तो लज्जा के मारे मैं मर मर जाती हूँ और मैं अपने हृदय को एक दम पाषाण समान समझने लगती हूँ। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे माधव, मैं गिरि नन्दिनी पार्वती के चरण कमलों को हृदय में धारण कर के इस सत्य को प्रगट करता हूँ।

२५५

# प्रेम

फूल एक फुलवारि लाओल मुरारि।
जतने पटाओल सुबचन-बारि ॥ २ ॥
चौदिस बान्हल सीतक आरि।
जिबे अवलम्बन करु अवधारि ॥ ४ ॥
ततहु फुलल फुल अभिनव पेम।
जसु मूल लहए न लाखहु हेम ॥ ६ ॥
अति अपरुब फुल परिनत भेल।
दुइ जिव अछल एक भए गेल ॥ ८ ॥
पिसुन-कीट नहिं लागल ताहि।
साहस फल देल बिहि निरबाहि ॥ १० ॥
बिद्यापति कह सुन्दर सेहु।
करिए जतन फलमत होए जेहु ॥ १२ ॥

(२) लाओल = लाये। पटाओल = पठाया, भेजा। सुबचन = सुबचन बोलने वाली, मिष्ठ भाषी। बारि = लड़की, कन्या—उ० बुढ़िया हँसि कह मैं नितहि बारि, मोहिं अस तरुनी कहु कौन नार। (कबीर) (४) बान्हल = बाँधी। सीलक = सीली हुई, आर्द्र, नम, गीली। आरि = ओट, आड़। जिबे = जीती हैं, जीवित हैं। अवलम्बन = अवलंबन, आश्रय, आधार, सहारा। अवधारि = अवधारण, निश्चय पूर्वक। (६) ततहु = वहीं। फुलल = फूलता है, विकसित होता है। अभिनव = नवीन। पेम = प्रेम। मूल = जड़। लहए = लखे, देखे, स्पर्श करे। हेम = सुवर्ण। (८) परिनत = परिणित हो कर। (१०) पिसुन = दुर्जन, खल। निरबाहि = पूर्ण होना। (१२) सेहु = उसे, वहीं। फलमत = फल युक्त, सफल। जेहु = जो।

(३) हे सखी, मोहन ने यौवन रूपी फुलवारी में प्रेम रूपी पुष्प खिलाया इस प्रेम रूपी पुष्प का मूल मिष्ठ भाषी बाला ने बड़े यत्न पूर्वक पठाया था। अर्थात बाला के हृदय में प्रेम का बीजारोपण हुआ।

(४) इस प्रेम रूपी पुष्प को भली प्रकार से विकसित करने तथा नष्ट न होने देने के लिए बाला ने अपने चतुर्दिश गीली, सीली हुई आड़ लगाई अर्थात प्रेम रूपी पुष्प को उगाने के लिए बाला ने अपने चारों ओर सहृदयता आर्द्रता तथा नम्रता का वातावरण प्रस्तुत किया क्योंकि प्रेम रूपी पुष्प वहीं विकसित हो सकता है जहाँ नम्रता तथा सहृदयता हो। और यह सत्य है कि इसी आश्रय के सहारे प्रेम रूपी पुष्प बढ़ भी सकता है, इसके अभाव में नहीं। इस कारण बाला ने नम्रता तथा सहृदयता का अवलम्ब दे कर प्रेम रूपी पुष्प लता को विकसित तथा पुष्पित होने का अवसर दिया।

(६) नवीन प्रेम का पुष्प हे सखी, केवल वहीं, उसी स्थान पर, विकसित हो सकता है, केवल उसी दशा में प्रेम पुष्प खिल सकता है जब उसके आधार का स्पर्श हिम से नहीं होता है। हिम से अभिप्राय है हृदय हीनता तथा शुष्कता से ! हृदय हीनता का स्पर्श मात्र पाने से ही प्रेम वल्लरी मृत प्रायः हो जाती है। अतः प्रेम पुष्प तभी तक विकसित रह सकता है जब तक कि उसके आधार का उपेक्षा रूपी हिम से स्पर्श नहीं होता है।

(८) प्रेम पुष्प के विकसित होने का परिणाम बड़ा ही विचित्र होता है सखी। ऐसी अपूर्व तथा आश्चर्य में डालने वाली बात केवल प्रेम पुष्प के विकसित होने पर ही दृष्टिगोचर होती है। प्रेम पुष्प के विकसित होने का परिणाम यह होता है सखी कि प्रेमी और प्रेमिका के दो प्राण मिल एक हो जाते हैं अर्थात् प्रेम पुष्प के पूर्ण रूप से विकसित हो जाने के पश्चात् प्रेमी और प्रेमिका एक प्राण दो देह हो जाते हैं। ऐसा अपूर्व तथा विचित्र व्यापार होता है प्रेम के विकसित हो जाने पर।

(१०) प्रेम पुष्प के विकसित हो जाने पर, प्रेम रस में भींज जाने पर दुष्ट जन भी उसमें रस भंग नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकार कीट पुष्पों में प्रवेश कर के उनको नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार दुष्ट प्रकृति व्यक्ति भी प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश करके प्रेमी तथा प्रेमिका के मध्य दुराभिसन्धि उत्पन्न कर देते है। परन्तु जिस प्रेम पुष्प का आधार सहृदयता तथा नम्रता होता है और जिसे हृदय हीनता तथा शुष्कता से स्पर्श नहीं होना पड़ता है ऐसे प्रेम राज्य में

कीट रूपी दुष्ट जनों का प्रवेश नहीं हो सकता है और प्रेम पुष्प अक्षत रहता है। ऐसी प्रेम वल्लरी में विधाता निर्बाध रूप से साहस रूपी फल उगा कर उसका जीवन सफल बनाता है। ऐसा प्रेम विधाता की ऐकान्त अनुकम्पा से अवश्यमेव सफल होता है।

(१२) कवि विद्यापति कहते हैं कि इस संसार में केवल उसी का जीवन सुन्दर तथा सत्य है जिसमें यत्न पूर्वक चेष्टा करने पर सफलता रूपी फल लगते हैं।

२५६

## शिवसिंह का युद्ध

दूर दुग्गम दमसि भँजेओ
गाढ़ गढ़ गूढ़िय गँजेओ
पातसाह ससीम सीमा
समर दरसओ रे ॥ १ ॥
ढ़ोल तरल निसान सद्दहि
भेरि कोहल संख नद्दहि
तीनि भुवन निकेत
केतकि सान भरिओ रे ॥ २ ॥
कोह नीर पयान चलिओ
बायु मध्ये राय गरुओ
तरनि तेअ तुलाधरा
परताप गहिओ रे ॥ ३ ॥
मेरु कनक सुमेरु कम्पिअ
धरनि पूरिय गगन झम्पिअ
हानि तुरए पदाति पयभर
कमन सहिओ रे ॥ ४ ॥
तरल तर तरबारि रंगे
बिज्जुदाम छटा तरंगे
घोर घन संघात बारिस—
काज दरसेओ रे ॥ ५ ॥
तुरए कोटिअ चाप चूरिअ
चारि दिसि सौं बिदिस पूरिआ
बिषम सार असाढ़ धारा
धरनि भरिओ रे ॥ ६ ॥

अन्ध कूआ कबन्ध लाइअ
फेरवी फफ्फरिस गाइअ
रुहिर मत्त परेत भूत
बैताल बिछलिओ रे ॥ ७ ॥
पार भइ परिपंथि गंजिअ
भूमि मंडल मुंड मंडिअ
चारु चन्द्र कलेव कीत्ति
सुकेत की तुलिओ रे ॥ ८ ॥
राम रूप स्वधम्म सिक्खिअ
दान दप्प दधिचि रक्खिअ
सुकवि नव जयदेव
भनिओ रे ॥ ९ ॥
देवसिंह नरेन्द्र नन्दन
शत्रु नरवइ कुल निकन्दन
सिंह सम सिवसिंह राया
सकुल गुनक निधान
गनिओ रे ॥ १० ॥

(१) दुग्गम = दुर्गम । दमसि = उमंग से । भँजेओ = भगाया, तोड़ा । गाढ़ = दुरूह, दुर्गम, कठिन । गूढ़िय = गुप्त, छिपा हुआ । गँजेओ = गंजना की, नाश कर दिया, नष्ट कर दिया । ससीम = पराकाष्ठ को पहुंची हुई । सीमा = मर्यादा । दरसओ = दर्शाया, दर्शन कराया । (२) तरल = चंचल । निसान = निःस्वन, मारू बाजा । सद्दहि = शब्द, ध्वनि । भेरि = भेरी । कोहल = एक प्रकार का बाजा । नद्दहि = नाद, शब्द । निकेत = निकेतन, स्थान । केतकि = केतिकी पुष्प । सान = पयान । (३) पयान = यात्रा, गधरानन । तेअ = तेज । तुलाधरा = धरा समान, तुल्य । (४) पूरिय = भर गई । हानि = हिनहिनाहट । तुरए = तुरय, घोड़ा । पदाति = पैदल सिपाही । कमन = कवन, कौन । (५) तर = गीली, डूबी हुई । घात = चोट, हत्या । काज = दृश्य । (६) चूरिअ = चूर होते हैं । बिदिस = विदिशा, दिशाओं के बीच के कोण । सार = सार भाग, रक्त । (७) फफ्फरिस = प्रसन्न हो कर । रुहिर = रुधिर । बिछलिआ = बिछलते हैं, फिसलते हैं, क्रीड़ा करते हैं । (८) पार = पार करना, समाप्त करना । परिपंथि = शत्रु ।

गँजिअ = गंजना की, नाश किया—उ० जुरे युद्ध कर तेग लै पंचम के असवार, गंजि गरेव गरबीन के करे अरिन पर वार। (लाल)। मंडिअ = मंडन किया, अलकृत किया। चारु = सुन्दर। कलेव = कलेवर, शरीर, कलाएं। कीत्ति = कीर्ति। सुकेत = केतकी पुष्प। तुलिओ = तुल्य, समान। (६) स्वधम्म = स्वधर्म, कर्म। सिक्खिअ = सिखाया। दप्प = दर्प, दपु प्रतिष्ठा = उ० सात दिवस गोवर्द्धन राख्यो, इन्द्र गयो दपु छोहि। (सूर) (१०) निकंदन = विनाश करने वाले। राया = राय, राजा। सकुल = सकल, समस्त। गनिओ = गिनो, गणना करो।

(१) महाराजा शिवसिंह ने दूरस्थ दुर्गम गढ़ों को केवल अपनी हुँकार, धौंस और असीम साहस के बल पर ही तोड़ डाला और अति दुर्गम गुप्त गढ़ों को बात की बात में नष्ट कर दिया। यही नहीं वरन् महाराजा शिवसिंह ने दिल्लीपति सुल्तान की पराकाष्ठा को पहुँची हुई मान मर्यादा को भी रणभूमि का दर्शन कराया। अर्थात् बादशाह की सीमा भूमि तक युद्ध की ज्वाला को पहुँचा कर दिल्लीपति सुल्तान को समर भूमि में धूल धूसिरत करके नष्ट कर दिया।

(२) डंके की कर्कश ध्वनि, चंचल तथा वायु में लहराती हुई पताकाओं से सुसज्जित, रणभेरी कोहल तथा शंख की ध्वनि से तीनों लोकों को कम्पायमान करने वाली सेना के जय कोलाहल से संसार की समस्त चौरस पृथ्वी और तीनों भुवन इस प्रकार गुंजायमान हो उठे जिस प्रकार केतकी के पुष्प का सौरभ चारों ओर की वायु को सुगन्धित बना देता है।

(३) पर्वतीय नदी जिस प्रकार प्रचण्ड वेग से बहती है, तथा वायु मण्डल में जिस वेग से पक्षीराज उड़ते हैं उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी तथा प्रतापी राजा शिवसिंह ने अपनी सेना के साथ सैन्य यात्रा की।

(४) महाराजा शिवसिंह की सेना की प्रचण्ड गति से स्वर्ण गिरि सुमेरु कम्पायमान होने लगा, जय-जयकार से समस्त पृथ्वी भर गई, गुंजरित हो गई और आकाश भी जय-जयकार की प्रतिध्वनि से गुंजायमान हो उठा। घोड़ों की हिनहिनाहट तथा पैदल सिपाहियों के पदों की चाप से उत्पन्न होने वाले घोर शब्द को इस संसार में कौन सह सकता है।

(५) शत्रुओं के रक्त से रंगी तलवारें रणक्षेत्र में इस प्रकार अपनी चंचल छटा दिखलाने लगीं जिस प्रकार वर्षा कालीन मेघों में चमकती हुई विद्युत लता

अपना प्रकाश फैला कर छुप जाती है। युद्ध के समय योद्धाओं की ललकार वर्षा काल में मेघों की कड़क तथा गरज का सा दृश्य उपस्थित करती थी।

(६) असंख्य घोड़ों की टापों से पृथ्वी चूर चूर हो गई और चारों दिशायें तथा दिशाओं के कोण धूल से भर गये। भयंकर बाणों की धारावृष्टि से आकाश भर गया और शत्रु के रक्त से पृथ्वी इस प्रकार रक्त रंजित हो गई जिस प्रकार असाढ़ की वर्षा के पानी से समस्त पृथ्वी भर जाती है।

(७) रणभूमि में सिर कटे कबन्ध चारों ओर नाचते फिरते थे और श्रगाल प्रसन्नता से चारों ओर चिल्लाने लगे। अपना मन माना भोजन पा कर भूत-प्रेत प्रसन्न हो कर गाने तथा मंगल करने लगे। मनमाना रुधिर पान करके मस्त बने हुए भूत प्रेत बैताल रणभूमि में क्रीड़ा करने लगे तथा फिसल फिसल कर गिरने लगे।

(८) महाराज शिवसिंह की सेना ने शत्रुओं को नाश कर के बरबाद कर दिया और समस्त रणक्षेत्र को शत्रुओं के नर मुण्डों से अलंकृत कर दिया। महाराज शिवसिंह का तेज युक्त कलेवर पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रकाश-वान् तथा केतकी पुष्प की नाईं सौरभ युक्त हो उठा। उनका यश तथा तेज दिगदिगन्तरों में व्याप्त हो गया।

(९) नव ( अभिनव ) जयदेव उपनाम धारी सुकवि विद्यापति कहते हैं कि महाराजा शिवसिंह ने अपने सुकर्मों तथा सुन्दर राज्य प्रबन्ध से राम राज्य के धर्म कर्म की इस संसार में पुनः प्रतिष्ठा की और दान करने में महर्षि दधीचि की पुन्य कीर्ति को अमरत्व प्रदान किया।

(१०) महाराज देव सिंह के सुपुत्र राजकुमार महाराजा शिवसिंह पुरुषसिंह समस्त गुणों की खानि तथा शत्रुओं को समूल विनाश करने वाले हैं। सिंह के समान एक छत्र राज्य करने वाले महाराज शिवसिंह स्वयं समस्त कला विधान तथा गुण सम्पन्न हैं।

**महाराज देव सिंह**—महाराज शिव सिंह के पिता थे। महाराज भव सिंह की मृत्यु के पश्चात् देवसिंह सिंहासन पर बैठे। इन्होंने अपना उपनाम गरुड़-नारायण रखा था। इन्होंने पुरानी राजधानी ओइनी को त्याग कर दरभंगा के समीप देवकुली नाम की राजधानी बसाई। यह प्रसिद्ध दानी थे और इन्होंने अनेकों बार तुलादान करके सम्पत्ति याचकों को बाँट दी थी। यह बड़े वीर तथा योद्धा थे। स्वयं गुणी थे और गुणवानों का आदर करते थे। विद्यापति

ने इनके समय में "भू परिक्रमा" नामक ग्रंथ की रचना की थी। लक्ष्मण संवत २९३ ( १४०२ ई०) में चैत्र कृष्णा तिथि ६ बृहस्पतिवार को गंगाजी के तट पर इन्होंने अपनी जीवन लीला समाप्त की। इनके दो पुत्र थे-शिवसिंह और पद्मसिंह। जिस समय देव सिंह की मृत्यु हुई उसी समय मुसलमानों ने आक्रमण किया। परन्तु शिवसिंह ने बड़ी वीरता से यवन सेना को पराजित करके अपने पिता की अँत्येष्ठ क्रिया की। महाराज शिवसिंह अपने पिता के जीवन काल में ही बहुत दिनों तक युवराज के रूप में कार्य करते रहे थे और इसी कारण प्रजा उन्हें ही अपना राजा समझती थी। महाराजा देव सिंह तो केवल नाम मात्र के राजा थे। युवराजावस्था से ही शिवसिंह "महाराज" पुकारे जाते थे। विद्यापति के उपरोक्त पद से इसी घटना का आभास मिलता है।

## २५७.

### दृष्टिकूट

"कुसुमित कानन" कुंजे बसी।
नयनक काजर घोरि मसी॥
नख सौं लिखल नलिनि दल पात।
लीखि पठाओल आखर सात॥
पहिलहि लिखलनि पहिल बसंत।
दोसरें लिखलनि तेसरक अंत॥
लिखि नहि सकली अनुज बसंत।
पहिलहि पद अछि जीवक अंत॥
भनहि बिद्यापति आखर लेख।
बुध-जन हो से कहए बिसेख॥

बसी = बस कर, बैठ कर। घोरि = घोल कर। आखर = अक्षर। पहिल = पहला। तेसरक = तीसरे का। अनुज बसंत = बसंत का अनुज, बसंत के बाद का मास बैशाख जिसका दूसरा नाम माधव मास है। अछि = है। लेख = लिख कर, लखकर। बुध = बुद्धिमान।

पुष्पित कानन के निकुंज में बैठ कर राधा ने आँखों के काजल की रोशनाई बनाई और नख द्वारा कमलिनी के पत्ते पर सात अक्षर लिख कर माधव को भेजे। राधा ने सर्व प्रथम लिखा पहला बसंत। बसंत ऋतु का प्रथम मास है चैत्र और चैत्र का दूसरा नाम है मधुमास। इस प्रकार राधा ने कमल पत्र पर सर्व प्रथम "मधु" इन दो अक्षरों को लिखा।

इसके पश्चात् राधा ने कमल पत्र पर तृतीय का अन्त लिखा अर्थात तीसरी ऋतु के अन्तिम अक्षर लिखे। बसंत के पश्चात तीसरी ऋतु होती है वर्षा की। वर्षा ऋतु का अन्त हस्ता नक्षत्र के उदय हो जाने के पश्चात माना जाता है। "हस्त" का अर्थ है "कर"। इस प्रकार "मधु" के पश्चात राधा ने

कमल पत्र पर "कर" अक्षर लिखे इस प्रकार सम्पूर्ण शब्द बना "मधुकर"।

लज्जा तथा क्षोभ के कारण राधा कमल पत्र पर बसंत का अनुज नहीं लिख सकी। चैत्र बसंत का प्रथम मास है और उसके पश्चात आता है वैशाख। वैशाख मास का दूसरा नाम है "माधव" मास। "माधव" का अर्थ होता है लक्ष्मी पति। इस प्रकार कुछ तो लज्जा वश तथा ईर्ष्या से प्रेरित हो कर राधा "माधव" शब्द न लिख सकी। प्रथम पद (अक्षर) में ही जीवन का अन्त है। इस प्रकार राधा ने लिखा "मधुकर आयतहि" अथवा "मधुकर आवैछी" (मिथला की भाषा में)। यह हुई सात अक्षरी। मधुकर इस कारण लिखा क्योंकि लज्जा तथा ईर्ष्या वश राधा को माधव लिखना नहीं रुचा इसलिये माधव के स्थान पर मधुकर लिख दिया।

कवि विद्यापति इस सप्त अक्षरी को देख कर कहते हैं कि केवल बुद्धिमान व्यक्ति ही इस विषय में कुछ विशेष रूप से कह सकते हैं अर्थात यह विषय केवल विद्वानों के ही समझने योग्य है।

२५८

## बाल-विवाह

पिया मोर बालक हम तरुनी।
कोन तप चुकलौंह भेलौंह जननी॥
पहिर लेल सखि एक दछिनक चीर।
पिया के देखैत मोर दगध सरीर॥
पिया लेलीं गोद कै चललि बजार।
हटियाक लोग पूछे के लागु तोहार॥
नहि मोर देवर कि नहि छोट भाइ।
पुरुब लिखल छल बालमु हमार॥
बाटरे बटोहिया कि तुहु मोरा भाइ।
हमरो समाद नैहर लेने जाउ॥
कहिहुन बबा के किनए धेनु गाइ।
दुधवा पियाइ के पोसता जमाई।
नहि मोर टका अछि नहि धेनु गाइ।
कौनइ बिधि सें पोसब जमाई॥
भनइ बिद्यापति सुनु ब्रज नारि।
धीरज धरहू त मिलत मुरारि॥

चुकलौंह = चूक हुई है, भूल हुई है। भेलौंह = भेड़ा है, बरबस दिया है। देखैत = देखते ही। हटियाक = हाट बाज़ार के। बाटरे = बाट के, रास्ते के। समाद = सम्वाद, समाचार। कहिहुन = कहती हूँ, उत्तर देती हूँ। किनए = कितनी ही, अनेकों। गाइ = गायें। पोसता = पोषते हैं, पालते हैं—उ० राम सुप्रेमहि पोषत पानी, हरत सकल कलि कलुष गलानी। (तुलसी)। टका = पैसा, धन। पोसब = पोषण करूँ, पालन करूँ।

हे सखी, मेरा जीवन जीवन भी व्यर्थ है। मैं तो पूर्ण वयस्यका तथा पूर्ण यौवना रमणी हूं परन्तु मेरा पति अभी अबोध बालक ही है। हे सखी, न जाने पिछले जन्म की तपस्या में मुझ से क्या चूक हो गई थी जिसके कटु परिणाम स्वरूप मेरी माता ने मेरे सिर ऐसा पति मेड़ दिया है, ऐसे निरर्थक पति के साथ बरबस ही मेरा पल्ला बाँध दिया है।

हे सखी, मेरे संग की सहेलियां दक्षिण देश के बने सुन्दर वस्त्र धारण कर के अपने पतियों को रिझाती तथा प्रसन्न करती हैं परन्तु हे सखी मैं किस हेतु श्रृंगार करूं। अबोध पति को देखते ही मेरा शरीर तो मारे क्रोध तथा क्षोभ के जलने लगता है। पति को देखते ही मेरे शरीर में आग सी लग जाती है।

हे सखी, हमारे पति ऐसे अबोध बालक हैं कि जब मैं उनको अपनी गोदी में ले कर बाज़ार को जाती हूँ तो हाट बाज़ार के सभी व्यक्ति मुझ से पूछते हैं कि हे सुन्दरी, यह बालक तुम्हारा कौन लगता है।

हे सखी, उनके प्रश्नों के उत्तर में मैं उनसे कहती हूँ कि यह बालक न तो मेरा देवर है और न छोटा भाई ही है। पूर्व जन्म के पापों के फल स्वरूप यह बालक हमारा पति है।

हे सखी, रास्ते में बटोही गोदी में चढ़े हुए हमारे पति से पूछते हैं कि हे बालक, क्या तू इस सुन्दरी का भाई है और अपनी बहिन का कुशल समाचार लेने नैहर से आया है।

हे सखी, विपत्ति भी तो अकेली नहीं आती है। किसी किसी स्त्री के बाबा (पिता—मिथिला तथा बंगाल में पिता को बाबा कहते हैं) धनी होते हैं और उनके अनेकों गायें होती हैं जिनका दूध पिला पिला कर वह अपने किशोर जामाताओं को शीघ्र ही पुष्ट तथा बलशाली बना लेते हैं और इस प्रकार अपनी ग़लती को एक शुभ कार्य से ठीक कर देते हैं।

परन्तु हे सखी, मेरे पिता तो नितान्त निर्धन हैं। न तो उनके पास पैसा टका है और न दूध देने वाली गायें ही हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में मैं अपने पिता के जमाई अर्थात् अपने पति का किस प्रकार पोषण करके उन्हें शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण वयस्यका युवा बना दूँ।

कवि विद्यापति कहते हैं कि हे ब्रज बाले, हे ब्रज नागरी धैर्य धारण कर, तुझे मुरारी अवश्य प्राप्त होंगे।

२५६

## परकीया (स्वयँ दूतिका)

अपर पयोधि मगन भेल सूर।
नखि-कुल-संकुल बाट बिदूर॥
नर परिहरि नाविक घर गेल।
पथिक गमन पथ संसय भेल॥
अनतए पथिक करिअ परबास।
हमे धनि एकलि कंत नहि पास॥
एक चिंता अओक मनमथ सास।
दसमि दसा मोहि कओनक दोस॥
रयनि न जाग सखी जन मोर।
अनुखन सगर नगर भम चोर॥
तोहे तरुनत हम बिरहिनि नारि।
उचितहु वचन उपज कुलगारि॥
वामा बचन वाम पथ धाव।
अपन मनोरथ जुगुति बुझाव॥
भनइ विद्यापति नारि सुजानि।
भल कए रखलक दुहु अनुमानि॥

अपर = अपार, अनन्त, सीमा रहित। पयोधि = समुद्र। मगन = मग्न हो गया, डूब गया। नखि-कुल = नखी, वह जानवर जो नखों से किसी पदार्थ को चीर फाड़ सकता हो, शेर, चीता इत्यादि। संकुल = भर गये, परिपूर्ण हो गये। बाट = रास्ते। बिदूर = विदूर, पर्वतीय भाग। नर = पुरुष। नाविक = मांझी, मल्लाह। अनतए = अनत, दूसरे स्थान के। परबास = प्रवास, विदेश गमन। सोस = शोष, शोषण करता है, क्षीण करता है। दसमि = दसवीं, साहित्य के रस निरूपण में वियोगी की वह दशा जिस में वह प्राण त्याग देता है, मरण।

कओनक = कौन। जन = व्यक्ति, पुरुष। सगर = समस्त। भम = भ्रम। गारि = गाली, कलंक। जुगुति = युक्ति से। अनुमानि = अटकल, अनुमान, विचार।

अनन्त असीम समुद्र में सूर्य डूब गया है और रात्रि हो जाने के कारण वनचरों शेर चीतों इत्यादि से समस्त मार्ग तथा पर्वतीय भाग परिपूर्ण हो गये हैं।

सन्ध्या हो जाने के कारण माँझी मल्लाह तथा अन्य व्यक्ति नदी तट को छोड़ कर अपने अपने घरों को चले गये हैं और पथिकों को भी मार्ग में चलने में भय तथा संशय होने लगा है।

ऐसे समय में दूसरे स्थानों से आये पथिक भी आश्रय खोज कर विश्राम करने लगे हैं परन्तु ऐसे समय भी मैं पूर्ण यौवना बाला अकेली हूँ, मेरे पति मेरे पास नहीं हैं।

एक तो मुझे इसी बात की चिंता थी परन्तु दूसरी ओर कामदेव मेरे समस्त शरीर को जला कर क्षीण किये डालता है। ऐसी विषम परिस्थिति में यदि मेरी दशा मरणावस्था को पहुँच गई हो तो इसमें मेरा क्या दोष है।

हे सखी रात्रि को तो और भी विकट परिस्थिति हो जाती है। मेरे कुल के व्यक्ति रात्रि को तनिक भी नहीं जागते हैं और मुझे चिंता के कारण निद्रा नहीं आती है। जागते रहने के कारण प्रति क्षण समस्त नगर में चोरों का भय लगा रहता है।

हे प्रवासी पति तुम पुरुष हो परन्तु मैं तो विरह की सताई एक नारी मात्र हूँ। यदि मैं अपनी भावनाओं को उचित तथा उपयुक्त शब्दों में व्यक्त करने लगूँ तो मेरे कुल की प्रतिष्ठा में कलंक लगेगा।

हे मुरारी, मुझ जैसी विरहाकुल स्त्री की बात मान कर तुम कामदेव के मार्ग का अनुसरण करो अर्थात काम क्रीड़ा करो और यत्न पूर्वक अपने मनोरथों को पूर्ण करो।

कवि विद्यापति कहते हैं कि हे चतुरा नागरी यत्न पूर्वक दोनों व्यक्तियों (पति, मुरारी) को अपनी सहज बुद्धि तथा विचार से तुष्ट करो।

२६०

हम जुबती पति गेलाह बिदेस ।
लग नहि बसए पड़ोसियाक लेस ॥
सासु दोसरि किछुत्रो नहि जान ।
आँखि रतौंधी सुनए नहि कान ॥
जागह पथिक जाह जनु भोर ।
राति अँधार गाम बड़ चोर ॥
भरमहु भौंरि न देअ कोतवार ।
काहु क केओ नहि करए बिचार ॥
अधिप न कर अपराधहु साति ।
पुरुष महते सब हमर सजाति ॥
बिद्यापति कबि यह रस गाव ।
उकुतिहु अबला भाव जनाव ॥

गेलाह = चला गया है। लग = लग्न, लाग, प्रेम—उ० भांकति है का झरोखा लगी लग लगिबे की इहाँ झेल नहीं फिर। (पद्माकर)। बसए = वास करता है। लेस = लेश मात्र, अणु मात्र। दोसरि = दूसरी। जागह = जागते रहो। जाह = जाओ। गाम = ग्राम, ग्राम वासी। भौंरि = चक्कर, रौंद। अधिप = अधिपति, नायक, सरदार, मुखिया। साति = शास्ति, दण्ड। महते = महतो, गांव का मुखिया, सरदार। उकुतिहु = उकताई हुई, आकुल। जनाव = जनाती है, व्यक्त करती है।

हे पथिक मैं पूर्ण यौवना युवती हूँ और मेरा पति विदेश गया हुआ है। यह स्थान भी पथिक ऐसा नीरस है कि प्रेम का लेश मात्र इस स्थान के पड़ोस में भी छू तक नहीं गया है अर्थात यह स्थान प्रेम रस से शून्य है।

हे पथिक मेरी सास दूसरी है अर्थात् मेरे पति की विमाता है और इस कारण वह मेरी कुछ परवाह भी नहीं करती है। इसके अतिरिक्त मेरी सास को रतौंधी आती है और वह बहरी होने के कारण सुनती भी कम है।

अत: हे पथिक जागते रहो और भोर होने पर ही गमन करो। रात्रि पूर्ण रूप से अन्धकार मय है और इस ग्राम के वासी बड़े चोर हैं अत: हे पथिक आज की रात्रि यहीं विश्राम करो।

हे पथिक इस ग्राम का कोतवाल कभी भूल कर भी रात्रि को रौंद नहीं देता

है और किसी भी व्यक्ति की किसी भी प्रकार की शिकायत पर तनिक भी विचार नहीं करता है। अतः हे पथिक आज की रात्रि यहीं विश्राम करो।

हे पथिक यहाँ का राजा अधिपति अपराधियों को दण्ड तक नहीं देता है और न राज्य प्रबन्ध ही करता है। और हे पथिक इस ग्राम के सभी व्यक्ति तथा यहाँ का मुखिया सब मेरी ही जाति के हैं। अतः हे पथिक सब प्रकार का संशय त्याग कर आज की रात्रि यहीं विश्राम करो।

कवि विद्यापति रस रीति की इस भावना को गाते हैं और बताते हैं कि अपने ऐकांकी जीवन से उकताई हुई आकुल बाला अपने हृदय के भावों को किस प्रकार व्यक्त करती है।

उपरोक्त पद में कवि विद्यापति ने प्रेमासक्त बाला बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। पहले तो बाला अपनी परिस्थिति की ओर तथा पति के प्रवासी हो की बात का इशारा करती है और फिर पथिक से रात्रि को टिकने तथा उसके प्रेमाभिनव करने को प्रस्तुत होने का इशारा देती है। विमाता सास, उसकी रतौंधी तथा कम सुनने की बात बता कर वह पथिक को ठहरने के लिए ललचाती है। इसके पश्चात भी पथिक के मूर्खता वश उसके इशारों को न समझ कर रात्रि को ही जाने को प्रस्तुत हो उठने पर बाला उसे डराने तथा रात्रि को टिकने पर बाध्य करने के लिए अंधेरी रात्रि तथा ग्राम वासियों के चोर होने की बात सुना कर डराने की चेष्टा करती है। फिर कोतवाल तथा अधिपति की लापरवाही बताते हुए अन्धेरे गर्दी का आभास देती है, और साथ ही इस बात का भी इशारा कर देती है कि समस्त ग्राम वासी तथा गाँव का मुखिया उसके सजातीय हैं। अर्थात इस बात की ओर इंगित कर देती है कि यदि वह रात्रि उसके संग व्यतीत करेगा तो समस्त जाति की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाने के भय से कोई भी उससे कुछ नहीं कहेगा। इसके साथ साथ इन्हीं शब्दों में वह पथिक को धमकी भी देती है कि समस्त पुर-वासियों तथा गाँव के मुखिया के सजातीय होने से वह पथिक पर झूठा दोष लगा कर भी दण्ड दिला सकती है। उसके एक शब्द मात्र से ही उस पर संकट आ सकता है और उस पर किये गये अन्याय की सुनवाई राजा के दर-बार तक में नहीं होगी।

कामतुराणाँम भयं न लज्जा। कैसे सुन्दर शब्दों में कवि विद्यापति ने कामातुर स्त्री के मनोभावों को व्यक्त किया है। इस क्षेत्र में विद्यापति की प्रतिभा अद्भुत है।

## २६१

## विद्यापति की मृत्यु

दुल्लहि तोहरि कतए छथि माय ।
कहुन ओ आबथु एखन नहाय ॥२॥
बृथा बुझथु संसार विलास ।
पल पल नाना तरहक त्रास ॥
माय बाप जौं सद्गति पाब ।
संतति काँ अनुपम सुख आब ॥
विद्यापतिक आयु अवसान ।
कातिक धवल त्रयोदसि जान ॥

कतए = कहाँ है । छथि = है । कहुन = कहो । ओ = उससे । आबथु = आ जावे । एखन = इसी क्षण । बुझथु = बूझता है, ज्ञात होता है । तरहक = प्रकार के ।

हे दुल्लहि, तेरी माता कहाँ हैं । हे पुत्री उससे कहो कि इसी क्षण स्नान करके यहाँ आ जाये । मुझे तो इस संसार का समस्त भोग विलास वृथा ज्ञात होता है और ऐसा प्रतीत होता है मानो यह सब भोग विलास की वस्तुएँ प्रतिक्षण नाना प्रकार के त्रास तथा कष्ट पहुँचा रही हैं । हे दुल्लहि, यदि किसी के माता पिता अपने सुकर्मों से सद्गति प्राप्त करते हैं तो उनके इस पुण्य कार्य से उनकी सन्तान को अनुपम सुख शान्ति की प्राप्ति होती है । कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी (१३ वीं तिथि ) को विद्यापति की जीवन लीला समाप्त हुई अर्थात् उनकी लम्बी आयु का अन्त हुआ ।

**दुल्लहि**—विद्यापति के पुत्र का नाम हरिपति था । इनके एक कन्या भी थी । मिथिला में यह प्रवाद है कि इनकी पुत्री का नाम "दुल्ली" था । विद्यापति ने अनेकों ऐसे पदों की रचना की है जिनमें पति ग्रह गमन के समय कन्या को उपदेश दिये गये हैं । उन सब पदों में "दुलही" शब्द आया है । ऐसा

कहा जाता है कि यह पद उन्होंने अपनी पुत्री को ही सम्बोधित करके रचे थे। शब्द "दुलही" का अर्थ नव बधू भी होता है परन्तु उपरोक्त पद में विद्यापति दुल्लहि से अपनी माता को बुला लाने को कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि दुलही या दुल्लहि विद्यापति की कन्या का नाम था।

—समाप्त—

रविवार

८-६-१६५६

मुद्रक :—मदनलाल गुजराल, एलबियन प्रेस, काश्मीरी गेट देहली ।